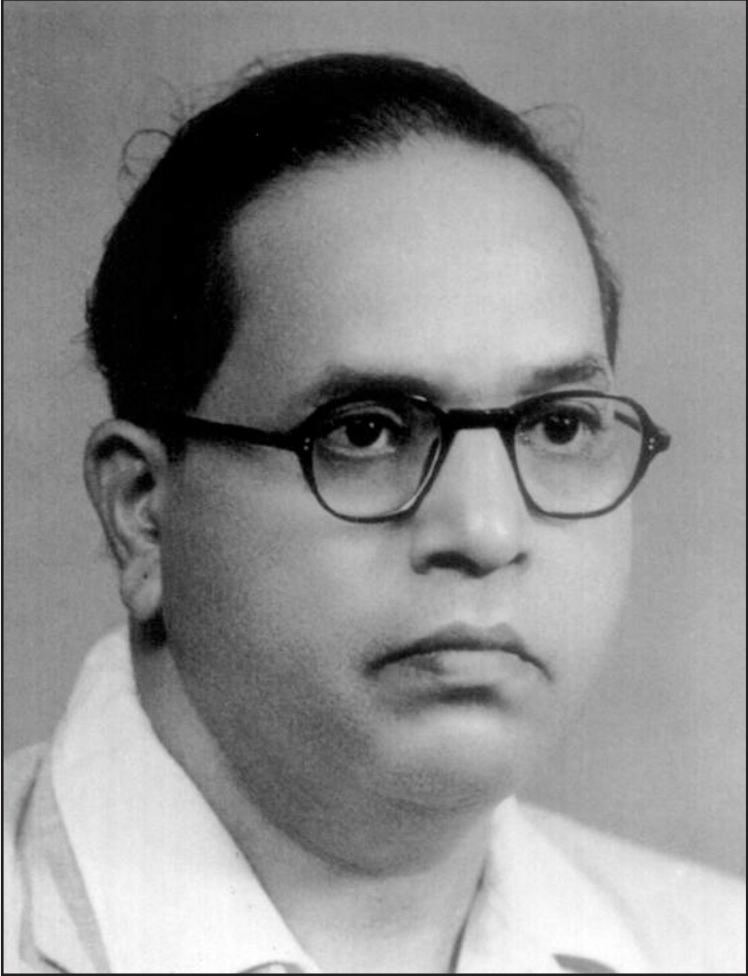


बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर

जन्म : 14 अप्रैल 1891 परिनिर्वाण : 6 दिसंबर 1956

बाबासाहेब

डॉ. अम्बेडकर

सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 16

डॉ. अम्बेडकर सम्पूर्ण वाङ्मय

खंड 16
कांग्रेस एवं गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया

पहला संस्करण : 2000
दूसरा संस्करण : 2011
तीसरा संस्करण : 2013

ISBN : **978-93-5109-016-8**

आवरण परिकल्पना : विनय कुमार पॉल
पुस्तक के आवरण पर उपयोग किया गया मोनोग्राम बाबासाहेब डॉ. बी. आर. अम्बेडकर के लेटरहेड से साभार

मूल्य : सामान्य (पेपरबैक) : ₹ 40

प्रकाशक :
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार, नई दिल्ली – 110 001
फोन : 011–23320571, 23320576, 23320589
फैक्स : 23320582
वेबसाइट : www.ambedkarfoundation.nic.in

मुद्रक : अरिहंत ऑफसेट, जनकपुरी, नई दिल्ली

हिन्दू सोसायटी उस बहुमंजिली मीनार की तरह है जिसमें प्रवेश करने के लिए न कोई सीढ़ी है न दरवाजा। जो जिस मंजिल में पैदा हो जाता है उसे उसी मंजिल में मरना होता है।

— डा० भीमराव अम्बेडकर

परामर्श सहयोग

श्रीमती मेनका गांधी
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री (स्वतंत्र प्रभार)
भारत सरकार

श्रीमती आशा दास
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय
भारत सरकार

श्री एस.के. पांडा
संयुक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय,
भारत सरकार
सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री एम. पी. जोनसन
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

संपादक
श्री ओम प्रकाश काश्यप

संकलन (अंग्रेजी)
श्री वसंत मून

अनुवादक
श्री सीताराम खोड़ावाल

पुनरीक्षक
डा. के.सी. गौतम

संपादक सहयोग
डा. वी.एन सिंह

विक्रय प्रबंधक
श्री जसवंत सिंह

द्वितीय संस्करण के पुनरीक्षक
श्री सुधीर हिलसायन





dqekjh lSytk

KUMARI SELJA

Lkkekftd U;k; vkSj vf/kdkfjrk ea=h

Hkkjr ljdkj

MINISTER OF SOCIAL JUSTICE & EMPOWERMENT

GOVERNMENT OF INDIA

rFkk

v/;{k] MkW- vEcsMdj izfr"Bku

CHAIRPERSON, DR. AMBEDKAR FOUNDATION

संदेश

मुझे यह जानकर अत्यंत प्रसन्नता हो रही है कि सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय का स्वायत्तशासी संस्थान, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान द्वारा बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के लेखों एवं भाषणों के खंड संख्या 16 का पुनः संस्करण प्रकाशित किया जा रहा है।

भारत रत्न डॉ. बी. आर. अम्बेडकर भारतीय सामाजिक–राजनीतिक आंदोलन के ऐसे पुरोधा रहे हैं, जिन्होंने जीवनपर्यन्त समाज के आखिरी पायदान पर संघर्षरत् व्यक्तियों की बेहतरी के लिए कार्य किया। डॉ. अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे इसीलिए उनके लेखों में विषय की दार्शनिक मीमांसा प्रस्फुटित होती है। बाबासाहेब का चिंतन एवं कार्य समाज को बौद्धिक, आर्थिक एवं राजनैतिक समृद्धि की ओर ले जाने वाला तो है ही, साथ ही मनुष्य को जागरूक मानवीय गरिमा की आध्यात्मिकता से सुसंस्कृत भी करता है।

बाबासाहेब का संपूर्ण जीवन दमन, शोषण और अन्याय के विरुद्ध अनवरत क्रांति की शौर्य–गाथा है। वे एक ऐसा समाज चाहते थे जिसमें वर्ण और जाति का आधार नहीं बल्कि समता, स्वतंत्रता, बंधुत्व व मानवीय गरिमा सर्वोपरि हो और समाज में जन्म, वंश और लिंग के आधार पर किसी प्रकार के भेदभाव की कोई गुंजाइश न हो। समता, स्वतंत्रता और बंधुत्व के प्रति कृतसंकल्प बाबासाहेब का लेखन प्रबुद्ध मेधा का प्रामाणिक दस्तावेज़ है।

भारतीय समाज में व्याप्त विषमतावादी वर्णव्यवस्था, जिसके तहत मानव–मानव में भेद किया जाता था, से डॉ. अम्बेडकर कई बार टकराए। इस टकराहट से डॉ. अम्बेडकर में ऐसा जज़्बा पैदा हुआ, जिसके कारण उन्होंने समतावादी समाज की संरचना को अपने जीवन का मिशन बना लिया। समतावादी समाज के निर्माण की प्रतिबद्धता के कारण डॉ. अम्बेडकर ने विभिन्न धर्मों की सामाजिक–धार्मिक व्यवस्था का अध्ययन व तुलनात्मक चिंतन–मनन किया।

डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान, बाबासाहेब डॉ. अम्बेडकर के अन्य खंडों को भी शीघ्र प्रकाशित करने में प्रयासरत है। मुझे पूरी आशा है कि पाठकों को शीघ्र ही अप्रकाशित अन्य खंड भी पुस्तकों के आकार में प्राप्त हो जाएंगे।

आशा है, पाठकगण इस खंड के बारे में अपने अमूल्य विचार एवं सुझाव उपलब्ध करवाएं जिससे कि इन अनूदित खंडों की गुणवत्ता एवं साज–सज्जा को आगामी खंडों में आने वाले समय में बेहतर बनाया जा सके।

सैलजा

(कुमारी सैलजा)

परामर्श सहयोग

कुमारी सैलजा
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्री, भारत सरकार
एवं
अध्यक्ष, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री डी. नैपोलियन
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री पी. बलराम नाईक
सामाजिक न्याय और अधिकारिता राज्य मंत्री

श्री अनिल गोस्वामी
सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार

श्री संजीव कुमार
संयुक्त सचिव
सामाजिक न्याय और अधिकारिता मंत्रालय, भारत सरकार
एवं सदस्य सचिव, डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री विनय कुमार पॉल
निदेशक
डॉ. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

श्री कुमार अनुपम
विशेष कार्याधिकारी

डॉ. शशि भारद्वाज
सम्पादक

श्री जगदीश प्रसाद 'भारती'
व्यापार प्रबंधक



संख्या सा.न्या.एवं अ.मं./2000

श्रीमती मेनका गांधी
SMT. MANEKA GANDHI

सामाजिक न्याय और
अधिकारिता राज्य मंत्री
(स्वतंत्र प्रभार)
शास्त्री भवन
नई दिल्ली-110001
भारत
MINISTER OF STATE FOR
SOCIAL JUSTICE AND EMPOWERMENT
(INDEPENDENT CHARGE)
SHASTRI BHAWAN
NEW DELHI-110001
INDIA

12 दिसम्बर, 2000

संदेश

जाति प्रथा की कोख से जन्मी अस्पृश्यता के समूल उन्मूलन हेतु भारत रत्न बाबा साहेब डा0 भीमराव अम्बेडकर आजीवन संघर्षरत रहे ।

उन्होंने नैतिकता, प्रायश्चित और हृदय परिवर्तन जैसी मान्यताओं को कानून और संविधान के साथ जोड़ने की बात को तर्कसंगत रूप से कहा है । उनका मानना था कि दोनों व्यवस्थाएं एक-दूसरे की पूरक हैं ।

अस्पृश्यता को जड़ से उखाड़ फेंकने की दिशा में उनकी भूमिका निःसंदेह अभिनन्दनीय है । उन्होंने अपना अभियान पूर्ण निष्ठा, निर्भीकता एवं आत्मविश्वास के साथ चलाया था ।

प्रस्तुत खंड में डा0 अम्बेडकर द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण उन्हें एक सृजनात्मक सुधारवादी के रूप में उजागर करता है ।

आशा है पाठक गण इस खंड का भी पूर्ववत स्वागत करेंगे ।

परियोजना से जुड़े सभी साथियों को मेरी बधाई ।

(श्रीमती मेनका गांधी)

संपादकीय

बाबा साहेब डा. भीमराव अम्बेडकर बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। अस्पृश्योत्थान की दिशा में उनका योगदान अविस्मरणीय है। उन्होंने अपनी सशक्त लेखनी और भाषणों के माध्यम से जीवन के लगभग सभी पहलुओं पर अपने उद्‌गार पूरी निर्भीकता एवं दृढ़ता के साथ व्यक्त किए हैं।

बाबा साहेब के साहित्य की कड़ी का यह सौलहवां खंड (अंग्रेजी खंड 9 का पूर्वार्द्ध सुधी पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष का अनुभव हो रहा है। डा. अम्बेडकर अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा के लिए संवैधानिक तथा कानूनी संरक्षण आवश्यक समझते थे। उनकी मान्यता थी कि स्वयं कानून में ही न्यूनतम नैतिक तत्व का समावेश होना चाहिए। प्रस्तुत खंड में अछूतोद्धार को लेकर उनके तथा तत्कालीन शीर्षस्थ नेताओं के विचार बड़े ही रोचक ढंग से व्यक्त किए गए हैं।

खंड के अन्त में जोड़े हुए परिशिष्टों में राजनीतिक संरक्षणों के लिए अस्पृश्यों के आन्दोलन के संबंध में पूरी जानकारी दी गई है।

आशा है पाठकगण इस खंड का भी पूर्ववत स्वागत करेंगे।

ओम प्रकाश काश्यप

संपादक

डा. अम्बेडकर प्रतिष्ठान

भूमिका

डा. बाबा साहेब अम्बेडकर के भाषणों और लेखों का नवां खंड "कांग्रेस और गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया?" तथा "श्री गांधी और अस्पृश्यों का उद्धार" का पुनर्मुद्रण है। इन दोनों ग्रन्थों का अब केवल सैद्धान्तिक महत्व है। इनमें डा. अम्बेडकर और गांधी जी के बीच के मतभेदों को उजागर किया गया है।

इन मतभेदों को एक ही समस्या के दो पहलू कहा जा सकता है। दोनों ने ही अस्पृश्यों की समस्या को माना और पहचाना था, परन्तु उसे हल करने के तरीकों के बारें में उनमें मतभेद था। डा. अम्बेडकर अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा के लिए कानून तथा संवैधानिक संरक्षणों पर जोर देते थे। गांधी जी समझते थे कि यह समस्या एक नैतिक कलंक है जिसे प्रायश्चित द्वारा दूर किया जानां चाहिए।

24 सितम्बर, 1932 को हुए पूना समझोते में इस सामाजिक तथ्य को स्वीकारते हुए निष्ठापूर्वक यह अभिपुष्टि की गयी है कि हिन्दुओं में किसी को भी अपने जन्म के कारण अस्पृश्य नहीं माना जायेगा। इसमें कुछ सांविधिक संरक्षणों की आवश्यकता भी मानी गयी है। बाद की घटनाओं से नैतिक सुधारों तथा कानूनी उपायों की आवश्यकता की भी पुष्टि हुई।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद रचित संविधान में अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए स्थान आरक्षण का सिद्धान्त स्वीकार किया गया। आंग्ल–भारतीय समुदाय में से एक व्यक्ति को नामनिर्देशन के माध्यम से प्रतिनिधित्व दिए जाने की प्रथा अब भी प्रचलित है। भाषायी तथा धार्मिक अल्पसंख्यकों के लिए भी पर्याप्त संवैधानिक संरक्षण हैं।

हमारे संविधान की रचना बहुवादी भारतीय समाज के सभी वर्गों के कल्याणार्थ की गयी है। यह डा. अम्बेडकर के तार्किक दृष्टिकोण तथा गांधी जी के नैतिक विचारों का समन्वय है। इस प्रकार डा. अम्बेडकर और गांधी जी दोनों का ही आधुनिक भारत की शासन व्यवस्था में योगदान है। दोनों ही परिवर्तन के घटक थे। डा. अम्बेडकर के लिए अनुसूचित जातियों के हितों की रक्षा के लिए संवैधानिक

तथा कानूनी संरक्षण आवश्यक थे। केवल मात्र हृदय–परिवर्तन पर निर्भर रहना पर्याप्त नहीं था। उनकी मान्यता थी कि स्वयं कानून में ही न्यूनतम नैतिक तत्व का समावेश हो। इस प्रकार, कानून और नैतिकता को एक साथ चलना होगा। वास्तव में, भारतीय संविधान में कानून और नैतिकता का विलक्षण सम्मिश्रण है।

"कांग्रेस और गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया?" में डा. अम्बेडकर द्वारा व्यक्त किया गया दृष्टिकोण उन्हें एक सृजनात्मक सुधारवादी के रूप में उजागर करता है। जैसा कि जैकब ब्रोनोव्सिकी ने अपनी पुस्तक "ओरिजिंस आफ नॉलिज एण्ड इमेजिनेशन" (ज्ञान और कल्पना की व्युत्पत्तियां) में लिखा है, "सृजनात्मक व्यक्तित्व सदा वही होता है जो संसार को परिवर्तनीय समझता है और स्वयं को परिवर्तन का एक साधन। अन्यथा, आप किसके लिए सृजन कर रहे हैं? यदि यह संसार अपने विद्यमान स्वरूप में ही सम्पूर्ण है, तो फिर आपके लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। एक सृजनात्मक व्यक्ति संसार को परिवर्तन के एक कैनवैस के रूप में और स्वयं को परिवर्तन के एक घटक के रूप में देखता है।"

समाज सुधारक का काम सामाजिक ढांचे के दोष बताना है। यदि वह चुप रहे, तो उसे समाज सुधारक नहीं कहा जा सकता। सृजनात्मकता में विवाद का भी कुछ तत्व शामिल है जो एक गणितीय अंतर्दृष्टि के उन्माद तथा संतुलन की मर्यादा के मध्य टकराव के परिणामस्वरूप पैदा होता है।

भारतीय समाज को उसकी गहन निद्रा से जगाने के डा. भीमराव अम्बेडकर के अथक प्रयत्न विद्यमान पर्यावरण में ही नये अधिमान स्थापित करने की दिशा में थे। इनका तात्पर्य वातावरण को इस प्रकार बदलना था कि मानव व्यक्ति की पुनीतता के विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके।

डा. भीमराव अम्बेडकर के लेख और भाषण ऐसी व्याख्या से भरपूर हैं जिनमें सामाजिक उत्तरदायित्व तथा वैयक्तिक स्वतंत्रता के बीच सामंजस्य की आवश्यकता जताई गयी है। भारतीय संविधान में प्रदत्त मूलभूत अधिकारों को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। जब उनसे पूछा गया कि भारतीय संविधान का सबसे महत्वपूर्ण अनुच्छेद कौन सा है, तो डा. अम्बेडकर ने अनुच्छेद 32 का हवाला दिया जिसमें उच्चतम न्यायालय के माध्यम से मूलभूत अधिकारों को प्रवर्तित किए जाने का उपबन्ध है। उच्च न्यायालयों और उच्चतम न्यायालय में जनहित के मुकदमों की वृद्धि तथा रिट याचिकाओं की बढ़ती हुई संख्या इस बात की द्योतक हैं कि वातावरण की पुनर्रचना के लिए सामाजिक परिवर्तन में कानून की भूमिका अहम है।

गत 40 वर्षों में समानता तथा न्याय के मूल्यों में क्रमशः वृद्धि हुई है। व्यक्ति की स्वतंत्रता का दायरा अब बढ़ गया है और व्यक्ति की स्वायत्तता परिवर्धित

हुई है। यह बात उद्यमता के विकास तथा औधोगीकरण की बढ़ती हुई गति से स्पष्ट है। यह कहते हुए दुख होता है कि कुछ क्षेत्रों में स्वतंत्रता का दुरूपयोग हुआ है। परन्तु समानता और न्याय तथा प्रजातांत्रिक आंकाक्षाओं के मूल्य उस उप–महाद्वीप के जीवन का अंग बन गये हैं।

संविधान में प्रदत्त चुनाव प्रक्रियाओं तथा न्यायालयों तक पहुंच के परिणामस्वरूप सरकार को कल्याणकारी राज्य में अपनी भूमिका का अधिकाधिक अहसास हो रहा है। गरीबी उन्मुलन कार्यक्रम, मलिन बस्तियों के उद्धार की योजनाएं, शिक्षा का प्रसार, प्रेस की भूमिका, रेडियों और टेलीविजन की स्वायत्तता पर चर्चा – ये सब उन मूल्यों का प्रमाण हैं जो अब सामाजिक वातावरण तथा राजनीतिक विशिष्टता में गहरी जड़ें जमा चुके हैं।

1947 का भारत और 1991 का भारत दो भिन्न अस्तित्व हैं। निस्संदेह, आजादी की तकनीकों ने घटना–चक्र को प्रभावित किया। परन्तु यह श्रेय डा. अम्बेडकर और गांधीजी को जाता है कि उन्होंने विभिन्न वर्गों, सम्प्रदायों और संस्कृतियों को समन्वित करके समाज को एक राष्ट का रूप देने में जीवन–मूल्यों तथा कानूनी मापदण्डों की भूमिका के महत्व को स्वीकार किया। समाज में जीवन–मूल्यों के महत्व को बहुत कम समझा जाता है। कानूनी मापदण्डों के रूप मे समुचित मूल्यों का चुनाव एक ऐसा कार्य है जिसमें मानव प्रकृति को गहराई से समझने तथा भविष्य की परिकल्पना करने की आवश्यकता होती है।

जी. मिरडेल ने अपनी पुस्तक "वैल्यू इन सोशल थ्यौरी" (समाजशास्त्र में मूल्य) में कहा है कि "किसी मूल्याधार का चुनाव मर्जी के अनुसार ही नहीं कर लिया जाना चाहिए, यह उस समाज के लिए संगत और महत्वपूर्ण होना चाहिए जिसमें हम रहते हैं। इसलिए सोचसमझकर यह निश्चय करना होगा कि लोगों की क्या इच्छा है। कुछ सीमा तक, लोगों को इच्छाएं तथ्यों तथा अनियत सम्बन्धों के बारे में लगातार गलत धारणाओं पर आधारित होती हैं। उस सीमा तक, एक ऐसा दुरूस्त मूल्याधार अपनाना होगा जो उसके अनुरूप हो जिसे वे लोग ऐसी दशा में अपनाते जब उनका ज्ञान अपने इर्दगिर्द की दुनिया के बारे में अधिक परिपूर्ण होता।"

"जहाँ तक आनुवंशिकता अथवा मनोवैज्ञानिक आधारों का सम्बन्ध है, मनुष्यों की इच्छाएं एक युग से दूसरे युग में अपेक्षाकृत स्थिर होती हैं। परन्तु जिन विभिन्न सामाजिक स्थितियों में लोग रहते हैं उसके परिणामस्वरूप उनके अनुभव भिन्न होते हैं। नये अन्वेषणों से मानवजाति का आचरण बदलने लगता है। ये नये उत्प्रेरक हैं जिनकी ओर मनुष्य आकर्षित होता है।"

डा. अम्बेडकर में गांधी जी से मतभेद रखने का साहस था और गांधी जी

ने डा. अम्बेडकर का दृष्टिकोण समझने और असमानता दूर करने के लिए सामाजिक संगठन को आधार बनाने की आवश्यकता पर जोर देने की तत्परता दिखाई। डा. अम्बेडकर तथा गांधी जी के बीच का भारी वादविवाद भारत के संवैधानिक इतिहास की एक युगान्तरकारी घटना है। यह दर्शाता है कि विचार किस प्रकार जीवनधारा को बदल देते हैं। वास्तव में विचार दुनिया पर राज करते हैं और आदर्श भविष्य का निर्माण। इस बारे में रोसको पाउड को उद्धरत किया जा सकता है :

"आदर्श जिसका प्रयोग मैं कानून की प्रकृति के सिद्धान्तों के रूप में कर रहा हूँ, क्या है? इस शब्द की उत्पत्ति एक ग्रीक शब्द से है जिसका मूल अर्थ है ऐसी चीज जिसे कोई देखता हो। यदि इसे क्रिया पर लागू किया जाये तो यह इस बात का मानसिक चित्र है कि कोई क्या कर रहा है या क्यों, किस लक्ष्य अथवा प्रयोजन के लिए वह यह क्या कर रहा है।"

सामाजिक संगठन में न्याय का आदर्श इन ग्रन्थों की विषयवस्तु है। ये बताते हैं कि सामाजिक कार्रवाई के पथप्रदर्शक के रूप में नैतिक भावनाएं अपर्याप्त हैं। नैतिक भावनाओं के प्रभावशाली कार्यान्वयन के लिए सामाजिक और कानूनी स्वीकृति की आवश्यकता है। आशा है कि ऐतिहासिक दस्तावेजों के रूप में इन्हें शोधकर्ता और आम पाठक यह जानने के लिए उपयोगी पायेंगे कि आदर्शवाद के बिना कानून निस्सार है ओर कानूनी स्वीकार्यता के बिना नैतिकता सुन्दर, परन्तु निष्प्रभावी फरिश्ता है जो कवि शैली की कविता पर व्यक्त मैथ्यू आर्नोल्ड के शब्दो में "अपने दीप्तिमय परों को शून्य में व्यर्थ ही फड़फड़ा रहा है।"

शरद पवार
मुख्यमंत्री, महाराष्ट्र

प्राक्कथन

"वर्ष 1892 में इंग्लैन्ड में संसद के लिए एक नया चुनाव हुआ जिसमें लार्ड सेलिसबरी के नेतृत्व वाले अनुदार दल की हार हुई और श्री ग्लैडस्टन के नेतृत्व वाला उदार दल जीत गया। इस चुनाव के बारे में एक महत्वपूर्ण बात यह थी कि चुनावों में अपने दल की हार के बावजूद लॉर्ड सेलिसबरी ने संसदीय प्रथा के विपरीत– अपना कार्यभार उदार दल के नेता को सौंपने से इन्कार कर दिया। जब संसद समवेत हुई, तो महामहिम महारानी ने अपना रिवाजी भाषण दिया जिसमें लार्ड सेलिसबरी की सरकार का विधायी कार्यक्रम विहित था, और महारानी का सम्बोधित किया जाने वाला परम्परागत भाषण सरकार की ओर से प्रस्तुत किया गया। यह स्थिति ब्रिटिश संविधान के मूलभूत सिद्धान्त के लिए एक चुनौती थी क्योंकि उसमें केवल बहुसंख्यक दल की सरकार बनाए जाने का ही प्रावधान है। उदार दल ने चुनौती स्वीकार की और उस भाषण पर एक संशोधन पेश किया। संशोधन में लार्ड सेलिसबरी की सरकार की इस बात पर निन्दा की गयी थी कि बहुमत में न होते हुए भी वह अपने स्थान पर जमी रही। संशोधन प्रस्तुत करने का भार लॉर्ड (उस समय श्री) ऐसक्विथ को सौंपा गया। संशोधन के समर्थन में दिए गये अपने भाषण में लॉर्ड ऐसक्विथ ने इस प्रसिद्ध उक्ति का प्रयोग किया– "Causa finita est : Roma locuta est" अर्थात् 'रोम ने कह दिया है, यह विवाद अब समाप्त होना चाहिए'। यह उक्ति मूलतः सेंट ऑगस्टाइन ने प्रयुक्त की थी, परन्तु एक भिन्न सन्दर्भ में। इसे एक धार्मिक विवाद के दौरान प्रयुक्त किया गया था और इसका प्रयोग पोप की प्रभुता को आधार मानने के लिए किया जाने लगा था। श्री ऐसक्विथ ने संसदीय प्रजातंत्र के मूलभूत सिद्धान्त को बनाए रखने के लिए इसे राजनीतिक मुहावरे के रूप में प्रयुक्त किया। आज इसे ऐसे मूलभूत सिद्धान्त के रूप में स्वीकार किया जाता है जिस पर लोकप्रिय सरकार चलती है, नामतः राजनीतिक बहुमत को शासन करने का अधिकार। इसका सेलिसबरी सरकार पर तत्काल प्रभाव पड़ा और उन सभी दलों पर पड़ना ही चाहिए जो संसदीय प्रणाली वाले देशों में होने वाले चुनावों में हार जाते हैं।

मुझे यह उक्ति उस समय याद आयी जिस समय भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अंतर्गत प्रान्तीय विधान सभाओं के लिए हुए चुनाव के परिणाम घोषित

किए गये। कांग्रेसजनों ने वास्तव में ये शब्द तो नहीं कहे थे कि "Causa finita est : India locuta est" (भारत ने कह दिया है : अब यह विवाद समाप्त होना चाहिए), किन्तु, जहाँ तक उन दलो का सम्बन्ध है जिन्होंने चुनावों में कांग्रेस का विरोध किया था, चुनावों का परिणाम यही कहता प्रतीत होता था। गोलमेज सम्मेलन और संयुक्त संसदीय समिति में पाँच वर्ष तक कांग्रेस के विरूद्ध अस्पृश्यों का नेतृत्व करने के बाद मैं चुनावों के परिणामों से अप्रभावित रहने का बहाना नही कर सकता था। मेरे सम्मुख प्रश्न यह था : क्या अस्पृश्य कांग्रेस की ओर चले गये हैं? मेरे लिए यह बात कल्पनातीत थी। मैं यह विश्वास नहीं कर सकता था, सोच भी नहीं सकता था, कि अस्पृश्य – केवल कांग्रेस के उन कुछेक एजेंटों को छोडकर जो कांग्रेस की धनदौलत से आकर्षित होकर विश्वासघाती बन गये है–कांग्रेस से मिल सकते हैं या यह भुला सकते हैं, कि श्री गांधी तथा कांग्रेस ने किस प्रकार उनकी राजनीतिक संरक्षणों की प्रत्येक मांग का अंतिम क्षण तक इंच–इंच पर विरोध किया था। इसलिए मैंने 1937 में हुए चुनावों के परिणामों का विश्लेषण करने का निर्णय किया।

यद्यपि मुझे विश्वास था कि यह अध्ययन अस्पृश्यों की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है, तथापि यह काम बहुत ही धीमी गति से आगे बढ़ा। इसके तीन कारण थे। कुछ अन्य ऐसी महत्वपूर्ण साहित्यिक योजनाएं चल रही थीं जिन्हें वरीयता दी ही जानी थी तथा तनिक भी टाला नहीं जा सकता था। इसलिए यह अध्ययन स्थगित रखना पड़ा। दूसरे 1937 के चुनाव परिणामों की 'आधिकारिक पुस्तक', जिसे चुनावों के शीघ्र पश्चात संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया था और चुनावी परिणामों के आंकड़ों का मुख्य स्त्रोत है, मेरे प्रयोजन के लिए अपर्याप्त और अपूर्ण साबित हुयी। इसमें अलग से ये आंकड़े नहीं दिए गये हैं कि अनुसूचित जातियों ने किस प्रकार मतदान किया और अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों को कितने वोट मिले। इसमें ये आंकड़े तो हैं कि मतदाताओं ने विभिन्न निर्वाचन–क्षेत्रों में किस प्रकार मतदान किया, परन्तु हिन्दू मतदाताओं तथा अनुसूचित जाति के मतदाताओं के बीच का अंतर नहीं दिखाया गया है। इसलिए विभिन्न प्रान्तीय सरकारों को पत्र लिखने पड़े कि मुझे ये आंकड़े भेजें कि अनुसूचित जातियों के मतदाताओं ने कितने वोट दिए और प्रत्येक अनुसूचित जाति के उम्मीदवार को कितने वोट मिले। इससे अनिवार्यतः कार्य में विलम्ब हुआ। तीसरे, इन चुनाव परिणामों के विश्लेषण में बहुत परिश्रम करना पड़ा जैसा कि इस पुस्तक के अंत में दी गयी सारणी से विदित होगा।

इस प्रकार, यह काम खिंचता चला गया। मुझे इस विलम्ब पर बहुत दुख है, क्योंकि मैं जानता हूं कि इस अंतराल के दौरान कांग्रेस ने कितनी शरारत की है। कांग्रेस ने अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने के अपने दावे को हवा देने

के लिए खूब प्रचार किया है। उनके प्रचार का मुख्य बिन्दु था कि अनुसूचित जातियों को दिए गये 151 स्थानों में से 'स्वतंत्र श्रमिक दल' जिसे मैंने गठित किया था, को केवल बारह स्थान मिले और शेष सभी स्थान कांग्रेस ने जीते। कांग्रेसी रसोई की कढ़ाई से निकली यह खिचड़ी इस बात को प्रमाणित करने के लिए प्रस्तुत की गयी है कि कांग्रेस अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व करती है। इस झूठे प्रचार का कुछ क्षेत्रों पर प्रभाव भी पड़ा दिखाई देता है। श्री एच. एन. ब्रेल्सफोर्ड जैसे व्यक्ति ने भी अपनी पुस्तक 'सबजेक्ट इंडिया' में इस बेतुके कांग्रेसी विश्लेषण को बिना इसकी सचाई की जांच किए उदृत करके एक प्रकार से स्वीकृति दे दी है। मुझे विश्वास है कि इस पुस्तक में किए गये चुनाव परिणामों के विश्लेषण से इस गलत प्रचार का पूरी तरह भंडाफोड़ हो जायेगा क्योंकि कांग्रेस द्वारा किया गया चुनाव–विश्लेषण एकदम भ्रामक है। वास्तव में, 1937 के चुनाव परिणाम कांग्रेस के इस दावे को गलत साबित करते हैं कि वह अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करती है। कांग्रेसी कथन के विपरीत, ये चुनाव परिणाम दर्शाते हैं कि : (1) कांग्रेस को 151 स्थानों में से केवल 73 स्थान मिले; (2) लगभग प्रत्येक निर्वाचन–क्षेत्र में अस्पृश्यों ने अपने उम्मीदवार खड़े करके कांग्रेस के विरूद्ध चुनाव लड़ा; (3) कांग्रेस द्वारा जीते गये 73 स्थान हिन्दू वोटों से जीते गये थे और इसलिए वह किसी भी प्रकार से अनुसूचित जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं करती; (4) कांग्रेस ने 151 स्थानों में से जो भी स्थान जीते थे उनमें वास्तव में केवल 38 ही ऐसे थे जो अनुसूचित जातियों के बहुसंख्यक समर्थन से मिले थे। जहां तक कि स्वतंत्र श्रमिक दल का सम्बन्ध है, यह 1937 में चुनावों से कुछ मास पूर्व ही बनाया गया था। अन्य प्रान्तों में इसकी शाखाएं स्थापित करने का समय नहीं था। स्वतंत्र श्रमिक दल की टिकट पर केवल बम्बई प्रान्त में ही चुनाव लड़े गये थे और वहाँ इस दल को आश्चर्यजनक सफलता प्राप्त हुयी थी। बम्बई प्रेसीडेंसी में अनुसूचित जातियों को दिए गये 15 स्थानों में से इसने 13 स्थानों पर विजय प्राप्त की और इसके अतिरिक्त 2 सामान्य स्थानों पर भी विजय प्राप्त की। इसलिए मुझे इस बात पर प्रसन्नता है कि अंततोगत्वा मैं वह कार्य पूरा करने में सफल हुआ हूँ जिससे लेशमात्र संदेह किए बिना सिद्ध हो जाता है कि यह कथा बिल्कुल मिथ्या है कि कांग्रेस ने अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सभी स्थान जीते और स्वतंत्र श्रमिक दल असफल रहा। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक उन सभी के लिए रोचक और ज्ञानवर्द्धक साबित होगी जिनकी इस विषय में रूचि है और जो सचाई जानना चाहते हैं।

इस प्राक्कथन को समाप्त करने से पूर्व, मैं उन सभी का आभार व्यक्त करना चाहता हूँ जिनसे मुझे किसी न किसी रूप में सहायता मिली। प्रान्तीय सरकारों ने मेरे पत्र का जो उत्तर दिया और मेरे द्वारा मांगे गये जो अतिरिक्त तथ्य तथा

आंकड़े प्रदान किए उसका मैं आभारी हूँ। उत्तर प्रदेश की कांग्रेस सरकार के संसदीय सचित श्री करन सिंह काने, बी.ए. विधानसभा सदस्य, का भी मैं कृतज्ञ हूँ जिन्होंने सारणियां तैयार करने के सबसे श्रमसाध्य कार्य में मेरी सहायता की।"

जो पाठक उपरोक्त प्राक्कथन को पढ़कर विषयसूची से इसकी तुलना करेगा उसे तुरन्त अहसास हो जायेगा कि इस पुस्तक में व्यवहृत विषय इसकी सीमा से बाहर के हैं। उत्सुक पाठक यह भी जानना चाहेंगे कि उपरोक्त प्राक्कथन का विषयसूची से किस प्रकार का सम्बन्ध है। इसका स्पष्टीकरण यह है कि अपने वर्तमान अंतिम स्वरूप में यह पुस्तक अपने मूल स्वरूप से बिलकुल भिन्न है। अपने मूल स्वरूप में इसमें बहुत संक्षिप्त रूप में उन मुद्दों पर चर्चा की गयी थी जिनका अब इस पुस्तक के अध्याय 4, 5, 6, 7 और 9 में कहीं अधिक विस्तार से विश्लेषण किया गया है। प्राक्कथन का पहले का भाग पुस्तक के मूल स्वरूप का था। यही कारण है कि मैंने इसे उद्धरण चिन्हों के बीच रखा है। उत्सुक पाठक शायद यह भी जानना चाहें कि पुस्तक का अन्तिम स्वरूप मूल से इतना भिन्न क्यों है? उत्तर बिलकुल सरल है। मूल पुस्तक के प्रुफ एक मित्र व सहयोगी ने देखे थे। वह पुस्तक के सीमित क्षेत्र से असंतुष्ट था और उसने इस बात पर जोर दिया कि अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने के कांग्रेस के दावे की कलई खोलने के लिए केवल चुनाव परिणामों का विश्लेषण करना ही पर्याप्त नहीं है और मुझे इससे भी अधिक कुछ करना चाहिए। अस्पृश्यों को, और विदेशियों को भी जिन्हें कांग्रेस ने गलत तथ्य प्रस्तुत करके धोखे से अपने पक्ष में कर लिया था, मुझे कांग्रेस और श्री गांधी द्वारा अस्पृश्यों की दशा सुधारने की दिशा में किए गये प्रयासों से अवगत कराना चाहिए। पुस्तक चूंकि प्रुफ के चरण पर थी, इस प्रयत्न में अनेक कठिनाइयां सामने आतीं, और यह भी देखते हुए कि मेरे हाथ में अन्य बहुत से काम थे, यह बहुत कठिन कार्य था जो मेरे वश का नहीं था। परन्तु वह अपनी बात पर जमा रहा और मुझे उसकी योजना स्वीकार करनी पड़ी। मूल पुस्तक लगभग 75 पृष्ठों की होती, परन्तु इसे पूरी तरह परिवर्तित और संवर्द्धित करना पड़ा। अपने प्रस्तुत स्वरूप में यह पुस्तक पूर्णतः रूपांतरित है। जहाँ तक अस्पृश्यों की समस्याओं का प्रश्न है, इसमें 1917 से अब तक की कांग्रेस तथा श्री गांधी के कार्यों का ब्यौरा दिया गया है। कांग्रेस के बारे में काफी लिखा गया है, और श्री गांधी के बारे में उससे भी ज्यादा। परन्तु आज तक किसी ने यह ब्यौरा नहीं दिया कि उन्होंने अस्पृश्यों के लिए क्या किया है। यह सर्वविदित है कि श्री गांधी स्वराज के योद्धा के रूप में अथवा अहिंसा के प्रवर्तक के रूप में छवि प्रस्तुत करने की अपेक्षा अस्पृश्यों के उद्धारक के रूप में अपनी छवि प्रस्तुत करने को अधिक महत्व देते हैं। गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने अस्पृश्यों का एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा किया तथा वह किसी अन्य व्यक्ति के साथ

इस श्रेय में भागीदार बनने के लिए भी तैयार नहीं थे। मुझे याद है कि जब उनके इस दावे को चुनौती दी गयी तो उन्होंने कितनी कहासुनी की थी। श्री गांधी स्वयं को अस्पृश्यों का ही नहीं अपितु कांग्रेस का भी अगुआ मानते हैं। उनका कहना है कि अस्पृश्यों के प्रति की गयी गलतियों को सुधारने के लिए कांग्रेस पूर्णतः वचनबद्ध है और तर्क देते हैं कि अस्पृश्यों के लिए कोई भी राजनीतिक संरक्षण अनावश्यक तथा हनिकारक हैं। इसलिए यह कहना बड़ी खेदजनक बात है कि श्री गांधी और कांग्रेस के इन दावों का कोई भी विस्तृत अध्ययन नहीं किया गया है।

प्रस्तुत अध्ययन यद्यपि अपनी किस्म का पहला अध्ययन है, तथापि श्री गांधी का अंधा समर्थन करने वाले हिन्दुओं को यह बात नहीं भायेगी। और यह हो भी कैसे सकता है जब कि इसका निष्कर्ष यह है कि "श्री गांधी से सावधान रहो?" यदि इसे वृहत्तर दृष्टिकोण से देखा जाये, तो हिन्दुओं को इस बात पर आक्रोश दिखाने का कोई कारण नहीं है। भारत में केवल अस्पृश्य सम्प्रदाय ही श्री गांधी के बारे में ऐसी राय नहीं रखता। मुसलमान, सिख और ईसाइयों की भी उनके बारे में यही धारणा है। वास्तव में हिन्दुओं को इस प्रश्न पर गौर करना चाहिए और पूछना चाहिए कि कोई भी सम्प्रदाय श्री गांधी पर क्यों भरोसा नहीं करता यद्यपि वह कहते रहे हैं कि वह मुसलमानों, सिखों तथा ईसाइयों के मित्र हैं, और इस अविश्वास का क्या कारण है? मेरी समझ में, किसी भी नेता के लिए इससे बड़ी विडम्बना नहीं हो सकती कि उस पर सभी अविश्वास करें जैसा कि आजकल श्री गांधी पर किया जा रहा है। परन्तु मुझे दृढ विश्वास है कि हिन्दुओं की यह प्रतिक्रिया नहीं होगी। सदा की तरह, वे इस पुस्तक की भर्त्सना करेंगे ओर मुझे कोसेंगे। परन्तु, कहावत है कि "कुत्ते भौंकते रहते हैं, परन्तु कारवां चलता रहता है।" इसी प्रकार मुझे तो अपना कर्त्तव्य पूरा करना ही चाहिए, चाहे मेरे विरोधी कुछ भी कहें, चूंकि जैसा कि वाल्टेयर ने कहा है : "स्वय अपने समय का इतिहास लिखने वाले व्यक्ति को यह आशा रखनी चाहिए कि उसकी उन सभी बातो पर कड़ी आलोचना होगी जो उसने लिखी है और जो उसने नहीं लिखी है; परन्तु, इन छोटी बाधाओं से ऐसे व्यक्ति को निरूत्साहित नही होना चाहिए जो सचाई तथा स्वतत्रता का हिमायती है, किसी चीज की आशा नही रखता, किसी से डरता नही, किसी चीज की मांग नही करता और अपनी आकाक्षा ज्ञानवर्द्धन पर केन्द्रित करता है।"

पुस्तक बड़ी हो गयी है। कहा जा सकता है कि यह अति–व्याख्यात्मक हो गयी है और इसमें पुनरावृत्तिया भी है। मुझे इस बात का भान है। परन्तु यह पुस्तक मैंने मुख्य रूप से अस्पृश्यो तथा विदेशियों के लिए लिखी है। इन दोनों ही के बारे में मै यह परिकल्पना नही कर सकता कि वे संगत तथ्यों से अवगत

हैं। इसलिए प्रबुद्ध व सुविज्ञ पाठकों की कलात्मक व तुनकमिजाजी प्रवृत्ति की अवहेलना करते हुए, जो वर्ग मेरी दृष्टि में हैं, उनकों तथ्यों व तर्कों से अवगत कराना मेरे लिए आवश्यक है।

चूंकि इस पुस्तक का लक्ष्य राजनीतिक संरक्षण के लिए अस्पृश्यों के आन्दोलन के सम्बन्ध में एक सम्पूर्ण सूचना सार प्रस्तुत करना है, मैंने इसमें आंकड़ों के अतिरिक्त कई अन्य परिशिष्ट भी जोड़े हैं। इनमें वे शासकीय तथा अशासकीय दस्तावेज हैं जिनका इस आन्दोलन से सम्बन्ध है। मुझे विश्वास है कि जो लोग अस्पृश्यों की समस्याओं में रूचि रखते हैं, उन्हें यह सूचना एक ही जगह तैयार मिलने में दिलचस्पी होंगी। आम पाठक यह शिकायत कर सकता है कि परिशिष्ट में दी गयी सूचना आवश्यकता से अधिक है। इसके बारे में भी मुझे यही कहना है कि अस्पृश्यों को इस प्रकार की सूचना मिलना असम्भव है जिसे आम पाठक सरलता से प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तक की कसौटी अस्पृश्य लोग हैं न कि आम पाठक।

एक अंतिम शब्द। पाठक पायेंगे कि मैंने इस पुस्तक में अस्पृश्यों के लिए कई प्रकार की नामावली जैसे दलित वर्ग, अनुसूचित जाति, हरिजन और तुच्छ वर्ग का बार–बार प्रयोग किया है। मैं जानता हूं इससे, विशेषकर उन लोगों के मस्तिष्क में, जो भारतीय परिस्थितियों से परिचित नहीं हैं, उलझन पैदा हो सकती है। एक ही प्रकार की नामावली प्रयुक्त करने में मुझे बहुत हर्ष होता। परन्तु इसका दोष पुरी तरह मुझ पर नहीं जाता। ये सारे नाम अस्पृश्यों के लिए समय–समय पर शासकीय या अशासकीय तौर पर प्रयुक्त किए गये हैं। 'भारत सरकार अधिनियम' में प्रयुक्त नाम 'अनुसूचित जातियाँ' है। परन्तु इसका प्रयोग 1935 के बाद प्रारम्भ हुआ। इससे पूर्व इन्हें श्री गांधी द्वारा 'हरिजन' और सरकार द्वारा 'दलित वर्ग' कहा जाता था। ऐसी बहती गंगा में, किसी एक ऐसे नाम पर कायम रहना सम्भव नहीं है, जो एक स्थान पर तो सही है परन्तु दूसरे पर गलत हो सकता है। पाठकों की प्रत्येक कठिनाई दूर हो जायेगी यदि वे यह याद रखें कि ये सभी नाम पर्यायवाची हैं और एक ही वर्ग को दर्शाते हैं।

बी.आर अम्बेडकर

24 जून, 1945
22, पृथ्वीराज रोड
नई दिल्ली

विषय-सूची

अध्याय : 1

अनोखी घटना

"कांग्रेस ने अस्पृश्यों की ओर ध्यान दिया।"

I

वर्ष 1917 में आयोजित कलकत्ता में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में एक अनोखी घटना हुई। उस अधिवेशन में कांग्रेस ने निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया –

> "कांग्रेस का भारत की जनता से अनुरोध है कि भारत के दलित वर्गों पर जो रूढ़िगत अयोग्यताएं लगाई हुई हैं, उन्हें हटाने की आवश्यकता न्यायसंगत है क्योंकि ये अयोग्यताएं अत्यन्त अमानुषिक और दमनकारी हैं जिस कारण इन्हें बहुत अधिक कठिनाइयां एवं असुविधाएं सहनी पड़ती हैं।"

इस अधिवेशन की अध्यक्षा श्रीमती एनी बेसेंट थीं। मद्रास के श्री जी.ए. नतेशन ने यह प्रस्ताव प्रस्तुत किया था और बम्बई के सर्वश्री भूलाभाई देसाई, मालाबार के रामा अय्यर तथा दिल्ली के आसफ अली ने इसका समर्थन किया। प्रस्ताव प्रस्तुत करते हुए श्री नतेशन ने कहा –

> देवियों और सज्जनों, इस विषय पर वर्षों से विचार विमर्श होता रहा है, लेकिन कांग्रेस के विशिष्ट स्वरूप को ध्यान में रखते हुए विषय समिति ने भारत के लिए स्वायत्त शासन बनाने की योजना के बाद हमने अपने आप से प्रश्न किया कि स्वायत्त शासन के कठिन कार्य को हमें स्वयं पूरा करना चाहिए। सर्वप्रथम इस बड़ी जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए हमें यह देखना है कि हर प्रकार की विषमता और अन्याय को दूर किया जाये। इस प्रस्ताव के अनुसार विशेष तौर पर आपको अत्यन्त कष्टकारी और दमनकारी किस्म की असमर्थताओं का निवारण करना है। मैं समझता हू कि आपकी धार्मिक भावनाओं को

ठेस पहुंचाए बिना तथा श्रेष्ठ धार्मिक परंपराओं को निभाते हुए कांग्रेस को आपसे, मुझसे और अन्य लोगों से यह कहने का अधिकार है कि दलितों के लिए स्कूलों में प्रवेश संबंधी सभी प्रतिबंध हटाए जाएं। कांग्रेस सभी इन्सानों से यह अपेक्षा करती है कि देश के उन अधिकांश भागों में, जहां उन्हें सार्वजनिक कुओं से पानी नहीं भरने दिया जाता है, ऐसे प्रतिबंध हटाए जाएं। हमें स्वयं को प्रगतिशील बनाने तथा ऐसे कष्टकर प्रतिबंधों को समाप्त करने के लिए भारत के जनमानस में चेतना लानी होगी और जब हमें उत्तरदायी स्वायत्त सरकार प्राप्त होगी तब हम यह कहने की स्थिति में होंगे कि भारत के सभी वर्गों को, सभी मतावलंबियों को समान सामाजिक अधिकार प्राप्त हैं, सभी को स्कूलों और संस्थाओं में प्रवेश पाने का पूरा अधिकार प्राप्त है ताकि भारत का जनमानस अपने सच्चे गौरवशाली रूप में अपना विकास करे और अपनी परंपराओं पर गर्व करे।"

श्री भूलाभाई देसाई ने प्रस्ताव के समर्थन में कहा –

जिन अयोग्यताओं से हमारे कुछ भाई कष्ट उठा रहे हैं, वे अत्याचार हमारी समानता और बंधुत्व, जिसका हम दम भरते हैं, पर कुठाराघात है। बढ़ चढ़ कर हमने आज सवेरे जिस प्रस्ताव को पास किया है, यदि उसके अनुरूप हम अपने भाइयों का उत्थान करने में असफल रहे तो हम ब्रिटिश लोकतंत्र या अन्य शक्ति को क्या मुंह दिखायेंगे? वे कहेंगे, "तुम्हारा क्या असर है, तुम्हारे वर्ग में सामाजिक ऊंच–नीच का भेदभाव है जिसे तुम दूर नहीं कर सके।" यह काम हमें स्वयं अपने आप करना है और इस मामले में हमें किसी बाहरी शक्ति की सहायता की आवश्यकता नहीं है। इससे उस महान अगले कदम को उठाए जाने की आवश्यकता की पुष्टि हो जाती है जो कांग्रेस ने इस प्रस्ताव को आपके सम्मुख प्रस्तुत करके उठाया है। इस विषबेल का अस्तित्व हिंदू धर्म के लिए अपमानजनक है। इसलिए समय की पुकार न्याय और सत्य के आधार पर उन्हें उस सब से कैसे वंचित कर सकता है जिनके लिए इस प्रस्ताव में मांग की गई है और जबकि न्याय आप ही के हाथों में है और यदि आप ऐसा करने में असमर्थ हैं तब आप किस न्याय और किस मुँह से स्वराज्य की मांग कर सकते हैं?"

श्री रामा अय्यर ने कहा –

"इस प्रस्ताव में उस सामाजिक स्वतंत्रता का आह्वान किया गया है

जिससे हम उन बेड़ियों को तोड़ देंगे जो उन पददलित वर्ग के लोगों को बांधे हुए हैं। वे राष्ट्र के आधार हैं और यदि हम स्वराज के पथ पर बढ़ना चाहते हैं तो हमें इन बेड़ियों को तोड़ना ही होगा......।" आप एक समय में राजनीतिक प्रजातांत्रिक और सामाजिक तानाशाह दोनों नहीं हो सकते। याद रखें सामाजिक दास कभी स्वतंत्र नहीं कहा जा सकता। यहां पर हम सभी ऐसा अखंड देश देखना चाहते हैं जो राजनीतिक रूप से ही नहीं वरन पूर्ण रूप से अखंड हो। अतः हम सभी ब्राह्मणों को जो उच्च वर्ग के है, उन दलितों के साथ गांवों में जाकर सामाजिक बुराइयों की बेड़ियों से मुक्त करना चाहिए जो देश के सामाजिक मठाधीशों से संघर्ष कर रहे हैं।"

श्री आसफ अली के विचार थे –

"दलित वर्गों की समस्या सबसे कठिन समस्या है। परंतु अब दलित वर्गों–अस्पृश्यों का उनके विरूद्ध उठने का समय आ गया है। वे मठाधीशों के निरंकुश और तानाशाही जुल्मों के खिलाफ आवाज उठाते चले आ रहे हैं। ये करोड़ों बदनसीब इंसान गूंगे बन कर हजारों वर्षों से घृणित कार्य करते चले आ रहे हैं और देश की इस क्रूर परंपरा ने जिसमें समाज ने उन्हें इस दलदल में धकेला है, कभी भी निकल नहीं सकते है। इन मजलूमों को सदा सर्द काली रातों की मायूसी ही हाथ लगी है। यह बड़ी दुर्भाग्यपूर्ण क्रूर त्रासदी है कि जो इन्सान अधिकार प्राप्त करने के लिए अनथक प्रयास कर रहे हों वे ही अपने आकाओं से वैध अधिकारों के विषय में भी चुप्पी साधे बैठे हैं। क्या यह उचित और न्यायसंगत है कि समाज का एक मूक वर्ग जुल्मों को सहन कर रहा है जिनके निराकरण के लिए दूसरे वर्ग अपना खून बहा रहे हैं। ऐसा क्यों? जबकि अस्पृश्य कहे जाने वाले ये लोग भी इंसान हैं, इसी हिंदुस्तान के बेटे हैं और उनकी नसों में भी वही खून दौड़ रहा है जो उन पर हुकूमत करने वालों की नसों में बह रहा है। तमाम दलित वर्ग उन सभी अधिकारों और हकों को पाने के हकदार हैं और उन्हें इन्सान के पैदायशी अधिकार से वंचित नही किया जा सकता। अस्पृश्यों को जिस तरह हेय दृष्टि से देखा गया है। वह हिंदुस्तानियों के लिए बड़ी अपमान की बात है और अब उसका उन्मूलन होना ही चाहिए।"

बहुत से लोग इस बात पर ताज्जुब करेंगे कि मैंने कांग्रेस के इस प्रस्ताव को, जिसे बड़ी उदात्त शैली में प्रस्तुत किया गया है और जिस वाकपटुता से

समर्थन किया गया है उसे "एक अनोखी घटना" क्यों कहा। परंतु जो लोग इससे पहले की घटनाओं से परिचित हैं वे इसे अनुचित विवरण नहीं समझेंगे। यह कई कारणों से अनोखी घटना है।

अधिवेशन की अध्यक्षा पहले तो श्रीमती एनी बेसेंट थीं। वह अपने अनेक ऐसे कार्यों के कारण जनता में लोकप्रिय थीं जिसके लिए भारत के भावी इतिहासकार उन्हें सदा याद रखेंगे। वह "थियासोफिकल सोसायटी" की संस्थापक थीं जिसका मुख्यालय अडयार में है। श्रीमती एनी बेसेंट भूतपूर्व ब्राह्मण रजिस्ट्रार के पुत्र श्री कृष्णामूर्ति को भावी नेता के रूप में ऊंचा उठाने के लिए प्रसिद्ध थीं। श्रीमती ऐनी बेसेंट "होमरूल लीग" की संस्थापक क़े रूप में जानी जाती थीं। श्रीमती एनी बेसेंट को ऐसे अनेक कार्यों के लिए उनके मित्र भले ही उनकी प्रशंसा करें, परंतु वह कभी भी अस्पृश्यों की हमदर्द रही हों, ऐसा मैं नहीं मानता। जहां तक मुझे ज्ञात है वह अस्पृश्यों के प्रति प्रतिकूल धारणा रखती थीं। फरवरी 1909 के "इंडियन रिव्यू" में "दी अपलिफ्ट आफ दी डिप्रेस्ड क्लासेज" शीर्षक से प्रकाशित लेख जिसमें अस्पृश्यों के बच्चों को सार्वजनिक स्कूलों में प्रवेश मिलना चाहिए अथवा नहीं, इस विषय पर अपने विचार प्रकट करते हुए श्रीमती ऐनी बेसेंट ने कहा–

> "हमने प्रत्येक राष्ट्र में ऊंच नीच का सामाजिक आधार देखा है। समाज का एक बड़ा वर्ग अज्ञानी, अपमानित, अशिष्ठ है जो ऐसे काम करता है, जिसकी समाज को जरूरत है, परंतु उसी समाज द्वारा उन्हें तिरस्कृत एवं बहिष्कृत किया जाता है जिसकी आवश्यकताओं की वे पूर्ति करते हैं। इंगलैंड में भी एक ऐसा समाज है जिसे "सबमर्जड टेंथ" कहते है जो वहा की जनसंख्या का दसवां भाग है। उन्हें भरपेट भोजन नहीं मिलता, वे कुपोषण के शिकार हैं और उन्हें बीमारी घेरे रहती है। वे रोग उन्हीं विषमताओं से पैदा होते हैं। ये अन्य जीव जंतुओं के समान अल्पबुद्धि के होते हैं। कुपोषण के कारण उनके बच्चे अकाल मौत मरते हैं। उन्हे सूखे जैसे रोग हो जाते हैं। उनमें जो कुछ ठीक–ठाक सुडौल होते हैं वे घृणित कार्य करते हैं जैसे भंगी का काम, झाड़ू लगाना, बेलदारी का काम, बंदरगाहों पर मजदूरी, ठेले खींचना। वे मजदूर बनते हैं और वे समाज में बहुत निम्न स्तर के होते हैं, जैसे शराबी, लुच्चे, लोफर, लफंगे, टुच्चे, मंगते, भीख मांगने वाले, जघन्य अपराधी और आततायी लुटेरे। पहले प्रकार के व्यक्ति ईमानदार और मेहनती होते हैं तथा दूसरे प्रकार के लोगों को जबरदस्ती अपनी रोटी रोजी कमाने के लिए श्रम करने पर विवश किया जाता है। भारत में ऐसे ही वर्ग की संख्या कुल जनसंख्या का छठा भाग है और उनका जातीय नाम "दलित वर्ग" है। इस समाज का

निर्माण इस देश के उन प्राचीन निवासियों से हुआ है जिन्हें आर्य आक्रमणकारियों ने उन पर आक्रमण कर गुलाम बनाया। यह वर्ग शराबी, कबाबी और निहायत गंदा रहता है तथा उसका स्वच्छता से चाहे वह खाने की हो या रहन–सहन की हो, कोई सरोकार नहीं रहता। उनके यहां केवल विवाह में ही कुछ रीतिरिवाज़ होते हैं। बच्चों के साथ ठीक व्यवहार किया जाता है। उनमें क्रूरता, हिंसा और अपराध बहुत ही कम होते हैं। अपराधी समुदाय के लोग जैसे वंशानुगत चोर, डकैत इन से अलग रहते हैं और झाड़ू लगाने वाली भंगी जैसी जातियों के साथ वे नहीं मिलते। काश्तकार और कारीगर भी दलित वर्ग के होते हैं। वे विनम्र, समर्पित, परिश्रमी, दयालु और संतोषी होते हैं। बहुत कम में संतोष कर "आनंद" से रहते हैं। सामान्यतः कम बुद्धिमान होते हैं। नागरिकोचित मूल्यों का उनमें पूरी तरह अभाव हो, ऐसी बात भी नहीं। वे सहिष्णु और दयालु तथा स्वभाव के धार्मिक होते हैं। वास्तव में वे सभ्य समाज के लिए बड़े लाभप्रद हैं।

"ऐसे लोगों के लिए जो दलितों पर होने वाले अमानुषिक अत्याचार एवं क्रूर व्यवहार को महसूस करते हैं, जो यह महसूस करते हैं कि उन भारतीयों के लिए क्या किया जा सकता है जो स्वतंत्रता की मांग करते हैं और चाहते हैं कि दूसरों को भी आदर देना चाहिए तथा स्वतंत्रता का भागीदार बनाना चाहिए।

"शिक्षा ही दलितों के उत्थान का एकमात्र उपाय है परंतु बुनियादी कठिनाई यह है कि समाज के जिस वर्ग के लिए मांगें की जाती हैं और जिसकी हालत पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता बताई जाती है, समाज के उसी सबसे निचले, अस्पृश्य वर्ग के बच्चों को स्कूलों में प्रवेश नहीं दिया जाता। जहां कहीं दिया भी जाता है तो उनमें तथा सवर्ण बच्चों में बराबरी और मेलजोल का दर्जा नहीं होता। अतः यह पूछना आवश्यक हो जाता है कि क्या भाईचारे का अर्थ किसी वर्ग के स्तर को घटाना है? किसी भी परिवार में बड़े बच्चों और छोटे बच्चों के साथ समान व्यवहार किया जाता है। ज्ञान एवं प्रकृति के अनुसार नहीं अब से जो सम बंधुत्व को बदलेगा और सुसंस्कृत वर्ग से मांग करेगा कि बनावटी समानता स्थापित करने के लिए पीढ़ियों से प्राप्त किए जाने वाली शिक्षा के फलों का त्याग करना पड़ेगा क्योंकि यह भावी उन्नति में बाधक सिद्ध होगी जैसे इस समय भी निरर्थक है। दलित वर्ग के बच्चों को सबसे पहले सफाई से रहने की शिक्षा देने की आवश्यकता है। व्यवहार में शालीनता, प्रारम्भ में ही धार्मिक

और नैतिक शिक्षा देने की आवश्यकता है। शराब तथा अन्य प्रकार की दुर्गंध और तेज गंध वाले भोज्य पदार्थों के खाने के कारण दलित वर्ग के बालकों के शरीर से पीढ़ियों से दुर्गंध आती रही है। उनका शरीर भी पीढ़ियों से शुद्ध भोजन करते आ रहे तथा सफाई से रहते आए सुसंस्कृत बालकों के समान ही है। परन्तु उन दलितों के बच्चों को उनके समकक्ष लाने में पीढ़ियां गुजर जांएगी। हमें दलित वर्गों को भी उस भौतिक शुद्धता के स्तर तक लाना होगा और जब तक ऐसा नहीं किया जाता उनमें निकट संपर्क स्थापित करना अनुचित होगा। हम इसके लिए उन बच्चों तथा उनके माता–पिता को दोष नहीं देते, मैं तो केवल कटु वास्तविकता स्पष्ट कर रहा हूँ। ऐसे बच्चों को स्कूल में प्रथम पाठ के तौर पर नहाना, सफाई से रहने, साफ कपड़े पहनने तथा साफ भोजन करने की शिक्षा देने की आवश्यकता हैं। दलित बच्चों की ऐसी मूल आवश्यकताओं की पूर्ति स्कूलों में नहीं की जा सकती।

"दूसरी कठिनाई जिसका सामना दलित वर्गों के शिक्षकों को करना पड़ता है, वह संक्रामक रोगों से पीड़ित बच्चों की है। उदाहरणार्थ, आंखों की बीमारी एक संक्रामक बीमारी है। मद्रास में पंचम अर्थात् अंत्यजों के स्कूलों में शिक्षक बच्चों की आंखों की सफाई करा कर ऐसे संक्रामक रोगों की रोकथाम करते हैं। परंतु क्या उन बच्चों के माता पिता से ऐसी आशा की जा सकती है कि वे नित्यप्रति उन रोगों के संक्रमण से अपने बच्चों को बचा सकेंगे?

"ऐसे दुर्दशाग्रस्त बच्चों को सुपोषित बच्चों के समकक्ष लाना विडंबना ही होगी। सदाचरण सतत आत्मसंयम का फल होता है और सुपोषित बच्चे ऐसा सदाचरण मुख्यतः अपने माता पिता तथा शिक्षकों से सीखते हैं। यदि दूसरे बच्चों के साथ बैठा कर उन बच्चों की स्कूल में आदतें न सुधारी जाएं तो उनका शीघ्र पतन होगा जैसा कि हम आये दिन देखते हैं। क्योंकि जब तक उनमें पहले से ही अच्छी आदतों का समावेश नहीं होगा उनके साथ असावधानी बरतना ठीक नहीं होगा। जिन परिवारों के बच्चों में वंशानुगत सदाचरण और विनम्रता पाई जाती है उसमें कमी नहीं आने देनी चाहिए। विनम्र भाषण, सुस्वर, सुहावने तौरतरीकों का व्यवहार ये सब प्राचीन सभ्यता की देन हैं जिन्हें सही बंधुत्व के रूप में सुदृढ़ करना है..........।

"इंगलैंड में सभी वर्गों के लड़के या लड़कियों को एक साथ शिक्षा देना कभी भी उचित नहीं समझा गया। असमान में ऐसी बेतुकी

समानता ठुकराई जानी चाहिए। एटन तथा हैरों उच्च वर्गों के स्कूल हैं तथा "रबगी" "विंचेस्टर" के स्कूल भी उन्हीं कुलीन लोगों के लिए हैं जो थोड़े कम ठाठ–बाठ वाले हैं। इसके बाद वे स्कूल हैं जिनमें मध्यम वर्ग के बच्चे पढ़ने आते हैं। तत्पश्चात् बोर्ड स्कूल हैं जिनमें शिल्पकारों तथा साधारण श्रमिक वर्ग के बच्चों को शिक्षा दी जाती है और इन सबसे निम्न स्तर या लावारिसों, अनाथों और छितरे हुए लोगों के बच्चों के लिए स्कूल हैं जिनके नाम से ही उन स्कूलों के विद्यार्थियों के स्तर का संकेत मिल जाता है। धर्मार्थ या खैराती शिक्षा संस्थान भी हैं। उन दरिद्र स्कूल के बच्चों को एटन एवं हैरो स्कूलों में प्रवेश देने की दलील देने वाले व्यक्तियों के साथ तर्क नहीं किया जाता उसकी खिल्ली उड़ाई जाती है। यहां पर जब बंधुत्व भाव के नाम पर वैसा ही प्रस्ताव लाया जाता है तो लोग उसका अनौचित्य स्पष्ट रूप में कहने में लज्जा का अनुभव करते हैं और वे यह नहीं महसूस करते कि दलित वर्गों पर जो अमानुषिक अत्याचार किए गए हैं उनके विरूद्ध वैसा प्रस्ताव केवल हिंसात्मक प्रतिक्रिया सिद्ध करेगा और सही भावनाएं उभर कर सामने आएंगी। प्रायः कहा जाता है कि सरकारी स्कूल सामाजिक असमानताओं या भेदभाव की ओर ध्यान नहीं देते, वे वहां ऐसा प्रदर्शन करते हैं मानों वे अनिवार्यतः विदेशी भावनाओं से प्रेरित हैं। वे अपने अपने लोगों के बच्चों के साथ वैसा व्यवहार नहीं करते यद्यपि वे भारतीय बच्चों के प्रति उदासीन रहते हैं और वे गंदे और साफ ब्रच्चों को एक समूह में एकत्र कर देते हैं। जब सुसंस्कृत बच्चों को स्कूल में भरती कराया जाता है तब यहां युवकों की भाषा के भाव को सरलता से जाना जा सकता है और यह भारतीयों के हित में है कि वे अपने बच्चों को उन स्कूलों में भेजें जहां वे अशिष्ट प्रवृत्तियों से बच सकें जैसा कि इंगलैंड में अंग्रेज अपने बच्चों के मामले में करते हैं।"

ऐसे प्रस्ताव को पारित करने पर इसे अनूठी घटना इसलिए बताना न्यायोचित है क्योंकि इसका भी कारण एक यह है कि यह प्रस्ताव कांग्रेस की घोषित नीति के सर्वथा प्रतिकूल था। इन दिनों जबकि कांग्रेस के "रचनात्मक कार्यक्रम" का गली गली में हर समय प्रचार हो रहा था तथा असहयोग आंदोलन एवं सविनय अवज्ञा आंदोलन से उसे कुछ फुर्सत मिली थी, वर्तमान समय के कांग्रेस जनों तथा उनके मित्रों को यह प्रस्ताव चकित कर सकता है। कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों की अध्यक्षता करने वाले अध्यक्षों के भाषणों के निम्नलिखित उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाएगा कि कांग्रेस की नीति यह रही है कि वास्तव में समाज

सुधार के प्रश्नों का कांग्रेस की नीति, उद्देश्य एवं लक्ष्य के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का दूसरा अधिवेशन वर्ष 1886 में कलकत्ता मे हुआ था जिसकी अध्यक्षता श्री दादाभाई नौरोजी ने की थी। अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने समाज सुधार के विषय में कांग्रेस के रवैये का उल्लेख करते हुए कहा था :

> "इस बात पर बल दिया गया है कि कांग्रेस को सामाजिक सुधार के प्रश्न को दृढ़ता के साथ उठाना चाहिए (समर्थन में हर्ष–ध्वनि) और इसमें हमारी असफलता की भर्त्सना की गई है। निःसंदेह सामाजिक सुधार की आवश्यकता के प्रति राष्ट्रीय कांग्रेस का कोई सदस्य उतना जागरूक नहीं है जितना मैं हूं। परंतु महानुभावों, प्रत्येक काम के लिए उचित समय, उचित परिस्थितियां, दलों और उचित स्थान की आवश्यकता होती है (हर्ष–ध्वनि)। हम राजनैतिक दल के रूप में अपने राजनैतिक उद्देश्यों को अपने शासकों के समक्ष प्रस्तुत करने हेतु एकत्र हुए हैं सामाजिक सुधारों पर विवाद करने के लिए नहीं, और यदि आप हमें इसकी उपेक्षा का दोष देते हैं तो आपको हाउस ऑफ कामंस को भी समान रूप से दोष देना चाहिए कि उसने भी गणित और वास्तविकता की गूढ़ समस्याओं जैसे विषयों पर चर्चा नहीं की। लेकिन इसके अतिरिक्त वहां पर भी प्रत्येक प्रांत में सभी जातियों के हिंदू हैं और प्रत्येक प्रांत में उनकी सामाजिक व्यवस्थाओं और रीति रिवाजों में बहुत अंतर हैं। मुसलमान, और प्रत्येक संप्रदाय के ईसाई, पारसी, सिख और ब्राह्मण इत्यादि विभिन्न नामों से जाने जाते हैं और सभी भारत के ही समेकित अंग हैं (हर्ष–ध्वनि)। अतः विभिन्न जातियों वाला यह समूह प्रत्येक वर्ग में वांछनीय सामाजिक सुधारों पर कैसे चर्चा कर सकता है? अतः केवल उसी वर्ग के लोग ही अपने वर्ग में वांछित सुधारों के बारे में उचित कार्यवाही करें जिनकी उन्हें अपेक्षा है। राष्ट्रीय कांग्रेस को केवल राष्ट्र के सामान्य हितों तक ही अपने को सीमित रखना चाहिए और अन्य वर्गों के सामाजिक सुधारों के सामंजस्य तथा अन्य मामले उन्हीं वर्गों पर छोड़ देने चाहिएं।"

वर्ष 1887 के आयोजित तीसरे अधिवेशन में जो माननीय श्री बदरूद्दीन तैयब जी की अध्यक्षता में संपन्न हुआ था श्री तैयब जी ने समाज सुधार पर पुनः चर्चा करते हुए अपने भाषण में कहा था –

> "........हमारी इन कार्यवाहियों पर आपत्ति करते हुए यह कहा गया है

कि कांग्रेस सामाजिक सुधार जैसे प्रश्न पर विचार नहीं करती........। मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि कांग्रेस केवल किसी एक वर्ग अथवा सम्प्रदाय या भारत के किसी एक भाग का प्रतिनिधित्व नहीं करती है वरन् भारत के प्रत्येक भाग, समस्त वर्गों एवं समस्त संप्रदायों का प्रतिनिधित्व करती है। और इस बात को देखते हुए यह आपत्ति विचित्र लगती है। जबकि समाज सुधार का कोई भी प्रश्न अनिवार्यतः भारत के किसी विशेष भाग या संप्रदाय से जुड़ा है और सज्जनों मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि हमारी मुसलमानों की भी वैसी ही सामाजिक समस्याएं हैं जैसी कि हमारे हिंदू और पारसी मित्रों की हैं और उन्हें हमें हल करना है। तथापि ऐसे प्रश्नों पर उन्हीं संप्रदायों के नेताओं को ही विचार करना चाहिए जिनकी वे समस्याएं हैं। सज्जनों, मैं समझता हूं कि यहां हमें अपने आप को उन्हीं मामलों एवं प्रश्नों तक सीमित रखना चाहिए जिनसे संपूर्ण भारत प्रभावित होता है और हमें किसी विशेष समुदाय या क्षेत्र विशेष को प्रभावित करने वाले प्रश्नों पर चर्चा नहीं करनी चाहिए।"

तीसरी बार इस विषय पर 1892 में उल्लेख किया गया जब श्री डब्ल्यू. सी. बनर्जी ने आठवें अधिवेशन में अपने अध्यक्षीय भाषण के दौरान निम्नलिखित उद्‌गार प्रकट किए –

"हमारे आलोचक ये कहते हैं – मानों वे हमारे मामलों को हमसे अधिक जानते हैं – कि हमें राजनैतिक मामलों में हस्तक्षेप नही करना चाहिए। वरन् राजनीति को एक तरफ करके सामाजिक कार्यों में लग जाना चाहिए और अपने देश की सामाजिक व्यवस्था को उन्नत करना चाहिए। मैं उन्हीं में से एक हूं जो सामाजिक मामलों की सार्वजनिक चर्चा में विश्वास नहीं रखते हैं और मेरे विचार से समाज सुधार का यह काम उसी संप्रदाय के उन्हीं लोगों पर ही छोड़ देना चाहिए जो उस समाज के हैं और वे जितना कार्य करना चाहें करे। हम जानते हैं कि जब सामाजिक विषयों पर सार्वजनिक रूप से चर्चा की जाती है तो लोग कितने उत्तेजित हो जाते हैं। उदाहरणार्थ, अभी हाल में ही वायसराय की लेजिस्लेटिव काउंसिल में "एज ऑफ कंसेंट बिल" पेश हुआ था। उस पर जो विवाद उठ खड़ा हुआ था मैं उसके गुण–दोषों में नहीं जाना चाहता, परंतु मैं यह संकेत देना चाहता हूं कि यदि सामाजिक मामलों पर जनता की इच्छा के प्रतिकूल शत्रुतापूर्ण तौर–तरीकों से किसी ने चर्चा की तो जनता आंदोलित हो उठेगी। मेरा संकेत है कि हम सब समाज सुधार का सही अर्थ नही समझते। हम में से कुछ

लोग चाहते हैं कि हमारी लड़कियों को भी हमारे लड़कों के समान शिक्षा मिले और वे विश्वविद्यालयों में पढ़ने जाएं तथा ज्ञान के व्यवसायों को अपनाएं। दूसरे लोग जो कहीं अधिक कायर किस्म के हैं वे इसी बात से संतुष्ट हो जाएंगे कि उनके बच्चों का बाल–विवाह नहीं होगा और उनकी बचपन में विधवा हुई लड़कियों को वैधव्य का जीवन नहीं बिताना पड़ेगा। अन्य इससे अधिक डरपोक लोग हैं जो सामाजिक समस्याओं को अपने आप स्वंय हल हो जाने देंगे।

मुझे विश्वास है कि कांग्रेस बनी है और है तथा यह पूर्णतया राजनीतिक संस्था रहेगी और केवल राजनीतिक कार्य करेगी। मुझे डर है कि वे, चाहे अपने देश के हों अथवा अन्य देश के हों, हमें सामाजिक विषय के संबंध में काम न करने का दोष देंगे। इससे उन निंदक बातों को बढ़ावा मिलेगा जिनसे हमें अपने कान बंद करने पड़ेंगे जैसा कि "एज ऑफ कंसेंट बिल" के विषय में किए थे। और हम बदनामी के कगार पर खड़े हो जाएंगे। इससे हमारा कोई हित नहीं सधेगा। हमें ऐसे आलोचक भी देखने पड़ेंगे जो केवल यह कहते हैं कि कांग्रेस केवल सामाजिक समस्याओं पर ही चर्चा कर सकती है।

मुझे उन पर गुस्सा नहीं करना है जो यह कहते हैं कि जब तक हम अपनी सामाजिक व्यवस्था नहीं सुधारते तब तक हम राजनीतिक सुधार करने योग्य नहीं होंगे। मुझे इन दोनों में कोई संबंध नहीं दीखता है। राजनीतिक सुधार, जिसके लिए हम हर वर्ष कहते हैं, को ही लीजिए कि एक ही अधिकारी से न्यायपालिका और कार्यपालिका के कार्य न कराए जाएं। इन दोनों के बीच क्या संबंध हो सकता है जो पूर्णतया राजनैतिक तथा सामाजिक सुधार हो सकता है? इसी प्रकार स्थाई बंदोबस्त (पर्मानेंट सेटलमेंट) को ही लीजिए जिसमें वनों से संबंधित नियमों में हम सुधार लाने के पक्ष में तर्क देते हैं। मैं फिर पूछता हूं कि इसमें समाज सुधार का प्रश्न कहां उठता है? क्या हम ऐसा करने के लिए इस कारण योग्य नहीं हैं कि हमारी विधवाएं अविवाहित रह जाती हैं और हमारी लड़कियों का बाल विवाह होता है जबकि अन्य देशों में ऐसा नहीं है। क्या ऐसा इसलिए है कि हमारी पत्नियां एवं लड़कियां हमारे साथ खुल कर हमारे दोस्तों से मिलने नहीं जातीं? क्या यह इसलिए है कि हम अपनी लड़कियों को आक्सफोर्ड एवं कैंब्रिज नहीं भेज सकते। (हर्षध्वनि)"

वर्ष 1895 में जब कांग्रेस का अधिवेशन पूना में हुआ था तब श्री सुरेन्द्र

नाथ बनर्जी ने कांग्रेस के अध्यक्ष के नाते अधिवेशन की अध्यक्षता की और इस विषय पर चर्चा की थी। उन्होंने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा –

> "हम अपने खेमें में फूट नही पड़ने देंगे। कुछ लोग पहले से ही कह रहे थे कि यह हिंदू कांग्रेस है यद्यपि हमारे मुसलमान मित्रों की उपस्थिति से इस वक्तव्य का खंडन हो गया है। कांग्रेस किसी एक समाज की पार्टी नहीं वरन् सब की पार्टी है। यह कांग्रेस हिंदुओं, मुसलमानों, ईसाइयों, पारसियों और सिखों की संयुक्त संस्था है। वे लोग अपने अपने सामाजिक रीतिरिवाजों में सुधार करें या न करें यह उन्हीं पर निर्भर करता है। यहां हम सभी लोग एक समान मंच पर आकर अपने सामाजिक और धार्मिक मतभेदों को भुला कर केवल सार्वभौम विषय पर और एक ही सरकार के अधीन रहते हुए केवल समान कठिनाइयों के निराकरण, समान अधिकारों को प्राप्त करने के लिए ही कांग्रेस मंच का उपयोग करेंगे। कांग्रेस हमारी राजनैतिक संस्था है। हमने कांग्रेस का गठन अपने अधिकारों के संरक्षण और विस्तार के लिए तथा अपनी कठिनाइयों का समाधान करने के लिए किया है। डाक्टरों का यह संकाय जो विज्ञान में प्रमुख स्थान रखता है और वे भी इस बात पर सहमत नहीं हो सके कि वे अपनी लड़कियों का बचपन में विवाह न करेंगे तथा अपनी विधवा पुत्रियों का पुनर्विवाह करेंगे या नहीं करेंगे। हमारी कांग्रेस केवल राजनैतिक संस्था है, सामाजिक सुधार की संस्था नहीं। अतः यह शिकायत नहीं करनी चाहिए कि कांग्रेस हमारी सामाजिक संस्था नहीं है यह आरोप इसी प्रकार का है जैसे किसी वकील से कहा जाए कि वह डाक्टरी क्यों नहीं जानता। राजनैतिक मामलों में भी अल्पसंख्यकों के विचारों का हम आदर करते हैं जैसाकि इसके पहले 1887 में श्री बदरूद्दीन तैयब जी के विचार थे जो एक बार कांग्रेस अध्यक्ष भी बने थे और जिनकी बंबई उच्च न्यायालय की न्यायपीठ में पदोन्नति राष्ट्रीय अभिनंदन का विषय है, और इस संबंध में एक प्रस्ताव पारित किया गया था कि जहां एक वर्ग में व्यावहारिक सर्वसम्मति हो यद्यपि वह वर्ग कांग्रेस में अल्पसंख्यक वर्ग है, लेकिन उनके सामाजिक विवादों पर कांग्रेस में चर्चा नहीं की जानी चाहिए और उस पर रोक लगा देनी चाहिए।
>
> हमारी जैसी संस्था के लिए यह विशेष खतरा है – विशेषकर उनसे जो उन्नत तथा विकसित समाज के हैं और अपने में झगड़े के बीच समाहित किए हुए हैं। हमें उनसे अपनी संस्था की रक्षा करनी है।"

II

उपर्युक्त वक्तव्यों से दो प्रश्न उभरते हैं जिनका स्पष्टीकरण आवश्यक है। प्रथम, यह जानना है कि सामाजिक सुधार पार्टी क्या थी जिसका उल्लेख अध्यक्षों ने अपनी भाषाओं में किया था। दूसरा प्रश्न यह है कि वर्ष 1895 में कांग्रेस अधिवेशन में श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी का भाषण अंतिम भाषण क्यों माना गया जबकि किसी कांग्रेस अध्यक्ष ने सामाजिक सुधारों की समस्या के प्रति कांग्रेस के उत्तरदायित्व का उल्लेख करना अनिवार्य नहीं समझा गया और 1895 के बाद कांग्रेस के किसी अध्यक्ष ने इस पर विचार करना अनिवार्य क्यों नहीं समझा।

पहले प्रश्न को समझने के लिए इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि वर्ष 1885 मे बंबई में जब भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की गई तब दल के नेताओं ने महसूस किया था कि राष्ट्रीय आंदोलन केवल राजनैतिक ही नहीं वरन् राजनैतिक प्रश्नों पर विचार करने के साथ-साथ भारतीय सामाजिक आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाले प्रश्नों पर भी विचार किया जाए और सभी सामाजिक बुराइयों और कुरीतियों को समाप्त कर हिंदू समाज को पुनर्जीवन प्रदान करने के लिए सभी भरसक प्रयत्न किए जाने चाहिए। इस विचार को ध्यान में रखते हुए दीवान बहादुर आर. रघुनाथ राव तथा न्यायमूर्ति श्री एम.जी. रानाडे (तत्कालीन राय बहादुर) ने बंबई में कांग्रेस की प्रथम बैठक में समाज सुधार पर विचार व्यक्त किए थे। वर्ष 1886 में कलकत्ता में कोई नया विचार व्यक्त नहीं किया गया। कांग्रेस आंदोलन के नेताओं में तथा भारतीय शिक्षित विचारधारा के अन्य नेताओं के साथ इस समस्या पर विचार-विमर्श चलता रहा कि क्या कांग्रेस को इस समस्या पर विचार करना चाहिए अथवा क्या सामाजिक प्रश्नों पर चर्चा करने के लिए अलग से समिति का गठन किया जाना चाहिए। दीवान बहादुर आर. रघुनाथ राव, श्री महादेव गोविंद रानाडे, श्री नरेन्द्र नाथ सेन तथा श्री जानकी नाथ घोषाल तथा अन्य विद्वानों द्वारा गंभीर विचार-विमर्श के बाद यह निर्णय किया गया कि इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस नाम से अलग से संस्था बनाई जानी चाहिए जो भारतीय सामाजिक अर्थव्यवस्था संबंधी विषयों पर विचार करे। इंडियन नेशनल सोशल कान्फ्रेंस का प्रथम अधिवेशन दिसंबर 1887 में मद्रास में हुआ और उसे ही इस कांफ्रेंस की जन्मस्थली होने का गौरव प्राप्त हुआ। स्वर्गीय महाराज सर टी. माधव राव के सी.एस.आई. जो अपने समय के उच्च कोटि के राजनीतिज्ञ थे, इस कान्फ्रेंस के अध्यक्ष थे। इस प्रथम कांफ्रेंस में कोई अधिक काम नहीं हुआ। अन्य महत्वपूर्ण प्रस्तावों में जो तत्कालीन सदस्यों ने पारित किए थे उनमें एक प्रस्ताव यह भी था कि भारत के विभिन्न स्थानों पर इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस के वार्षिक अधिवेशन आयोजित किए जाएं जिनमें हमारे समाज के स्तर तथा हमारे सामाजिक रीति-रिवाजों में सुधार करने के लिए विचार किया जाए

तथा आवश्यक उपाय किए जाएं तथा कांफ्रेंस की प्रांतीय उपसमितियां गठित की जाएं। कान्फ्रेंस में लंबी समुद्री यात्राओं में फिजूलखर्ची, विवाहों में फिजूलखर्ची रोकना, विवाह की न्यूनतम आयु का निर्धारण, जवान विधवाओं का पुनर्विवाह, जवान लड़कियों का वृद्धों के साथ बेमेल विवाह जैसी बुराइयां, अनमेल विवाह, एक ही जाति की उपजातियों में अंतर्विवाह जैसे विषयों पर विचार किया गया और ऐसे निर्णय लेने पर आम सहमति हुई।

विभिन्न सामाजिक प्रश्नों पर विचार करने के लिए अलग–अलग उप–समितियों का गठन करने पर विचार हुआ और यह बात उन उपसमितियों पर छोड़ दी गई कि वे इन सुधारों को लागू करने के लिए मौलिक सिद्धांत प्रतिपादित करें तथा उन सिद्धांतों के उल्लंघन के लिए दंड विधान बनाएं। इस दंड व्यवस्था से सहमत एवं प्रतिबद्ध सोशल रिफार्म पार्टी के सदस्य इन नियमों को (1) स्वयं उपसमितियों द्वारा या (2) जहां कहीं संभव हो, धर्म गुरुओं के प्रभाव के माध्यम से या (3) दीवानी न्यायालयों के माध्यम से लागू कराते हैं और यदि कुछ नहीं तो सरकार से लिखित में यह अनुरोध किया जा सकता है कि इन समितियों को अधिकार दे दिया जाए कि वे अपने प्रतिज्ञाबद्ध सदस्यों के माध्यम से इन नियमों को लागू करा सकें।

सामाजिक बुराइयों से ग्रस्त हिंदू समाज की अनेक सामाजिक समस्याओं पर विचार करने हेतु सोशल रिफार्म पार्टी द्वारा अलग संगठन बनाए जाने पर उन्हें इस बात से गहरा असंतोष हुआ कि कांग्रेस ने सामाजिक समस्या से बिल्कुल हाथ खींच लिया है। इनमें से कुछ लोग तो इसको एक मुद्दा बनाने के लिए आतुर थे कि राजनीतिक सुधारों से पहले सामाजिक सुधार होना आवश्यक हो और उन्होंने इस आशय का फैसला लिये जाने पर जोर दिया। इस विचार के समर्थक उनके बहुत से मित्र थे। उन समर्थकों में भारत सरकार भी थी। वायसराय की एक्जीक्यूटिव काउंसिल के सदस्य सर आकलैंड कालविन ने बहुत ही साफ और ज़ोरदार तरीके से स्पष्ट किया कि भारतीयों को प्राथमिकता के तौर पर सामाजिक सुधार पर ध्यान देना चाहिए "न कि अंग्रेजों को यह सिखाने का प्रयास करना चाहिए कि उनका भारत सरकार के प्रति क्या कर्तव्य है।"

इस प्रकार कांग्रेस अध्यक्षों के भाषणों में समाज सुधार की बात को सरलता से समझा जा सकता है। सामाजिक बुराइयों को दूर करने की समस्या से कांग्रेस का अपने को अलग करने के विरोध में सोशल रिफार्म पार्टी द्वारा की गई आलोचना का यह उत्तर हो सकता है। इस दूसरे प्रश्न का उत्तर कि 1895 के बाद किसी भी कांग्रेस अध्यक्ष ने अपने अभिभाषण में सामाजिक सुधार का जिक्र क्यों नहीं किया, यह है कि 1895 से पूर्व कांग्रेसजनों में सामाजिक सुधार बनाम राजनीतिक सुधार के मुद्दे पर दो विचारधाराएं थी। एक विचारधारा के समर्थक

थे श्री दादाभाई नौरोजी, श्री बदरुद्दीन तैयबजी और श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी। दूसरी विचारधारा थी श्री डब्लू.सी. बनर्जी की। पहली विचारधारा के समर्थक सामाजिक सुधार की आवश्यकता तो मानते थे, परन्तु उनका विचार था कि इसके लिए कांग्रेस अधिवेशन सही मंच नहीं है। दूसरी विचारधारा सामाजिक सुधार की आवश्यकता नहीं समझती थी और उसने इस मत को चुनौती दी कि सामाजिक सुधार के बिना राजनीतिक सुधार नहीं लाया जा सकता। यद्यपि कांग्रेस के अंदर की ये दोनों विचारधाराएं एक–दूसरे के बिलकुल विपरीत थी, फिर भी 1895 तक उनमें आपसी प्रतिरोध विकसित नहीं हुआ था। पहली विचारधारा का प्रभुत्व था और परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस तथा सोशल कांफ्रेंस दो समानान्तर संगठनों के रूप में कार्य करते थे और अपने–अपने उद्देश्यों व लक्ष्यों की प्राप्ति पर ध्यान देते थे। दोनों के बीच इतना अधिक सहयोग तथा सद्भाव था कि राष्ट्रीय कांग्रेस तथा सोशल कांफ्रेंस के वार्षिक अधिवेशन एक दूसरे के तुरन्त बाद उसी पंडाल में किए जाते थे और जो लोग कांग्रेस अधिवेशन के लिए आते थे उनमें से अधिकतर सोशल कांफ्रेंस में भी उपस्थित होते थे। परन्तु सोशल कांफ्रेंस उन कांग्रसजनों की आंख की किरकिरी थी जो सामाजिक सुधार–विरोधी मत के थे। यह वर्ग कांग्रेस के उस प्रभुत्वशाली वर्ग के प्रति उद्विग्न हो रहा था। जो सोशल कांफ्रेंस पर मेहरबान थे और उसे अपना अधिवेशन करने के लिए कांग्रेस पंडाल का प्रयोग करने जैसी सुविधाएं देते थे।

वर्ष 1895 में जब कांग्रेस की बैठक पूना में हुई तो सामाजिक–सुधार विरोधी गुट विद्रोह कर बैठा तथा उसने धमकी दी कि यदि कांग्रेस ने सोशल कान्फ्रेंस को अपने पंडाल का उपयोग करने की अनुमति दी तो पंडाल फूंक दिया जाएगा। सोशल कान्फ्रेंस के उन विरोधियों का नेतृत्व सामाजिक अनुदारवादी और राजनीतिक उग्रवादी स्वर्गीय श्री बाल गंगाधर तिलक कर रहे थे जिन्होंने "स्वराज मेरा जन्म सिद्ध अधिकार है" का नारा दिया था जो अब कांग्रेस का मूलभूत सिद्धांत माना जाने लगा। कांग्रेस में सोशल रिफार्म पार्टी समर्थक अपने विरोधियों[1] से संघर्ष करने के लिए तैयार नहीं थे इसीलिए विद्रोह काफी सीमा तक सफल हो गया। विद्रोह का एक प्रभाव यह पड़ा कि उससे यह भी निश्चय हो गया कि

1. कांग्रेस में सोशल रिफार्म पार्टी के समर्थकों ने उस चुनौती को स्वीकार नहीं किया। यह बात श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के उस पत्र से सिद्ध हो जाती है जो उन्होंने सोशल कान्फ्रेंस द्वारा कांग्रेस पंडाल का उपयोग करने के संबंध में तिलक की पार्टी द्वारा उठाए गए प्रश्न के बारे में श्री रानाडे को लिखा था जिसमें उन्होंने कहा था कि अपने कार्य क्षेत्र में सामाजिक प्रश्नों को निकालने का मुख्य अभिप्राय यह है कि ऐसे प्रश्नों को लेने से हम लोगों में बड़े मतभेद पैदा हो सकते हैं और अंततः फूट पड़ जाएगी और सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि हमें विघटन को रोकना है। दूसरे पक्ष का अनुरोध बिल्कुल अनुचित है। लेकिन कभी हमें अपेक्षाकृत बुराइयों को टालने के लिए अनुचित मांगें भी माननी पड़ती हैं।

कांग्रेस कोई भी सामाजिक सुधार वह चाहे जितना ही आवश्यक[1] हो उस पर कोई विचार नहीं करेगी। यह इस बात का स्पष्टीकरण है कि 1895 के बाद किसी भी कांग्रेस अध्यक्ष ने समाज सुधार की समस्या का अपने अध्यक्षीय भाषण में कभी उल्लेख नहीं किया। वर्ष 1895 में ही कांग्रेस पूर्णतया राजनैतिक दल बन गई और उसकी सामाजिक बुराइयों को मिटाने के प्रति कोई इच्छा नहीं रही।

III

इस पृष्ठभूमि में कांग्रेस ने वर्ष 1917 में दलित वर्ग के विषय में एक प्रस्ताव पारित किया जो वास्तव में अनोखी घटना थी। इससे पहले कांग्रेस ने इस प्रकार का कोई प्रस्ताव कभी पारित नहीं किया था यद्यपि उसे कार्य करते हुए बत्तीस वर्ष हो गए थे। ऐसा करना कांग्रेस की घोषित नीति के विरुद्ध था।

कांग्रेस ने वर्ष 1917 में ऐसा प्रस्ताव पास करना क्यों आवश्यक समझा? अस्पृश्यों के लिए उसमें यह चेतना अथवा ऐसा संज्ञान कैसे आया? कांग्रेस किस को धोखा देना चाहती थी? क्या यह उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन के कारण हुआ था अथवा उसकी कोई गूढ़ चाल थी? इन प्रश्नों के उत्तर के लिए हमें दलित वर्ग द्वारा वर्ष 1917 में बंबई नगर में दो विभिन्न अध्यक्षों की अध्यक्षता में हुई अलग–अलग सभाओं में पारित निम्नलिखित दो प्रस्तावों पर ध्यान देना होगा। इनमें पहली सभा 11 नवंबर 1917 को श्री नारायण चन्द्रावरकर की अध्यक्षता में हुई थी। उस सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव[2] पारित किए गए थे –

> "प्रथम प्रस्ताव – ब्रिटिश सरकार के प्रति राजभक्ति तथा मित्र राष्ट्रों की विजय की कामना के लिए प्रार्थना।" उस समय प्रथ्रम विश्व युद्ध हो रहा था।
>
> "दूसरा प्रस्ताव – बैठक में पूर्ण बहुमत से पास किया गया जिसका लगभग एक दर्जन सदस्यों द्वारा विरोध किया गया। भारतीय प्रशासन में सुधार लाने सम्बन्धी योजना का अनुमोदन किया गया। इंडियन नेशनल कांग्रेस तथा आल इंडिया मुस्लिम लीग ने उनकी सिफारिश की।

---

1. कुछ प्रसिद्ध समाज सुधारकों ने कांग्रेस में सोशल रिफार्म पार्टी के विरोधियों द्वारा कान्फ्रेंस के खिलाफ किए गए विद्रोह का स्वागत किया। दीवान बहादुर आर. रघुनाथ राव ने श्री रानाडे को पत्र लिखा कि उन्हें इस बात की खुशी है कि सोशल कान्फ्रेंस को पंडाल के उपयोग करने की अनुमति नहीं दी गई क्योंकि कांग्रेस सोशल कान्फ्रेंस के साथ–साथ अंग्रेजों पर जो काम करने का धोखे का जाल फेंक रही थी उसका परदा हट जाता और अंग्रेज अब यह पूरी तौर से समझ लेते कि कांग्रेस वास्तव में सोशल कान्फ्रेंस के साथ मिलकर काम नहीं करेगी।"
2. प्रस्तावों के भाषण भारत में वाइसराय तथा राईट सम्मानीय सेक्रेटरी आफ स्टेट फार इंडिया (1918) को प्रस्तुत किए गए। (पार्लियामेंटरी पेपर सी.डी. 1978 पृ. 74-75)

"तीसरा प्रस्ताव जो सर्वसम्मति से पास किया गया वह यह था – भारत में डिप्रेस्ड क्लासेस जिन्हें अस्पृश्य कहा जाता है, की संख्या बहुत अधिक मानी जाती है और उनकी दशा अत्यंत शोचनीय है जिसके कारण उनके साथ ऐसा बर्ताव किया जाता है जो शिक्षा की दृष्टि से अन्य भारतीयों से कोसों दूर हैं, उनकी प्रगति के लिए उन्हें क़ोई अवसर नहीं मिलते हैं। इसलिए यह जनसभा दृढ़तापूर्वक महसूस करती है कि सरकार को डिप्रेस्ड क्लासेस की सुधार की योजना तथा काउंसिल का पुनर्गठन करना चाहिए जिसमें डिप्रेस्ड क्लासेस के हितों का पूरा ध्यान रखा जाए। इसलिए यह जनसभा ब्रिटिश सरकार से अनुरोध करती है कि सरकार लेजिस्लेटिव काउंसिल के लिए डिप्रेस्ड क्लासेस को अपने प्रतिनिधि चुन कर भेजने का अधिकार उनकी जनसंख्या के आधार पर प्रदान करे और उनकी सुरक्षा का दायित्व ले।"

"चौथा प्रस्ताव जो सर्वसम्मति से पास किया गया था वह यह था कि सरकार से अनुरोध किया जाए कि सरकार समाज के सभी वर्गों के सामाजिक उत्थान के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की यथाशीघ्र व्यवस्था करे क्योंकि किसी समुदाय के सदस्यों में शिक्षा का सार्वभौमिक विस्तार उस समाज के सामाजिक उत्थान पर निर्भर करता है और डिप्रेस्ड क्लासेस का पतन अशिक्षा अथवा निरक्षरता एवं अज्ञान के कारण ही है।

"सर्वसम्मति से पारित किया गया पांचवा प्रस्ताव इस प्रकार है – कि इस सभा के अध्यक्ष को इंडियन नेशनल कांग्रेस से यह अनुरोध करने के लिए प्राधिकृत किया जाता है कि कांग्रेस अपने अगले अधिवेशन में अलग से स्वतंत्र प्रस्ताव पास करे जिसमें भारत के जनसाधारण के समक्ष डिप्रेस्ड क्लासेस पर धार्मिक तथा रूढ़िगत परम्पराओं द्वारा थोपी गई सभी अयोग्यताओं को समाप्त करने की आवश्यकता, औचित्य एवं नैतिकता के संबंध में घोषणा की जाए क्योंकि ये सभी अयोग्यताएं डिप्रेस्ड क्लासेस के लिए अत्यंत दुखदायी और उन्हें पददलित करने वाली सिद्ध हुई हैं जिनके कारण उन्हें पब्लिक स्कूलों में प्रवेश पाने, अस्पतालों में, अदालतों में, सरकारी कार्यालयों में तथा सामान्य कुओं से पानी भरने में बाधा उत्पन्न हो रही है और ये अयोग्यताएं जो समाज में उत्पन्न हुई हैं कानून और व्यवहार में राजनीतिक अयोग्यताएं बन गई हैं और इसलिए वे इंडियन नेशनल कांग्रेस के राजनीतिक मिशन और प्रचार का अंग बन गई हैं।

छठे प्रस्ताव द्वारा अस्पृश्यों और डिप्रेस्ड क्लासेस के अलावा सभी

> हिंदुओं से विशेषकर उन उच्च सवर्ण हिंदुओं से, जो राजनीतिक अधिकारों का दावा करते हैं, अनुरोध किया जाता है कि वे डिप्रेस्ड क्लासेस पर से पतित होने के कलंक को मिटाने के लिए आवश्यक कदम उठाएं क्योंकि उन बुराइयों ने उन्हें गुलाम बना रखा है और उनकी दशा अपने ही देश में अत्यंत खराब है।"

पहली सभा से लगभग एक सप्ताह पश्चात् नवंबर 1917 में ही दूसरी सभा हुई थी। उस सभा के अध्यक्ष श्री बापू जी नामदेव बागड़े थे जो एक गैर–ब्राह्मण पार्टी के नेता थे। उस सभा में निम्नलिखित प्रस्ताव[1] सर्वसम्मति से पारित हुए–

1. कि ब्रिटिश शासन के प्रति वफादारी का प्रस्ताव।

2. 11 नवंबर 1917 को आयोजित बैठक में इस प्रस्ताव के बहुमत से परियोजना घोषित किए जाने के बावजूद यह सभा कांग्रेस–लीग योजना को समर्थन नहीं देगी।

3. कि इस सभा की मंशा यह है कि भारत के प्रशासन पर ब्रिटिश शासन का तब तक नियंत्रण रहे जब तक कि सभी वर्ग, विशेषतया डिप्रेस्ड क्लासेस देश के प्रशासन में प्रभावी रूप से भागीदार होने की स्थिति में नही आते।

4. कि यदि ब्रिटिश सरकार ने भारतीय जनता को राजनैतिक सुविधाएं देने का निर्णय किया है तो यह सभा अनुरोध करती है कि सरकार को विभिन्न विधान सभाओं अथवा विधायिकाओं में अस्पृश्यों को अपने प्रतिनिधि भेजने के अधिकार देने चाहिए ताकि उनके नागरिक एवं राजनैतिक अधिकार सुनिश्चित किए जा सकें।

5. कि यह सभा बहिष्कृत भारत समाज (डिप्रैस्ड इंडिया एसोसिएशन) के उद्देश्यों को स्वीकृति प्रदान करती है और उसे अपनी ओर से भी श्री मान्टेग्यू के सम्मुख अपने प्रतिनिधि भेजने का समर्थन करती है।

6. कि यह सभा सरकार से अनुरोध करती है कि वह डिप्रेस्ड क्लासेस की विशेष आवश्यकताओं पर ध्यान देते हुए इनके लिए निःशुल्क तथा अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की व्यवस्था करे और डिप्रेस्ड क्लासेस के विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति के रूप में विशेष सुविधाएं प्रदान की जाएं।

7. कि यह सभा उपरोक्त सभी प्रस्ताव वायसराय तथा बम्बई सरकार के समक्ष भेजने के लिए अपने अध्यक्ष को प्राधिकृत करती है।"

---

1. वही पृ. 75

इससे स्पष्ट है कि श्री नारायण चन्द्रावरकर की अध्यक्षता में बम्बई में हुए अधिवेशन में डिप्रेस्ड क्लासेस द्वारा पास किए गए प्रस्ताव तथा 1917 में डिप्रेस्ड क्लासेस के उत्थान के लिए कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव के बीच गहरा संबध इस संबंध को 1917 की घटनाओं के प्रसंग में आसानी से समझा जा सकता है। यह ध्यान देने योग्य है कि वर्ष 1917 में और विशेषकर 20 अगस्त 1917 को तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के भारत सेक्रेटरी श्री मान्टेग्यू ने हाउस आफ कामन्स में ब्रिटिश साम्राज्य के अभिन्न अंग के रूप में भारत में प्रगतिशील उत्तरदायी सरकार की स्थापना के उद्देश्य से स्वायत्तशासी सरकार की स्थापना और इसके क्रमिक विकास करने संबंधी भारत के प्रति ब्रिटिश सम्राट की नई नीति की घोषणा की। भारत के जाने माने राजनीतिज्ञ ब्रिटिश शासन से इस प्रकार की घोषणा की आशा करते थे और ऐसी नीति का पूर्वानुमान लगा कर भारत के संवैधानिक ढांचे में परिवर्तन करने के लिए योजनाएं तैयार कर रहे थे। बनाई गई योजनाओं में से दो योजनाओं पर जनता का ध्यान केंद्रित हुआ। उनमें एक थी "स्कीम ऑफ दि नाइन्टीन" और दूसरी थी "कांग्रेस लीग स्कीम"। पहली योजना तत्कालीन इंपीरियल लेजिस्लेटिव काउंसिल के 19 अतिरिक्त निर्वाचित सदस्यों ने प्रस्तुत की। दूसरी योजना कांग्रेस और लीग द्वारा समर्थित मात्र राजनैतिक सुधारों की स्वीकृत योजना थी जिसे "लखनऊ पैक्ट" के नाम से जाना गया। दोनों योजनाएं 1916 में श्री मान्टेग्यू की घोषणा से एक वर्ष पहले बनाई जा चुकी थी।

उन दोनों योजनाओं में से कांग्रेस केवल अपनी योजना को ही ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकृत कराने की इच्छुक थी। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए लीग योजना को कांग्रेस राष्ट्रीय मांग का रूप और दर्जा देना चाहती थी। लेकिन यह तभी हो सकता था जब इस योजना को भारत के सभी संप्रदायों का समर्थन प्राप्त हो। मुस्लिम लीग ने योजना स्वीकार कर ली। अतः मुस्लिम लीग से समर्थन पाने का कोई प्रश्न नहीं उठा। इसके बाद डिप्रेस्ड क्लासेस आती हैं। यद्यपि वे मुसलमानों की तरह संगठित नहीं थे, परंतु अपने राजनैतिक अधिकारों के प्रति वे बहुत सजग थे जैसाकि उनके प्रस्तावों से स्पष्ट है। वे राजनैतिक रूप से ही जागरूक नहीं थे, वरन् वे कांग्रेस के पूर्णतया विरोधी भी थे। वास्तव में 1895 में जब श्री तिलक के अनुयायियों ने कांग्रेस को यह धमकी दी कि यदि सामाजिक बुराइयों का पर्दाफाश करने के लिए सोशल कान्फ्रेंस को अपने पंडाल का उपयोग करने दिया तो वे पंडाल को आग लगा देंगे। तब अस्पृश्यों ने कांग्रेस के विरुद्ध प्रदर्शन किया तथा उसका पुतला भी जलाया। तभी से कांग्रेस के प्रति उनका ऐसा विरोध चला आ रहा है। वर्ष 1917 में बम्बई में डिप्रेस्ड क्लासेस की दोनों सभाओं में पारित प्रस्ताव से कांग्रेस के प्रति डिप्रेस्ड क्लासेस की विरोधी भावना की पूरी झलक मिलती है। यद्यपि कांग्रेस लीग की सुधारों की योजना पर डिप्रेस्ड

क्लासेस का समर्थन पाने की इच्छुक थी, तथापि वह यह भी जानती थी कि उसे समर्थन मिलेगा नहीं। यद्यपि कांग्रेस उस समय लोगों को आज की तरह भ्रष्ट करने का कार्य नहीं कर रही थी क्योंकि वह इस कार्य में तब उतनी निपुण नहीं थी। तब कांग्रेस ने अपने भूतपूर्व अध्यक्ष सर नारायण चन्द्रावरकर की सेवाओं को सूचीबद्ध कर लिया था। डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन सोसायटी के अध्यक्ष की हैसियत से उन्होंने डिप्रेस्ड क्लासेस पर काफी प्रभाव डाला। उन्हीं के प्रभाव तथा उनके प्रति आदर भाव के परिणामस्वरूप डिप्रेस्ड क्लासेस का एक वर्ग लीग योजना को समर्थन देने के लिए सहमत हो गया।

प्रस्ताव के पाठ से स्पष्ट है कि डिप्रेस्ड क्लासेस ने कांग्रेस लीग स्कीम को बिना शर्त समर्थन नहीं दिया। उसने कांग्रेस को इस शर्त पर समर्थन देना मंजूर किया कि कांग्रेस अस्पृश्यों की समस्त सामाजिक अयोग्यताओं को दूर करने का प्रस्ताव पास करेगी। डिप्रेस्ड क्लासेस के साथ सर नारायण चन्द्रावरकर के माध्यम से हुए समझौते को कांग्रेस के इस प्रस्ताव से साकार रूप दिया गया।

इससे डिप्रेस्ड क्लासेस के विषय में 1917 के कांग्रेस के प्रस्ताव का मूल कारण और सर नारायण चन्द्रावरकर की अध्यक्षता में पारित डिप्रेस्ड क्लासेस के प्रस्तावों से इसका अंतर्संबंध भी स्पष्ट हो जाता है। उस स्पस्टीकरण से यह सिद्ध हो जाता है कि कांग्रेस के प्रस्ताव के पीछे धोखे की भावना छिपी थी। वह नैतिक उद्देश्य नहीं, वरन् राजनीतिक उद्देश्य था।

कांग्रेस के प्रस्ताव का क्या हुआ? डिप्रेस्ड क्लासेस ने अपने प्रस्ताव में "सवर्ण हिंदुओं" से जो राजनीतिक अधिकारों का दावा कर रहे थे, मांग की कि वे डिप्रेस्ड क्लासेस पर से पतित होने के कलंक को मिटाने के लिए आवश्यक कदम उठाएं क्योंकि उन बुराइयों ने उन्हें अपने ही देश में गुलाम बना रखा है और उनकी दशा बहुत खराब है। कांग्रेस ने डिप्रेस्ड क्लासेस की उपरोक्त मांग पर क्या प्रभावी कदम उठाए? कांग्रेस को जो समर्थन मिला था उसके बदले में वह प्रस्ताव में व्यक्त भावनाओं को मूर्त रूप देने के लिए अस्पृश्यता के विरूद्ध अभियान छेड़ने के लिए वचनबद्ध थी। परन्तु कांग्रेस ने किया कुछ नहीं। कांग्रेस द्वारा प्रस्ताव पास करना केवल अनचाही औपचारिकता थी। डिप्रेस्ड क्लासेस ने कांग्रेस–लीग स्कीम को समर्थन देने के लिए जो शर्त लगाई थी उसका औपचारिक रूप से ही पालन किया गया। यह इसलिए किया गया ताकि कांग्रेसी लोगों पर यह दोष न लगाया जा सके कि वे अस्पृश्यों पर हो रहे अमानुषिक अत्याचारों को दूर करने के लिए ह्रदय से पश्चाताप नहीं करते। यह प्रस्ताव केवल मृत प्रस्ताव था, जिसका कोई परिणाम नहीं निकला।

इस प्रकार "कांग्रेस ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया", इसके इतिहास का प्रथम अध्याय समाप्त हुआ।

अध्याय : 2

तुच्छ प्रदर्शन

कांग्रेस ने अपनी योजना त्याग दी

I

श्री गांधी ने भारतीय राजनीति में 1919 में प्रवेश किया। तत्पश्चात् शीघ्र ही वह कांग्रेस पर हावी हो गए। उन्होंने न केवल कांग्रेस पर अधिकार किया बल्कि उसका कायाकल्प कर कांग्रेस का स्वरूप ही बदल दिया। उन्होंने तीन मुख्य परिवर्तन किए। पुरानी कांग्रेस को कोई अधिकार प्राप्त नहीं थे। वह कांग्रेस केवल प्रस्ताव पास करके ही यह अपेक्षा करती थी कि ब्रिटिश सरकार उस प्रस्ताव को क्रियान्वित करेगी। यदि ब्रिटिश सरकार उस प्रस्ताव पर कोई अमल न करती तो साल–साल भर बाद उसी प्रस्ताव को दोहराया जाता। पुरानी कांग्रेस वास्तव में बुद्धिजीवियों का जमावड़ा थी। तत्कालीन कांग्रेस राजनैतिक आंदोलनों में भाग लेने के लिए जनता के बीच में नहीं जाती थी क्योंकि उसका जनशक्ति में विश्वास नहीं था। पुरानी कांग्रेस के पास कोई संगठन नहीं था और जन आंदोलन चलाने के लिए कोई आर्थिक साधन भी नहीं थे। वह कांग्रेस ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालने, अपनी जनशक्ति का प्रदर्शन करने तथा राजनैतिक प्रदर्शन करने में विश्वास नही करती थी। नई कांग्रेस ने तो कायापलट ही कर दी। उसने सब के लिए कांग्रेस सदस्यता का दरवाजा खोल कर उसे जनसाधारण की संस्था बना दिया। सिर्फ चार आने वार्षिक देकर कोई भी व्यक्ति कांग्रेस का सदस्य बन सकता था। प्रस्ताव में असहयोग एवं सविनय अवज्ञा की नीति अपनाकर कांग्रेस ने अपनी स्थिति काफी सुदृढ़ कर ली। कांग्रेस ने असहयोग, सविनय अवज्ञा आंदोलन एवं "जेल भरो" आंदोलन की नीति बनाई। उसने देशव्यापी संगठन बनाया और कांग्रेस के पक्ष में सारे देश में प्रचार करने का अभियान चलाया। समाजोत्थान के लिए रचनात्मक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। इन कार्यकलापों के वित्तपोषण के लिए एक करोड़ रुपये की धनराशि जुटानी आरंभ कर दी और इसे "तिलक स्वराज" निधि का नाम दिया। इस प्रकार श्री गांधी ने 1922 तक आते–आते कांग्रेस का स्वरूप ही बदल दिया।

नई कांग्रेस अपने नाम के अतिरिक्त पुरानी कांग्रेस से एकदम भिन्न हो गई।

समाजोत्थान का रचनात्मक कार्यक्रम कांग्रेस की महत्वपूर्ण विशेषता थी। फरवरी 1922 में बारदोली में कांग्रेस कार्य समिति ने इसकी रूपरेखा तैयार की। इसे "बारदोली कार्यक्रम" के नाम से भी जाना जाता था। प्रस्ताव में तैयार किया गया कार्यक्रम का ब्यौरा इस प्रकार था –

> "कार्य समिति समस्त कांग्रेस संगठनों को सलाह देती है कि वे निम्नलिखित कार्यकलापों को क्रियान्वित करने में लग जाऐं –
>
> 1. कांग्रेस के कम से कम एक करोड़ सदस्य बनाए जाएं।
>
> 2. चरखे को लोकप्रिय बनाएं तथा खादी का जनसाधारण में प्रचार कर उसे बढ़ावा दिया जाए।
>
> 3. राष्ट्रीय विद्यालयों की स्थापना की जाए।
>
> 4. दलित वर्गों को बेहतर जीवनयापन करने के लिए संगठित करना, उनकी सामाजिक, मानसिक एवं नैतिक उन्नति करना, उन्हें अपने बच्चों को राष्ट्रीय स्कूलों में भेजने के लिए प्रेरित करना और उन्हें वे सभी सुविधाएं उपलब्ध कराई जाएं जो अन्य नागरिकों को उपलब्ध हैं।
>
> 5. जिन वर्गों में शराब पीने की लत है उनसे संयम से काम लिया जाए। उनके घरों पर जाकर धरना (पिकेटिंग) देने के बजाए उनसे शराब न पीने की अपील की जाए।
>
> 6. आपसी झगड़ों को निपटाने के लिए गांवों तथा शहरों में पंचायतें स्थापित की जाएं, जिनमें जनमत सर्वोपरि हो और पंचायत के फैसलों में निष्पक्षता और सत्यनिष्ठा हो, ताकि उनका पालन सुनिश्चित किया जा सके।
>
> 7. सभी वर्गों और जातियों के बीच एकता और आपसी सद्‌भाव लाने पर जोर दिया जाए जिसका उद्‌देश्य असहयोग आंदोलन को बल देना है। इस प्रकार के समाज सेवा विभाग की स्थापना की जाए जो बीमारी व दुर्घटना की स्थिति में बिना किसी भेदभाव के सबको सहायता दे।
>
> 8. "तिलक मेमोरियल स्वराज फंड" में धन एकत्र करना जारी रखा जाए तथा सभी कांग्रेसियों तथा कांग्रेस से सहानुभूति रखने वालों से कहा जाए कि वर्ष 1921 की वार्षिक आय का कम से कम एक सौवां

भाग कांग्रेस को दें। प्रत्येक प्रांत तिलक मेमोरियल स्वराज फंड में जमा धन का 25 प्रतिशत धन प्रतिमाह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी को भेज दे।"

20 फरवरी, 1922 को दिल्ली में आयोजित अखिल भारतीय कांग्रेस की बैठक में इस प्रस्ताव को पुष्टि के लिए लाया गया और उसकी पुष्टि हो गई। मुझे इस बात से कोई लेना देना नहीं है कि रचनात्मक कार्य के इस कार्यक्रम की विभिन्न मदों का क्या हुआ। मेरा संबंध तो केवल डिप्रेस्ड क्लासेस से संबंधित मद से है और मैं इस कार्यक्रम के उसी भाग पर विचार करना चाहूंगा।

मैं बारदोली प्रस्ताव के अस्पृश्यों से संबंधित भाग की चरणबद्ध कथा–व्यथा सुनाऊंगा। कथा का आरंभ इस प्रकार है कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा बारदोली प्रस्ताव की पुष्टि किए जाने के बाद कार्यवाही के लिए इसे कार्यसमिति के पास भेज दिया गया। कांग्रेस कार्य समिति ने लखनऊ में जून 1922 को आयोजित बैठक में इस विषय को विचारार्थ लिया। समिति ने बारदोली प्रस्ताव के अछूतों के उद्धार से संबंधित उस भाग पर निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया –

"यह समिति देशभर के तथाकथित अस्पृश्यों की दशा सुधारने की दिशा में व्यावहारिक उपायों को साकार रूप देने की योजना बनाने हेतु एतदद्वारा एक उपसमिति का गठन करती है। स्वामी श्रद्धानंद जी, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री आई.के. याज्ञनिक तथा श्री जी.बी. देशपांडे उस उपसमिति के सदस्य होंगे और समिति की आगामी बैठक के समक्ष उन उपायों को विचारार्थ प्रस्तुत करेंगे। इस योजना के लिए फिलहाल दो लाख रुपये की राशि जुटाई जाएगी।"

कार्यसमिति का यह प्रस्ताव अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की जून 1922 में लखनऊ में आयोजित बैठक में प्रस्तुत किया गया। कार्यसमिति के इस प्रस्ताव को एक संशोधन के बाद स्वीकार कर लिया गया जिसमें कहा गया था कि "फिलहाल इस योजना के लिए पांच लाख रुपये की धनराशि जुटाई जाए" बजाए दो लाख के, जैसाकि कार्यसमिति के प्रस्ताव में कहा गया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि कार्यसमिति द्वारा उस समिति का गठन करने संबंधी प्रस्ताव को स्वीकृत किए जाने से पहले एक सदस्य स्वामी श्रद्धानंद ने समिति की सदस्यता से त्यागपत्र दे दिया था। जिस बैठक में कार्यसमिति ने उप–समिति का गठन करने संबंधी प्रस्ताव पारित किया था उसी बैठक में उसी विषय पर एक अन्य प्रस्ताव पारित किया गया जो इस प्रकार है –

"दलित वर्गों के काम के लिए योजना बनाने हेतु अग्रिम राशि की

> व्यवस्था करने संबंधी स्वामी श्रद्धानंद जी का दिनांक 8 जून, 1922 का पत्र पढ़ा गया। प्रस्ताव पारित किया गया। श्री गंगाधर राव बी. देशपांडे को तत्प्रयोजनार्थ गठित उपसमिति का संयोजक नियुक्त किया जाए और उनसे अनुरोध किया जाए कि वे शीघ्र ही बैठक बुलाएं और यह प्रस्ताव भी पारित किया गया कि स्वामी श्रद्धानंद का पत्र उपसमिति को भेज दिया जाए।"

इस दिलचस्प प्रस्ताव के इतिहास में समिति का गठन दूसरा चरण माना जाता है। समिति के गठन संबंधी प्रस्ताव का कांग्रेस कार्यसमिति की जुलाई 1922 में बम्बई में आयोजित बैठक के कार्यवाही वृतांत में पुनः उल्लेख मिलता है। उस बैठक में समिति ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया था –

> "कि महासचिव (जनरल सेक्रेटरी) से अनुरोध किया जाए कि वह स्वामी श्रद्धानंद से अपने त्यागपत्र पर पुनर्विचार करने और उसे वापस लेने के लिए अनुरोध करें और डिप्रेस्ड क्लासेस उपसमिति के आकस्मिक व्यय को पूरा करने हेतु संयोजक श्री जी.बी. देशपांडे को 500 रुपये की राशि दे दी जाए।"

जहां तक वर्ष 1922 का संबंध है, बात यहीं पर समाप्त हो गई। ऐसा प्रतीत होता है कि इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं हुआ। वर्ष 1923 आरंभ हो गया। यह अनुभव करते हुए कि अस्पृश्यों के उत्थान तथा उनकी दशा सुधारने की योजना पर कोई अमल नहीं किया गया, जनवरी 1923 में गया में आयोजित अपनी बैठक में कार्यसमिति ने निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया –

> "स्वामी श्रद्धानंद के त्यागपत्र के संदर्भ में समिति संकल्प करती है कि डिप्रेस्ड क्लासेस उपसमिति के शेष सदस्य समिति का गठन करेंगे और श्री याज्ञनिक उसके संयोजक होंगे।"

तत्पश्चात् अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की 1923 में बम्बई में आयोजित बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया गया –

> "प्रस्ताव पारित किया जाता है कि अस्पृश्यों की स्थिति से संबंधित मामले को आवश्यक कार्यवाही हेतु कार्यसमिति को भेज दिया जाए।"

इस प्रकार अस्पृश्यों की दशा से संबंधित मामले को विशेष समिति (स्पेशल कमेटी) को भेजने के प्रस्ताव से इतिहास का दूसरा चरण समाप्त हो जाता है। इसके बाद इतिहास का तीसरा चरण उस समय आरंभ हुआ जब मई 1923 में बम्बई में आयोजित कार्यसमिति की बैठक में यह प्रस्ताव पास किया गया :

> "प्रस्ताव पारित किया जाता है कि जबकि कांग्रेस की नीतियों के अनुसरण में अस्पृश्यों की दशा में कुछ सुधार हुआ है फिर भी यह समिति इस बात के प्रति सचेत है कि इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना बाकी है और जहां तक अस्पृश्यता के प्रश्न का संबंध है, यह समिति हिंदू समाज विशेषकर अखिल भारतीय हिंदू महासभा से अनुरोध करती है कि वह इस समस्या को अपने हाथ में ले और हिंदू समाज से इस कलंक को मिटाने के लिए जी तोड़ प्रयत्न करे।"

प्रस्ताव के आरंभ और अंत की यह दुखद गाथा है। अत्यधिक धूमधड़ाके से आरंभ किए गए प्रस्ताव की गाथा का ऐसा निर्लज्ज समापन!

इससे यह स्पष्ट है कि कांग्रेस ने अस्पृश्यों की समस्या से किस प्रकार अपना हाथ खींच लिया। अपने दायित्व को हिंदू महासभा पर थोपना जले पर नमक छिड़कने से अधिक और कुछ नहीं हो सकता। अछूतोद्धार के लिए हिंदू महासभा की अपेक्षा और कोई संस्था उस कार्य के लिए उपयुक्त नहीं समझी गई। अस्पृश्यों की समस्या का समाधान करने में सबसे अधिक अयोग्य अगर कोई संस्था है तो वह हिंदू महासभा ही है। इसका लक्ष्य एवं उद्देश्य केवल हिंदू धर्म एवं हिंदू संस्कृति की रक्षा करना ही था। यह लड़ाकू हिंदू संगठन है। यह समाज सुधार संस्था नहीं है। यह पूर्णतया राजनैतिक संस्था है जिसका मुख्य लक्ष्य एवं उद्देश्य भारतीय राजनीति में मुसलमानों के प्रभाव को समाप्त करना है। राजनैतिक शक्ति का संचय करने के लिए यह सामाजिक एकता को कायम रखना चाहती है और सामाजिक एकता को बनाए रखने का अर्थ जाति अथवा अस्पृश्यता के विषय में कोई बात नहीं करना था। तब अस्पृश्यों के हित में काम करने के लिए हिंदू महासभा को कांग्रेस द्वारा क्यों चुना गया, यह बात मेरी समझ से बाहर है। इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस अस्पृश्यों की असुविधाजनक समस्या से अपना पिंड छुड़ाना चाहती थी। हिंदू महासभा ने निःसंदेह अस्पृश्यों की समस्या का कार्य अपने हाथों में नहीं लिया क्योंकि उसे इसमें कोई रुचि नहीं थी और केवल इसलिए कि कांग्रेस ने बिना कोई वित्तीय व्यवस्था किए केवल पावन प्रस्ताव पास कर दिया था। अतः इस योजना की ऐसी भद्दी और घृणित परिणति हुई।

इस अध्याय को समाप्त करने से पहले इस बात पर विचार करना असंगत न होगा कि कांग्रेस ने अस्पृश्यों की सामाजिक उन्नति के जो डंके पीछे बजाए थे उसे उसने क्यों त्यागा? क्या ऐसा इसलिए किया गया कि स्वामी श्रद्धानंद को इस विशाल समस्या से निपटने की अनुमति देने के बजाए जिसे कांग्रेस न तो स्वीकार सकती थी और ना ही रद्द, कांग्रेस अस्पृश्यों के लिए दो से पांच लाख रुपये से अधिक खर्च नहीं करना चाहती थी बल्कि इसलिए कि उसने महसूस

किया कि स्वामी श्रद्धानंद को समिति में रख कर उसने भूल की?[1] कांग्रेस ने पहले तो स्वामी जी को संयोजक बनाने से इन्कार किया और बाद में समिति को भंग कर अस्पृश्योत्थान का काम हिंदू महासभा को सौंप देना बेहतर समझा। ऐसे परिणाम पर पहुंचने के लिए परिस्थितियां प्रतिकूल नहीं थीं। स्वामी जी अस्पृश्यों के बहुत बड़े और सत्यनिष्ठ शुभचिंतक थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि यदि स्वामी जी उस समिति में होते तो अस्पृश्योत्थान की एक बहुत बड़ी योजना प्रस्तुत करते। इसीलिए कांग्रेस उन्हें उस समिति में नहीं रहने देना चाहती थी क्योंकि उसे डर था कि स्वामी जी अस्पृश्यों के हित में कांग्रेस कोष से बड़ी धनराशि की मांग करेंगे। यह बात उस पत्रव्यवहार[2] से और अधिक स्पष्ट है जो कांग्रेस के तत्कालीन महासचिव श्री मोतीलाल नेहरू तथा स्वामी जी के बीच हुआ था जो परिशिष्ट में छपा है। यदि यह निष्कर्ष सही है तो इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस, जिसने अस्पृश्योत्थान का प्रस्ताव पास किया था, के शब्द कितने अविश्वसनीय थे।

क्या कांग्रेस ने यह योजना इसलिए ताक पर रख दी कि वह क्रांतिकारी कार्यक्रम था? प्रस्ताव किसी भी दशा में क्रांतिकारी नहीं था। यह बात कार्य समिति की इस टिप्पणी से परिलक्षित हो जाती है जो उसने अपने प्रस्ताव के साथ संलग्न की थी और जिसे कांग्रेस महासमिति ने स्वीकार किया था। वह टिप्पणी इस प्रकार थी –

> "बहरहाल जहां अस्पृश्यों के प्रति भेदभाव बरता जाता है वहां कांग्रेस कोष से उनके लिए पृथक स्कूल तथा पृथक कुओं की व्यवस्था अवश्य की जाए। साथ–साथ उनके बच्चों को राष्ट्रीय स्कूलों में पढ़ने के लिए भेजने के भरसक प्रयत्न किए जाएं तथा लोगों को समझाया जाए कि वे अस्पृश्यों को सार्वजनिक कुओं से पानी लेने दें।"

इस टिप्पणी से यह स्पष्ट है कि कांग्रेस अस्पृश्यता को समाप्त नहीं करना चाहती थी। उसने पृथक स्कूलों तथा पृथक कुओं की व्यवस्था की नीति अपनाई। कांग्रेस ने अस्पृश्योत्थान का प्रस्ताव पास करने के अलावा कुछ नहीं किया और कांग्रेस ऐसे भीरू – साधारण तथा न्यूनतम कार्यक्रम को भी लागू नहीं कर पाई और उसने अत्यंत निर्लज्जता और पश्चाताप के साथ इस कार्यक्रम को त्याग दिया।

---

1. यह तथ्य कि कांग्रेस श्री देशपांडे को संयोजक बनाना चाहती थी इस बात को स्पष्ट करता है कि वह स्वामी जी के हाथों में उस काम को रखना पसंद नहीं करती थी। श्री देशपांडे का संयोजक के रूप में चयन इस बात का साक्ष्य है कि वे इस मामले में कोई काम नहीं होने देना चाहते थे क्योंकि श्री देशपांडे कट्टर ब्राह्मण थे जिन्होंने अस्पृश्यों के कल्याण कार्य में कोई रुचि नहीं दिखाई। (विस्तार के लिए देखें परिशिष्ट संख्या – एक)
2. परिशिष्ट – एक

II

क्या कांग्रेस ने अस्पृश्योत्थान के कार्यक्रम को इसलिए त्याग दिया था कि उसके पास धन की कमी थी? बात ठीक इसके विपरीत थी। कांग्रेस ने 1921 में तिलक स्वराज फंड आरंभ किया था। कांग्रेस ने कितना धन एकत्र किया? तालिका-1 से इसका कुछ अनुमान मिल जाएगा। इस कोष में जनता ने एक करोड़ तीस लाख रुपये का चंदा दिया था। वह धन कांग्रेस के प्रचार के लिए एकत्र किया गया था तथा उसे कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम पर ही खर्च करना था जिसकी रूपरेखा कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा बारदौली में तैयार की गई थी। इतनी बड़ी धनराशि कांग्रेस ने कैसे खर्च की? वर्ष 1921, 1922 और 1923 के दौरान कार्यसमिति द्वारा स्वीकृत अनुदानों की सूची से यह अनुमान मिलता है कि यह धन किन प्रयोजनों पर खर्च किया गया था।

(क) वर्ष 1921 में स्वीकृत अनुदान[1]

(I) 31 जनवरी तथा 1, 2 और 3 फरवरी 1921 को कलकत्ता में हुई बैठक में कांग्रेस कार्यसमिति द्वारा स्वीकृत अनुदान –

> (1) वकालत का पेशा छोड़ने वाले और आवश्यकता पड़ने पर समर्थन देने के लिए तैयार तैनात वकीलों की सहायता के लिए एक लाख रुपये महात्मा गांधी को सुपुर्द किए। (IV)
>
> (2) श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी से प्राप्त 31 जनवरी 1921 के तार को पढ़ें –
>
> "अफसोस है कि मैं बैठक में शामिल नहीं हो सकता। तमिल, केरल और कर्नाटक के कुछ भागों के लिए लगभग एक सौ पूर्णकालिक कार्यकर्ताओं का चयन किया गया है जिनमें 40 वकील हैं जिन्होंने अपनी वकालत बंद कर दी है। तिलक फंड में धन एकत्र किए जाने तक 5,600 रुपये प्रति माह देने की स्वीकृति दी जाए। विद्यार्थी आंदोलन जोर पकड़ रहा है यद्यपि समाचारपत्र पूरी खबरें नहीं देते हैं। कम से कम दो महीने तक अभिभावकों के विरोध का मुकाबला किया जाए। इसके लिए तीन हजार रुपये महीना निकाला जाए। खिलाफत की प्रतियां जैसी सुविधाजनक मूल्य वर्ग की तिलक स्वराज फंड की रसीदें कांग्रेस के नाम में जारी करने के लिए कमेटी अधिकारी

1. प्रत्येक अनुदान के अंत में कोष्ठक में दी गई रोमन संख्या वर्किंग कमेटी के उस प्रस्ताव को इंगित करती है जिसके तहत वह अनुदान दिया गया था।

तालिका-1 तिलक स्वराज फंड*

प्राप्तियां

	1921			1922			1923			कुल धनराशि		
	रुपये	आना	पाई	रुपये	आना	पाई	रुपये	आना	पाई	रुपये	आना	पाई
जनरल कलेक्शन अनुबंध-1	64,31,779	15	10	3,92,430	2	6½	2,64,288	9	1	70,88,498	11	5½
विशेष (निश्चित धन) अनुबंध-2	37,32,230	2	10½	9,45,552	1	4½	7,10,801	10	3	53,88,583	13	6
	1,01,64,010	2	8½	13,37,982	3	11	9,75,090	3	4	1,24,77,082	9	11½
जोड़ें – प्रकीर्ण प्राप्तियां, वर्ष 1921-1923 के लिए ब्याज, दूसरे फंड, अकाल, बाढ़, प्रांतीय सदस्यता से प्रतिनिधिमंडल प्रतिबद्धता आदि से										5,42,332	5	7.5
										1,30,19,415	15	7

* इंडियन ऐनुएल रजिस्टर – 1923 पृष्ठ 112

को तुरंत तार भेजें। तीन महीने में सभी अग्रिम राशि पूरी करने में सक्षम मद्रास से बहुत अधिक धन की आशा न करें।"

प्रस्ताव पारित किया जाता है कि तमिल, केरल, कर्नाटक तथा मद्रास के कुछ भाग को फिलहाल एक महीने के लिए 8,600 रुपये की राशि पेशगी प्रदान की जाए तथा भविष्य में दी जाने वाली पेशगी की राशि के लिए कार्यसमिति की दूसरी बैठक में मामला पेश किया जाए। (XX)

(II) कार्यसमिति ने बेजवाड़ा में 31 मार्च तथा 1 अप्रैल 1921 को आयोजित बैठक में निम्नलिखित अनुदान स्वीकार किया –

(3) संयुक्त प्रांत के प्रांतीय कांग्रेस के सेक्रेटरी पंडित मोतीलाल नेहरू को कांग्रेस के प्रचार तथा धन एकत्र करने के लिए 6,000 रुपये की एकमुश्त धनराशि दी जाए। (V)

(4) कांग्रेस अध्यक्ष, समस्त साथियों, कोषाध्यक्ष कार्यालय के कार्य का शेष वर्ष का खर्चा पूरा करने के लिए 17,000 रुपये की राशि स्वीकृत की जाए और उपरोक्त धन राशि में से तीन सौ रुपये प्रतिमास श्री सी. राजगोपालाचारी को उनके सचिव और अध्यक्ष के स्टेनो–टाइपिस्ट के खर्च के लिए दिए जाएं। (VII)

(5) 1,000 डालर की धनराशि श्री डी.वी.एस. राव, इंडिया होम रूल लीग आफ अमरीका, 1400 ब्राडवे न्यूयार्क को तार द्वारा भेजी गई। (VIII)

(III) कार्य समिति ने अनुदानों के लिए प्राप्त सभी आवेदन पत्रों का निपटारा करने हेतु अपने प्रस्ताव संख्या 18 के तहत अनुदान उपसमिति गठित की जिसमें श्री गांधी, पंडित मोतीलाल नेहरू और सेठ जमना लाल बजाज सदस्य थे। इस अनुदान उपसमिति ने अपनी बैठकों मे निम्नलिखित अनुदान पास किए –

(6) बिहार में स्वदेशी कार्य के लिए एक लाख रुपये का अनुदान और उसी प्रयोजन के लिए चार लाख रुपये का ऋण स्वीकृत किया जाए। (I)

(7) 35,000 रुपये का ऋण सी.पी. (हिंदुस्तानी) प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को स्वदेशी के लिए दिया जाए। (II)

(8) यू.पी. में अकाल सहायता के लिए 25,000 रुपये दिए जाएं। (III)

(9) पंजाब प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को अकाल सहायता के लिए तथा जगराव स्कूल को 25,000 रुपये। (IV)

(10) मालाबार में पीड़ितों की सहायता के लिए 50,000 रुपये तार द्वारा आवेदन करने पर दिए। (V)

(11) गांधी आश्रम, बनारस सिटी को 15,000 रुपये दिए। (VI)

(12) पल्लीपाद आश्रम को 10,000 रुपये। (VII)

(13) आंध्र जातीय कलाशाला, मसुलीपट्टनम को 15,000 रुपये। (VIII)

(14) सेक्रेटरी, तालुका कांग्रेस कमेटी, करजात (महाराष्ट्र) को 10,000 रुपये। (XX)

(15) अनाथ विद्यार्थी गृह, चिंचवाड़ (महाराष्ट्र) को 10,000 रुपये। (X)

(16) (I) श्री के.जी. पटाडे, असिस्टेंट जनरल सेक्रेटरी, डीप्रेस्ड क्लासेज मिशन सोसायटी आफ इंडिया (II) कुल्लडई कुरीची नेशनल स्कूल, विद्यासंगम तथा (III) राजामुंद्री डीप्रेस्ड क्लासेस मिशन के प्रार्थनापत्र इसलिए रद्द कर दिए गए थे क्योंकि उनका समर्थन नहीं किया गया था तथा वे उपसमिति (सब-कमेटी) द्वारा जारी किए गए अनुदेशों के अनुसार नहीं थे। (XVII)

(17) केरल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 10,000 रुपये मुख्यतया इसीलिए स्वीकार किए गए कि वह धनराशि स्वदेशी तथा खद्दर को लोकप्रिय बनाने के लिए खर्च की जाएगी। (XX)

(18) मद्रास प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 60,000 रुपये। (XXII)

(19) यू.पी. प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 1,15,000 रुपये। (XXIII)

(20) सिंध प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 63,000 रुपये। (XXIV)

(21) आंध्र को सुपुर्द जिलों के अकाल राहत के लिए 25,000 रुपये। (XXV)

(22) महाराष्ट्र प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 20,000 रुपये। (XXVI)

(23) स्वदेशी तथा हथकरघा एवं खद्दर को लोकप्रिय बनाने के लिए गंजम जिला कांग्रेस कमेटी को 20,000 रुपये स्वीकृत किए जाएं। (XXVII)"

वर्किंग कमेटी ने दिनांक 6 नवम्बर, 1921 के प्रस्ताव संख्या 8 द्वारा उपसमिति को भंग कर दिया और अनुदान स्वीकार करने का कार्य अपने हाथ में ले लिया।

(IV) वर्किंग कमेटी ने दिनांक 3, 5 व 6 नवंबर 1921 को दिल्ली में आयोजित अपनी बैठकों में निम्नलिखित अनुदान स्वीकृत किए –

(24) हाथ का कपड़ा बुनने तथा सूत कातने के लिए रुई खरीदने हेतु आसाम के श्री फूकन को 25,000 रुपये दिए गए। (IX)

(25) आंध्र के गुंटूर जिले में कृष्णापुरम के लिए 5,000 रुपये। (X)

(26) आंध्र जातीय कलाशाला को अतिरिक्त अनुदान के रूप में 10,000 रुपये। (XI)

(27) राजामुंद्री डीप्रेस्ड क्लासेस मिशन को 1,000 रुपये। (XII)

(28) अगलुर जातीय परिश्रमालयम के लिए 5,000 रुपये। (XIII)

(29) आंध्र में कोटारम के लिए 3,000 रुपये। (XIV)

(30) आंध्र प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को सामान्य स्वदेशी कार्य के लिए 15,000 रुपये। (XV)

(31) मसुलीपट्टम जिला कांग्रेस कमेटी को 3,000 रुपये। (XVI)

(32) उत्कल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को सूत तथा खद्दर के लिए 30,000 रुपये। (XVII)

(33) थाना जिले में उन ताड़ी बनाने वालों की सहायतार्थ जो अपना पेशा छोड़ देना चाहते थे, 3,000 रुपये। (XVIII)

(34) नागपुर तिलक विद्यालय को 5,000 रुपये। (XIX)

(35) नागपुर असहयोगाश्रम को 5,000 रुपये। (XX)

(36) अजमेर प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को खद्दर तथा हथकरघा सूत का उत्पादन बढ़ाने के लिए 25,000 रुपये। (XXI)

(37) यदि संभव हो तो गुजरात के लिए 18,00,000 रुपये तथा कम से कम 10,00,000 रुपये हर हालत में। (XXII)

(38) श्री सी. राजगोपालाचारी को मालाबार में पीड़ितों की सहायतार्थ 40,000 रुपये। (XXIII)

(V) वर्किंग कमेटी द्वारा अनुमोदित धनराशि।

दिनांक 22 व 23 नवंबर 1921 को बंबई में हुई अपनी बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

"(39) जाट एंग्लो संस्कृत हाईस्कूल, रोहतक, पंजाब को 10,000 रुपये। (III)

(40) बीजापुर जिला कांग्रेस कमेटी को अकाल राहत तथा स्वदेशी कार्य के लिए 25,000 रुपये। (III)

(41) मद्रास की मिलों से निकाले गए श्रमिकों के सहायतार्थ स्वदेशी कार्य प्रदान करने के लिए सहायतार्थ 30,000 रुपये। (III)

(ख) वर्ष 1922 में स्वीकृत अनुदान

(I) 17 जनवरी 1922 को बंबई में आयोजित बैठक में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत किए गए अनुदान –

"(42) संयुक्त प्रांत प्रांतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा 50,000 रुपये के लिए आवेदन पत्र पहले ही स्वीकृत किया गया और स्वदेशी कार्य के लिए 2 लाख रुपये की और अधिक अनुदान राशि के लिए आवेदन अंतिम निपटान के लिए महात्मा गांधी के पास भेजा जाए। (IV)

(43) 50,000 रुपये की स्वीकृत अनुदान राशि में से 25,000 रुपये प्रेषित करने हेतु असम प्रांतीय कांग्रेस कमेटी का आवेदन पत्र अंतिम निपटान के लिए महात्मा गांधी के पास भेजा जाए। (VI)"

(II) 26 फरवरी 1922 को दिल्ली में आयोजित बैठक में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

"(44) महात्मा गांधी द्वारा तैयार विदेशी योजना पर प्रारंभिक व्यय के लिए 10,000 रुपये। (I)

(45) चालू वर्ष के दौरान कार्यालय खर्च के लिए 14,000 रुपये। (IV)"

(III) 17 व 18 मार्च 1922 को अहमदाबाद में हुई बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

"(46) खद्दर का बड़े पैमाने पर उत्पादन करने तथा उसके विपणन की व्यवस्था करने के लिए 3,00,000 रुपये। (I)

(47) संयुक्त प्रांत, प्रांतीय कमेटी के लिए पहले से स्वीकृत 50,000 रुपये में से 10,000 रुपये दिए गए। (IX)

(48) केरल प्रांतीय कमेटी को कांग्रेस का सामान्य काम करने के लिए 5,000 रुपये जो मालाबार में सहायतार्थ स्वीकृत, 48,000 रुपये की धनराशि में से कम किए जाएंगे तथा 84,000 रुपये में से और 20,000 रुपये राहत कार्य के लिए भेजे जाएं। (X)

(49) रोहतक एंग्लो वर्नाक्युलर स्कूल को 10,000 रुपये। (XI)

(50) आंध्र प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के प्रतिनिधि श्री टी. प्रकाशम को सुपुर्द किए गए जिलों (सेडेड डिस्ट्रिक्ट्स) में अकाल राहत कार्य के

लिए 25,000 रुपये की राशि में से 10,000 रुपये दिए जाएं। (XII)"

(IV) 20, 21 और 22 अप्रैल 1922 को कलकत्ता में आयोजित बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

"(51) गुजरात में डिप्रेस्ड क्लासेस में शिक्षा प्रसार के लिए अंत्यज कार्यालय अहमदाबाद को 5,000 रुपये। (V)

(52) हैदराबाद दक्कन के मौलवी बदरुल हसन को मुख्यतया खद्दर कार्य के लिए 40,000 रुपये ऋण के रूप में। (VI)

(53) नेशनलिस्ट जनरल लिमिटेड को "इंडेपेंडेंट" पत्र पुनः आरंभ करने तथा उसे कांग्रेस कार्यक्रम के अनुरूप चलाने के लिए 25,000 रुपये बशर्ते कि ऋण दी गई राशि के बराबर कंपनी की संपत्तियों पर स्वामित्व रहे। (XIX)

(V) 12, 13, 14 व 15 मई 1922 को बंबई में आयोजित बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा निम्नलिखित अनुदान स्वीकृत किए गए –

"(54) अंत्यज कार्यालय अहमदाबाद को पहले ही स्वीकृत 5,000 रुपये के अतिरिक्त 17,381 रुपये। (X)

(55) प्रस्ताव पारित किया जाता है कि शाहदरा डिप्रेस्ड क्लासेज सेटलमेंट के लिए 1,25,000 रुपये के पंजाब प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के आवेदन पत्र पर तब तक विचार नहीं किया जाएगा जब तक कि वर्किंग कमेटी इस बात से संतुष्ट न हो जाए कि योजना आरंभ करने के लिए स्थानीय साधनों से पर्याप्त मात्रा में धन एकत्र कर लिया गया है और इस प्रकार आरंभ की गई योजना भली प्रकार कार्य कर रही है। (XI)

(56) प्रस्ताव पारित किया जाता है कि अहमदनगर डीप्रेस्ड क्लासेस होम के लिए 5,000 रुपये निर्धारित किए जाएं और कि इस धन को देने की तब सिफारिशें की जाएं जब कि वर्किंग कमेटी इस बात से संतुष्ट हो जाए कि होम ने स्थानीय साधनों द्वारा सुचारू रूप से कार्य करना आरंभ कर दिया है। (XII)

(57) मद्रास में डीप्रेस्ड क्लासेस कार्य के लिए 10,000 रुपये निर्धारित किए जाएं जैसा कि श्री निवास आयंगर ने आवेदन किया है और वह राशि तब दी जाये जब आवेदन पत्र प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के माध्यम से इस कमेटी को भेजा जाए और कमेटी इस बात से संतुष्ट हो जाए कि उतनी ही धनराशि स्थानीय संसाधनों से जुटा

ली गई है। (XIII)

(58) श्री टी. प्रकाशम को आंध्र में डीप्रेस्ड क्लासेस कार्य के लिए 7,000 रुपये। (XXIV)"

(VI) 6, 7 तथा 10 जून 1922 को लखनऊ में आयोजित बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

"(59) सिंध प्रांत में खद्दर कार्य के लिए 50,000 रुपये। (VII)

(60) श्री सी. राजगोपालाचारी को आकस्मिक व्यय के लिए 1,000 रुपये की अग्रिम राशि दी जाए। (VIII)"

(VII) 30 जून 1922 को दिल्ली में आयोजित बैठक में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

(61) बंगाल से असम में भेजे गए 6 कार्यकर्ताओं को सेवा कार्य के लिए स्वीकृत अगले तीन महीनों के लिए 180 रुपये प्रति माह व्यय। (VI)

(VIII) 18 और 19 जुलाई, 1922 को बंबई में आयोजित बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

(62) असम के लिए 5,000 रुपये। (I)

(63) आंध्र तथा उत्कल में खद्दर कार्य के लिए प्रत्येक प्रदेश को 1,50,000 रुपये के ऋण। (X)

(IX) 18, 19 व 25 नवंबर 1922 को कलकत्ता में आयोजित बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

(64) गुजरात को अनुदान के रूप में 3,00,000 रुपये। (XII)

(65) सविनय अवज्ञा आंदोलन जांच समिति के खर्चे के लिए 16,000 रुपये। (XXI)

(ग) वर्ष 1923 में स्वीकृत अनुदान

(I) 1 व 2 जनवरी 1923 को गया में आयोजित बैठक में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

(66) अस्पृश्यता निवारण और शराबबंदी तथा अंतर्जातीय एकता को बढ़ावा देने के लिए इंडियन नेशनल सोशल कांफ्रेंस के जनरल सेक्रेटरी को 3,000 रुपये। (XXII)

(67) इलाहाबाद से प्रकाशित हिंदी दैनिक "नवयुग" को इस शर्त

पर सहायतार्थ 1,200 रुपये कि वह गया में कांग्रेस द्वारा पारित प्रस्ताव के अनुरूप प्रचार करेगा। (XXXI)

(68) कांग्रेस पब्लिसिटी ब्यूरो को 10,000 रुपये। (XXXII)

(II) 26 व 28 फरवरी 1923 को इलाहाबाद में आयोजित बैठक में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

(69) तमिल देश प्रांतीय कांग्रेस कमेटी द्वारा दलित वर्ग कार्य के लिए 10,000 रुपये। (VI)

(70) पंडित जवाहरलाल नेहरू के प्रार्थना पत्र पर संयुक्त प्रांत प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 15,000 रुपये का ऋण। (X)

(71) श्री सी. राजगोपालचारी के प्रार्थनापत्र पर तमिल देश प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 15,000 रुपये का ऋण। (X)

(72) बनारस में गांधी आश्रम के लिए संयुक्त प्रांत प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 5,000 रुपये। (XI)

(III) 23, 24, 25, 26, 27, 28 मई 1923 के दौरान बंबई में आयोजित बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

(73) गुजरात प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को देश के विभिन्न प्रांतों से खादी के फालतू भंडार को उठाने के लिए पांच लाख रुपये का ऋण। (V)

(74) बंगाल प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को खादी कार्य करने के लिए 50,000 रुपये का ऋण। (VIII)

(75) बिहार राष्ट्रीय विद्यालय को 15,000 रुपये। (XII)

(76) सत्यवादी विद्यालय को 10,000 रुपये। (XIII)

(77) स्वावलम्बन राष्ट्रीय पाठशाला को 5,000 रुपये। (XIV)

(78) कांग्रेस लेबर कमेटी द्वारा निश्चित किए जाने वाले कार्यों के निपटान के लिए डा. साठे को 5,000 रुपये। (XXXIV)

(IV) 7, 8, 11 व 12 जुलाई 1923 को नागपुर में आयोजित बैठकों में वर्किंग कमेटी द्वारा स्वीकृत अनुदान –

(79) मद्रास प्रेसीडेंसी में हिंदुस्तानी सिखाने के लिए हिंदी साहित्य सम्मेलन के सेक्रेटरी श्री बृजराज को 20,000 रुपये। (IX)

(80) नागपुर में विशेष रूप से सत्याग्रह के सहायतार्थ कांग्रेस के

सामान्य प्रयोजनों के लिए व्यय करने हेतु मध्यप्रान्त प्रांतीय कांग्रेस कमेटी को 2,000 रुपये। (XI)

कांग्रेस के उपरोक्त मदवार खर्च से पाठकगण कांग्रेस द्वारा जनता के धन के सही व्यय अथवा अपव्यय का ठीक अंदाजा नहीं लगा पाएंगे। क्या वह कार्य किसी सिद्धांत द्वारा विनियमित किया गया था? क्या वह धनराशि प्रांतों की आवश्यकता के अनुसार आवंटित की गई थी? निम्नलिखित तालिका पर विचार करें –

तालिका-2

प्रांतों का नाम	*स्वीकृत धनराशि*	*जनसंख्या***	*कुल जनसंख्या की तुलना में जनसंख्या के अनुपात के आधार पर देय अनुदान की प्रतिशतता*	*वास्तव में दी गई धनराशि की प्रतिशतता*
*सामान्य				
अखिल भारत	4,94,000	227,238,000	–	10
बम्बई	26,90,381	16,012,623	8	54.3
मद्रास	5,05,000	42,319,000	18	10.1
बिहार और				
उड़ीसा	5,65,000	33,820,000	15	11.3
यू.पी.	3,11,200	45,376,000	20	6.26
सिंध	1,13,000	3,279,377	–	2.2
असम	51,080	6,735,000	3	1.1
बंगाल	50,000	46,241,000	20	1.0
मध्य प्रान्त	47,000	12,780,000	5	0.95
पंजाब	45,000	20,675,000	9	0.9
हैदराबाद	40,000	..	–	0.81
अजमेर	25,000	–	–	0.5
विदेश	14,000	–	–	0.28
कुल योग	49,50,666			

* बर्मा तथा देशी रियासतों के अलावा

** ये आंकड़े साइमन कमीशन की रिपोर्ट खंड 1 से लिए गए हैं और वर्ष 1921 के संदर्भ में हैं।

क्या वह धनराशि सांस्कृतिक इकाइयों और उनके सापेक्ष के आधार पर वितरित की गई थी? कृपया निम्नलिखित तालिका के आंकड़ों से तुलना करें –

तालिका-3

भाषायी क्षेत्र नाम	*कुल अनुदान* रुपये	*अनुदान की राशि* रुपये	*प्रांत को दी गई कुल अनुदान धनराशि की प्रतिशतता*	*प्रांत की जनसंख्या की प्रतिशतता उस प्रांत का आकार देखते हुए*
बंबई प्रेसिडेंसी	26,90,381	–	–	100
गुजरात	–	26,22,381	97.4	18
महाराष्ट्र	–	43,000	1.6	69
कर्नाटक	–	25,000	0.93	13
मध्य प्रान्त	47,000	–	–	100
मराठी जिले	–	10,000	21.2	45
हिंदुस्तानी जिले	–	37,000	78.7	55
मद्रास प्रेसीडेंसी	5,05,000	–	–	100
तमिलनाडु	–	1,03,000	20.4	38
आंध्र	–	3,02,000	60.0	52
केरल	–	1,00,000	19.6	10
बिहार और उड़ीसा	5,65,000	–	–	100
बिहार	–	5,15,000	91.0	73
उड़ीसा	–	50,000	0.9	27

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि उपरोक्त धन का वितरण किसी बुद्धिमत्तापूर्ण सिद्धांत के आधार पर नहीं किया गया था। अनुदान और जनसंख्या के बीच कोई तालमेल नहीं था और न ही सांस्कृतिक इकाइयों तथा अनुदानों में। बम्बई प्रांत की आबादी डेढ़ करोड़ थी उसे 27 लाख रुपये दिए गए जबकि यू.पी. और मद्रास, जिनकी प्रत्येक की आबादी चार–चार करोड़ थी, को पांच–पांच लाख से अधिक नहीं मिले। सांस्कृतिक इकाइयों के अनुपात में अनुदानों पर विचार करें। बम्बई प्रेसिडेंसी को ही लें। इसमें तीन सांस्कृतिक इकाइया महाराष्ट्र, गुजरात और कर्नाटक हैं। बम्बई प्रेसीडेंसी को दिए गए 26 लाख 90 हजार रुपये में से 18

प्रतिशत की जनसंख्या वाले गुजरात को 26 लाख 22 हजार अर्थात् 97.4 प्रतिशत और महाराष्ट्र को जिसकी आबादी 69 प्रतिशत है केवल 43 हजार रुपये मिले अर्थात केवल 1.6 प्रतिशत और कर्नाटक को जिसकी आबादी 13 प्रतिशत है केवल 25 हजार रुपये अर्थात कुल अनुदान का 0.9 प्रतिशत मिला। मध्य प्रान्त में 47 हजार रुपये के अनुदान में से 55 प्रतिशत आबादी वाले हिंदुस्तानी जिलों को 37 हजार रुपये अर्थात् 78.7 प्रतिशत जबकि 45 प्रतिशत आबादी वाले मराठी भाषी जिलों को 10 हजार रुपये अर्थात् 21.2 प्रतिशत मिला। बिहार और उड़ीसा में 5 लाख 65 हजार रुपये के कुल अनुदान में से बिहार को मिला 5 लाख 15 हजार अर्थात 91 प्रतिशत जबकि उसकी आबादी 73 प्रतिशत है और उड़ीसा को केवल 50 हजार रुपये अर्थात् 9 प्रतिशत जबकि उसकी आबादी 27 प्रतिशत है। अनुदानों के वितरण में इसी प्रकार की असमानताएं मद्रास प्रेसीडेंसी के तीनों क्षेत्रों में मिलती है।

निधियों का बंटवारा केवल सिद्धांतहीन ही नहीं था वरन निर्लज्ज पक्षपात भी था। तीन वर्षों में वितरित कुल 49.5 लाख रुपये के अनुदान में से श्री गांधी के प्रांत गुजरात को 26.25 लाख रुपये और शेष भारत को 23 लाख रुपये दिए गए। इसका अर्थ यह हुआ कि 29.50 लाख की आबादी वाले प्रदेश को 26.25 लाख तथा शेष भारत को, जिसकी आबादी 23 करोड़ थी, 23 लाख रुपये दिए गए।

इस पर न कोई प्रतिबंध था, न कोई नियंत्रण। यह जानने की कोई जरूरत नहीं समझी गई कि अनुदान किस उद्देश्य के लिए स्वीकृत किया गया और यह धन किसे दिया गया। कृपया निम्नलिखित तालिका पर ध्यान दें –

तालिका-4

किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए विनियोजन किए बिना धन आबंटित किया गया किंतु व्यक्ति विशेष के नियंत्रणाधीन रखा गया।		*किसी विशिष्ट उद्देश्य के लिए विनियोजन किए बिना और गारंटी के बिना धन का आबंटन किया गया।*	
	रुपये		रुपये
मौलवी बदरूल हसन –	40,000	गुजरात –	3,00,000
श्री टी. प्रकाशम –	7,000	गुजरात –	18,00,000
सी. राजगोपालाचारी –	1,000	गुजरात –	3,00,000
बरजाज –	20,000		
श्री गांधी –	1,00,000		

यह पता नहीं है कि पाने वालों के पास रखी गई इतनी बड़ी धनराशि का क्या कोई लेखाजोखा रखा गया था अथवा जिन्होंने इतना अधिक धन प्राप्त किया उन्होंने वह धन अनजान या बेनामी प्राप्तकर्ता को दे दिया। यदि इन प्रश्नों का संतोषजनक उत्तर मिल भी जाए तो भी इस बात में कोई संदेह नहीं है कि जिस तरह धन की बरबादी और अपव्यय हुआ उसका पता लगाना बहुत कठिन है। यह बड़े दुख की बात है कि इसमें जनता के धन की कांग्रेस के लुटेरे नेताओं ने मनमाने ढंग से बिना किसी चिंता के जो विवेकहीन लूट मचाई वह केवल अपने अपने निर्वाचन-क्षेत्रों में अपनी अपनी साख बनाने के लिए की गई थी।

कांग्रेसियों द्वारा शेष एक करोड़ तीस लाख रुपये की राशि की सुनियोजित और सुसंगठित ढंग से की गई लूट की कहानी का पीछा करना अनावश्यक है। यह धनराशि उस लूट के बाद के वर्षों में खर्च होती रही। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि जनता के धन की इस प्रकार की मनमानी और सुनियोजित लूट पहले कभी नहीं हुई थी। ध्यान देने योग्य बात्त यह है कि उन्न अनुदानों की सूची से यह ज्ञात नहीं होता है कि उसमें अस्पृश्योत्थान कहीं दिखाई पड़ता हो तो स्वराज फंड से अग्रिम धनराशि निकालने का एक सार्थक उद्देश्य है। कांग्रेस से आशा की जाती थी कि वह स्वराज फंड से अस्पृश्योत्थान पर प्राथमिकता के तौर पर धन खर्च करेगी। जबकि हजारों रुपये उन तमाम वकीलों के भरणपोषण पर बिना जांच-पड़ताल किए खर्च किए गए, जिनके बारे में बताया जाता है कि उन्होंने राष्ट्र-हित में अपनी वकालत छोड़ी थी। बिना कोई जांच किए उन ताड़ी निकालने वालों पर हजारों रुपये खर्च किए गए जिन्होंने अपना पेशा छोड़ दिया था और जनता के धन पर अपना जीवन निर्वाह कर रहे थे तथा अन्य इसी प्रकार की वाहियात योजनाएं चलाई जा रही थीं जो स्वयं में बेईमानी की निशानी थीं। लेकिन कांग्रेस ने यह प्रस्ताव तो किया कि अस्पृश्योत्थान के लिए अलग फंड बनाया जाए परन्तु इस दिशा में कुछ किया नही। उस अलग फंड का क्या परिणाम निकला? अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी ने इस मद के लिए पांच लाख रुपये निर्धारित किए। वर्किंग कमेटी ने यह महसूस किया कि अस्पृश्योत्थान जैसे महत्वहीन तथा अलाभप्रद कार्य के लिए यह धनराशि बहुत अधिक है और उसमें कटौती कर उसे दो लाख रुपये कर दिया। छह करोड़ अस्पृश्यों के लिए दो लाख रुपये!!

अस्पृश्योत्थान के लिए कांग्रेस ने इतनी अधिक धनराशि निर्धारित की। उस धनराशि में से इस कार्य पर वास्तव में कितना व्यय किया गया? यह निम्नलिखित तालिका से स्पष्ट है;

तालिका-5

प्रयोजन	*स्वीकृत धनराशि (रुपये)*
राजमुन्द्री डीप्रेस्ट क्लास मिशन	1,000
अन्त्यज कार्यालय अहमदाबाद	5,000
अन्त्यज कार्यालय अहमदाबाद	17,381
आंध्र में डीप्रेस्ड क्लासेस वर्क्स	7,000
नेशनल सोशल कांफ्रेंस फार डीप्रेस्ड क्लासेस वर्क्स	3,000
तमिल जिला प्रांतीय कांग्रेस कमेटी फार डीप्रेस्ड क्लासेस वर्क्स	10,000
योग	43,381 रुपये

संक्षेप में कांग्रेस को रचनात्मक बारदोली कार्यक्रम जिसमें अस्पृश्योत्थान को इतना अधिक महत्व प्राप्त हुआ, पर व्यय करने के लिए 49.5 लाख रुपये में से केवल 43,381 रुपये ही मिल पाए। क्या छलकपट का इससे बढ़ कर भी और कोई उदाहरण हो सकता है? कांग्रेस ने अस्पृश्योत्थान का जो ढिंढोरा पीटा था वह अस्पृश्य प्रेम कहां गया? कांग्रेस की उस अस्पृश्योत्थान की इच्छा का क्या हुआ? क्या यह कहना गलत होगा कि बारदोली प्रस्ताव अस्पृश्यों के साथ बिल्कुल धोखा था?

कोई भी यह प्रश्न उठा सकता है। कांग्रेस शिविर में अस्पृश्यों के प्रति जब यह सब घटित हो रहा था उस समय श्री गांधी कहां थे? यह प्रश्न बहुत ही प्रासंगिक है, क्योंकि वह श्री गांधी ही थे जिन्होंने कांग्रेस में पदार्पण करते ही स्वराज प्राप्ति तथा अस्पृश्यता उन्मूलन के बीच गहन संबंध पर जोर दिया था। श्री गांधी ने अपने 3 नवंबर 1921 के 'यंग इंडिया' में लिखा था –

> "अस्पृश्यता को कांग्रेस के कार्यक्रमों में दूसरे स्तर का स्थान नहीं दिया जा सकता। उस कलंक को मिटाए बिना स्वराज शब्द का कोई अर्थ नहीं है। कांग्रेस कार्यकर्ताओं को चाहिए कि उस कलंक को मिटाने के लिए सामाजिक बहिष्कार तथा जनता के इस अभिशाप को अपने कार्यक्रम में शामिल करें। मैं स्वराज प्राप्ति की प्रक्रिया में अस्पृश्यता निवारण को अत्यंत शक्तिशाली घटक मानता हूं।"

इस तरह गांधी अस्पृश्यों को प्रेरित कर रहे थे कि वे स्वराज के विरुद्ध अंग्रेजों से हाथ न मिलाएं और इसके विपरीत वे स्वराज प्राप्ति के लिए हिंदुओं के साथ

कंधे से कंधा मिलाकर चलें। 20 अक्तूबर 1920 के "यंग इंडिया" में प्रकाशित श्री गांधी ने अस्पृश्यों को इस प्रकार संबोधित किया –

> "देश के पददलितों के सामने तीन विकल्प हैं। वे अपनी जल्दबाजी में गुलाम बनाने वाली सरकार की सहायता कर सकते हैं। ऐसा करने से उनका उसी प्रकार पतन होगा जैसे कोई वस्तु कड़ाही से निकाल कर आग में गिराई जाए। आज अस्पृश्य गुलामों के गुलाम हैं। सरकार की सहायता प्राप्त करने के बाद वे अपने ही लोगों को दबाने के लिए सरकार के साधन बनेंगे। कलंक को धोने के बजाए वे स्वयं कलंकी बन जाएंगे। मुसलमानों ने इस दिशा में कुछ प्रयत्न किया परंतु असफल रहे। उन्हें महसूस हुआ कि वे पहले की अपेक्षा कहीं अधिक शोचनीय स्थिति में हैं। सिखों ने भी अज्ञानता में ऐसा ही किया और वे भी असफल रहे। आज भारत में सिखों से अधिक असंतुष्ट कौम और कोई नहीं है। इसलिए सरकारी सहायता इस समस्या का कोई हल नहीं है।"
>
> दूसरा विकल्प हिंदू धर्म का त्याग और इस्लाम अथवा ईसाई धर्म को बड़े पैमाने पर ग्रहण करना है। यदि सांसारिक सुखों के लिए धर्म–परिवर्तन उचित माना जाए तो इसके लिए मैं बिना हिचकिचाहट इसकी सलाह दूंगा परंतु धर्म हृदय से मानने की बात है। भौतिक असुविधा किसी को अपना धर्म त्यागने के लिए बाध्य नहीं कर सकती। यदि पंचम वर्ण के साथ अमानुषिक बर्ताव करना हिंदू धर्म का अभिन्न अंग है तो उस हिंदू धर्म को त्यागना पंचम वर्ण तथा मेरे जैसे उन सभी लोगों का परम कर्तव्य होगा जो धर्म को अंधविश्वास नहीं बनाएंगे और इसके पवित्र नाम पर हर बुराई की अनदेखी नहीं करेंगे। परंतु मुझे विश्वास है कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म का अंग नहीं है। अस्पृश्यता एक कलंक है जिसका निराकरण सभी संभव तरीकों से किया जाना चाहिए। हिंदू धर्म–सुधारकों की संख्या काफी अधिक है जो हिंदू धर्म के इस कलंक के धब्बे को मिटाने के लिए कटिबद्ध हैं। अतः मैं समझता हू कि धर्म–परिवर्तन इसका हल नहीं है।
>
> अंत में स्वसहायता तथा स्वावलंबन है जिसके लिए सवर्ण हिंदुओं को अपने हृदय से सहायता करनी चाहिए न कि उसे एक कर्त्तव्य मान कर। इसके बाद असहयोग की बात आती है। इसलिए हिंदू धर्म के विरुद्ध आंदोलन छेड़कर पंचम वर्ण के लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए सवर्ण हिंदुओं से समस्त संबंध तोड़ सकते हैं। परंतु इनके लिए सुसंगठित बुद्धिमत्तापूर्ण प्रयत्नों की आवश्यकता है। जहां

> तक मैं समझता हूं, पंचम वर्ण के लोगों के पास ऐसा कोई नेता नहीं है जो असहयोग आंदोलन के माध्यम से उन्हें विजय दिला सके।
>
> इसलिए पंचम वर्ण के लोगों के लिए यही बेहतर है कि वे वर्तमान सरकार की गुलामी की जंजीरें उखाड़ फेंकने में राष्ट्रीय आंदोलन में खुले दिल से साथ दें। पंचम वर्ण के लोगों को देखना चाहिए कि वर्तमान बुरी सरकार के विरुद्ध असहयोग करने के लिए भारत के अन्य वर्गों से पूरा सहयोग करें।"

उसी लेख में श्री गांधी ने हिंदुओं से कहा –

> "हिंदुओं को समझ लेना चाहिए कि यदि वे सरकार के विरुद्ध पूर्णतः सफल असहयोग करना चाहते हैं तो उन्हें पंचम वर्ण के लोगों से वैसा ही सदव्यवहार करना चाहिए जैसा कि वे मुसलमानों के साथ करते हैं।"

श्री गांधी ने 29 दिसंबर 1920 के "यंग इंडिया" में वही चेतावनी फिर दोहराते हुए कहा –

> "सरकार से असहयोग का अर्थ है शासितों से सहयोग और यदि हिंदू अस्पृश्यता के पाप को नहीं मिटाएंगे तो उन्हें सैकड़ों वर्ष बीत जाने पर भी स्वराज नहीं मिलेगा। अस्पृश्यता का पाप मिटाए बिना स्वराज उतना ही दुर्लभ है जितना कि हिंदू–मुस्लिम एकता के बिना है।"

अतः श्री गांधी से यह अपेक्षा की जाती है कि वह यह सुनिश्चित करें कि बारदोली प्रस्ताव में निहित अस्पृश्योत्थान की कांग्रेस की नीति कार्यान्वित की जाए। वास्तविकता यह है कि श्री गांधी ने इसे श्रद्धा की भावना से करने के बजाए अस्पृश्योत्थान के कार्यक्रम में लेशमात्र भी रुचि नहीं दिखाई। यदि उनकी नीयत नेक होती तो वह दूसरी कमेटी नियुक्त करते। यदि उनकी नीयत नेक होती तो कांग्रेसियों द्वारा की जा रही तिलक स्वराज फंड की संगठित लूट से इस फंड को बचाते और अस्पृश्यों को लाभ पहुंचाने के लिए इस धनराशि को सुरक्षित रख सकते थे। आश्चर्य की बात है कि श्री गांधी ऐसी चुप्पी साधे रहे जैसे कि उस समस्या से उनका कोई संबंध ही न हो। किसी प्रकार का पश्चाताप करने के बजाए श्री गांधी ने अस्पृश्यों की समस्या के प्रति उदासीनता बरतने को उचित ठहराते हुए जिन तर्कों का सहारा लिया उन पर कोई विश्वास नहीं करेगा। ये तर्क अक्तूबर 20, 1920 के "यंग इंडिया" में उपलब्ध हैं –

> "अंग्रेजों से अपना कलंक धोने के लिए कहने से पहले क्या स्वयं हमें अपना कलंक नहीं धोना चाहिए? यह प्रश्न समुचित रूप से उठाया जा सकता है। यदि कोई गुलाम अपनी गुलामी का फंदा काटे बिना

> अपने अधीन व्यक्ति को आजाद कर सकता तो आज मैं ऐसा ही कर देता किंतु यह बिल्कुल असंभव बात है। एक गुलाम को तो सही काम करने की भी आजादी नहीं होती है।"

श्री गांधी ने अपनी बात समाप्त करते हुए कहा –

> "अब यह चक्र चल गया है और पंचम वर्ण के लोग इसमें भाग लें अथवा न लें, शेष हिंदू समाज अपनी ही उन्नति में बाधा पहुंचाए बिना उनकी उपेक्षा नहीं कर सकता। इसलिए पंचम वर्ण की समस्या मुझे उतनी ही प्रिय है जितना मुझे अपना जीवन।
>
> "मैं अपना सारा ध्यान राष्ट्रीय असहयोग आंदोलन पर देकर संतुष्ट हूं। अतः मैं इस बात से आश्वस्त हूं क्योंकि समग्र जनता में सभी छोटे–बड़े वर्ग आ जाते हैं।"

इस प्रकार कांग्रेस ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया के दूसरे अध्याय का अंत हुआ। इस दुःखद घटना की खेदजनक बात यह है कि इससे यह तथ्य सामने आ गया कि श्री गांधी शाब्दिक इंद्रजाल में फंसाने की कला खूब जानते थे। इस बात पर सन्देह हो सकता है कि क्या श्री गांधी धोखे की दुनिया में रहना पसंद करते हैं परंतु इस बात में कोई सन्देह नहीं कि वह कुछ ऐसे भ्रम पैदा करना पसन्द करते हैं जिन्हें वह अपने प्रिय प्रस्ताव के पक्ष में तर्कों के रूप में प्रयोग कर सकें। श्री गांधी ने अस्पृश्यों को उठाने का व्यक्तिगत दायित्व अपने ऊपर न लेने का जो कारण बतलाया है वह उनकी उसी अशोभनीय आदत का श्रेष्ठ प्रमाण है। अस्पृश्यों से यह कहना कि वे हिंदुओं के विरुद्ध कुछ न करें क्योंकि वे उनके सगे संबंधियों के विरुद्ध हो जाएंगे, यह बात तो मानने वाली है परंतु यह मान लेना कि हिंदु अस्पृश्यों को अपने सगे–संबधी समझते हैं एक दम भ्रामक है। वे अस्पृश्यों के लिए और इन्द्रजाल भी फैलाते हैं। हिंदुओं से यह कहना कि वे अस्पृश्यता निवारण में लग जाएं, अच्छी सलाह है किंतु यह मान कर चलना कि हिंदुओं ने अस्पृश्यों के साथ जो अमानुषिक अत्याचार किए हैं उससे उन्हें इतनी अधिक शर्म महसूस हो रही है कि उन्हें अस्पृश्यता का उन्मूलन करना ही होगा और हिंदू सुधारकों का एक दल केवल अस्पृश्यता निवारण के लिए ही कटिबद्ध है केवल अस्पृश्यों को मूर्ख बनाने के लिए भ्रम फैलाने वाली बात है और संसार को भी बेवकूफ बनाना है। यह दलील तर्कसंगत है कि समष्टि के हित में व्यष्टि का हित भी निहित है और इसलिए हमें व्यष्टि के हित तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए। परंतु यह मानना कि अस्पृश्य समुदाय जैसा भाग समग्र हिंदू समाज का एक अंग है अपने आपको धोखा देना ही होगा। यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि श्री गांधी द्वारा फैलाए गए इस भ्रमजाल के कारण अस्पृश्यो तथा देश को कितनी दुखांत घटनाओं का सामना करना पड़ा है।

अध्याय : 3

तुच्छ चालें

कांग्रेस द्वारा अपने अधिकार त्यागने से इंकार

I

भारत सरकार के अधिनियम, 1919 में एक प्रावधान के अन्तर्गत यह अनिवार्य कर दिया गया था कि ब्रिटिश सरकार 10 वर्ष की अवधि समाप्त होने पर, संविधान की कार्यप्रणाली की जांच करने के लिए, एक रायल कमीशन नियुक्त करेगी, जो संविधान में आवश्यक समझे जाने वाले संशोधनों के लिए भी अपनी रिपोर्ट देगा। इस प्रकार 1928 में सर जॉन साईमन की अध्यक्षता में रायल कमीशन नियुक्त किया गया। भारतीयों को आशा थी कि कमीशन में उन्हें भी सम्मिलित किया जाएगा परंतु लार्ड बर्किनहेड ने, जो उस समय भारत के राज्य सचिव थे, कमीशन में भारतीयों के सम्मिलित किए जाने का विरोध किया और उसे पूर्णतया संसदीय आयोग (पार्लियामेंटरी कमीशन) बनाने पर बल दिया। उस पर कांग्रेस तथा उदारपंथियों ने इसे अपना अपमान समझकर उसका विरोध किया। उन्होंने एक बड़ा आंदोलन चला कर कमीशन का बहिष्कार किया। विरोध की उस भावना को शांत करने के लिए ब्रिटिश सरकार को यह घोषणा करनी पड़ी कि कमीशन का कार्य पूरा हो जाने के बाद भारत के लिए संविधान लागू करने से पहले भारतीय प्रतिनिधियों को विचार-विमर्श के लिए बुलाया जाएगा। इस घोषणा के अनुसार संसद के प्रतिनिधियों तथा ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधियों के साथ विचार-विमर्श करने के लिए लंदन में एक गोलमेज सम्मेलन में भारत के प्रतिनिधियों को बुलाया गया।

12 नवंबर 1930 को स्वर्गीय सम्राट जार्ज पंचम ने भारतीय गोलमेज सम्मेलन का औपचारिक रूप से उद्घाटन किया। उस गोलमेज सम्मेलन का महत्व इस बात से है कि इस में ब्रिटिश सरकार ने भारत के लिए संविधान निर्माण में भारतीयों से परामर्श करने के लिए उनके अधिकार को मान्यता दी। अस्पृश्यों के लिए इतिहास में यह बात महत्वपूर्ण घटना थी। यह पहला अवसर था, जब

अस्पृश्यों को इसमें अपने दो प्रतिनिधि अलग से भेजने की अनुमति मिली, जिनमें एक मैं तथा दूसरे दीवान बहादुर आर. श्रीनिवासन थे। इसका अर्थ यह था कि अस्पृश्यों का हिंदुओं से अलग अस्तित्व ही नहीं है, बल्कि वे इतना महत्व रखते हैं कि भारत के लिए संविधान बनाने में भी उन्हें अपनी राय देने का अधिकार है।

इस गोलमेज सम्मेलन का कार्य नौ समितियों में विभाजित था। उसमें से एक अल्पसंख्यक समिति (माइनारिटिज कमेटी) थी, जिसे सांप्रदायिक प्रश्नों का हल निकालने का अत्यंत कठिन कार्य सौंपा गया था। महत्वपूर्ण समिति होने के कारण, तत्कालीन प्रधानमंत्री स्वर्गीय रेमसे मैक्डोनाल्ड स्वयं उसके अध्यक्ष बने। अल्पसंख्यक समिति के सभी कार्य अस्पृश्यों के लिए बड़ा महत्व रखते हैं, क्योंकि उसमें कांग्रेस तथा अस्पृश्यों के मध्य जो बात घटित हुई और दोनों के बीच जो कटुता आई, वह समिति के कार्यवाही वृत्तान्त से प्राप्त हो जाएगी।

जब गोलमेज सम्मेलन की बैठक हुई, तब अस्पृश्यों की मांगों के अतिरिक्त अन्य सभी संप्रदायों की राजनीतिक मांगें सबको ज्ञात थीं। वास्तव में 1919 के संविधान में अस्पृश्यों को सांविधिक अल्पसंख्यक माना गया था और उनकी मांगों के लिए संरक्षण एवं सुरक्षा का प्रावधान किया गया था। अब उन प्रावधानों को और विस्तृत करने तथा उनकी रूपरेखा में परिवर्तन करने का प्रश्न था। जहां तक दलित वर्गों (डिप्रेस्ड क्लासेस) का प्रश्न था, उनकी स्थिति बिल्कुल भिन्न थी। मान्टेग्यू' चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में, जिस पर 1919 का भारत सरकार का अधिनियम आधारित था, बिल्कुल स्पष्ट रूप से कहा गया था कि संविधान में अस्पृश्यों की सुरक्षा का प्रावधान अवश्य किया जाए। परंतु दुर्भाग्यवश जब संविधान का मसविदा तैयार किया गया तब संविधान में भारत सरकार को विधानसभाओं में नामजदगी से नाममात्र का प्रतिनिधित्व देने में बड़ी कठिनाई हुई। पहली बात यह थी कि हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यों पर, जो अमानवीय अत्याचार हो रहे थे, उनसे उनकी सुरक्षा करने के लिए प्रावधान करना नितांत आवश्यक था। गोलमेज सम्मेलन की अल्पसंख्यक समिति में एक ज्ञापन देकर मैंने उस कार्य को पूरा किया। उनकी सुरक्षा के लिए मैंने जो ज्ञापन दिया था मैं उसका पाठ प्रस्तुत कर रहा हूं :-

"स्वायत्तशासी भारत के भावी संविधान में दलित वर्गों के राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए व्यवस्था – जिसे भारत के गोलमेज सम्मेलन में प्रस्तुत किया गया।"

स्वायत्तशासी भारत में बहुमत वाले शासन में शामिल होने के लिए दलित वर्ग निम्नलिखित शर्तों पर अपनी सहमति देंगे :-

शर्त संख्या – 1

समान नागरिकता

वर्तमान परिस्थिति में दलित वर्ग सदा गुलाम बनाए रखने वाले बहुमत के शासन का समर्थन नहीं कर सकता। बहुमत का शासन स्थापित होने से पहले अस्पृश्यता का उन्मूलन किया जाना अनिवार्य होना चाहिए। यह बहुमत की इच्छा पर नहीं छोड़ना चाहिए। दलित वर्गो के लोगों को स्वतंत्र नागरिकों के वे सभी अधिकार मिलने चाहिएं जो साधारणतया स्वतंत्र देश के सभी नागरिकों को प्राप्त हैं।

(क) अस्पृश्यता उन्मूलन तथा समान नागरिकता की स्थापना सुनिश्चित करने के लिए निम्नलिखित मौलिक अधिकारों को भारत के संविधान का अंग बनाने का प्रस्ताव है।

मूल अधिकार

भारत में राज्य के सभी व्यक्ति कानूनी रूप से एक समान हों और उन्हें समान नागरिक अधिकार प्राप्त हों। कोई वर्तमान अधिनियमन, विनियमन, आदेश, रूढ़ि या विधि की व्याख्या – जिसके द्वारा अस्पृश्यता के आधार पर किसी प्रकार का दंड असुविधा, अयोग्यता, आरोपित की जाती है अथवा राज्य के किसी नागरिक से किसी प्रकार का भेदभाव किया जाता है, वह उस दिन से समाप्त हो जाएगा, जब से भारत का संविधान लागू होगा।

संयुक्त राज्य अमरीका संविधान संशोधन 14 तथा आयरलैंड सरकार अधिनियम 1920 10 तथा 11 जि.यो. V अध्याय. 67 धारा 5(2)

(ख) भारत सरकार के अधिनियम 1919 की धारा 110 तथा 111 के अंतर्गत, जो छूट और सुविधाएं कार्यपालिका को अब प्राप्त हैं, उन्हें समाप्त करना तथा कार्यपालिका के कृत्यों में उनके उत्तरदायित्व को यूरोपियन ब्रिटिश नागरिक के उत्तरदायित्व के समान बनाना।

सभी संविधानों में ऐसी स्थिति है देखें– प्रो. कीथ की टिप्पणी, सी एम डी 207, पृष्ठ56

शर्त संख्या –2

समान अधिकारों का अबाध उपयोग

दलित वर्गों के लिए अधिकारों की घोषणा मात्र से कोई लाभ नहीं होगा। यदि दलित वर्ग समान नागरिक अधिकारों का उपयोग करेंगे तो निस्संदेह उन्हें रूढ़िवादी पूरे हिंदू समाज को प्रतिरोध का सामना करना पड़ेगा। इसलिए दलित

वर्ग के लोग यह अनुभव करते हैं कि अधिकारों की ऐसी घोषणाएं केवल घोषणाएं बन कर ही न रह जाएं बल्कि दैनिक व्यवहार मे आनी चाहिए। उन घोषित अधिकारों के प्रयोग में उठने वाली बाधाओं का सामना करने के लिए उचित दण्ड की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(क) अतः दलित वर्ग यह प्रस्ताव करता है कि 1919 के भारत सरकार के अधिनियम के भाग 11 में अपराध, प्रक्रिया और दंड का प्रावधान करने वाली निम्नलिखित धारा जोड़ी जाए।

(1) *नागरिकता के नियम का उल्लघंन करने पर दंड का प्रावधान*

अमरीका का कानून

अमरीका में नीग्रो लोगों की स्वतंत्रता के बाद उन के हितों की सुरक्षा के लिए पास किए गए अप्रैल 1866 तथा 1 मार्च 1875 के सिविल राइट्स प्रोटेक्शन एक्ट्स।

यदि कोई व्यक्ति किस अन्य व्यक्ति को कानून के अलावा अस्पृश्यता के आधार पर आवास, लाभ, सुविधाओं, का उपभोग करने, सरायों में ठहरने, शैक्षिक संस्थाओं में प्रवेश करने सड़कों पर चलने, तालाबों और पानी भरने के अन्य स्थानों, कुओं का प्रयोग करने, सड़क मार्ग या जल मार्गों के आवागमन के साधनों का उपयोग करने, सिनेमाघरों, लोक मनोरंजन के स्थानों जिनका प्रयोग सार्वजनिक रूप से होता हो, पर जाने से रोकेगा तो वह दंड का भागी होगा, जिसे, अपराध के अनुसार, अधिक से अधिक पांच वर्ष का कारावास हो सकता है और जुर्माना भी हो सकता है।

(ख) दलित वर्गों द्वारा अपने अधिकारों के शांतिपूर्वक उपभोग करने में हिंदू केवल बाधाएं ही नहीं डालते। उनका सबसे अधिक प्रचलित तरीका सामाजिक बहिष्कार है। यदि दलित वर्गों के अधिकार कट्टर हिंदुओं को नहीं पचते हैं, तो सामाजिक बहिष्कार उनका अचूक शस्त्र है। सामाजिक बहिष्कार किस प्रकार और किन अवसरों पर किया जाता है उसका वर्णन बम्बई सरकार द्वारा वर्ष 1928 में गठित एक समिति की रिपोर्ट में विस्तार से किया गया है। बम्बई प्रेसीडेंसी में दलित वर्गों के बारे में जांच करने और उनके उत्थान के उपायों का सुझाव देने के लिए इस समिति का गठन किया गया था। इसकी सिफारिशों के कुछ अंश निम्न प्रकार हैं :–

दलित वर्ग तथा उसका सामाजिक बहिष्कार

"102 – यद्यपि सभी सार्वजनिक सुविधाओं का उपयोग करने के अधिकार दलित वर्गों को दिलाने के लिए हमने विभिन्न प्रकार के उपचार सुझाए हैं, तथापि हमें

डर है कि उन वर्गों को उन अधिकारों का उपयोग करने में भविष्य में बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना होगा। पहली कठिनाई कट्टर हिदुओं द्वारा दलित वर्गों पर खुलेआम हिंसा बरपाने की है। यह ध्यान देने की बात है कि गांवों में दलित वर्गों की संख्या बहुत कम होती है जबकि कट्टर हिंदू बहुत अधिक संख्या में होते हैं, जो हर कीमत पर दलितों से अपने स्वार्थों और हितों की रक्षा करने में सक्षम हैं। दलित वर्गों पर कट्टर हिंदुओं की हिंसा पुलिस की कार्यवाही के भय से कम हो गई है और परिणामस्वरूप ऐसे बहुत कम मामंले प्रकाश में आते हैं।

"दलित वर्गों में आजकल भयानक आर्थिक समस्याएं हैं। प्रेसीडेंसी के अधिकतर भागों में दलित वर्ग के लोग आर्थिक रूप से स्वतंत्र नहीं हैं। कुछ रूढ़िवादी हिंदुओं के खेत जोतते–बोते हैं, तो कुछ उनके यहां मजदूरों के तौर पर काम करते हैं। अन्य बहुत से लोग रूढ़िवादी हिंदुओं के खेतिहर मजदूर बन कर अपनी जीविका चलाते हैं और कुछ अस्पृश्यों को उन हिंदुओं के यहां नौकरी करके जो अनाज मिलता है उसी से गुजर–बसर करते हैं। बहुत से उदाहरण सुनने में आए हैं, जहां पर सनातनी हिंदुओं ने अपनी आर्थिक स्थिति को अपने गांवों के दलितों को दबाने के लिए हथियार के रूप में प्रयोग किया। जब दलितों ने अपने प्राप्त अधिकारों का उपयोग करना चाहा तो कट्टर हिंदुओं ने उनसे खेत छीन लिए, उनको काम से हटा दिया और गांवों में जहां उन्हें काम मिलता था उस काम से वंचित कर दिया गया। इस प्रकार उनके बहिष्कार की योजना इस हद तक बनाई जाती है कि उन्हें सार्वजनिक मार्गों पर चलने भी नहीं दिया जाता। गांव के बनिए से जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएं खरीदने के बहिष्कार की घोषणा कर दी जाती है। प्रायः दलितों को सामान्य कुओं से पानी नहीं लेने दिया जाता। ऐसी बातें भी सामने आई हैं कि कुछ दलितों के जनेऊ धारण कर लेने पर, कुछ भूमि खरीद लेने पर, कुछ साफ कपड़े और गहने पहन लेने पर सार्वजनिक मार्ग से दूल्हे को घोड़े पर चढ़ाकर बारात में ले जाने पर पूरी तरह रोक लगी होती है।

"हम नहीं समझते कि अस्पृश्यों को कुचलने के लिए इस प्रकार के सामाजिक बहिष्कार से बढ़कर कोई और हथियार हो सकता है। लाठी डंडा चलाने की बात भी इसके सामने कुछ नहीं बचती, क्योंकि सामाजिक बहिष्कार बहुत ही भयंकर हथियार है। यह और भी घातक है, क्योंकि यह घुलमिल कर रहने की स्वतंत्रता के सिद्धांत पर ही वार करता है। हम इस बात से सहमत है कि बहुसंख्यकों के इस प्रकार के अत्याचार की वारदातें बहुत सख्ती के साथ दबाई जाएं, यदि हम दलितों के बोलने की स्वतंत्रता और उनके उत्थान की आवश्यकता समझते हैं तो हमें इसकी गारंटी देनी होगी।"

दलित वर्ग के विचार से उनकी स्वतंत्रता तथा अधिकारों पर कुठाराघात करने वाली मुसीबतों से छुटकारा दिलाने का केवल एक ही उपाय है कि सामाजिक बहिष्कार कानूनी रूप से दंडनीय अपराध घोषित किया जाए। इसलिए दलित वर्ग के लोग भारतीय संविधान के 1919 के भाग 11 में यह जोड़ने पर जोर देते हैं कि सामाजिक बहिष्कार पर दंड की व्यवस्था अवश्य की जाए।

1-बहिष्कार के अपराध को परिभाषित करना

(1) इसे बहिष्कार माना जाए जब कोई मनुष्य दूसरे को :

(क) किसी भी घर में नहीं रहने देता, भूमि पर कब्जा लेने से रोकता है, बेगार कराता है, किसी मनुष्य को व्यापार करने में बाधा डालता है या किसी से दासता कराता है अथवा उन्हें उक्त सार्वजनिक कार्यों में से किसी को करने से रोकता है, अथवा–

यह और निम्नलिखित विधिक उपबंध बर्मा ऐंटी बायकाट एक्ट 1922 से लेकर मामले की आवश्यकतानुसार कुछ आवश्यक परिवर्तन के साथ उद्धत किए गए हैं।

(ख) सामाजिक, और व्यावसायिक अथवा व्यापारिक कार्यों में रोक लगाकर ऐसे रिवाज थोपता है जो संविधान में घोषित नागरिकता संबंधी मूल अधिकारों के विपरीत हैं।

(ग) किसी भी प्रकार से आघात पहुंचाता है, किसी प्रकार के कष्ट देता है, अथवा संविधान प्रदत्त अधिकारों का उपयोग करने में कोई बाधा उत्पन्न करता है।

2. बहिष्कार करने पर सजा

यदि कोई किसी को संविधानसम्मत कार्य करने से रोकता है और बरबस वह कार्य कराता हैं, जिन्हें कानूनन वर्जित कर दिया गया है, कोई व्यक्ति जबरदस्ती किसी से वह कार्य कराना चाहता है, जिसके लिए वह वैधानिक रूप से मजबूर नही किया जा सकता, अथवा कोई किसी के कानूनसम्मत कार्य कराने पर उसके शारीरिक, मानसिक, मानमर्यादा, संपत्तिहरण का इरादा रखता है, उसके व्यापार अथवा जीविकोपार्जन से वंचित करता है, तो ऐसे व्यक्ति को दंडित किया जाएगा। दोनों मामलों की गंभीरता को देखकर सात वर्ष की सजा अथवा जुर्माना अन्यथा दोनों ही किया जा सकता है।

न्यायालय यदि इस बात से संतुष्ट है कि अभियुक्त ने किसी के भड़काने पर अथवा किसी साजिश के तहत अपराध नहीं किया है अथवा सामूहिक रूप से बहिष्कार करने में शामिल नहीं है, तो उपरोक्त धारा के अंतर्गत कोई कार्य अपराध की सीमा में नहीं आता।

3. बहिष्कार करने के लिए भड़काने अथवा बढ़ावा देने पर दंड

जो व्यक्ति किसी व्यक्ति या व्यक्तियों के वर्ग के बहिष्कार के लिए

(क) सार्वजनिक रूप से कोई प्रस्ताव रखता है या प्रकाशित करता है या परिचालित करता है अथवा

(ख) उक्त आशय से कोई वक्तव्य देता है या अफवाह फैलाता है या उसे प्रकाशित या परिचालित करता है अथवा

(ग) किसी और तरीके से उक्त बहिष्कार के लिए भड़काता है या बढ़ावा देता है, वह पांच वर्ष तक के कारावास या जुर्माना या दोनों के दंड का भागी होगा।

व्याख्या– उपरोक्त रीति से किये गये किसी कार्य से प्रभावित व्यक्ति या वह व्यक्ति जिसके प्रभावित होने की संभावना हो, का नाम या किसी प्रकार का उल्लेख न भी किया गया हो, परंतु उसके कार्यों का परोक्ष उल्लेख किया गया हो, तो भी इस धारा के अधीन अपराध किया गया समझा जाएगा।

(4)बहिष्कार करने की धमकी दंडनीय

कोई मनुष्य जो कोई कार्य करने के लिए कानूनन अधिकृत है और वह उसे करता है अथवा ऐसे किसी काम को जिसके लिए वह बाध्य नहीं है, तो उससे जो व्यक्ति जोर–जबरदस्ती अनधिकृत कार्य कराएगा अथवा अधिकृत कार्य से वंचित करेगा या बहिष्कार करने की धमकी देगा तो उसे कैद की सजा मिलेगी, जो पांच वर्ष तक की होगी या उसे जुर्माना देना होगा अथवा सजा और जुर्माना दोनों भुगतने होंगे।

अपवाद – उसे बहिष्कार नहीं माना जाएगा।

(1) मान्यताप्राप्त श्रम विवाद पर कार्रवाई।

(2) व्यापारिक प्रतियोगिता के दौरान की गई कार्रवाई।

टिप्पणी – ये सभी अपराध संज्ञेय समझे जाएंगे।

शर्त संख्या –३

भेदभाव के विरूद्ध संरक्षण

दलित वर्गों के लोग भविष्य में व्यवस्थापिका द्वारा कानून बनाने अथवा कार्यपालिका द्वारा भेदभावमूलक आदेश जारी करने के बारे में आशंकित हैं। इसलिए वे बहुसंख्यक शासन को तब तक स्वीकार नहीं करेंगे, जब तक कि

संवैधानिक रूप से व्यवस्थापिका द्वारा या प्रशासन में दलितों के विरूद्ध भेदभावमूलक नियम बनाने या आदेश जारी करने को असंभव नहीं बना दिया जाता।

इसलिए यह प्रस्ताव किया जाता है कि भारत के सांविधिक कानून में निम्नलिखित स्थाई प्रावधान कर दिए जाएं–

"सारे भारत में कोई भी व्यवस्थापिका अथवा कार्यपालिका कोई भी ऐसे कानून नहीं बना सकती अथवा आदेश पारित नहीं कर सकती अथवा कोई नियम अथवा विनियम नहीं बना सकती, जिनसे राज्य की जनता के अधिकारों का उल्लंघन होता हो तथा भारत भूमि पर कहीं भी पूर्व प्रचलित विषमता अथवा अस्पृश्यतामूलक रीतियों की झलक मिलती हो । इसमें –

(1) ठेके लेना–देना, मुकदमें दायर करना, पक्षकार बनना, गवाही देना, पैतृक संपत्ति प्राप्त करना, जायदाद बेचना, खरीदना, पटटे पर जमीन लेना आदि का प्रावधान किया जाये।

(2) सिवाय उन हालात के जहां किसी को वंचित रखना आवश्यक हो दलितों को नागरिक एवं सैनिक सेवाओं में भर्ती, शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश, की व्यवस्था की जाए।

(3) सराय होटलों में ठहरना, शैक्षिक संस्थाओं मे भर्ती, नदियों के जल का उपयोग करना, झरनों, कुओं, तालाबों, सामान्य सड़कों, गलियों, सभी प्रकार की सवारियों चाहे वह धरती, जल अथवा आसमान पर हों, का उपयोग करना, सिनेमा, थियेटर आदि सभी सार्वजनिक स्थानों का उपयोग करना और सभी प्रकार के अधिकार अन्य नागरिकों की भांति जाति, रंग, धर्म अथवा वर्ग का भेदभाव किए बिना पूर्ण अधिकार प्राप्त हों।

(4) बिना किसी प्रकार के भेदभाव किए सभी धार्मिक स्थानों – जो उस धर्म के लोगों के लिए सार्वजनिक रूप से खुले होंगे, अछूतों के लिए भी खुले रहेंगे।

(5) अन्य लोगों के समान अस्पृश्यों को न्यायालय में समान अधिकार, अन्य अधिकारो तथा उनकी जायदाद की सुरक्षा की गांरटी बिना पूर्व शर्त के दी जाएगी, जिससे उन्हें दंड देने, सताए जाने या जुर्माने की आशंका हो।

शर्त संख्या –4

विधानमंडलों में समुचित प्रतिनिधित्व

दलित वर्गों को अपने कल्याण के लिए विधायिका एवं कार्यपालिका पर प्रभाव डालने के लिए समुचित राजनीतिक शक्ति प्रदान की जाये। इस विचार से वे मांग

करते हैं कि चुनाव नियम में निम्नलिखित प्रावधान किए जाएं :-

(1) प्रांतीय तथा केंद्रीय विधायिका में उन्हें पर्याप्त प्रतिनिधित्व दिया जाए।

(2) उनको अपने ही वर्ग से प्रतिनिधि चुनने का अधिकार दिया जाए जिसके लिए-

(क) वयस्क मताधिकार, और

(ख) प्रथम दस वर्षों के लिए पृथक मतदान द्वारा और उसके बाद संयुक्त चुनाव प्रणाली द्वारा उनके लिए सुरक्षित सीटों पर चुनाव का प्रावधान हो। यह भी जरूरी है कि संयुक्त चुनाव प्रणाली उन पर जबरदस्ती उनकी इच्छा के विरूद्ध तब तक नहीं थोपी जाए, जब तक संयुक्त चुनाव प्रणाली में पूर्ण वयस्क मताधिकार का विधान न हो।

टिप्पणी – दलित वर्गों के लिए पर्याप्त प्रतिनिधित्व तब तक नहीं समझा जा सकता, जब तक कि अन्य समुदायों का प्रतिनिधित्व परिभाषित न हो। परंतु यह अवश्य समझ लेना चाहिए कि दलित वर्ग इसे स्वीकार नही करेंगे कि किसी अन्य समुदाय के प्रतिनिधित्व को उनसे बेहतर सुविधाएं दे दी जाएं। इस दिशा में दलित वर्ग के लोग किसी प्रकार की अलाभकर स्थिति में रहना पसंद नहीं करेंगे। किसी भी हालत में बम्बई और मद्रास के दलित वर्ग अपनी जनसंख्या के आधार पर अपनी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने के लिए विशेष स्थान चाहेंगे, भले ही अन्य समुदायों को उन प्रांतों में कितना ही प्रतिनिधित्व मिले।

शर्त संख्या –5

नौकरियों में यथोचित प्रतिनिधित्व

सरकारी नौकरियों पर सवर्णों ने एकाधिकार जमा रखा है। इस कारण दलित वर्गों की भारी उपेक्षा हो रही है। सवर्ण लोगों ने न्याय और समानता को धता बता कर सवर्ण हिंदुओं को लाभ पहुंचाने के लिए कानून की अनदेखी कर अपने अधिकारों का दुरूपयोग किया है। सरकारी नौकरियों में सवर्ण हिंदुओं के एकाधिकार को समाप्त करने और इस प्रकार का नियम बनाने की जरूरत है कि नौकरी में भरती इस प्रकार की जाए, जिससे सभी संप्रदायों को उनका उचित भाग मिले। तभी हिंदुओं की चालाकी से बचा जा सकता है। इसके लिए दलित वर्गों को संवैधानिक विधि के अंग के रूप में सांविधिक व्यवस्था करने के लिए निम्नलिखित प्रस्ताव करने हैं –

(1) भारत में तथा प्रत्येक प्रांत में सरकारी नौकरियों में भर्ती करने के लिए

तथा नौकरियों पर नियंत्रण रखने के लिए एक लोक सेवा आयोग होगा।

(2) लोक सेवा आयोग के किसी सदस्य को हटाया नहीं जा सकता, केवल विधायिका ही प्रस्ताव पास करके उसे हटा सकती है। उसे सेवानिवृत्ति के बाद किसी सरकारी नौकरी पर नियुक्त नहीं किया जाएगा।

(3) इसी आयोग का यह भी कर्तव्य होगा कि वह निर्धारित योग्यता के लिए परीक्षाओं का आयोजन करके,

(क) इस प्रकार की नौकरियों में भरती की व्यवस्था करे जिसमें सभी समुदायों को उनका समुचित प्रतिनिधित्व मिला हो, और

(ख) किन्हीं विशेष नौकरियों में विभिन्न संप्रदायों के प्रतिनिधित्व को पूरा करने के लिए युक्तिसंगत प्राथमिकता देने की समय–समय पर व्यवस्था करे।

शर्त संख्या –6

पक्षपात अथवा हितों की उपेक्षा को दूर करना

इस बात को देखते हुए कि भविष्य में जब शासन बहुसंख्यक पुरातनपंथी हिंदुओं के हाथ में होगा, दलित वर्गों को आशंका है कि बहुसंख्यक सवर्ण हिंदू उनसे कोई सहानुभूति नहीं दिखाएंगे और संभवतः उनके हितों के प्रति पूर्वाग्रह बरतेंगे तथा उनकी मूलभूत आवश्यकताओं की उपेक्षा करेंगे– जिसकी अनदेखी नहीं की जा सकती। संविधान में प्रावधान अवश्य कर दिए गए हैं। विधायिका में दलित वर्ग के लोग अल्पसंख्यक रूप में ही रहेंगे। दलित वर्ग के लोग यह नितांत आवश्यक समझते हैं कि संविधान में उनके हितों की सुरक्षा के लिए व्यवस्था की जाए। इसलिए प्रस्तावित किया जाता है कि संविधान में निम्नलिखित प्रावधान किए जाएं :–

(1) भारत की केंद्रीय विधायिका तथा प्रत्येक प्रांतीय विधानसभा और कार्यपालिका अथवा कानून द्वारा गठित अन्य संस्थाओं के लिए यह अनिवार्य कर दिया जाए कि वे दलित वर्गों के लिए शिक्षा, स्वच्छता, नौकरियों में रखने हेतु उचित कानून बनाएं और कोई ऐसा कार्य न करें जो दलितों के हितों पर प्रतिकूल प्रभाव डाले।

(2) जब कभी किसी भी प्रान्त में अथवा भारत में इन प्रावधानों का उल्लंघन होगा तो काउंसिल के गवर्नर जनरल को प्रान्तीय व्यवस्था तथा सेक्रेटरी ऑफ स्टेट को केन्द्रीय व्यवस्था के लिए अपील की जा सकेगी।

(3) ऐसे प्रत्येक मामले में जहां गवर्नर जनरल अथवा सेक्रेटरी आफ स्टेट को यह प्रतीत हो कि प्रांतीय अथवा केंद्रीय सरकारें इस प्रावधान को लागू करने के लिए आवश्यक कदम नहीं उठातीं, तब ऐसे प्रत्येक मामले में गर्वनर जनरल तथा भारत सरकार अपील सुनने वाले प्राधिकरण होने के नाते इस प्रावधान के पालन के लिए कुछ समय निर्धारित करें और प्रांतीय और केंद्रीय सरकार इस विषय में उनको मानने को बाध्य हों।

शर्त संख्या –7

विशेष विभागीय सुरक्षा

बेबस, बेसहारा और बेकस दलितों की दुर्दशा का मुख्य कारण समस्त हिंदुओं की हठधर्मी है, जिसने कभी दलित वर्ग को बराबरी का स्थान नहीं दिया और न ही समानता का व्यवहार किया। उनकी आर्थिक स्थिति के विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त नहीं है कि वे गरीबी के मारे हुए हैं अथवा वे भूमिहीन मजदूर वर्ग से हैं। वैसे तो ये दोनों बातें सही हैं तब भी यह ध्यान देने की बात है कि दलित वर्गों की गरीबी की जड़ अधिकांश रूप से सामाजिक पूर्वाग्रह हैं, जिसके परिणामस्वरूप वे जीविकोपार्जन के सभी साधनों से वंचित हैं। यह एक सत्य है, जो दलित वर्गों तथा साधारण सवर्ण हिंदू मजदूरों के बीच अंतर पैदा करता है और प्रायः उनकी मुसीबतों की जड़ है। यह भी ध्यान देने की बात है कि दलितों के उत्पीड़न तथा उनके दमन का कुचक्र विभिन्न प्रकार का है और उन मुसीबतों और अत्याचारों से अपनी रक्षा करने की उनकी क्षमता बहुत सीमित है। अस्पृश्यों पर जो अत्याचारों की घटनाएं साधारणतया सारे देश में घटित होती हैं, उनका वर्णन मद्रास सरकार के बोर्ड ऑफ रेवेन्यू के दिनांक 5 नवंबर 1892 के कार्यवाही सार संख्या 723 में किया गया है जिसका एक उद्धरण नीचे दिया जा रहा है –

"134–दमन के बहुत से तरीके हैं जिनकी ओर संक्षेप में संकेत किया गया है। पेरियाओं द्वारा आदेश न मानने पर उनके मालिक उन्हें दंड देने के लिए–

(क) गांव पंचायत में अथवा फौजदारी अदालत में उनके विरूद्ध झूठे मामले दायर करते हैं।

(ख) पेरिया लोगों की बस्ती के चारों ओर जो परती जमीन है सरकार से प्राप्त कर लिया जाता है और पेरियाओं के जानवरों को घेर लिया जाता है तथा उन्हें मंदिरों में जाने से रोक दिया जाता है।

(ग) पेरिया लोगों के विरूद्ध सरकारी कागजात में छलकपट से मिरासियों के नाम लिखवा देते हैं।

(घ) उनकी झोंपड़ियां गिरा कर नष्ट कर देते हैं और उन्हें ढकेल कर पीछे कर देते हैं।

(ङ.) बहुत पुराने समय से चली आई शिकमी काश्तकारी के अधिकार से उन्हें वंचित कर देते हैं।

(च) पेरिया की खेती जबरदस्ती काट लेते हैं और उनके एतराज करने पर उन पर चोरी तथा दंगों का इलजाम लगाते हैं।

(छ) गलतबयानी करके उनके पुश्तैनी अधिकारों को समाप्त कर उन्हें बरबाद करते हैं।

(ज) उनके खेतों को जाने वाले पानी को रोक कर फसल सुखा डाल देते हैं।

(झ) जमींदारों द्वारा लगान बाकी होने पर बिना कानूनी नोटिस दिए उनकी जमीन से उन्हें बेदखल कर देते हैं।

"135– सभी माल एवं फौजदारी मामलों को निपटाने के लिए भारत में न्यायालय हैं, परंतु उनसे गांव वालों की समस्याएं भी हल नहीं होती। न्यायालय में जाने की हिम्मत होनी चाहिए, कानूनी जानकारी में धन खर्च होता है। कानूनी खर्च की क्षमता होनी चाहिए और मुकदमों तथा अपीलों के दौरान जीवनयापन का साधन होना चाहिए। अधिकांश लोग निचली अदालतों के फैसले पर ही निर्भर करते हैं। जिन अधिकारियों के अधीन ये न्यायालय होते हैं, वे प्रायः भ्रष्ट होते हैं अथवा सामान्यतया वे धनाढ़यों तथा भूस्वामियों के वर्ग से सबंधित होते हैं।

136–ऐसे धनाढयों और जमीदारों के वर्ग के होने के कारण वे अपने ही देश के लोगों को नहीं प्रभावित करते, बल्कि यूरोपवासियों को भी प्रभावित करते हैं। प्रत्येक कार्यालय ऊपर से नीचे तक उन्हीं धनाढ़यों और भूस्वामियों के प्रतिनिधियों से भरा हुआ है। उनकी मजी के विरूद्ध कुछ नहीं किया जा सकता। शासन में उनका बहुत दबदबा है।

इन परिस्थितियों में निस्संदेह दलित वर्गों का उत्थान उस समय तक केवल स्वप्न बन कर रह जाएगा, जब तक शासन की समस्त कार्य–प्रणाली की अग्रिम पंक्ति में उनके उत्थान को वरीयता नहीं दी जाएगी और जब तक शासन स्तर से सबको समान अवसर प्रदान करने की नीति नहीं अपनाई जाती। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए दलित वर्गों का यह प्रस्ताव है कि शासन संविधान प्रदत्त नियम स्थायी रूप से लागू करने के लिए एक विभाग बनाए, जो नियमों को लागू करके

उनकी समस्याएं हल करने के लिए गवर्नमेंट ऑफ इंडिया एक्ट में निम्नलिखित धारा को भी जोड़ लें–

"1. संविधान लागू करने के साथ–साथ एक मंत्री के अधीन ऐसा विभाग भी बने, जो दलित वर्गों के हितों और उनके कल्याण कार्यों की देखरेख करे।

"2. उस विभाग का मंत्री अपने पद पर तभी तक रहेगा जब तक केंद्रीय व्यवस्थापिका का उस पर विश्वास हो।

"3. उस मंत्री को कानून द्वारा प्रदत्त अधिकारों और कर्तव्यों का पालन ऐसे करना पड़ेगा कि उसको दलित वर्गों के दमन और उनके प्रति सामाजिक अन्याय से उनकी सुरक्षा करते हुए सारे देश में उनके लिए कल्याणकारी कार्य करने का उत्तरदायित्व सौंपा जाए।

"4. गवर्नर जनरल निम्नलिखित नियम बनाने के लिए सक्षम हो :–

(क) दलित वर्गों के कल्याण के संबंध में मंत्री को सभी अथवा कुछ ऐसे अधिकार अथवा कर्तव्य सौंपना, जिससे वह मंत्री उनकी शिक्षा एवं स्वच्छता आदि के संबंध में नियम बना सके।

(ब) दलित वर्गों के कल्याण के लिए प्रत्येक प्रान्त में ब्यूरो स्थापित करना, जो मंत्री के अधीन रह कर कार्य करें और मंत्री को सहयोग करें।

शर्त संख्या –8

दलित वर्ग और मंत्रिमंडल

यह आवश्यक है कि सरकारी कार्यकलाप पर प्रभाव डालने हेतु व्यवस्थापिका में उन्हें प्रतिनिधित्व मिले, जिससे कि दलित वर्गों को सरकार की सामान्य नीति निर्धारण करने का अवसर प्रदान किया जा सके। यह तभी संभव है, जब उन्हें मंत्रिमंडल में शामिल किया जाए। दलित वर्गों के लोग इसीलिए यह दावा करते हैं कि वे साधारणतया अन्य अल्पसंख्यकों के साथ–साथ मंत्रिमंडल में उन्हें भी शामिल करने का नैतिक अधिकार सुनिश्चित किया जाए। इसे ध्यान में रखते हुए दलित वर्गों के लोग प्रस्ताव करते हैं कि गवर्नर–जनरल तथा सभी प्रांतों के गर्वनरों को आवश्यक निर्देश दे दिए जाएं कि वे अपने मंत्रिमंडल में दलित वर्गों को यथोचित प्रतिनिधित्व दें।

II

अस्पृश्यों की उपरोक्त मांगों के संबंध में क्या हुआ और अल्पसंख्यक समिति के

सदस्यों की ओर से क्या प्रतिक्रिया हुई, इन सबके संबंध में अल्पसंख्यक समिति ने गोलमेज सम्मेलन को जो रिपार्ट दी थी उसका अध्ययन कर उसे समझाया जा सकता है। मैं उस समिति की रिपोर्ट के कुछ उद्धरण रख रहा हूं :–

"5. सभी समितियों ने अपने दावे पेश किए कि सीटों की संख्या प्रत्येक सम्प्रदाय के अनुपात में निर्धारित की जाए। इस बात पर भी बल दिया गया कि उनके, प्रतिनिधियों की संख्या उनकी जनसंख्या के अनुपात में किसी भी प्रकार कम नहीं होनी चाहिए। अल्पसंख्यकों को विधानसभाओं में प्रतिनिधित्व देने के संबंध में (1) नामजदगी, (2) सामान्य चुनाव और (3) पृथक चुनाव प्रणाली के तीन विकल्प अपनाए जा सकते हैं।

"6. नामजदगी को सर्वसम्मति से अनुपयुक्त ठहराया गया।

"7. संयुक्त निर्वाचन प्रणाली इस प्रतिबंध के साथ प्रस्तावित की गई कि विभिन्न समुदायों के लिए सीटें सुरक्षित की जाएं। इस प्रकार चुनावों को लोकतांत्रिक रूप दिया जा सकेगा। तभी चुनाव प्रणाली का उददेश्य पूरा हो सकेगा। इस विषय में संदेह व्यक्त किया गया था कि क्या इस प्रकार अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व की गारंटी नहीं होगी, वह युक्तिसंगत होगा। या तो उन्हें मनोनीत किया जाएगा अथवा उसमें बहुसंख्यक की इच्छानुसार ही अल्पसंख्यकों को प्रतिनिधित्व मिल पाएगा।

इस ओर भी संकेत किया गया था कि वास्तव में यह सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व का रूप होगा। सांप्रदायिक चुनाव के प्रति एतराज उठाए गए थे।

"8. विचार–विमर्श से यह निष्कर्ष निकला कि केवल एक ही ऐसी मांग थी, जो सामान्यतया लोगों को स्वीकार हो सकती थी कि पृथक निर्वाचन प्रणाली अपनाई जाए। बहुत पहले से इस एतराज पर विचार हुआ। इन कठिन समस्याओं का हल ढूंढ निकालना भी इसमें समाहित था, जैसे कि प्रांतों तथा केंद्र में कितना कितना सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व होना चाहिए। यदि विधानसभाओं की समस्त सीटें समुदायों को दे दी जाएं, तो स्वतंत्र राजनैतिक विचार स्पष्ट करने की कोई गुंजाइश नहीं रह जाएगी और दलित वर्गों की प्रतिनिधित्व की मांग उलझन में पड़ जाएगी। अतः चुनाव कराने के विचार से उन्हें हिंदू प्रतिनिधित्व में से काट कर प्रतिनिधित्व दे देना चाहिए और उन्हें मतदाता माना जाए।

"9. यह सुझाव दिया गया कि विभिन्न समुदायों में सीटों के बंटवारे में जो ऐतराज होगा उसका सामना करने के लिए केवल ऐसा अनुपात

निर्धारित किया जाए कि 80 अथवा 90 प्रतिशत सीटें पृथक निर्वाचन से भरी जाएं और शेष सीटें आम चुनाव द्वारा। यह कुछ समुदायों द्वारा मनोवांछित गारंटी न मिलने के कारण मान्य नहीं था।

"10. उप–समिति के सदस्य, मौलाना मुहम्मद अली की योजना पर, जिनकी मृत्यु पर हमें खेद है, विचार–विमर्श में यह प्रस्ताव किया गया था कि जहां तक संभव हो कोई सांप्रदायिक अभ्यर्थी तब तक चुना हुआ न माना जाए, जब तक कि व्यवस्था के अनुसार दूसरे समुदायों के 40 प्रतिशत मत वह प्राप्त न कर ले। यद्यपि इस संबंध में कहा गया था कि जैसा कि उस योजना के लिए सांप्रदायिक रजिस्टर बनाना आवश्यक है, अतः जो लोग पृथक निर्वाचन के विरुद्ध थे, उनके समान एतराज करने की छूट थी।

"11. महिलाओं को जिन्हें चुनावों में पुरूषों के बराबर दर्जा दिया जाता था, उनकी ओर से संयुक्त निर्वाचन पृथक मतदान अथवा सीट संरक्षण का कोई दावा नहीं किया गया था। परंतु राजनैतिक जीवन में पुरुषों के समान सक्रिय भाग ले सकें इस विचार से जनता को अवगत कराने के लिए और महिलाओं को व्यवस्थापिका में अंतरिम प्रतिनिधित्व देने के लिए कहा गया कि प्रथम तीन काउंसिलों में महिलाओं को 5 प्रतिशत स्थान दिया जाए और उनकी पूर्ति निर्वाचित सदस्यों द्वारा आनुपातिक प्रतिनिधित्व के अनुसार नियमित करके की जाए।

"12. उप समिति संख्या 2 (प्रातीय संविधान) की इस सिफारिश पर आम सहमति थी कि नए संविधान के सफल कार्यकरण के लिए महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक समुदायों का प्रांतीय कार्यपालिका में प्रतिनिधित्व सर्वाधिक व्यावहारिक महत्व रखता था। इस बात पर भी सहमति थी कि उस आधार पर मुसलमानों को संघीय कार्यपालिका में भी प्रतिनिधित्व मिले। छोटे अल्पसंख्यकों की ओर से प्रांतीय और संघीय कार्यपालिकाओं में उनके प्रतिनिधित्व के लिए दावा पेश किया गया था, वह चाहे व्यक्तिगत हो अथवा सामूहिक रूप से हो अथवा यदि ऐसा करना संभव हो, तो प्रत्येक मंत्रिमंडल में एक मंत्री को मुख्यतया उन अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा के लिए नियुक्त किया जाए।

(डाक्टर अम्बेडकर तथा सरदार उज्जल सिंह उपर्युक्त पैरा 12 में "मुसलमान" शब्द के बाद "और अन्य महत्वपूर्ण अल्पसंख्यक" शब्द जोडेंगे)।

उस योजना के अंतर्गत उत्तरदायी कार्यपालिका को संयुक्त रूप में कार्य करने में जो कठिनाई होती उसकी ओर भी संकेत किया गया था।

"13. जहां तक प्रशासन का संबंध है – यह आम सहमति थी कि प्रांतीय तथा केंद्रीय नौकरियों में भरती का कार्य लोक सेवा आयोगों को सौंप दिया जाए, जिन्हें निर्देश हो कि वे नौकरियों में विभिन्न समुदायों के उम्मीदवारों की योग्यता तथा नौकरियों के मापदंड का ध्यान रखते हुए यथोचित प्रतिनिधित्व प्रदान करें।

× × ×

"16. यह भी स्पष्ट किया गया है कि ब्रिटिश सरकार किसी सहमति से समुदायों पर कोई ऐसा चुनाव सिद्धांत अपनी ओर से नहीं थोप सकती, जिसका किसी प्रकार का कोई विरोध हो। इसलिए यह स्पष्ट कर दिया गया था कि कमियों एवं कठिनाइयों के होते हुए भी समझौता न होने पर नए संविधान के अंतर्गत पृथक मतदान प्रणाली को ही चुनाव व्यवस्था का आधार रखना होगा। इससे अनुपात का प्रश्न उठेगा। ऐसी परिस्थितियों में दलित वर्गों के दावों पर समुचित विचार करना होगा।

× × ×

"18. अल्पसंख्यक तथा दलित वर्गों के लोग इस बात पर अटल थे कि वे भारत के लिए किसी स्वायत्तशासी संविधान के लिए अपनी सहमति तब तक नहीं देंगे जब तक कि उसमें उनकी मांगों को यथार्थ रूप में नही मान लिया जाएगा।

गोलमेज सम्मेलन द्वारा दूसरी समिति "संघीय ढांचा समिति" से जो केंद्रीय सरकार के कार्यक्रमों पर विचार करने हेतु नियुक्त की गई थी, उसे संघीय विधायिका से संबंधित अस्पृश्यों के प्रश्न पर भी विचार करना था। गोलमेज सम्मेलन को दी गई रिपोर्ट में कहा गया था –

"उप–समिति में सर्व सम्मति से यह विचार प्रकट किया गया था कि दलित वर्गों, ईसाइयों, यूरोपियनों, एंग्लोइंडियनों, जमींनदारों, व्यापारियों (यूरोपीय एवं भारतीय) और श्रमिकों को जहां तक संभव हो, दोनों सदनों में मुख्यतया निम्न सदन (लोअर चैम्बर) में प्रतिनिधित्व दिया जाए।"

III

गोलमेज सम्मेलन का प्रथम सत्र समाप्त होने से पहले ही उपरोक्त दोनों समितियों की रिपोर्ट गोलमेंज सम्मेलन को प्रस्तुत कर दी गई और उसे पारित कर दिया गया। ध्यान देने योग्य बात यह थी कि यद्यपि रिपोर्ट को विस्तृत रूप में संपूर्ण सहमति प्राप्त नहीं हुई थी, परंतु राजनैतिक एवं संवैधानिक मामलों में अस्पृश्यों का पृथक अस्तित्व आम सहमति से स्वीकार कर लिया गया था।

प्रथम गोलमेज सम्मेलन के समाप्त होने से पहले इस निर्णय पर राजनीतिक दलों में से केवल कांग्रेस का रवैया स्पष्ट नहीं था। इसका कारण यह था कि कांग्रेस ने गोजमेज सम्मेलन का बहिष्कार किया था और सरकार के विरुद्ध सविनय अवज्ञा आंदोलन चलाने में लगी थी। कुछ समय पश्चात दूसरा गोलमेज सम्मेलन भी आरंभ होने का समय आ गया। ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस में समझौता हुआ जिसके फलस्वरूप कांग्रेस गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए तैयार हो गई और गोलमेज सम्मेलन के सामने जो समस्याएं उठीं उनका हल ढूंढ निकालने में कांग्रेस भी अपना योगदान करने पर सहमत हो गई। गोलमेज सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन में प्रतिनिधियों की भागीदारी और उस समय के सद्भाव के वातावरण से चाहत और राहत देने की भावना देखी गई थी, उससे यह भावना प्रकट हुई कि एक के बाद अगले सम्मेलन में प्रगति की आशा है। वास्तव में सम्मेलन में कांग्रेस द्वारा भाग लेने के कारण और तेजी से प्रगति की आशा थी। वास्तव में कांग्रेस के मित्रों का यही कहना था कि यदि प्रथम सम्मेलन में कांग्रेस की अनुपस्थिति किसी निर्णय पर नहीं पहुंच पाने का एकमात्र कारण थी।

इसलिए गोलमेज सम्मेलन में और सफलता के लिए सबकी निगाहें कांग्रेस पर थीं। दुर्भाग्यवश सभा के लिए कांग्रेस ने अपना प्रतिनिधि श्री गांधी जैसे कुपात्र को नहीं चुनना चाहिए था। एकजुटता लाने की शक्ति में वह असफल रहे। उन्होंने अपने आपको नम्रता की मूर्ति दिखाने का प्रयत्न किया। परंतु गोलमेज सम्मेलन में उनके व्यवहार से स्पष्ट हो जाता है कि श्री गांधी विजय के मुहाने पर कितने संकुचित हो सकते थे। सरकार से समझौते के बाद जैसे श्री गांधी ने सम्मेलन में भाग लिया, उन्होंने संपूर्ण गैर-कांग्रेसियों के प्रति अपमानजनक व्यवहार किया। जब कभी देश का प्रतिनिधित्व करने का अवसर आया तो श्री गांधी ने यह कह कर दूसरों का अनादर किया कि उन लोगों की कोई हस्ती नहीं है, केवल वही उस कांग्रेस के प्रतिनिधि हैं, जो सारे देश का प्रतिनिधित्व करती है। भारतीय प्रतिनिधिमंडल को एकताबद्ध करने के बजाए श्री गांधी ने उनमें वैमनस्य की खाई और चौड़ी कर दी। यदि प्रस्तुत विषयों को जानकारी की दृष्टि से देखा जाए, तो उसमें श्री गांधी ने अपने आपको अति अल्पज्ञ प्रमाणित किया। जिन संवैधानि

तथा सांप्रदायिक प्रश्नों पर गोलमेज सम्मेलन में विचार हुआ वहां श्री गांधी रचनात्मक सुझाव न दे सके और व्यर्थ की बातें कहीं। उन्होंने अपने आपको एक मतिभ्रम व्यक्ति के रूप में प्रकट किया, ताकि कोई समझौता न हो सके। उन्होंने मूलभूत सिद्धांतों को भी काटा।

द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में अस्पृश्यों की मांगों पर श्री गांधी का रूख उनके अजीबोगरीब चरित्र का द्योतक है। जब दूसरे गोलमेज सम्मेलन के लिए सभी प्रतिनिधि एकत्र हुए तब संघीय ढांचा समिति (फेडरल स्ट्रक्चर कमेटी) की प्रथम बैठक हुई। संघीय ढांचा समिति में दिनांक 15 सितंबर, 1931 को श्री गांधी ने अपना जो प्रथम भाषण दिया उसमें उन्होंने अस्पृश्यों की समस्या पर इस प्रकार कहा –

> "कांग्रेस ने अस्तित्व में आते ही तथाकथित अस्पृश्यों की समस्या अपने हाथों में ले ली है। कोई समय था जबकि सामाजिक सम्मेलन कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशनों का प्रमुख अंग हुआ करता था, जिसके लिए स्व. रानाडे ने अपनी शक्ति लगा दी थी। अस्पृश्यों से संबंधित सुधार के विषय को प्रमुख स्थान दिया गया था। परंतु 1920 में कांग्रेस ने अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न के लिए बड़ा कदम उठाया, जिससे कि अस्पृश्यता निवारण कांग्रेस मंच का एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम बन जाए। कांग्रेस ने सभी वर्गों में एकता लाने के लिए हिंदू और मुस्लिम एकता को स्वराज प्राप्त करने के लिए जितना आवश्यक समझा, उतना ही सभी वर्गों में एकता और अस्पृश्यता निवारण पर बल दिया था। कांग्रेस की अस्पृश्यों के हित में जो स्थिति 1920 में थी वहीं आज भी है। इस प्रकार आप देखेंगे कि कांग्रेस ने शुरू से ही राष्ट्रीय हित के प्रश्नों पर कार्य किया।"

जिस किसी ने इस विषय पर अध्ययन किया होगा, उसे ज्ञात होगा कि वर्ष 1922 में कांग्रेस ने बारदोली कार्यक्रम में अस्पृश्योद्वार की जिस योजना को स्वीकार किया था, कांग्रेस कितनी विफल रही और वह कार्य उसने किस प्रकार हिंदू महासभा के मत्थे मढ़ दिया। किसी को भी यह कहने में कोई संकोच नहीं होगा कि गांधी जी ने ऊपर जो कुछ कहा, बिल्कुल झूठ था। श्री गांधी के भाषण से यह संकेत नहीं मिलता कि श्री गांधी अस्पृश्यों की मांगों पर क्या करने वाले थे, यद्यपि मैं उनका अभिप्राय समझ गया था।[1]

परंतु अधिक समय तक लोगों को वह यह सोचने से न रोक सके कि इस

1. प्रथम गोलमेज सम्मेलन मे जाने से पहले मैं बम्बई में श्री गांधी से मिला था। उन्होंने मुझसे कहा था कि वह राजनीतिक मामलों में अछूतों के पृथक अस्तित्व के पक्ष में नहीं हैं।

दिशा में उनकी क्या स्थिति होने जा रही है। सितंबर 17, 1931 को संघीय ढांचा समिति की जो बैठक हुई, उसमें श्री गांधी के हाथ में एक अवसर था। बैठक की कार्यसूची में संघीय ढांचा समिति के सदस्यों के चुनाव का प्रश्न भी शामिल था। इस विषय में श्री गांधी के निम्नलिखित विचार थे –

> "मैं इस उप–शीर्ष (पांच) – विशेष हितों में विशेष निर्वाचनक्षेत्रों द्वारा प्रतिनिधित्व पर आता हूं। मैं कांग्रेस के पक्ष में बोलूंगा। कांग्रेस ने हिंदू, मुसलमान, सिख एकता पर विशेष जोर दिया है। इसके लिए ठोस ऐतिहासिक कारण हैं परंतु कांग्रेस किसी भी रूप में इस सिद्धांत को जारी नहीं रखेगी। मैंने विशेष हितों की सूची सुनी है। जहां तक अस्पृश्यों का संबंध है, मैं पूरी तरह से सही समझ गया था कि डाक्टर अम्बेडकर क्या कहना चाहते हैं, परंतु अस्पृश्यों के हित में उसके प्रतिनिधित्व के लिए कांग्रेस डाक्टर अम्बेडकर के साथ है। अस्पृश्यों के हित कांग्रेस के सामने उतने ही स्पष्ट हैं, जितने पूरे देश के किसी अन्य व्यक्ति को स्पष्ट हो सकते हैं। अतः किसी और विशेष प्रतिनिधित्व का मैं पूरी ताकत से विरोध करूंगा।"

यह श्री गांधी द्वारा अछूतों के विरूद्ध कांग्रेस की युद्ध घोषणा के अतिरिक्त कुछ नहीं था। इसके परिणामस्वरूप कांग्रेस और अस्पृश्यों में संघर्ष शुरू हो गया। श्री गांधी की घोषणा से मुझे मालूम हो गया कि श्री गांधी उस अल्पसंख्यक समिति में क्या करेंगे जिसमें इस मुख्य विषय पर विचार होना था। श्री गांधी की योजना थी कि हिंदू, मुसलमान और सिखों में समझौता करा कर सांप्रदायिक समस्या का पटाक्षेप करते हुए अस्पृश्यों को अलग छोड़ दिया जाए। अल्पसंख्यक समिति की बैठक से पहले ही श्री गांधी स्वंय अकेले ही मुसलमानों से समझौता करने में जुट गये। परंतु कोई समझौता न हो सका। अंततः दिनांक 28 सितंबर 1931 को जब अल्पसंख्यक समिति की बैठक हुई उसमें श्री अली इमाम ने मुसलमानों के प्रतिनिधि के रूप में बोलते हुए कहा –

> "मैं व्यक्तिगत रूप से नहीं जानता कि मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल से कोई समझौता वार्ता चल रही है। मुझे यह जानने का अवसर नहीं मिला कि इस प्रकार का कोई प्रस्ताव चल रहा है। ऐसा हो सकता है, जैसा कि मैंने सुना है कि शायद कोई समझौता हो जाए। पर मैं इस विषय में कुछ नहीं जानता। यदि आप मुस्लिम राष्ट्रवादी का विचार मुझसे जानने के इच्छुक है, तो मैं उसे बतलाने को तैयार हूं। इसके लिए मैं आपसे थोड़े समय की अनुमति चाहता हूं।"
>
> "चेयरमैन – मुख्य बात यह है कि इस समिति का विचारणीय

विषय केवल अल्पसंख्यक समस्या तक ही सीमित है।

चेयरमैन सर अली ईमाम– इसी दृष्टि से मैं अपने विचार व्यक्त करता हूँ।

चेयरमैन – यदि इसमें अन्य किसी को कोई आपत्ति न हो तो, मैं सर अली इमाम को अनुमति देता हूं।

महामहिम आगा खां ने निम्नलिखित बात कही –

"मुझे विश्वास है कि आज रात को महात्मा गांधी मुस्लिम प्रतिनिधिमंडल से मिलने जा रहे हैं। हमें आशा है कि अपने उस मित्र से आज मित्रतापूर्ण वातावरण मे बात होगी। जहां तक किसी समझौता वार्ता का संबंध है, मैं इस बारे में यही कह सकता हूँ।"

पंडित मदन मोहन मालवीय ने भी राय दी कि थोड़े समय के लिए स्थगन लाभप्रद होगा। मैंने समझ लिया कि कोई चालबाजी होगी, तो मैंने कहा –

"स्थगन के पहले मैं एक बात यहां कहना चाहूंगा। ऐसे समय में जबकि समझौता वार्ता चल रही हो, दूसरे अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों को भी अपना मामला तैयार करना चाहिए। मैं कहना चाहूंगा कि जहां तक दलित वर्गों की समस्या का संबंध है, हमने पहले इस अल्पसंख्यक उप–समिति को अपना मत प्रकट कर दिया है।

"मुझे जो करना है, वह यह है कि मुझे समिति के सामने एक संक्षिप्त वक्तव्य देना है जिसमें मुझे यह बताना है कि हमें विभिन्न विधानमंडलों में कितना–कितना प्रतिनिधित्व चाहिए।[1] उसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं सोचता। मैं शुरू में ही कह देना चाहता हूँ कि मुझे यह सुन कर प्रसन्नता हुई कि सांप्रदायिक मुद्दे पर समझौता वार्ता होने जा रही है। परंतु आरंभ में ही मैं अपनी स्थिति स्पष्ट कर देना चाहूंगा। हम नहीं चाहते कि कोई संदेह बाकी रहे कि जो लोग समझौता वार्ता चला रहे हैं, उन्हें जानना होगा कि समिति में समझौता करने वाले वे सर्वशक्तिमान नहीं हैं। श्री गांधी अथवा उनसे समझौता करने वाले, जो भी पक्ष हों और जो भी स्थिति हो निस्संदेह उनका समझौता मानने के लिए हम वाध्य नहीं हैं। मै स्पष्ट रूप से इस बैठक में बताए देता हूं।"

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि विभिन्न

1. यह मैंने परिशिष्ट II मे सम्मिलित ज्ञापन में कहा है।

अल्पसंख्यकों द्वारा पेश किए गए दावे उनके अपने दावे हैं। इनका दूसरे अल्पसंख्यकों के दावों से कोई सरोकार नहीं। इसलिए जो भी समझौता एक अल्पसंख्यक समुदाय कांग्रेस के साथ या दूसरे दल के साथ अल्पसंख्यकों के दावों की अनदेखी करके करेगा, तो जहां तक मेरा संबंध है, मैं उसमें भागीदार नहीं रहूंगा। मुझे इस बात से कोई लेना देना नहीं है कि किसी विशेष समुदाय को कोई महत्व मिलेगा या नहीं, परंतु मैं स्पष्ट रूप से बता देना चाहता हूं कि महत्व प्राप्त करने का दावा कोई भी करे या कोई भी किसी को महत्व दे परंतु मेरे हिस्से में से छेड़छाड़ करने का अधिकार किसी को भी नहीं है। मैं यह बात बिल्कुल साफ कर देना चाहता हूं।"

तदुपरान्त जो हुआ वह कार्यवाही के निम्नांकित उद्धरण से स्पष्ट हो जाएगा–

"चेयरमैन – कोई भ्रांति नहीं रह जानी चाहिए। इस समिति के सामने अंतिम रूप से फैसला हो जाना चाहिए और जब अल्पसंख्यकों अथवा समुदायों में कोई विरोधाभास आ जाए, तो उन दलों को चाहिए कि उन विवादास्पद मुद्दों के समाधान के लिए कुछ समय निकाल कर हल कर लें। ऐसा कदम महत्वपूर्ण और आवश्यक सिद्ध होगा, जिसमें आम सहमति पर पहुंचा जा सकता है।

डा. अम्बेडकर – मैंने अपनी स्थिति पूर्णतया स्पष्ट कर दी है।

"चेयरमैन – डा. अम्बेडकर ने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी है और ऐसे ढंग से की है कि उसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं बची है। वह स्पष्टीकरण इस समिति के समक्ष विचार–विमर्श के समय आ जाएगा। मैं वही कहना चाहूंगा, जिससे हम सभी एक दूसरे के सहयोग से सर्वसम्मत निर्णय पर पहुंच सकें। जो केवल दो या तीन दलों के बीच में ही न हो, बल्कि सर्वसम्मत निर्णय हो।

"चेयरमैन – स्थिति यह है कि अब हम कार्यवाही स्थगित करते हैं और बाद में अपनी बैठकें शुरू करेंगे। आप में से दो अथवा तीन दलों में जब तक समझौता वार्ता चल रही है, हमें दूसरे अल्पसंख्यकों के दावे भी सुनने होंगे। मैं सोचता हूं कि वैसा करना हितकर होगा। इसमें समय बचेगा और इससे उस समरसता की सम्भावना को भी ठेस नहीं पहुंचेगी जो हमारे सिख मित्रों, श्री गांधी तथा सर आगा खां तथा उनके मित्रों के बीच स्थापित हो सकेगी।

"डा. अम्बेडकर – मैं यह कहना चाहूंगा कि क्या ऐसी उपसमिति नियुक्त करना संभव नहीं होगा, जिसमें विभिन्न समुदायों के सदस्य हों

साथ में कांग्रेस प्रतिनिधि भी हों, जो स्थगन काल में एक साथ बैठकर समस्या पर बहस कर लें।

"चेयरमैन – मैं यह राय देने जा रहा था। मुझे वैसी समिति नियुक्त करने के लिए न कहिए; वरन् स्वयं कीजिए। मैंने आप सबको बैठक के लिए आमंत्रित किया है। क्या आप लोग अनौपचारिक ढंग से अपने आप बैठक करके ऐसा वार्तालाप नहीं कर सकते थे, जिससे वहां पर आप जो बात करेंगे, उससे कोई पृष्ठभूमि उभर कर सामने आए।

"डा. अम्बेडकर – जैसा आप चाहें।

"चेयरमैन – वैसा करना अधिक अच्छा होगा।

स्थगन काल में तीनों पक्षों का आपस में कोई निर्णय नहीं हुआ। इसके पश्चात पहली अक्तूबर 1931 में जब अल्पसंख्यक समिति की पुनः बैठक हुई तो श्री गांधी ने कहा –

> "प्रधानमंत्री जी पिछली रात महामहिम आगा खां तथा अन्य मुस्लिम मित्रों से वार्तालाप करने के पश्चात, हम इस नतीजे पर पहुंचे हैं कि हम जिस उद्देश्य से यहां एकत्र हुए हैं, उस निर्णय में एक सप्ताह का स्थगन काल होना चाहिए। इस विषय में मुझे अपने साथियों से विचार करने को कोई समय नहीं मिला। वे निस्संदेह मेरे प्रस्ताव से सहमत होंगे।"

इस प्रस्ताव का समर्थन सर आगा खां ने भी किया। मैं उसका विरोध करने के लिए उठा खड़ा हुआ। जो कुछ मैंने कहा वह कार्यवाही के निम्नलिखित उद्धरण से स्पष्ट है –

"डा. अम्बेडकर – धन्यवाद, परंतु पता नहीं है कि आज मैं जिस स्थिति में हूँ, उससे क्या प्रस्तावित समिति में काम करने से मुझे कोई लाभ होगा। इसका कारण यह है – पहले ही दिन श्री गांधी ने हमें बतलाया था कि उन्होंने संघीय ढांचा समिति के सामने यह कह दिया है कि वह भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रतिनिधि होने के नाते मुसलमानों और सिखों के अतिरिक्त किसी अन्य दल को स्वीकारने के लिए तैयार नहीं हैं। वह एंग्लो–भारतीयों, दलित वर्गों और भारतीय ईसाइयों को राजनैतिक मान्यता देने के लिए तैयार नहीं है। मेरे विचार में मैं इस कमेटी में ऐसा कह कर शिष्टाचार का उल्लंघन नहीं कर रहा हूं क्योंकि मुझे एक सप्ताह पहले दलित वर्गों के प्रश्न पर श्री गांधी से बात करने का अवसर प्राप्त हुआ था और दूसरे अल्पसंख्यक

वर्ग के सदस्य हम लोग कल जब श्री गांधी से उनके कार्यालय में मिले, तो उन्होंने हमसे स्पष्ट रूप से कहा कि संघीय ढांचा समिति के सामने जो कुछ उन्होंने कहा था, उसी रवैये पर वह अडिग और वही उनका सुविचारित मत है। मैं कहना चाहूंगा कि जब तक दलित वर्गों को उस अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में मान्यता नहीं होगी, तब तक मैं नहीं समझता कि इस संबंध में श्री गांधी द्वारा प्रस्तावित कमेटी में मेरे शामिल होने से कोई मतलब हल होगा। इसलिए जब तक हमें यह आश्वासन नहीं मिल जाता कि यह समिति इस ढंग से कार्य करती है कि सभी समुदाय जिनके लिए पिछले वर्ष अल्पसंख्यक उप समिति ने भारत के भावी संविधान में शामिल करने की सिफारिश की थी, मैं नहीं समझता कि मैं स्थगन के प्रस्ताव का समर्थन हृदय से कर सकूं। मैं यही स्पष्ट करना चाहता हूं।

× × ×

"डा. अम्बेडकर – मैं अपनी स्थिति और भी स्पष्ट करता हूं। ऐसा प्रतीत होता है कि मैंने जो कुछ कहा उससे लोगों में कुछ भ्रांतियां पैदा हो गई हैं। मुझे स्थगन पर आपत्ति नहीं है। मैं समस्या पर विचार करने के लिए नियुक्त की जाने वाली किसी समिति का सदस्य बनने पर भी एतराज नहीं उठा रहा हूँ। यदि वे मुझे इस समिति का सदस्य बनने का सम्मान प्रदान करते हैं तो इसमें शामिल होने से पहले मैं जानना चाहूंगा कि यह समिति किस समस्या पर विचार करने जा रही है। क्या हिंदू और मुसलमान के बीच जो परस्पर–विरोधी रवैया है उससे संबंधित प्रश्न पर विचार किया जाना है? क्या उस समिति में पंजाब के सिक्खों और मुसलमानों के प्रश्न पर विचार किया जाना है, अथवा ईसाइयों, ऐंग्लोइंडियनों और दलित वर्गों के प्रश्न पर भी बातचीत होगी?

"चर्चा आरंभ करने से पहले यदि हम यह भली भांति समझ लें कि यह समिति हिंदू और मुसलमानों, हिन्दुओं और सिक्खों के प्रश्न पर विचार करने के साथ–साथ ईसाइयों, ऐंग्लोइंडियनों तथा दलित वर्गों के प्रश्न पर भी विचार करने की जिम्मेदारी निभायेगी तो मैं इस बात के लिए पूरी तरह सहमत हूं कि इस स्थगन प्रस्ताव को बिना किसी आपत्ति के पारित किया जाए। मैं फिर भी यह कहना चाहता हूं कि यदि मेरी बात नही मानी गई और इस अन्तराल का उपयोग केवल हिंदू–मुस्लिम प्रश्नों को सुलझाने के लिए किया गया तो मैं यह जोर देकर कहूंगा कि इस प्रश्न पर स्वयं अल्पसंख्यक

समिति को ही विचार करना चाहिए और किसी अन्य अनौपचारिक समिति को इस सांप्रदायिक प्रश्न पर विचार करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए।

श्री गांधी – "प्रधानमंत्री एवं मित्रो। मैं समझता हूं कि हम लोगों ने अपने कार्य की जो रूपरेखा बनाई है, उसके विषय में कुछ लोगों को भ्रम है। मैं सोचता हूं डॉक्टर अम्बेडकर, कर्नल गिडने तथा अन्य मित्रगण, जो कुछ होने जा रहा है, उससे बिना बात परेशान हो रहे हैं। किसी भी वर्ग के राजनैतिक हितों को नकारने वाला मैं कौन होता हूँ। यदि मैं एक भी राष्ट्रीय हित की अनदेखी करता हूँ तो मैं उस विश्वास के योग्य नहीं हूँ जो कांग्रेस ने मुझमें कांग्रेस का प्रतिनिधि होने के नाते प्रकट किया है। निस्संदेह इन विषयों पर मैंने अपने विचार प्रकट किए हैं। मुझे उन्हीं विचारों पर दृढ़ रहना है। प्रत्येक वर्ग के हित की रक्षा करने के बहुत से तरीके हैं। हम सबको मिलकर एक योजना बनाने की कोशिश करनी चाहिए। किसी को अपने विचारों पर बल देने से रोका नहीं जाएगा।

"इसलिए मैं नहीं समझता कि किसी को अपने विचार प्रकट करने में किसी प्रकार का भय हो। प्रत्येक को समान अधिकार होगा। मुझे कोई अधिकार नहीं कि मैं किसी पर अपने विचारों को थोपूँ। मैंने केवल राष्ट्र हित में अपने विचार प्रकट किए थे और जब–जब अवसर आएगा, मैं अपने विचार पेश करूंगा। उनको स्वीकार करना न करना आप पर निर्भर है। इसलिए कृपया आप लोग अब अपना ध्यान इस ओर लगाएं कि यदि आप सोचते हैं कि इस गोलमेज सम्मेलन में मुंह चढ़ाए बैठे रहने की अपेक्षा एक साथ बैठकर विचार करने का तरीका ठीक है, तो आप इस स्थगन को ही नहीं मानेंगे, बल्कि इन अनौपचारिक बैठकों के लिए मैंने जो प्रस्ताव रखा है, उसमें आप ह्रदय से सहयोग करेंगे।

× × ×

"चेयरमैन – अब मैं इसे प्रस्तुत करता हूँ। मित्रों, मेरे दिमाग में यह बात स्पष्ट है कि हम समय व्यर्थ नहीं गवांयेगे। अब से और दूसरी बैठक होने के अंतराल में जैसाकि श्री गांधी ने कहा, अनौपचारिक बैठकें होंगी और मुझे आशा है कि आप सभी दलों के लोग उस अवसर का लाभ उठाएंगे।"

स्थगन के बाद हुई अनौपचारिक बैठक में जो कुछ हुआ उसके बारे में मुझे

बताने की आवश्यकता नही है। यह बैठक पूरी तरह असफल रही। इसके अध्यक्ष श्री गांधी थे। श्री गांधी ने सांप्रदायिक प्रश्न के जटिलतम भाग अर्थात् पंजाब में सिख–मुस्लिम झगड़े से आरंभ किया। किसी स्तर तक मामला सुलझता लगा, जबकि दोनों पक्ष पंच के फैसले के लिए सहमत हो गए। यद्यपि सिख चाहते थे कि जब तक पंच का नाम मालूम न हो जाए, आगे कोई कार्रवाई न की जाए, जबकि मुसलमान पंच का नाम प्रकट करने के लिए तैयार न थे। अस्पृश्यों जैसे दूसरे अल्पसंख्यकों की समस्या हल करने में श्री गांधी को रुचि नहीं थी यद्यपि उन्होंने दूसरे अल्पसंख्यकों की मांगों की सूची प्रस्तुत करने के लिए उनके प्रतिनिधियों से कहा था। श्री गांधी ने उनकी मांगों को सुना, परंतु अनसुना करने के लिए। क्या श्री गांधी ने उन मांगों को बैठक में विचार करने के लिए रखा? जैसे ही सिखों और मुसलमानों के बीच समझौता विफल हुआ वैसे ही श्री गांधी ने बैठक भंग कर दी। अल्पसंख्यक समिति की बैठक 8 अक्तूबर 1931 को हुई। प्रधानमंत्री ने श्री गांधी को पहले बोलने के लिए कहा। श्री गांधी ने कहा –

> "प्रधानमंत्री एवं मित्रों! बड़े खेद एवं दुख के साथ मुझे कहना पड़ रहा है कि विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों के मध्य आपसी वार्तालाप द्वारा सांप्रदायिक प्रश्न को पारस्परिक सहमति के आधार पर हल करने की दिशा में मैं एकदम नाकाम रहा। एक सप्ताह निरर्थक गंवाने के लिए, प्रधानमंत्री एंव मित्रों, मैं आपसे क्षमा चाहता हूं। जब मैंने इस कठिन कार्य को अपने हाथों में लिया था मैं सोचता था कि इस कार्य में मुझे सफलता मिलेगी। मुझे धैर्य एवं संतोष इसी बात में है कि मैंने इसका हल ढूंढ़ निकालने में कोई कसर नहीं उठा रखी।
>
> परंतु यह कहना पूर्णतया सत्य नहीं होगा कि हमारी बातचीत पूर्णतया विफल रही। वार्तालाप की असफलता का कारण भारतीय शिष्टमंडल के सदस्य थे। हम लगभग सभी लोग उन दलों के जिनका हमें प्रतिनिधित्व का करना था निर्वाचित प्रतिनिधि नहीं है, हमें सरकार ने नामनिर्देशित किया है। उस बैठक में एक सर्वमान्य हल पर पहुंचने के लिए जिन प्रतिनिधियों की उपस्थिति नितांत आवश्यक थी, वे भी उस शिष्टमंडल में नहीं थे। आगे मैं कहना चाहूँगा कि यह अल्पसंख्यक समिति बुलाने का समय नहीं था, इसमें यथार्थ की भावना नहीं है क्योकि हमें पता ही नहीं है कि हमें क्या प्राप्त करना है। यदि हमें यह ज्ञात होता कि हम चाहते हैं, उसके बदले ऐसी असफलता हाथ लगेगी, तो हम वहीं रुक जाते और इस अपवित्र विवाद से बचे रहते। यदि हमारे मतभेद गहरे हो गए है और यदि वे विदेशी प्रभुत्व के कारण उभर कर न आते, तो समाधान स्वराज्य संविधान की बुनियाद न रह

कर उसका कलश बन गया होता। मुझे लेशमात्र भी संदेह नहीं कि स्वतंत्रता की सूर्य किरणों में सांप्रदायिकता का हिमखंड पिघल जाएगा।

"इसलिए मेरा सुझाव है कि अल्पसंख्यक समिति अनिश्चित समय के लिए स्थगित कर दी जाए और संविधान के मूल सिद्धातों की शीघ्र रचना की जाए। इस बीच सांप्रदायिक समस्या का सही हल निकालने का अनवरत प्रयास होना चाहिए। इससे संविधान निर्माण में कोई रूकावट या बाधा नहीं आनी चाहिए। हमें अपना ध्यान सब बातों से हटाकर मुख्य कार्य संविधान निर्माण पर केंद्रित करना होगा।

"मुझे समिति को यह बताने की जरूरत नहीं कि मेरी असफलता का अर्थ यह नहीं कि सांप्रदायिक समस्या का सर्वमान्य हल तलाश करने की सभी आशाएं धूमिल हो गई हैं। मेरी असफलता का अर्थ मेरी घोर पराजय भी नहीं है। मेरे शब्दकोष में ऐसा शब्द ही नहीं है। मेरी स्वीकारोक्ति का अर्थ केवल विशेष प्रयत्नों का असफल होना है, जिनके लिए हमें आपने एक सप्ताह का समय दिया था।

"मेरी स्वीकारोक्ति का अर्थ है कि मेरी असफलता जिसे सफलता की दिशा में एक सीढ़ी मानी जाए और मैं आप सभी से ऐसा करने का आह्वान करता हूं। सांप्रदायिक समस्या का हल ढूंढने में हमें चाहे जितनी भी असफलता मिले और गोलमेज सम्मेलन के प्रयत्न विफल हो जाते हैं, तो भी मेरी यह राय है कि भावी संविधान में यह एक धारा जोड़ दी जाए कि जिन मुद्दों पर निर्णय लिया जा सकता है उनकी जांच परख की जाए तथा अंतिम निर्णय देने के लिए एक पंचाट बना दिया ज़ाए।"

सभी ने बहस के दौरान श्री गांधी के इस आरोप को गलत बताया कि प्रतिनिधि सरकार द्वारा नामजद किए गए थे और वे जनता का प्रतिनिधित्व नहीं करते थे। मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट करते हुए कहा –

"प्रधानमंत्री जी! पिछली रात जब औपचारिक बैठक की समाप्ति के बाद हम लोग बैठक से बिदा हुए थे तो हम सबकी कम से कम यह राय थी कि जब हम लोग अगली बैठक में शामिल होंगे, तो हम में से कोई भी इस प्रकार का भाषण नहीं देगा, जिसमें आरोप की भावना हो। मुझे यह देखकर अफसोस होता है कि श्री गांधी ने उस आपसी समझौते का गला घोंट दिया। मुझे क्षमा करें, मुझे यह कहने का मौका मिला है कि श्री गांधी ने वहीं से अपनी बात आरंभ की जो उनकी

नजर में असफलता का कारण था। अब मैं अपने विचार से वही बातें बताता हूँ, जिन्हें मैं औपचारिक बैठक में किसी समझौते पर पहुंचने की असफलता का कारण समझता हूं। मैं उन पर यहां पर बहस नहीं करना चाहता। अल्पसंख्यक समिति की बैठक अनिश्चित काल तक स्थगित करने के प्रस्ताव में 'श्री गांधी की जो बातें मुझे कुछ खटकी वह ये थी कि उन्होंने अपनी सीमाएं लांघी, उन्होंने अपने को अपनी स्थिति में सीमित नहीं रखा, उन्होंने विभिन्न संप्रदायों के प्रतिनिधियों पर, जो यहां गोलमेज सम्मेलन में बैठे हैं, छींटाकशी की। श्री गांधी ने कहा था कि सभी प्रतिनिधि सरकार द्वारा नामजद किए गए हैं और वे अपने संबंधित समुदाय का प्रतिनिधित्व नहीं करते। हम इस बात से इंकार नहीं कर करते हैं कि हम सरकार द्वारा नामजद किए गए हैं, परंतु जहां तक मेरा संबंध है, इस बात में तनिक भी संदेह की गुंजाइश नहीं कि यदि इस सभा के लिए दलित वर्गों को अपने प्रतिनिधि चुनने का अवसर दिया जाता, तो निश्चय ही मैं ही यहां चुन कर आता। प्रश्न यह नहीं है कि मैं सरकार द्वारा नामजद किया गया हूं अथवा नहीं। मैं अपने उस समुदाय का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करता हूं। इसमें किसी को कोई शक नहीं रहना चाहिए।

"महात्मा गांधी सदा से इस बात का दावा करते रहे हैं कि दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है और इतना जोरदार प्रतिनिधित्व करती है जितना मैं तथा मेरे साथी नहीं कर सकते। इस दावे के विषय में मैं इतना ही कह सकता हूं कि यह एकदम झूठा और गैरजिम्मेदाराना दावा है और इस दावे से संबंधित लोग इससे सर्वथा इंकार करते हैं।

"मुझे अल्मोड़ा जिले के दलित वर्ग संघ के अध्यक्ष का तार मिला। मैं समझता हूं, वह संयुक्त प्रांत में है, जहां से मेरा कोई परिचय नहीं है और कभी मैं वहां गया भी नहीं हूं। वह तार इस प्रकार है –

"यह सभा कांग्रेस में अपने अविश्वास की घोषणा करती है और उसने देश के अंदर और बाहर जो रवैया अख्तियार किया है तथा कांग्रेस कार्यकर्ताओं द्वारा जो हथकंडे अपनाए गए हैं, उनकी भर्त्सना करती है।"

मैं इसे और आगे नहीं पढना चाहता। परंतु यह कह सकता हूं कि मैं समझता हूं कि श्री गांधी अस्पृश्यों के बीच में अपनी स्थिति

का जायजा लेना चाहेंगे, तो उन्हें सच्चाई का पता चल जायेगा। यद्यपि कांग्रेस में ऐसे भी लोग होंगे, जो दलित वर्गों के प्रति सहानुभूति दिखलाते होंगे, परंतु दलित वर्ग के लोग कांग्रेस में नहीं हैं। यह ऐसी स्थिति है, जिसका मैं प्रमाण देना चाहता हूं। मैं इन विवादित बिंदुओं पर नहीं जाना चाहता। ये मुख्य प्रस्तावना से कुछ अलग प्रतीत होते हैं। गांधी जी ने जो मुख्य बात रखी वह यह थी कि यह समिति अनिश्चित काल के लिए स्थगित कर दी जाए। इस प्रस्ताव के संबंध में मैं पूर्णतः सर मोहम्मद शफी के विचारों से सहमत हूं। इसके लिए केवल दो विकल्प हैं – या तो अल्पसंख्यक कमेटी कोई संतोषजनक हल खोजे और यदि यह संभव न हो, तो ब्रिटिश सरकार इस समस्या का समाधान स्वयं करे। हम ऐसे किसी तीसरे दल के पंच–निर्णय पर इसे छोड़ देने के लिए सहमत नहीं हो सकते, जिसका ब्रिटिश सरकार जैसा जिम्मेदाराना भाव न हो।

प्रधानमंत्री, मुझे एक बात स्पष्ट करने की अनुमति दें कि दलित वर्गों ने ब्रिटिश सरकार से भारतीयों को तुरंत सत्ता हस्तांतरित करने के लिए अभी कोई उत्तेजना नहीं दिखाई, न वे इसके लिए आतुर हैं। ब्रिटिश सरकार के खिलाफ उनकी कुछ विशेष शिकायतें हैं और मैं समझता हूं कि मैंने उन शिकायतों को बहुत सही और स्पष्ट ढंग से पेश किया है। वास्तव में सच तो यह है कि दलित वर्ग के लोग राजनीतिक शक्ति के हस्तांतरण के लिए व्याकुल नहीं हैं। स्पष्टतः उनकी स्थिति इस प्रकार की है कि वे सत्ता हस्तांतरण के लिए आतुर नहीं हैं, परंतु यदि इस समय राजनीतिक सत्ता का हस्तांतरण करने के लिए जो होहल्ला मचा हुआ है, ब्रिटिश सरकार उसका सामना करने में अपने को बेबस पाती है। हम यह जानते हैं कि दलित वर्ग के लोग वर्तमान परिस्थितियों में इसका प्रतिरोध करने की स्थिति में नहीं हैं। तब हमारा निवेदन यह है कि सत्ता हस्तांतरण कुछ शर्तों के साथ ऐसी व्यवस्था में हो कि किसी गिरोह के हाथ में सारी शक्ति न चली जाए किसी अल्पतंत्र के हाथ में न चली जाए अथवा कुछ लोगों के गिरोह की मुट्ठी में न दब जाए, चाहे वे मुसलमान हों, या हिंदू। वरन वह हल ऐसा हो कि अपने–अपने समुदाय के अनुपात में सत्ता में सबको हिस्सा मिले। इस विचार से मुझे ऐसा नहीं लगता कि संघीय ढांचा समिति में मैं उस समय तक कैसे भाग लूं जब तक कि मैं यह नहीं समझ पाऊं कि उस समय तक मेरी तथा मेरे समुदाय की क्या स्थिति होगी।"

प्रधानमंत्री ने अपने समापन में कहा –

> "हम बैठक स्थगित करते हैं। मैं दुबारा आप लोगों की बैठक बुलाऊंगा। इस बीच मैं चाहूंगा कि मेरे सामने जो लोग बैठे हुए हैं, जो अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधि हैं वे भी अपनी ओर से प्रयत्न करें।
>
> यदि आप लोगों में कोई आम सहमति हो जाती है, तो मेरी राय है कि उससे सबको अवगत कराएं.........। ब्रिटिश सरकार आपके समझौते में आड़े नहीं आएगी। इसलिए मैं चाहता हूं कि हमने अब तक जो निराशाजनक बातें सुनी, उन्हें छोड़कर अब अपने दिलों में यह बात रखें कि ब्रिटिश सरकार आगे बढ़ना चाहती है। क्योंकि ब्रिटिश सरकार कृतसंकल्प है कि भारत में ऐसा सुधार किया जाए जो हमारे विचारों से मेल खाता हो और जिससे स्वतंत्रता की ओर कदम बढ़ता हो। यही हम चाहते हैं। मैं सभी प्रतिनिधियों से अपील करता हूं कि प्रगति में किसी भी प्रकार के रोड़े न अटकाएं।

IV

प्रधानमंत्री के सुझाव के अनुसार अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधियों ने इस उद्देश्य से अनौपचारिक बातचीत की कि वे इसका कोई हल निकालें। उन्होंने आपस में विचार–विमर्श कर एक करार तैयार किया और उसे 13 नवंबर 1931 को अल्पसंख्यक समिति की बैठक की पूर्वसंध्या पर प्रधानमंत्री को प्रस्तुत किया। उस बैठक का शुभारंभ करते हुए प्रधानमंत्री ने कहा –

> "आरंभ से ही इस समिति का कार्य बहुत महत्वपूर्ण रहा है। आज मुझे इस बात पर खेद है कि आप सब लोग एक सर्वमान्य समाधान पर पहुंचने में असफल रहे हैं।
>
> "कल रात एक प्रतिनिधिमंडल मुझसे मिला था जिसमें मुसलमानों, दलित वर्गों तथा कुछ हद तक भारतीय ईसाइयों, एंग्लो–इंडियनों और ब्रिटिश समुदाय के प्रतिनिधि थे। वे कल रात हाउस आफ कामन्स में मेरे कक्ष में आकर मुझसे मिले। उनके पास तैयार किया गया वह सहमति पत्र भी था, जिस पर उन सबकी आम राय थी। उन्होंने मुझे बतलाया कि उस समझौते में ब्रिटिश भारत की 46 प्रतिशत जनता की मांग समाविष्ट है।
>
> "उस समय तुरंत उस पर विचार करने का समय नहीं था। मैं समझता हूं, मुझे दिया गया वह समझौता पत्र कमेटी के अधिवेशन

> में अधिकृत रूप में रखा जाए और इसके लिए मैं आगा खां से जवाब देने के लिए कहूंगा कि वह उस समझौता पत्र को यहां प्रस्तुत करें।"

आगा खां उठ खड़े हुए और बोले –

> "प्रधानमंत्री मैं मुसलमानों, दलित वर्गों, एंग्लोइंडियनों, यूरोपियनों और भारतीय ईसाइयों की ओर से वह समझौता प्रस्तुत करता हूं, जिसमें वे सभी लोग सांप्रदायिक समस्या का हल निकालने में सफल हुए, जो गोलमेज सम्मेलन की सांप्रदायिक समिति से संबंधित है। हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि इस कठिन और जटिल प्रस्ताव पर यह समझौता बहुत सोच विचारकर किया गया है और इसे संपूर्ण रूप में लिया जाना चाहिए। इस समझौते के सभी अंश एक दूसरे के पूरक है।"

यह दस्तावेज अल्पसंख्यक समझौता[1] (माइनारिटीज़ पैक्ट) के नाम से प्रसिद्ध है। निस्संदेह श्री गांधी जी के भाषण ने सबका ध्यान विशेष रूप से आकर्षित किया। इस समझौते से श्री गांधी बिफर उठे। वह अल्पसंख्यक समझौता प्रस्तुत करने और विशेषकर अछूतों को पृथक राजनीतिक अधिकारों पर मान्यता मिल जाने के कारण, आग बबूला हो गए। श्री गांधी ने जो कहा वह इस प्रकार था –

> "मैंने जो कुछ पहले कहा था, उसे दोहराना चाहता हूं कि हिंदुओं, मुसलमानों और सिखों को जो समझौता मान्य होगा कांग्रेस उसे हमेशा स्वीकार करेगी। कांग्रेस किन्हीं अन्य अल्पसंख्यक संप्रदायों के विशेष निर्वाचन को स्वीकार नहीं करेगी। दो शब्द तथाकथित अस्पृश्यों के विषय में कहना चाहूंगा कि दूसरे अल्पसंख्यकों के अधिकारों को मैं समझता हूं, परंतु अस्पृश्यों के बारे में जो बातें की गई हैं, वह हम सब का अंग भंग है। इससे जन्म–जन्मांतर तक विभाजन की रेखा खिंच जाएगी। मैं अस्पृश्यों के महत्वपूर्ण हितों का सौदा नहीं करूंगा, चाहे भारत की स्वतंत्रता भी दाव पर लगी हो। मैं अपने आप को व्यक्तिगत रूप में अस्पृश्यों की बहुसंख्या का एकमात्र प्रतिनिधि होने का दावा करता हूं। मैं यहां पर केवल कांग्रेस की ओर से ही नहीं बोल रहा हूं, वरन् अपनी ओर से भी बोल रहा हूं और मेरा दावा है कि यदि अस्पृश्यों में जनमतसंग्रह कराया जाए, तो उनके मत मुझे मिलेंगे और मेरा स्थान शीर्ष पर होगा। मैं भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक अस्पृश्यों से कहूंगा कि पृथक निर्वाचन प्रणाली तथा उनके लिए पृथक आरक्षण उनके इस कलुषित अलगाव को मिटाने का सही

1. यह परिशिष्ट तीन में शामिल है।

तरीका नहीं है। यह उन्हीं के लिए लज्जा की बात नहीं है, वरन् कट्टर हिंदुओं के लिए भी लज्जाजनक है।

"यह समिति और सारी दुनिया समझ ले कि आज हिंदू सुधारकों की एक संस्था है, जो अस्पृश्यता के कलंक को मिटाने का प्रण ले चुकी है। हम नहीं चाहते हैं कि सरकारी कागजात पर तथा जनगणना में अस्पृश्यों का पृथक वर्ग दर्शाया जाए। सिख लोग जैसे हैं, निरंतर बने रहें, मुसलमान और यूरोपियन लोग भी। क्या अस्पृश्य भी निरंतर अस्पृश्य बने रहेंगे? मैं आगे और स्पष्ट कहूंगा कि अस्पृश्यता बनी रहने की अपेक्षा हिंदू धर्म का नामोनिशान मिट जाना बेहतर होगा। अतः डाक्टर अम्बेडकर की आकांक्षा है कि अस्पृश्यों की उन्नति होने के लिए, सम्मान प्रदर्शन करते हुए, मैं उनकी भावना और योग्यता का सम्मान करता हूँ परंतु यहां मैं विनम्रतापूर्वक कहूंगा कि उन्होंने गलत दिशा में सिर खपाया है। उन्हें जो कटु अनुभव हुए हैं, शायद उसी की छाप उनके निर्णय पर है। इससे मुझे यह कहते हुए दुःख होता है। यदि इस विषय पर मैं चुप्पी साध लूँगा, तो मैं उनके हितों के प्रति वफादार नहीं होऊंगा जो मुझे जी जान से प्यारे हैं। मैं उनके अधिकारों को लेकर कोई सौदेबाजी नहीं करूँगा, चाहे उसके बदले मुझे सारे विश्व का साम्राज्य ही क्यों न मिल जाए? मैं पूरी जिम्मेदारी के साथ बोल रहा हूं और कहता हूं कि डाक्टर अम्बेडकर जो दावा पेश करते हैं, जैसे कि वह भारत के समस्त अस्पृश्यों की ओर से बोलते हैं, इससे हिंदू धर्म का विभाजन होगा, जिसे मैं किसी भी कीमत पर नहीं होने दूंगा। यदि अस्पृश्य इस्लाम अथवा ईसाइयत ग्रहण करना चाहें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं। मैं उसे बर्दाश्त कर सकता हूं, लेकिन मैं यह नहीं बर्दाश्त करूंगा कि हिंदू धर्म गांव–गांव में दो भागों में विभाजित हो जाए। जो अस्पृश्यों के राजनैतिक अधिकारों के हितों की बात करते हैं, वे भारत को नहीं जानते। वे नहीं जानते कि भारत का समाज किस प्रकार बना है। इसलिए मैं पूर्णतया स्पष्ट कर देना चाहता हूं, चाहे मैं अकेला भी रह जाऊं, मैं अंतिम सांस तक इसका विरोध करूंगा।"

चेयरमैन ने, यह जानकर कि उसमें कोई सर्वमान्य समझौता नहीं हो पाया है, अल्पसंख्यक समिति के अनिश्चित काल के लिए स्थगित करने के पहले, प्रतिनिधियों को परामर्श देते हुए कहा –

"क्या इस समिति के समस्त सदस्यगण सांप्रदायिक समस्या को हल करने के लिए मुझसे लिखित अनुरोध करेंगे और मेरे द्वारा किए गए

फैसले को स्वीकार कर लेंगे? मैं समझता हूं कि यह अच्छा प्रस्ताव है...... क्या सदस्यगण ऐसा अनुरोध करते हुए यह प्रण करेंगे कि मैं किसी वर्ग या व्यक्ति से ऐसा नहीं चाहता हूं, चाहे वह अस्थायी ही हो और आप सभी लोग उस पर अपनी सहमति प्रदान करेंगे? मैं अभी ऐसा नहीं चाहता, मैं कहता हूं कि क्या आप लोग इस विश्वास के साथ दिए गए फैसले को मानेंगे और नये संविधान के अनुसार पूरी क्षमता के साथ कार्य करेंगे और अपने नाम लिखकर देंगे? मैंने कई वर्गों से कम से कम कुछ व्यक्तियों से भी समय–समय पर कहा है, परंतु उसका कोई परिणाम नहीं निकला। इससे स्थिति में सरलता आएगी, परंतु उसे दरकिनार करते हुए उन बातों को न भूल जाएं, जो मैंने बैठक का आरंभ करते हुए कही थी कि संविधान निर्माण की अपेक्षा सरकार को सांप्रदायिक मतभेदों को अधिक महत्व नहीं दिया जाना चाहिए।"

V

इस प्रकार अल्पसंख्यक समिति द्वारा सांप्रदायिक समस्या का हल ढूंढ निकालने के समस्त प्रयत्नों पर पानी फिर गया। समिति में बहस के कारण श्री गांधी का ध्यान अस्पृश्यों की ओर गया। प्रत्येक ने अनुभव किया कि श्री गांधी अस्पृश्यों के कट्टर शत्रु हैं। अस्पृश्यों के प्रश्न पर श्री गांधी ने अपनी पूरी शक्ति लगा दी और अपना सारा ध्यान केंद्रित कर दिया, जैसे कि श्री गांधी का गोलमेज सम्मेलन में जाने का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों की मांगों की काट करना ही रहा हो। जो श्री गांधी के मित्र थे, वे भी अस्पृश्यों की मांगों के प्रति श्री गांधी का वास्तविक रूप देखकर सकते में पड़ गए। मुसलमानों तथा सिखों की मांग पर श्री गांधी की सहमति तथा अस्पृश्यों की मांग को नकार देना उनके लिए बड़े अचरज की बात थी। उन्होंने इस विषय पर जो कुछ स्पष्टीकरण मांगे श्री गांधी उनका विरोध करने का कोई तार्किक उत्तर नहीं दे सके। गोलमेज सम्मेलन में श्री गांधी का तर्क यही था कि हिंदुओं ने अस्पृश्यों के उद्धार का कार्य गंभीरता से लिया है और इसीलिए उन्हें राजनैतिक संरक्षण देने का कोई औचित्य नहीं। गोलमेज सम्मेलन के बाहर श्री गांधी ने इसके विपरीत जो कारण प्रस्तुत किया था वह इस प्रकार है – श्री गांधी ने अपने पक्ष में कहा –

"मुसलमान और सिख भली भांति संगठित हैं, परंतु अस्पृश्य नहीं। उनमें राजनैतिक चेतना बहुत कम है। वे काफी सताए हुए ओर भयाक्रांत है, उनके प्रति भीषण दुर्व्यवहार हुआ है। मैं उन्हें भय से मुक्ति दिलाना चाहता हूं। यदि उनके लिए पृथक मतदान की व्यवस्था कर दी जाएगी, तो गांवों में उनकी दशा बहुत दयनीय हो जाएगी। वहां कट्टर हिंदुओं का ही प्रभुत्व है। वहां हिंदुओं का ही उच्च वर्ग है, जिन्होंने युगों से

अस्पृश्यों की उपेक्षा का पश्चाताप करना है। यह पश्चाताप उनका सामाजिक सुधार तथा उनकी सेवा करके ही किया जा सकता है, उनके लिए पृथक निर्वाचन मांग कर नहीं। पृथक मतदान से उनके और हिंदुओं के बीच झगड़े खड़े होंगे और उन्हें हिंदुओं से अलगकर देंगे। आपको समझ लेना चाहिए कि मैं सिखों और मुसलमानों के विशेष प्रतिनिधित्व के प्रस्ताव को सहन कर सकता हूँ, मुझे विश्वास है कि अस्पृश्यों के लिए यह गंभीर खतरे की बात होगी। मुझे विश्वास है कि अस्पृश्यों के लिए पृथक मतदान वर्तमान सरकार की ताजा तरकीब है। केवल इस बात की आवश्यकता है कि मतदान सूची में उनके नाम होने चाहिए और संविधान में उन्हें मौलिक अधिकार दिए जाएं। ऐसे मामलों में जहां उनके साथ अनुचित व्यवहार किए जाएं और उनके प्रतिनिधि को जानबूझकर बाहर कर दिया जाए, तो उन्हें विशेष चुनाव पंचाट का अधिकार हो कि चुने गए अभ्यर्थी को हटा कर उस व्यक्ति को सीट देने का अवसर दें, जो हार गया था। पृथक मतदान से वे सदा के लिए अलग हो जाएंगे। मुसलमान सदा मुसलमान रहेगा। क्या आप अस्पृश्यों को सदा के लिए अस्पृश्य ही बनाए रखना चाहते हैं? पृथक मतदान इस कलंक को अमिट और पक्का बना देगा। आवश्यकता इस बात की है कि अस्पृश्यता समाप्त की जाए और जब आप इतना कर लेंगे, तब जो पृथकता का भाव उच्च वर्ग द्वारा निम्न वर्ग पर लादा गया है, समाप्त हो जाएगा। जब आप पृथकता के भेद को नष्ट कर देंगे, तब आप किसे पृथक निर्वाचन देंगे? आप यूरोप के इतिहास पर दृष्टिपात करें। क्या आपने श्रमिक वर्ग अथवा वहां की महिलाओं को पृथक मतदान अधिकार दिया था? आप अछूतों को वयस्क मताधिकार देकर उन्हें संरक्षण प्रदान करें। यहां तक कि दंभी हिंदू भी उनसे वोट मांगने जाएंगे।

"तब आप पूछेंगे कि क्या डा. अम्बेडकर तब भी उनके प्रतिनिधि के रूप में पृथक मतदान अधिकार की मांग करेंगे? मैं डा. अम्बेडकर की बड़ी इज्जत करता हूं। उन्हें क्षुब्ध होने का पूरा अधिकार है। यह स्वंय उनके धैर्य की बात है कि वे हमारा सिर नहीं तोड़ सकते। वह आजकल इतने अधिक अविश्वास और शंका से भरे हुए हैं कि उन्हें उसके अतिरिक्त और कुछ नहीं सूझता। उन्हें प्रत्येक हिंदू अस्पृश्यों का पक्का शत्रु नजर आता है और यह स्वाभाविक है। आरंभ में दक्षिणी अफ्रीका में मेरे साथ भी यही स्थिति थी। मैं जहां कहीं जाता यूरोपियन लोगों द्वारा सताया जाता। यह डा. अम्बेडकर के लिए स्वाभाविक है

कि उनके खून में उबाल आ जाए, परंतु उन्होंने जो पृथक मतदान की मांग की है, उससे समाज सुधार नहीं होगा, भले ही वे सत्ता और अपनी हैसियत बढ़ा लें। परंतु इससे अस्पृश्यों का कोई हित नहीं होगा। मैं साधिकार यह कह सकता हूं, क्योंकि मैं उन अस्पृश्यों के साथ रहा हूं और वर्षों तक उनके सुख–दुख में हिस्सेदार रहा हूं।"

गोलमेज सम्मेलन में श्री गांधी केवल प्रचार से संतुष्ट न थे। जब उन्होंने देखा कि प्रचार करने से भी कोई आशातीत सफलता हाथ नहीं लग रही है, तो वे षड्यंत्र पर उतर आए। जब श्री गांधी ने सुना कि प्रधानमंत्री की राय के अनुसार अल्पसंख्यक समझौता प्रस्तुत होने वाला है और उस समझौते से अस्पृश्यों को सभी अन्य अल्पसंख्यकों का समर्थन मिलने वाला है, विशेषकर मुसलमानों के समर्थन से तो श्री गांधी परेशान हो गए, तो उन्होंने अस्पृश्यों को अलग–थलग करने के लिए नया पासा फेंका। इसके लिए श्री गांधी ने मुसलमानों की 14 मांगें मान ली और उन्हें अस्पृश्यों से अलग करने की योजना बनाई यद्यपि वे ऐसा करने के लिए पहले सहमत नहीं थे। जब उन्होंने देखा कि मुसलमान अस्पृश्यों को समर्थन दे रहे हैं, तब श्री गांधी ने उनकी 14 सूत्रीय मांग इस सौदेबाजी के साथ मानने के प्रति सहमति प्रकट की कि वे अस्पृश्यों को समर्थन न दें। जो सुलहनामा तैयार किया गया वह इस प्रकार था –

गांधी मुस्लिम समझौते का प्रारूप[1]

गोलमेज सम्मेलन में मुस्लिम प्रतिनिधि[2]

टेलीफोन : विक्टोरिया – 2360 क्वीन्स हाउस

तार : कोर्ट लाइफ – लंदन 57–सेंटजेम्स कोर्ट

बकिंघम गेट लंदन, एस.डब्ल्यू.1

6 अक्तूबर, 1931

श्री गांधी तथा मुस्लिम प्रतिनिधियों की कल रात 10 बजे जिन प्रस्तावों पर बहस हुई थी, वे दो भागों में विभाजित हैं – अपने हितों की सुरक्षा के लिए मुसलमानों ने जो प्रस्ताव रखे तथा श्री गांधी ने कांग्रेस की नीति के संबंध में जो प्रस्ताव रखे। उन दोनों प्रस्तावों पर श्री गांधी ने स्वीकृति प्रदान की और वे मुस्लिम प्रतिनिधि–मंडल के सामने विचारार्थ रखे गए –

1. यह दस्तावेज मैंने 1939 में अपनी पुस्तक 'थाट्स आन पाकिस्तान' में परिशिष्ट के रूप में छापा था। यह उस समय पहली बार प्रकाशित हुआ था। इसकी प्रामाणिकता पर कभी भी सन्देह नहीं किया गया।
2. इससे पता चलता है कि यह दस्तावेज मुस्लिम लीग प्रतिनिधिमण्डल के लैटर–पैड पर टाइप किया गया था।

मुस्लिम प्रस्ताव	श्री गांधी का प्रस्ताव
1. पंजाब और बंगाल में मुसलमानों की संख्या 1 प्रतिशत अधिक है। परंतु यह प्रश्न मुसलमानों पर छोड़ दिया जाए कि नया संविधान लागू होने से पहले सदन में सदस्य संख्या का 51 प्रतिशत संरक्षण मुसलमानों को संयुक्त मतदान के द्वारा दिया जाए या नहीं।	1. यह कि मतदान का अधिकार पूर्ण वयस्क मताधिकार के आधार पर होना चाहिए।
2. दूसरे प्रांतों में जहां पर मुसलमान अल्पमत में हैं वर्तमान अनुपात जारी रहें, परन्तु सीटें संयुक्त मतदान के अधीन सुरक्षित रहें अथवा पृथक पृथक मतदान के, इस पर मुस्लिम मतदाता संविधान के अंतर्गत जनमतसंग्रह द्वारा निर्णय करें और उनका निर्णय स्वीकार किया जाए।	2. वहां पर सिख और हिंदू अल्पसंख्यकों के अतिरिक्त किसी को सरंक्षण नहीं होगा।
3. यह कि केंद्रीय व्यवस्थापिका के दोनों सदनों में अंग्रेजी राज के प्रतिनिधियों की कुल संख्या का 26 प्रतिशत मुसलमान प्रतिनिधियों का होना चाहिए और 7 प्रतिशत कम से कम मुसलमान होने चाहिए। यह उस कोटे में से होना चाहिए जो भारतीय राज्यों को आवंटित किया जाये अर्थात् पूरे सदन का एक तिहाई प्रतिनिधित्व मुसलमानों को मिलना चाहिए।	3. कांग्रेस मांग करती है कि – (I) पूर्ण स्वतंत्रता (II) सेना पर तुरंत एवं पूर्ण नियंत्रण, (III) विदेशी मामलों पर पूर्ण नियंत्रण, (IV) वित्त पर पूर्ण नियंत्रण, (V) किसी स्वतंत्र अधिकार द्वारा सार्वजनिक ऋणों (डैट्स) और दायित्वों की जांच करना। (VI) हिस्सेदारी के विषय में दोनों पक्षों को निरस्ति का अधिकार।
4. यह कि अवशिष्ट अधिकार अंग्रेजी राज की प्रांतीय सरकारों में अंतर्निहित होने चाहिए।	

5. यह कि निम्नांकित विषयों पर भी सहमति हुई थी–

(I) सिंध[1], (II) उत्तर पश्चिम सीमा प्रांत[2], (III) सेवाएं[3], (IV) मंत्रिमंडल[4] (V) मौलिक अधिकार तथा धार्मिक एवं सांस्कृतिक मामलों में संरक्षण। (VI) किसी भी संप्रदाय के विरुद्ध कानून बनाने पर सुरक्षात्मक उपाय।

यह सत्य है कि इस समझौते के प्रारूप में अस्पृश्यों का कहीं भी उल्लेख नहीं किया गया। परंतु मुसलमान सिखों के अतिरिक्त किसी अन्य समुदाय को समर्थन न देने के लिए वचनबद्ध थे – इस बात से साफ स्पष्ट है कि वे अस्पृश्यों को कोई समर्थन नहीं देना चाहते थे। इस षड्यंत्र में श्री गांधी ने मुंह की खाई, जो स्वाभाविक था। मुसलमान, जो अपने अधिकारों की सुरक्षा की मांग कर रहे थे, अपने वायदे पर नहीं टिक सके और अस्पृश्यों की मांगों के विरोध पर चुप लगा गए और उसका विरोध नहीं किया। श्री गांधी अस्पृश्यों को दबाने की धुन में इतना बोखलाए कि भले बुरे का भेद ही नहीं कर सके। श्री गांधी अपने शब्दों पर टिके नहीं रहे। अल्पसंख्यक समिति में श्री गांधी ने कहा था कि यदि समिति अस्पृश्यों के पृथक मतदान की मांग पर सहमत होती है, तो उसे इसका अधिकार है। उसका अर्थ था बहुमत के फैसले को मानना। परंतु जब उन्हें मालूम हुआ कि दूसरे अल्पसंख्यक अस्पृश्यों की मांगों का समर्थन कर रहे हैं, तब श्री गांधी का मुसलमानों के पास आकर उनकी चौदह सूत्रीय मांग बेहिचक स्वीकार कर ले, जिन्हें कांग्रेस हिंदू महासभा, यहां तक कि साइमन कमीशन भी अस्वीकार कर चुका था। श्री गांधी ने लोकमत की भी अनदेखी कर दी। नैतिकता का जूलूस निकाल दिया। पर उनकी शैतानी चाल भी न चल पाई, क्योंकि मुसलमानों ने उनको मझधार में छोड़ दिया। जब गोलमेज सम्मेलन के दूसरे सत्र का अवसान हो गया, तब अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों ने प्रधानमंत्री का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया, जिसमें लिखित रूप से प्रधानमंत्री को अधिकृत किया गया था कि वह पंच के तौर पर सांप्रदायिक समस्या पर निर्णय दें। इस बात को अल्पसंख्यको

1. सिंध का पृथक्करण अभिप्रेत है।
2. पश्चिमोत्तर प्रांत में प्रांतीय स्वायत्तता और उत्तरदायी सरकार अभिप्रेत है।
3. सेवाओं में प्रतिनिधित्व अभिप्रेत है।
4. मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व अभिप्रेत है।

ने भी मान लिया था। श्री गांधी[1] सहित बहुत से प्रतिनिधियों ने भी यह लिखित रूप में दिया था। प्रतिनिधियों को अब कुछ करना ही नहीं था और भारत आकर प्रधानमंत्री के निर्णय की प्रतीक्षा करनी थी जिसके लिए उन्हें खुशी खुशी पंच बनाया गया था।

VI

इसके पहले कि इस विषय में कुछ कहूं, प्रधानमंत्री ने क्या फैसला दिया, मैंने मताधिकार समिति के सदस्य की हैसियत से, जो अजीब हालत देखी, मैं उसको बताना चाहता हूं। दूसरे गोलमेज सम्मेलन समाप्त होने के बाद, प्रधानमंत्री ने नए संविधान में मताधिकार के प्रश्न पर विचार करने के लिए एक समिति द्वारा जांच–पड़ताल कराने की सलाह दी। तदनुसार दिसंबर 1931 में लार्ड लोथियन के सभापतित्व में एक कमेटी नियुक्ति की गई। इसका उद्देश्य था, मताधिकार की व्यवस्था के लिए सुझाव देना। इस विषय में प्रधानमंत्री ने, जो पत्र लिखा था, उसकी भाषा इस प्रकार थी –

> "विधायकों में जिन्हें उत्तरदायित्व दिया जाने वाला है, जनसाधारण का प्रतिनिधित्व होना चाहिए और किसी समाज के किसी भी महत्वपूर्ण वर्ग के लिए अपनी आवश्यकताओं और विचारों को व्यक्त करने के साधनों की कमी नहीं होनी चाहिए।"

समिति ने जनवरी 1932 में अपना कार्य आरंभ किया। अपना काम निपटाने के लिए उसने प्रांतीय सरकारों का सहयोग लिया और सभी प्रांतों में इस काम के लिए प्रांतीय स्तर पर प्रांतीय मताधिकार समितियां बनाई गई, जिसमें गैर–सरकारी सदस्य रखे गए। समिति ने प्रश्नावली जारी की। प्रांतीय सरकारों ने प्रांतीय मताधिकार समितियां तथा व्यक्तिगत तौर पर लोगों ने उन प्रश्नों के उत्तर भेजे। प्रत्येक प्रांतीय मताधिकार समिति ने साक्ष्यों की जांच की। प्रांतीय सरकारों तथा प्रांतीय समितियों ने केंद्रीय समिति को अपनी अलग–अलग रिपोर्ट भेजी। केंद्रीय समिति ने किसी निष्कर्ष पर पहुंचने से पहले उन प्रांतीय समितियों तथा प्रांतीय मताधिकार समितियों से उन रिपोर्टों पर विचार विमर्श किया। लोथियन समिति को दिए गए सामान्य कार्य के अतिरिक्त प्रधानमंत्री ने एक मुख्य कार्य भी उसको सौंपा था, जो अस्पृश्यों की राजनैतिक मांगों के संबंध में था। प्रधानमत्री ने कमेटी के अध्यक्ष को अपने पत्र में, जो निर्देश दिए थे, वे इस प्रकार थे–

> "गोलमेज सम्मेलन की विभिन्न बैठकों में हुए विचार–विमर्श से स्पष्ट

---

1. मैने ऐसा कुछ लिख कर नहीं दिया था। मैने महसूस किया था कि अस्पृश्यो की मागे इतनी न्यायोचित है कि उसके लिए पच–फैसले की आवश्यकता नहीं थी।

> है कि नए संविधान में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व की समुचित व्यवस्था अवश्य होनी चाहिए। नामजदगी द्वारा किए जाने वाले प्रतिनिधित्व के तरीके को अब उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। जैसा कि आपको विदित है, दलित वर्गों के लिए पृथक मतदान व्यवस्था के प्रश्न पर मतभेद हैं और आप की समिति इस प्रश्न को हल करने के लिए इसकी जांच–पड़ताल करे कि दलित वर्गों के लिए ऐसा करना कहां तक उचित रहेगा और जनसाधारण के मताधिकार सुरक्षित रह सके। दूसरी बात यह है कि दलित वर्गों के लिए पृथक मतदान की व्यवस्था पर अंतिम रूप से निर्णय ले लिया जाए कि जिन प्रांतों में जनसंख्या के अनुसार उनका पृथक अस्तित्व है, आपकी समिति मताधिकार की समस्या पर गंभीरता से विचार करे, जिससे सभी तथ्यों को सम्मिलित करके दलित वर्गों के पृथक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत का हल ढूंढने में सुविधा हो।"

इन निर्देशों का पालन करने से अंग्रेजी राज में समिति के सामने अस्पृश्यों की समस्त जनसंख्या के लिए हल ढूंढ़ निकालने का भारी काम था।

अस्पृश्यों की कितनी जनसंख्या है, इस प्रश्न के उत्तर चौंकाने वाले थे। जो साक्ष्य प्रस्तुत किए गए उनके अनुसार प्रांतों में अस्पृश्यों की जनसंख्या बहुत कम है। ऐसे साक्ष्यों की भी कमी नहीं थी, जिनके अनुसार अस्पृश्य बिल्कुल नहीं हैं। यह विचित्र स्थिति थी कि हिंदू साक्ष्य अस्पृश्यों के अस्तित्व को बिल्कुल अस्वीकार करते अथवा उनकी संख्या नगण्य बता कर सच्चाई पर पर्दा डाल रहे थे। इस षड्यंत्र में प्रांतीय मताधिकार समिति के सदस्य भी शामिल थे। आश्चर्य की बात तो यह है कि लोथियन समिति के हिंदू सदस्य भी इस कुचक्र में सम्मिलित थे। अस्पृश्यों के अस्तित्व को अस्वीकार करना अथवा उनकी संख्या नगण्य बताने के प्रयास तो कुछ प्रांतों में बुलंदियों पर थे। हिंदू उनको पूरी तरह कैसे छिपा रहे थे, यह बात अस्पृश्यों की समस्या पर निम्नलिखित आंकड़ों से स्पष्ट होती है। वर्ष 1931 में उत्तरप्रदेश में जनगणना आयुक्त के अनुमान के अनुसार अस्पृश्यों की जनसंख्या 01 करोड़ 26 लाख थी; प्रांतीय सरकार के अनुसार 68 लाख थी, जबकि मताधिकार समिति ने केवल 6 लाख ही बताई थी। बंगाल में जनगणना के अनुसार संख्या 01 करोड़ 3 लाख, प्रांतीय सरकार के अनुसार 01 करोड़ 12 लाख तथा प्रांतीय मताधिकार कमेटी के अनुसार केवल 07 लाख थी।

गोलमेज सम्मेलन से पूर्व किसी भी हिंदू ने अस्पृश्यों की सही जनसंख्या जानने की कोशिश नहीं की। वे जनगणना के आंकड़ों से संतुष्ट थे, जिनमें अस्पृश्यों की संख्या 7 से 8 करोड़ बतलाई गई थी। जब लोथियन समिति ने इस प्रश्न पर विचार करना आरंभ किया, तब हिंदुओं ने जनसंख्या के उन आंकड़ों

को अचानक उस समय चुनौती क्यों दी? उत्तर बहुत स्पष्ट है। लोथियन समिति से पहले अस्पृश्यों की जनसंख्या को कोई महत्व नहीं दिया गया था, परंतु गोलमेज सम्मेलन के बाद जब हिंदुओं की आंखे खुली कि अस्पृश्य अपना अलग प्रतिनिधित्व मांग रहे हैं, जिन्हें अब तक हिंदू दबाए बैठे हुए थे, जिनका उपभोग सवर्ण हिंदू बहुत पहले से करते आ रहे हैं, तब हिंदुओं ने समझा कि अस्पृश्यों के अस्तित्व को स्वीकार करना सवर्ण हिंदुओं के हितों के आड़े आएगा। उन्होंने मर्यादा और सत्य का गला घोंटने में कोई कसर नही उठायी और भारत में अस्पृश्यों को नकारने का सरल उपाय खोज लिया। तब उन्होंने निश्चय किया कि अस्पृश्यों की राजनीतिक मांगों को नकारा जाए तथा किसी भी प्रकार के तर्क की गुंजाइश न छोड़ी जाए। यह इस बात का प्रमाण है कि हिंदू कितना षड्यंत्र रच सकते हैं और वह उल्लू सीधा करने के लिए प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में अस्पृश्यों के विरुद्ध सुनियोजित ढंग से क्या–क्या कर सकते हैं।

VII

हम फिर पहली बात पर आते हैं। गोलमेज सम्मेलन से मात खाकर भारत लौटने वालों में श्री गांधी पहले व्यक्ति थे, जहां पर उनके आलोचकों के अतिरिक्त श्री गांधी का कोई अंध भक्त नहीं था। कहा जाता है कि वापसी के समय रोम में उन्होंने अपने बयान में एक संवाददाता से सविनय अवज्ञा आंदोलन फिर से चलाने की धमकी दी थी, जिसके कारण भारत पहुंचते ही उन्हें गिरफ्तार करके जेल में बंद कर दिया गया था। यद्यपि वह जेल में थे, परंतु उनके मस्तिष्क में स्वराज की अपेक्षा अस्पृश्य ही कुलमुला रहे थे। उन्हें आशंका थी कि उनके प्राणों की बाजी लगाने की धमकी देने के बावजूद कहीं अस्पृश्यों की मांगों को मान न लिया जाय। प्रधानमंत्री को पंच बनाया गया था। उनके निर्णय देने से बहुत पहले ही श्री गांधी ने जेल से ही, मार्च 1932, को तत्कालीन-भारत मंत्री सर सैमुअल होर को एक पत्र लिखा, जिसमें उन्होंने अस्पृश्यों की मांगों पर अपना विरोध दोहराया। वह पत्र इस प्रकार था –

> "प्रिय सर सैमुअल,
>
> गोलमेज सम्मेलन की समाप्ति पर जब अल्पसंख्यकों का दावा प्रस्तुत किया गया था, तब मैंने जो भाषण दिया था, शायद आपको याद हो, उसमें मैंने कहा था कि यदि दलितों को पृथक मतदान स्वीकार किया जाता है, तो मैं अपने प्राणों की बाजी लगा कर उसका विरोध करूंगा। यह भावावेश या जोश में नहीं कहा गया था। वह मेरा गंभीर बयान था। उसी के अंतर्गत मैंने आशा की थी कि भारत वापस आते ही दलित वर्गों के पृथक मतदान के विरुद्ध लोकमत जगाऊंगा।

परंतु ऐसा नहीं हो पाया। समाचारपत्रों से जिनको मुझे पढ़ने की अनुमति मिली हुई है – मैं देखता हूं कि किसी भी समय सरकार की ओर से फैसले की घोषणा की जा सकती है। पहले मैंने यह सोचा था कि यदि फैसले में दलित वर्गों को पृथक मतदान स्वीकार किया जाता है, तो मैं ऐसे कदम उठाऊंगा, जिससे मेरे विचार को बल मिले। लेकिन मैं सोचता हूं कि ब्रिटिश सरकार को पहले बिना नोटिस दिए ऐसा करना ठीक न होगा। यह स्वाभाविक है कि मेरे बयान को वे अधिक महत्व् न दें। मुझे अन्य एतराजों को दुहराने की आवश्यकता नहीं। आपत्ति है तो केवल दलित वर्गों के पृथक मतदान व्यवस्था स्वीकार करने पर। मैं समझता हूं कि मैं भी उनमें से एक होऊंगा। दूसरों की अपेक्षा उनके मामले की बात ही कुछ और है। मैं व्यवस्थापिकाओं में उनके प्रतिनिधित्व के विरुद्ध नहीं हूं, मैं उनके प्रत्येक वयस्क, स्त्री, पुरुष की कोई शैक्षिक या आर्थिक योग्यता निध्ारित किए बिना, जिनका नाम मतदान सूची में उनके मताधिकार के पक्ष में हूं। परंतु मेरा दावा है कि शुद्ध राजनैतिक दृष्टिकोण से कुछ भी समझा जाए, परंतु पृथक मतदान से उनकी जो हानि होगी, उसको समझते हुए यह सोचना होगा कि वे सवर्ण हिंदुओं के बीच कितना फंसे हुए हैं और वे सवर्ण हिंदुओं पर कितने निर्भर हैं। जहां तक हिंदू धर्म का संबंध है, उसके लिए पृथक मतदान समाज के अंगभंग के समान होगा।

"मेरे लिए दलित वर्गों का प्रश्न विशेष रूप से नैतिक तथा धार्मिक है। इसका राजनैतिक पहलू भी यद्यपि महत्वपूर्ण है, परंतु वह नैतिक तथा धार्मिक पक्ष के सामने फीका पड़ जाता है।

"आप मेरी भावनाओं को समझिए कि मैं अपने बचपन से ही उन वर्गों की दशा पर कितना सोचता रहा हूं। एक बार नहीं, वरन् कई बार मैंने अपना सब कुछ उनके लिए दाव पर लगा दिया। मैं शेखी नहीं बघारता हूं, क्योंकि मैं अनुभव करता हूं कि सदियों से दलित वर्गों को जितना दबाया गया है और उन पर जो अत्याचार हुए हैं, उनकी क्षतिपूर्ति हिंदुओं के किसी पश्चाताप से नहीं हो सकती। परंतु मैं जानता हूं कि पृथक मतदान न तो पश्चाताप है और न इससे दलित वर्गों का सदियों पुराना दमन रूकेगा अथवा उससे बचाव का कोई रास्ता निकलेगा।

"अतः मैं सरकार को सविनय सूचित करना चाहता हूं कि यदि सरकारी निर्णय में दलित वर्गों को पृथक मतदान स्वीकार किया जाता

है, तो मैं आमरण अनशन करूंगा।

"मैं दुख के साथ अपनी आत्मा की आवाज बता रहा हूं कि मैं जेल में बंद हूं और मेरे इस कदम और ऐसा करने से सरकार के सामने कठिन समस्या आ जाएगी। सम्राट की सरकार का असमंजस में पड़ना बहुत से लोग उचित नहीं मानेंगे और मेरे निर्णय को राजनीति में पागलपन का नया तरीका समझा जाएगा। इसका औचित्य यह है कि यह कोई चाल नहीं है, बल्कि मेरे जीवन की एक पहेली है। यह मेरी आत्मा की पुकार है, जिसकी मैं अवहेलना नहीं कर सकता। चाहे मेरे विवेक की छवि पर कितनी ही आंच क्यों न आ जाए। जहां तक मैं सोचता हूं यदि मुझे जेल से रिहा कर दिया जाए, तब भी अनशन पर कोई फर्क नहीं पड़ेगा। मुझे आशा है कि ब्रिटिश सरकार दलित वर्गों के पृथक मतदान को मानने का विचार त्याग देगी।"

सेक्रेटरी ऑफ स्टेट ने श्री गांधी को जो उत्तर दिया था वह इस प्रकार था–

"इंडिया आफिस, व्हाइट हाल,
दिनांक 13 अप्रैल, 1932

प्रिय श्री गांधी,

आपके दिनांक 11 मार्च, 1932 के पत्र के उत्तर में मैं लिख रहा हूं कि दलित वर्गों के पृथक मतदान के प्रश्न पर आपके मनोभावों को मैं पूरी तरह समझ गया। मैं केवल इतना कह सकता हूं कि हम किसी प्रश्न के गुणावगुण को देख कर ही निर्णय देना चाहते हैं। जैसा कि आपको ज्ञात है, लोथियन समिति अपनी रिपोर्ट देने के लिए अभी दौरा कर रही है और उनकी रिपोर्ट कुछ सप्ताह बाद ही मिलेगी। तभी हम किसी निष्कर्ष पर पहुंचेंगे। जब उसकी रिपोर्ट हमें मिल जाएगी, तब हम ध्यानपूर्वक उनकी संस्तुतियों पर विचार करेंगे और जब तक उन बातों पर विचार नहीं कर लेंगे जो विचार कमेटी ने आरंभ में प्रकट किए थे और जो विचार आपने तथा आपके साथियों ने जोरदार शब्दों में प्रकट किए थे, तब तक कोई निर्णय नहीं होगा। मैं सोचता हूं कि यदि आप हमारे स्थान पर होते, तो आप भी ऐसा ही करते। आप स्वीकार करेंगे कि जब आप समिति के प्रतिवेदन पर विचार करेंगे, तो अंतिम निर्णय पर पहुंचने से पहले आप विवादास्पद मुद्दे के दोनों पक्षों पर विचार करके अंतिम निर्णय लेंगे। मैं नहीं समझता कि आप मुझसे इससे अधिक कहने की आशा करेंगे।"

यह चेतावनी देने के बाद इस मामले में श्री गांधी लम्बी तान कर सो गए। उनका सोच था कि उन्होंने आमरण अनशन की जो धमकी दी थी, ब्रिटिश सरकार को झकझोर देने के लिए तथा अस्पृश्यों के विशेष प्रतिनिधित्व के दावे पर तुषारापात करने के लिए काफी है। 17 अगस्त, 1932 को प्रधानमंत्री ने सांप्रदायिक प्रश्न पर अपने निर्णय की घोषणा की। उसमें अस्पृश्यों से संबंधित जो निर्णय दिया गया था वह इस प्रकार था –

"ब्रिटिश सरकार का 1932 का सांप्रदायिक निर्णय"

दूसरे गोलमेज सम्मेलन के पश्चात प्रधानमंत्री ने 1 दिसंबर 1931 को जो वक्तव्य दिया वह संसद में भेज दिया गया। उसका संसद के दोनों सदनों ने समर्थन किया। उसमें यह बात स्पष्ट कर दी गई थी कि भारत के सभी समुदाय गोलमेज सम्मेलन में सांप्रदायिक प्रश्न पर किसी सर्वमान्य समझौते पर नहीं पहुंच पाए हैं। ब्रिटिश सरकार ने संकल्प किया है कि भारत के संविधान का विकास केवल उन असफलताओं के कारण रूक न जाए और कोई तदर्थ योजना लागू करके इस बाधा को समाप्त किया जाए।

2. पिछली 19 मार्च को ब्रिटिश सरकार को सूचना मिली थी कि नए संविधान निर्माण की योजना में समुदायों द्वारा किसी समझौते पर न पहुंचने के कारण प्रगति रूकी हुई है और वे लोग इस विषय में उत्पन्न मतभेदों की समीक्षा करने में व्यस्त हैं। अब उनकी सिफारिश है कि नए संविधान के अंतर्गत अल्पसंख्यकों की समस्याओं के कुछ पहलुओं पर निर्णय लिए बिना नए संविधान के निर्माण में कोई प्रगति नहीं हो सकती।

3. अतः इस संदर्भ में ब्रिटिश सरकार ने निर्णय लिया है कि उचित समय में संसद में प्रस्तुत किए जाने वाले भारतीय संविधान से संबंधित प्रस्तावों में नीचे दी गई योजना को मूर्त रूप देने के लिए वे प्रावधान करेंगे। इस योजना का उद्देश्य अंग्रेजी राज में प्रांतीय व्यवस्थापिकाओं में प्रतिनिधित्व तक सीमित रहेगा। निम्नलिखित परिच्छेद 20 में वर्णित कारणों से केंद्रीय सभा में प्रतिनिधित्व का मामला निलंबित कर दिया जाएगा। योजना को सीमित करने के निर्णय का अर्थ यह नहीं कि हम यह समझने में असफल रहे हैं कि संविधान का निर्माण करते समय अल्पसंख्यकों की असंख्य महत्वपूर्ण समस्याएं उठ खड़ी होंगी, वरन् इस आशा से ऐसा किया जा रहा है कि समुदायों के प्रतिनिधित्व के अनुपात और ढंग तथा मूल प्रश्नों पर एक बार

घोषणा हो जाने पर वे समुदाय स्वंय अन्य सांप्रदायिक समस्याओं का हल निकाल सकेंगे।

4. ब्रिटिश सरकार चाहती है कि यह भली भांति समझ लिया जाए कि वे समुदाय अपने आप में ऐसी बातचीत में कोई पक्ष नहीं बन सकते, जिससे उनके द्वारा किए गए फैसले पर फिर से विचार करने की पहल हो सके जिसमें कोई संशोधन किया जाए और प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर किसी संशोधन पर विचार नहीं कर सकते। परंतु उनकी हार्दिक इच्छा है कि यदि सद्भावनापूर्ण समझौतों की संभावनाएं हैं तो वे नष्ट न हो जाएं। इसलिए भारत सरकार के अधिनियम को कानून बनने से पहले यदि वे कार्यान्वयन योग्य किसी अन्य योजना पर संबंधित समुदायों में पारस्परिक समझौता हो जाता है, वह चाहे किसी एक या अधिक प्रांतों अथवा पूरे ब्रिटिश भारत के लिए हो, तो उन सुझावों को साकार रूप देने के लिए संसद से सिफारिश की जाएगी कि अब प्रस्तुत विकल्पों को इसमें शामिल कर लिया जाए।

5. × × ×

6. × × ×

7. × × ×

8. × × ×

9. दलित वर्गों के वे सदस्य, जो मतदान करने के पात्र हैं, सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में मतदान कर सकेंगे। यह देखते हुए कि ये वर्ग केवल इसी तरीके से अपने बलबूते पर विधायिकाओं में समुचित प्रतिनिधित्व नहीं पा सकेंगे, उन्हें उतने समय तक के लिए ही विधायिकाओं में उचित प्रतिनिधित्व मिल सके, इस उद्देश्य से जैसा कि तालिका में दिखाया गया है, उनके लिए खास क्षेत्र नियत किए गए हैं। वे सीटें उन विशेष निर्वाचनक्षेत्रों में केवल चुने गए दलित वर्गों द्वारा ही भरी जाएंगी। कोई भी मतदाता, जो विशेष निर्वाचनक्षेत्र में मतदान करेगा, वह सामान्य निर्वाचनक्षेत्र में भी मतदान कर सकेगा। ये विशेष निर्वाचनक्षेत्र मद्रास को छोड़ उन चुने हुए इलाकों में बनाए जाएंगे, जहां दलित वर्गों की आबादी अधिक हो। परंतु ये निर्वाचनक्षेत्र पूरे प्रांत में नहीं फैले होंगे।

बंगाल मे ऐसा करना संभव है, जहां सामान्य निर्वाचनक्षेत्रों में दलित मतदाताओं की संख्या अधिक है। इस प्रकार जब तक इस विषय में जांच रिपोर्ट नहीं मिल जाती, तब तक बंगाल में दलित वर्गों के

विशेष निर्वाचनक्षेत्रों की संख्या निश्चित नहीं की गई है। ऐसा विचार है कि बंगाल विधान सभा में दलित वर्गों के लिए दस से कम संख्या नहीं होनी चाहिए।

अभी यह अंतिम रूप से तय नहीं किया गया है कि सभी प्रांतों में विशेष दलित वर्ग निर्वाचनक्षेत्रों में कौन से लोग और मतदाता कैसे मतदान के अधिकारी होंगे। इसका निश्चय मताधिकार समिति की रिपोर्ट में उल्लिखित नियमों के अनुसार होगा। कुछ उत्तरी प्रांतों के विषय में संशोधन किया जा सकता है, जहां अस्पृश्यता के निर्धारित मापदंड प्रांत की अवस्था को देखते हुए परिभाषा के प्रतिकूल पाई जाएगी।

अंग्रेज सरकार यह नहीं मानती कि अस्पृश्यों के लिए नियत इन विशेष निर्वाचनक्षेत्रों की किसी सीमित अवधि के बाद भी आवश्यकता पड़ेगी। उसका विचार है कि यदि पहले भी नहीं, तो मतसूचियों के संशोधन की परिच्छेद 6 में वर्णित व्यवस्था के अनुसार 20 साल बाद तो यह व्यवस्था समाप्त हो जाएगी।

VIII

श्री गांधी को अहसास हुआ कि उनकी धमकी का असर नहीं हो रहा है। उन्हें इसकी भी परवाह नही रही कि प्रधान मंत्री से पंच–निर्णय करने की मांग पर उन्होंने भी हस्ताक्षर किये थे और इस नाते वह पंच–निर्णय को मानने को बाध्य थे। उन्होंने प्रधानमंत्री के किए–कराये पर पानी फेरना शुरू कर दिया। पहले तो उन्होंने कहा कि सांप्रदायिक फैसले की शर्तों में संशोधन किया जाए। उसी के अनुसार उन्होंने प्रधानमंत्री को निम्नलिखित पत्र लिखा –

यर्वदा केंद्रीय जेल,
अगस्त 18, 1932

"प्रिय मित्र,

इसमें कोई शक नहीं कि दलितों के प्रतिनिधित्व के बारे में सर सैमुअल होर ने मेरा 11 मार्च का पत्र आपको और आपके मंत्रिमंडल को दिखा दिया होगा। यह पत्र उसी का एक अंश माना जाए और उसी के साथ पढ़ा जाए।

मैंने अल्पसंख्यकों के प्रतिनिधित्व के विषय में ब्रिटिश सरकार का निर्णय पढ़ा और एक तरफ रख दिया। जैसाकि मैंने श्री सैमुअल होर को पत्र लिखा था और दिनांक 13 नवंबर 1931 को सेंट जेम्स पैलेस

में गोलमेज सम्मेलन की अल्पसंख्यक समिति की बैठक में घोषणा की थी, मैं आपके निर्णय के विरोध में अपने प्राणों का बलिदान कर दूंगा। ऐसा करने के लिए केवल एक रास्ता है कि मैं नमक और सोडा पानी के अतिरिक्त कुछ न लेकर आमरण अनशन करूं । यह अनशन तभी टूटेगा जब ब्रिटिश सरकार स्वयं कोई प्रस्ताव करेगी अथवा लोकमत के दबाव में आकर अपने फैसले पर पुनर्विचार करेगी और उन दलित वर्गों के लिए पृथक सांप्रदायिक प्रणाली के विचार को त्याग देगी। उनके प्रतिनिधि प्रस्तावित सामान्य निर्वाचन प्रणाली द्वारा चुने जाने चाहिए।

प्रस्तावित अनशन आम तौर से 20 सितम्बर के दोपहर से आरंभ होगा और तब तक चलता रहेगा जब तक कि ऊपर बताए गए तरीके पर सरकार के फैसले पर पुनर्विचार नहीं कर लिया जाता।

मैं अधिकारियों से कह रहा हूं कि इस पत्र को तार के जरिए आपको नोटिस के तौर पर भेज दें। इस विषय में मैं आपको यह पत्र पहुंचाने के लिए काफी समय दे रहा हूं। मैं यह भी कहना चाहता हूं कि मेरा यह पत्र तथा सर सैमुअल होर को पहले लिखा गया पत्र दोनों शीघ्रातिशीघ्र प्रकाशित किए जाएं। मैंने अपनी ओर से ईमानदारी के साथ जेल के सभी नियमों का पालन किया है और उन दोनों पत्रों में जो कुछ लिखा गया था उसे सरदार वल्लभ भाई पटेल तथा श्री महादेव देसाई को छोड़ मैंने किसी को भी नहीं बतलाया है। मैं चाहता हूं कि जनता की राय जानने के लिए उन पत्रों को प्रकाशित किया जाये।

मुझे खेद है कि मैंने इस प्रकार का दुखद निर्णय लिया। परंतु धार्मिक व्यक्ति होने के नाते मेरे पास अन्य कोई चारा नहीं था। जैसाकि मैंने सर सैमुअल होर को भेजे गए पत्र में कहा था, यदि ब्रिटिश सरकार अपने को परेशानी से बचाने के लिए मुझे जेल से मुक्त करने का फैसला लेती है, तब जेल से छूटने के बाद बाहर भी मेरी भूख हड़ताल जारी रहेगी, क्योंकि उस फैसले का प्रतिरोध करने के अलावा मेरे पास कोई दूसरा विकल्प नही है। मैं जेल से बाइज्जत छूटने की अपेक्षा कोई अन्य विकल्प उठाना ठीक नहीं समझता हूं।

हो सकता है कि मेरा फैसला गलत हो और दलित वर्गों के पृथक मतदान के संबंध से मैं पूर्णतया गलती पर होऊं और ऐसा मतदान उनके और हिंदुओं के लिए हानिकारक हो। यदि ऐसा होगा तो मेरा जीवन दर्शन ही बेकार होगा। ऐसी दशा में अनशन करते हुए यदि मेरे

प्राण भी चले जाते हैं, तो वह मेरी गलतियों का प्रायश्चित होगा और उन तमाम असंख्य पुरुषों और स्त्रियों का, जो मेरी समझदारी पर अटूट विश्वास करते है, बोझ हल्का हो जाएगा। यदि तमाम चिंतन के बाद लिया गया मेरा निर्णय, जिसमें मुझे बिल्कुल संदेह नहीं है, और यह निर्णय सही है भी तो इससे मेरे जीवन की उस योजना की उल्लेखनीय क्रियान्विति होगी जिसके लिए मैंने 25 वर्ष से भी अधिक समय तक काम किया है।"

आपका मित्र
मो. क. गांधी

प्रधान मंत्री का उत्तर था –

"प्रिय श्री गांधी,

10 डाउनिंग स्ट्रीट
8 सितम्बर, 1932

मुझे आपका पत्र मिला। पढ़कर मुझे आश्चर्य हुआ और बड़ा अफसोस भी। मैं सोचता हूं, यह पत्र आपने गलतफहमी में आकर लिखा है। ब्रिटिश सरकार ने दलित वर्गों से संबंधित जो फैसला लिया है, वास्तव में वह ठीक है। हमने सदैव यही समझा है कि आप दलित वर्गों को हिंदू समाज में स्थायी रूप से अलग करने का डटकर विरोध करते रहे हैं। आपने गोलमेज सम्मेलन की अल्पसंख्यक समिति में अपनी स्थिति स्पष्ट कर दी थी। 11 मार्च को पुनः सर सैमुअल होर को अपने पत्र में आपने अपने विचार प्रकट किए थे। हम यह भी जानते हैं कि विशाल हिंदू समाज के विचार आपके जैसे ही हैं। इसलिए दलितों के प्रतिनिधित्व के इस प्रश्न पर हमने गंभीरतापूर्वक विचार किया था।

हमें जब दलित संस्थाओं से बहुत सी अपीलें प्राप्त हुईं; सभी लोग यह भी मानते हैं कि सामाजिक विषमताओं से शोषण होता है और आपने भी यह स्वीकार किया है, तो हमने यह अपना कर्तव्य समझा कि विधानसभाओं में दलित वर्गों को सही अनुपात में प्रतिनिधित्व के अधिकारों की सुरक्षा की व्यवस्था की जाए। हम ऐसा कुछ भी नहीं करना चाहते थे, जिससे उनका संबंध हिंदू समाज से टूट जाए। आपने स्वंय अपने 11 मार्च के पत्र में लिखा था कि आप विधानसभाओं में उनके प्रतिनिधित्व के विरुद्ध नहीं थे।

ब्रिटिश सरकार की योजना के अंतर्गत दलित वर्ग हिंदू समाज के अंग बने रहें और वे चुनाव में आम सीटों पर हिंदुओं के साथ ही मतदान करेंगे, परंतु यह व्यवस्था प्रथम बीस वर्षों तक रहेगी। हिंदू समाज का अंग रहते हुए भी उनके लिए सीमित संख्या में निर्वाचन–क्षेत्र होंगे, जिसमें उनके अधिकारों और हितों की रक्षा हो सके – वर्तमान स्थितियों में ऐसा करना नितांत आवश्यक हो गया है।

जहां विशेष निर्वाचन–क्षेत्र होंगे, वहां सामान्य हिंदुओं के निर्वाचन–क्षेत्रों में दलित वर्गों को मत देने से वंचित नहीं किया जाएगा। इस प्रकार दलित वर्गों के लिए दोहरे मतो का अधिकार होगा। एक विशेष निर्वाचनक्षेत्र के अपने सदस्य के लिए, दूसरा हिंदू समाज के सामान्य सदस्य के लिए, जिसे आपने अस्पृश्यों के लिए सांप्रदायिक निर्वाचन कहा है, हमने जान बूझकर उसके विपरीत फैसला दिया है और तय किया है कि दलित वर्ग के मतदाता सामान्य निर्वाचनक्षेत्रों में सवर्ण हिंदू उम्मीदवारों को मत दे सकेंगे तथा सवर्ण हिंदू मतदाता दलित उम्मीदवार के पक्ष में उसके निर्वाचनक्षेत्र में मतदान कर सकेंगे। इस प्रकार हिंदू समाज की एकता को सुरक्षित रखा गया है।

हमने यह बात अनुभव की है कि उत्तरदायी सरकार के आरंभिक काल में प्रांतीय विधानसभाओं में, जो भी बहुमत में आए वहां दलितों की पसंद के भी कुछ प्रतिनिधि चुने जाएं, जबकि स्वयं आपने सर सैमुअल होर को अपने पत्र में लिखा था कि सवर्ण हिंदुओं ने दलितों को सदियों से दलित बना रखा है। इसलिए नौ प्रांतों में से सात प्रांतों की विधानसभाओं में अपनी कठिनाइयों की आवाज उठाने के लिए उन्हें भी चुना जाए और यदि उनके हितों के विरुद्ध कुछ किया जाए, तो उसके विरोध में अपने विचार रख सकें, जिनकी बात विधान सभा या सरकार में कोई नहीं सुनता। हमने वहीं किया है, जैसा किसी भी बेबाक व्यक्ति को करना चाहिए। हम नहीं समझते कि वर्तमान हालात में मताधिकार की किसी प्रणाली के तहत यह व्यावहारिक हो सकता है कि ऐसे प्रतिनिधि, जो वास्तव में उनके प्रतिनिधि हैं, बहुमतप्राप्त सवर्ण हिंदुओं द्वारा चुने जाएंगे।

हमारी योजना में सामान्य हिंदू निर्वाचनक्षेत्रों में दलितों को मतदान के अधिकार दिए गए हैं। इसके साथ–साथ उनके लिए सीमित संख्या में जो विशेष निर्वाचन क्षेत्र बनाए जाएंगे वे मुसलमानों के पृथक सांप्रदायिक निर्वाचन के सिद्धांत से सर्वथा भिन्न हैं। उदाहरण के तौर पर मुसलमान सामान्य निर्वाचनक्षेत्रों में न तो मतदान कर सकता है

और न वहां से चुनाव लड़ सकता है, जबकि मतदान करने की योग्यता रखने वाला कोई भी दलित वर्ग का सदस्य उस सामान्य निर्वाचनक्षेत्र में भी मतदान कर सकता है और उम्मीदवार के रूप में खड़ा भी हो सकता है।

पूरे देश में मुसलमानों के लिए जो सीटें निश्चित की गई हैं, उनके साथ यह शर्त जुड़ी हुई है कि उन निश्चित सीटों के अतिरिक्त और सीटें बढ़ाना संभव नहीं होगा, क्योंकि मुस्लिम बाहुल्य प्रांतों में वह अपनी जनसंख्या के अनुपात से अधिक सीटें प्राप्त कर रहे हैं। दलित वर्गों के लिए नियत निर्वाचनक्षेत्रों की संख्या उनकी जनसंख्या के अनुपात से बहुत कम होगी और उनकी पूरी जनसंख्या के अनुपात में पूरा प्रतिनिधित्व नहीं है, बल्कि यह व्यवस्था इस प्रकार की गई है कि कुछ संख्या में दलित वर्गों के प्रतिनिधि उन्हीं के द्वारा चुनकर विधानसभाओं में पहुंचे। सभी प्रांतों में दलित वर्गों के लिए जो विशेष सीटों की संख्या निर्धारित की गई है, उनकी जनसंख्या के अनुपात से बहुत कम है।

जैसा कि मैं आपकी मनोवृत्ति समझता हूं, आप आमरण अनशन करना चाहते हैं, इसलिए नहीं कि आप दलित वर्गों के लिए हिंदुओं के साथ संयुक्त चुनाव प्रणाली चाहते हैं क्योंकि उसकी व्यवस्था तो पहले से ही है, और न ही इसलिए कि आप हिंदुओं की एकता बनाए रखना चाहते हैं क्योंकि उसका प्रावधान भी पहले से ही है। आप तो बस दलितों को, जो सदियों से आज तक सामाजिक शिकंजे में जकड़े हुए हैं, अपने मनपसन्द के ऐसे प्रतिनिधियों को चुनने से रोकना चाहते हैं जो विधानसभाओं में जाकर उनकी ओर से आवाज उठा सकें, जिसका उनके भविष्य पर गहरा प्रभाव पड़ सके।

इन नितांत निष्पक्ष और सुविचारित प्रस्तावों के संदर्भ में आपके द्वारा लिए गए निर्णय को मैं उचित नहीं समझता। मैं तो यही समझता हूं कि आपने वास्तविक तथ्यों से भयभीत होकर यह निर्णय लिया है।

सभी भारतीयों से किसी सर्वमान्य समझौते पर न पहुंच पाने पर सरकार ने अनिच्छा से अल्पसंख्यकों के प्रश्न पर फैसला दिया है। उसने अब जो तय किया है उसमें कोई परिवर्तन करने की अब कोई गुंजाइश नहीं है बशर्ते कि जो शर्तें उन्होंने रखी हैं, वे पूरी हो जाएं। मैं समझता हूं कि सरकार अपने फैसले पर दृढ़ है। केवल उन सामुदायिक अल्पसंख्यकों की आपसी सहमति से चुनाव में कुछ

फेरबदल किया जा सकता है, जिनकी उचित मांगों पर शासन ने गुणावगुण पर विचार कर आपसी मतभेदों को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया है।

आप चाहते हैं कि यह पत्र–व्यवहार जिसमें 11 मार्च को सर सैमुअल होर को लिखा गया आपका पत्र भी शामिल है, प्रकाशित किया जाए। मुझे यह अनुचित प्रतीत होता है। यदि आपकी नजरबंदी के कारण आप जनता के समक्ष अपनी स्थिति स्पष्ट नहीं कर पा रहे हैं और इसीलिए आपने अनशन का इरादा किया है तो मैं आपके अनुरोध पर पुनर्विचार करने के लिए तैयार हूं, बशर्ते कि आप पुनर्विचार के बाद ऐसा न करें। मैं पुनः जोर देकर कहना चाहता हूं कि आप शासन के निर्णय पर फिर से विचार करें और गंभीरता से सोचें कि आपने अनशन करने का जो निर्णय लिया है, वह कहां तक उचित है?

आपका विश्वासपात्र

जे रैम्जे मेक्डोनाल्ड"

यह मालूम होने पर कि प्रधानमंत्री बात मानने वाले नहीं हैं, गांधी जी ने आमरण अनशन की धमकी पर अटल रहने की सूचना देते हुए निम्नलिखित पत्र भेजा –

"यरवदा सेंट्रल जेल,

सितंबर 9, 1932

प्रिय मित्र,

"तार के माध्यम से भेजा हुआ आपका पत्र मुझे आज मिला। इसके लिए धन्यवाद। मुझे खेद है कि आमरण अनशन करने के मेरे विचार की आपने जो व्याख्या की है, वह मेरे दिमाग में कभी नहीं आई। मैंने उस विशेषवर्ग (दलित वर्ग) के लिए बोलने की मांग की है, जिनके हितों का बलिदान करने का दोषी आपने मुझे ठहराया है। मैंने इसीलिए आमरण अनशन करने का निश्चय किया है। मुझे आशा थी कि मेरा यह निर्णय ही आपको ऐसी स्वार्थपूर्ण व्याख्या करने से अवश्य रोकेगा। बिना किसी तर्क–वितर्क के मैं यह कह सकता हूं कि मेरा यह कार्य मेरा धर्म है। दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचन की व्यवस्था करना हिंदू धर्म को बरबाद करने का प्रयास करना है और इससे दलित वर्गों को कोई लाभ नही होगा। मैं यह कहना चाहूंगा कि आप उन

दलित वर्गों के प्रति कितनी भी सहानुभूति क्यों न रखते हों परंतु आप ऐसे जीवंत और धार्मिक महत्व के प्रश्न पर सही फैसला नहीं ले सकते।

मैं दलित वर्गों को उनके अनुपात से अधिक प्रतिनिधित्व देने के विरुद्ध भी नहीं हूँ। मैं तो जब तक वे हिंदू रहना चाहें तब तक उन्हें संवैधानिक ढंग से पृथक करने के विरुद्ध हूं। वह भले ही सीमित रूप में क्यों न हों। क्या आपको इस बात का अहसास है कि यदि आपका निर्णय लागू रहता है और संविधान बन जाता है तो आप उन हिंदू समाज–सुधारकों के महान कार्य में बाधा उपस्थित करेंगे जिन्होंने शोषित और दलितों का प्रत्येक क्षेत्र में उत्थान करने का बीड़ा उठाया हुआ है।

इसलिए मैं विवश हूं और अनिच्छा से मैं उस फैसले पर (आमरण अनशन) पर अडिग हूं जिसकी सूचना मैं आपको दे चुका हूँ।

आपके पत्र से कुछ गलतफहमी हो सकती है। मैं कहना चाहूंगा कि आपके फैसले के उस भाग से मैं सहमत नहीं हूँ जिसमें दलित वर्गों को हमसे अलग करने को कहा गया है। मुझे इसके साथ ही अन्य कुछ भागों पर भी गंभीर आपत्ति है। मैं उन्हें भी आत्मोत्सर्ग का कारण नहीं समझता, क्योंकि मेरी आत्मा ने मुझे केवल दलित वर्ग के बारे में झकझोरा है।

आपका विश्वसनीय मित्र
मो. क. गांधी'

तदनुसार 20 सितंबर 1932 को गांधी जी ने अस्पृश्यों को पृथक मतदान देने के विरुद्ध अपना "आमरण अनशन" आरंभ किया। श्री प्यारे लाल ने अपनी पुस्तक "द एपिक फास्ट" में इस कथानक की सत्यता को चित्रात्मक रूप से प्रकाशित किया है। इच्छुक पाठक इसका संदर्भ देख सकते हैं। मैं उन्हें चुनौती देना चाहूंगा कि यह पुस्तक बासवेल द्वारा लिखी गई थी और इसमें ऐसी गलतियां भरी पड़ी हैं, जैसी बासवेल करते हैं। इसका एक पक्ष यह भी है कि उसकी प्रस्तुति के लिए न मेरे पास समय है, न स्थान। उद्धृत करने के लिए न स्थान है और न समय ही। मैं केवल उस बयान[1] की ओर ध्यान दिला सकता हूं जिसे मैंने श्री गांधी के आरंभिक अनशन की पूर्वसंध्या पर प्रेस को छपने के लिए दिया था और इसमें उनकी चालों का पर्दाफाश किया गया था। यह कहना काफी है कि यद्यपि श्री गांधी ने आमरण अनशन की घोषणा की थी परंतु वे मरना नहीं चाहते

1. परिशिष्ट चार।

थे और बहुत लंबे जीवन के आकांक्षी थे। जो प्रेस नोट मैने छपने के लिए दिया था, उससे यह स्पष्ट हो जाता है।

अनशन से समस्या उत्पन्न हो गई। समस्या थी कि श्री गांधी के प्राण कैसे बचाए जाएं? उनके प्राण बचाने का केवल एक ही उपाय था। वह यह था कि सांप्रदायिक पंचाट को रद्द कर दिया जाए जिसके बारे में श्री गांधी कहते थे कि इसने उनकी आत्मा को हिला दिया है। प्रधानमंत्री ने एकदम स्पष्ट कर दिया था कि ब्रिटिश मंत्रिमंडल उसे वापस नहीं लेगा और न ही उसमें अपने आप कोई परिवर्तन करेगा, परन्तु वे किसी ऐसे सिद्धांत को जो सवर्ण हिंदुओं और अस्पृश्यों को मान्य हो, उसके स्थान पर लाने के लिए तैयार थे। चूंकि मुझे गोलमेज सम्मेलन में दलितों का प्रतिनिधित्व करने का सौभाग्य मिला था, इसलिए यह मान लिया गया कि अस्पृश्यों की सहमति मेरे उसमें शामिल हुए बिना मान्य नहीं होगी। आश्चर्य की बात यह थी कि भारत के अस्पृश्यों के प्रतिनिधि और नेता के रूप में मेरी स्थिति पर कांग्रेसियों ने प्रश्न चिन्ह नहीं लगाया, वरन् उसे वास्तविक रूप में स्वीकार किया। स्वभावतः सबकी आंखे मेरी ओर लगी थीं, जैसे कि मैं इस नाटक का खलनायक होऊं।

यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि इन जटिल परिस्थितियों में, मैं असमंजस में पड गया। मेरे सामने दो ही रास्ते थे। मेरे सामने कर्तव्य था, जिसे मैं मानवीय कर्तव्य मानता हूं कि श्री गांधी के प्राणों को बचाया जाए। दूसरी ओर मेरे सामने समस्या थी कि अस्पृश्यों के उन अधिकारों की रक्षा की जाय जो प्रधानमंत्री ने दिए थे। मैंने मानवता की पुकार को सुना और श्री गांधी के प्राणों की रक्षा की। मैं सॉंप्रदायिक पंचाट में ऐसे ढंग से परिवर्तन करने के लिए राजी हो गया जो श्री गांधी को संतोषजनक लगे। वह समझौता पूना पैक्ट के नाम से जाना जाता है।

पूना पैक्ट का मूल पाठ

समझौते का मूल पाठ निम्न प्रकार से था –

1. प्रांतीय विधानसभाओं में सामान्य निर्वाचित सीटों में से दलित वर्गों के लिए सीटें सुरक्षित की जाएंगी जो निम्न प्रकार होंगी।

मद्रास 30, बम्बई और सिंध मिला कर 15, पंजाब 8, बिहार एवं उड़ीसा 18, मध्य प्रांत 20, असम 7, बंगाल 30, संयुक्त प्रांत 20, कुल योग 148, ये संख्या प्रांतीय काउंसिलों में कुल सीटों की संख्या पर आधारित थी, जिन्हें प्रधानमंत्री ने अपने फैसले में घोषित किया था।

2. इन सीटों का चुनाव संयुक्त निर्वाचन प्रणाली द्वारा निम्नलिखित प्रक्रिया से किया जाएगा :

दलित वर्गों के सभी लोग जिनके नाम उस निर्वाचनक्षेत्र की मतदाता सूची में दर्ज होंगे, एक निर्वाचन मंडल में होंगे, जो प्रत्येक सुरक्षित सीट के लिए दलित वर्गों के चार अभ्यर्थियों का पैनल चुनेगा। वह चुनाव–पद्धति एकल मत प्रणाली के आधार पर होगी। ऐसे प्राथमिक चुनाव में जिन चार सदस्यों को सबसे अधिक मत मिलेंगे, वे सामान्य निर्वाचन के लिए उम्मीदवार माने जाएंगे।

3. केंद्रीय विधानमंडल में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व उपरोक्त खंड 2 में उपबंधित रीति से संयुक्त निर्वाचन प्रणाली के सिद्धांत पर होगा और प्रांतीय विधानमंडलों में उनके प्रतिनिधित्व के लिए प्राथमिक निर्वाचन के तरीके द्वारा सीटों का आरक्षण होगा।

4. केंद्रीय विधानमंडल में अंग्रेजी राज के तहत सीटों में से दलित वर्गों के लिए सुरक्षित सीटों की संख्या 18 प्रतिशत होगी।

5. उम्मीदवारों के पैनल की प्राथमिक चुनाव व्यवस्था केंद्रीय तथा प्रांतीय विधानमंडलों के लिए जिनका ऊपर उल्लेख किया गया है प्रथम दस वर्ष के बाद समाप्त हो जाएगी। दोनों पक्षों की आपसी सहमति पर निम्नलिखित पैरा 6 के अनुसार इसे पहले भी समाप्त किया जा सकता है।

6. प्रांतीय तथा केंद्रीय विधानमंडलों में दलितों के लिए सीटों का प्रतिनिधित्व, जैसा कि ऊपर खंड 1 और 4 में दिया गया है, तब तक जारी रहेगा, जब तक कि दोनों संबंधित पक्षों में आपसी समझौते द्वारा उसे समाप्त करने पर सहमति नहीं हो जाती।

7. केंद्रीय तथा प्रांतीय विधानमंडलों के चुनाव के लिए दलितों को मतदान का अधिकार उसी प्रकार होगा जैसा लोथियन समिति की रिपोर्ट में कहा गया है।

8. दलित वर्गों के सदस्यों को स्थानीय निकायों के चुनावों तथा सरकारी नौकरियों में अस्पृश्य होने के आधार पर अयोग्य नहीं ठहराया जाएगा। दलितों के प्रतिनिधित्व को पूरा करने के लिए सभी तरह के प्रयत्न किए जाएंगे और सरकारी नौकरियों में उनकी नियुक्ति निर्धारित शैक्षिक योग्यता के अनुसार की जाएगी।

9. सभी प्रांतों में शैक्षिक अनुदान से उन दलितों के बच्चों को सुविधाएं प्रदान करने के लिए समुचित धनराशि नियत की जाएगी।

समझौते की शर्तें श्री गांधी ने मान ली और उनको भारत सरकार के अधिनियम में शामिल कर लिया गया। पूना पैक्ट पर विभिन्न प्रतिक्रियाएं हुईं। अस्पृश्य दुखी थे। ऐसा होना स्वाभाविक था। बहुत से लोग उस समझौते के पक्ष में नहीं है। वे यह जानते हैं कि यह सही है कि प्रधानमंत्री द्वारा कम्युनल अवार्ड में दी गई सीटों की अपेक्षा पूना पैक्ट में अस्पृश्यों को अधिक सीटें दी गई हैं। पूना पैक्ट से अस्पृश्यों को 148 सीटें मिली है, जबकि कम्युनल अवार्ड में 78 सीटें मिलनी थीं। परंतु इससे यह परिणाम निकालना कि कम्युनल अवार्ड की अपेक्षा पूना पैक्ट में बहुत कुछ अधिक दिया गया है, वास्तव में कम्युनल अवार्ड की उपेक्षा करना है क्योंकि कम्युनल अवार्ड ने भी अस्पृश्यों को बहुत कुछ दिया है।

कम्युनल अवार्ड से अस्पृश्यों को दो लाभ थे -

1. पृथक मतदाता प्रणाली द्वारा अस्पृश्यों को सीटों का निश्चित कोटा, जिन पर अस्पृश्य उम्मीदवारों को ही चुना जा सकता था।

2. दोहरी मतदान सुविधा – वे एक वोट का उपयोग पृथक मतदान के तहत दे सकते थे और दूसरा आम चुनाव के समय देते।

अब यदि पूना पैक्ट ने सीटों का कोटा बढ़ा दिया गया है तो इसने दोहरे मत की सुविधा भी समाप्त कर दी है। सीटों की वृद्धि दोहरे मत की सुविधा की हानि की क्षतिपूर्ति कभी नहीं कर सकती। कम्युनल अवार्ड द्वारा दिया गया दोहरे मतदान का अधिकार अमूल्य एवं विशेष अधिकार था। यह एक राजनीतिक हथियार था, जिसकी बराबरी नहीं की जा सकती। प्रत्येक निर्वाचनक्षेत्र में मतदान करने योग्य अस्पृश्यों की संख्या पूर्ण मतदान संख्या का दसवां भाग है। इस मतदान शक्ति से आम हिंदू उम्मीदवारों के चुनाव में अस्पृश्यों की स्थिति निर्णायक होती, चाहे साधिकार न भी हो। कोई भी सवर्ण हिंदू अपने निर्वाचनक्षेत्र में अस्पृश्यों की उपेक्षा नहीं कर पाता और अस्पृश्यों को आंख दिखाने की स्थिति में भी न रहता। अस्पृश्यों के मतों पर निर्भर करता। आज अस्पृश्यों की कम्युनल अवार्ड की अपेक्षा कहीं अधिक सीटें मिली हैं। बस उन्हें यही मिला। प्रत्येक सदस्य यदि क्षुब्ध नहीं भी है, तो भी उदासीन है। यदि कम्युनल अवार्ड द्वारा दिया गया दोहरे मतदान का अधिकार बरकरार रहता, तो अस्पृश्यों को कुछ सीटें भले ही कम मिलती, परंतु प्रत्येक सदस्य अस्पृश्यों के लिए भी प्रतिनिधि होता। अस्पृश्यों के लिए अब सीटों की संख्या में की गई बढ़ोतरी कोई बढ़ोतरी नहीं है। इससे पृथक मतदान प्रणाली और दोहरे मतदान की क्षतिपूर्ति नहीं होती। हिंदुओं ने यद्यपि पूना पैक्ट पर खुशियां नहीं मनाईं, वे इसे पसंद नहीं करते। वे इस अफरातफरी में श्री गांधी के प्राणों की रक्षा के लिए चिंतित थे। इस दौरान भावना

की लहर चल रही थी कि श्री गांधी के प्राण बचाना महान कार्य है। इसलिए जब उन्होंने समझौते की शर्तें देखी, तो वे उन्हे पसंद नहीं थीं, लेकिन उनमें उस समझौते को अस्वीकार करने का भी साहस नहीं था। जिस समझौते को हिंदुओं ने पसंद नहीं किया और अस्पृश्य उसके विरोध में थे, पूना पैक्ट को दोनों पक्षों को स्वीकार करना पड़ा और उसे भारत सरकार के अधिनियम में शामिल कर लिया गया।

IX

पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर हो जाने के पश्चात निर्वाचनक्षेत्र निर्धारित करने के लिए हेमंड समिति नियुक्त की गई। उसका काम नए संविधान के अनुसार विधानसभाओं के लिए मतदान की व्यवस्था करना और निश्चित सीटों के लिए निर्वाचनक्षेत्रों का निर्धारण करना था।

हेमंड समिति को पूना पैक्ट की शर्तों को ध्यान में रखते हुए कार्य करना था और चुनाव योजना में अस्पृश्यों की आवश्यकताओं को पूरा करना था। दुर्भाग्यवश पूना पैक्ट हड़बड़ी में तैयार हुआ था, इसलिए बहुत सी बातें परिभाषित नहीं हो पाई। जो बातें अपरिभाषित रह गई थीं, उनमें से दो बहुत महत्वपूर्ण थीं : (1) प्राथमिक चुनावों में कम से कम कितने सदस्यों का पैनल हो अथवा इससे कम का नहीं? (2) अंतिम चुनाव में मतदान का क्या सिद्धांत निर्धारित किया जाए? हिंदुओं की ओर से इस बात पर संतोष व्यक्त किया गया कि न्यूनतम चार का पैनल बने। यदि चार उम्मीदवार मैदान में नहीं आते, तो प्राथमिक चुनाव वैध नहीं होगा और इस प्रकार सुरक्षित सीट पर चुनाव नहीं हो सकता। इसके विषय में उन्होंने कहा कि ऐसे स्थानों को खाली पड़ा रहने दिया जाए और अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व न रहे। अस्पृश्यों की ओर से उस विवादग्रस्त मुद्दे की व्याख्या करने के लिए मुझे बुलाया गया। मैंने कहा कि पूना पैक्ट में चार का अर्थ है अधिकतम चार, न कि न्यूनतम चार। मतदान के प्रश्न पर हिंदुओं ने कहा कि अनिवार्य विभाजक मत का सिद्धांत उपयुक्त है। अस्पृश्यों की ओर से मैंने कहा कि मतों की एकत्रित व्यवस्था ही समुचित व्यवस्था रहेगी। सौभाग्यवश हेमंड समिति ने मेरे विचारों को स्वीकार कर लिया और हिंदुओं के तर्कों को रद्द कर दिया। यह दिलचस्प बात है कि सवर्ण हिंदुओं ने इस विषय में यह तर्क क्यों प्रस्तुत किया था? जरा सा ध्यान देने पर पता चल जाएगा। प्रश्न उठता है कि हिंदुओं ने हैमंड समिति के समक्ष यह खास विचार क्यों रखा? उस तर्क के पीछे उनका असल इरादा क्या था? मेरे विचार से हिंदुओं का इरादा था कि वैध प्राथमिक चुनाव में अस्पृश्यों के "कम से कम चार" उम्मीदवारों के सिद्धांत की मांग स्वीकार होनें पर सवर्ण हिंदू आरक्षित सीटों पर ऐसे अस्पृश्य उम्मीदवार

का कब्जा करा सकते थे, जो उनकी पसंद का हो और उनकी कठपुतली बन जाए। अंतिम चुनाव में ऐसे अस्पृश्य के चुने जाने के लिए उसे पैनल में आना आवश्यक था और वह पैनल में तभी आ सकता था, जब पैनल बड़ा हो। क्योंकि केवल अस्पृश्य मतदाताओं के पृथक निर्वाचन द्वारा पैनल का चुनाव बन सकता था। यह स्पष्ट है कि यदि पैनल में एक ही उम्मीदवार हो, तब वह अस्पृश्य का बहुत ही तगड़ा उम्मीदवार होगा और हिंदुओं की दृष्टि से बहुत ही खराब। यदि वहां पर दो उम्मीदवार होंगे, तो दूसरा पहले की अपेक्षा कुछ कम प्रभावशाली होगा। तीन होने पर तीसरा पहले और दूसरे से भी हिंदुओं की दृष्टि में ढीला होगा। चार होंगे, तो चौथा हिंदुओं के हिसाब से ऊपर वाले तीनों से गया बीता होगा। इस प्रकार यदि चार का पैनल होगा तो हिन्दु उसमें अस्पृश्यों का ऐसा प्रतिनिधि शामिल करा सकेंगे जो उन्हें सर्वाधिक उपयुक्त होगा। यही कारण था कि हिंदुओं ने हैमंड समिति के सामने न्यूनतम चार वैध उम्मीदवारों का पैनल बनाने के सिद्धांत पर अधिक जोर दिया।

इस प्रकार अनिवार्य मत विभाजक व्यवस्था पर हिंदुओं द्वारा अधिक जोर देने का उद्देश्य यही था कि अस्पृश्यों की सुरक्षित सीटों पर सवर्ण हिंदुओं का कब्जा हो जाए। एकत्रित मत व्यवस्था के अंतर्गत निर्वाचक के उतने ही मत हो सकते हैं, जितनी संख्या में सीटें हों। वह सभी मत एक उम्मीदवार को भी दे सकता है अथवा अपनी इच्छानुसार दो या दो से अधिक उम्मीदवारों में विभाजित कर सकता है। मत विभाजक व्यवस्था के अनुसार भी निर्वाचक (मतदाता) के उतने ही मत हो सकते हैं, जितनी सीटें हों, परंतु वह किसी एक उम्मीदवार को केवल एक वोट दे सकता है। यद्यपि दोनों व्यवस्थाओं में कोई विशेष अंतर नहीं है, क्योंकि एकत्रित मत व्यवस्था में भी मतदाता को अपने मत विभाजित करने से नहीं रोका जा सकता। वह एक उम्मीदवार को ही मत देने के लिए स्वतंत्र है। परंतु सवर्ण हिंदू कोई अवसर नहीं खोना चाहते थे। उनका मुख्य ध्येय था, संयुक्त निर्वाचन में अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित सीटों पर उम्मीदवारों की झड़ी लगा दें, ताकि चुनाव द्वारा अपने कठपुतली अस्पृश्य उम्मीदवार के पक्ष में हिंदुओं के अधिक फालतू मतों द्वारा उन सीटों को हड़पा जा सके। उसका उद्‌देश्य था अस्पृश्यों के मतों से ज्यादा मत जुटाना या जिसको उनकी पसंद का उम्मीदवार न जीत पाए। ऐसा तभी हो सकता था, जबकि हिंदू अपने फालतू मतों को सामान्य अभ्यर्थी से हटा कर प्रत्यक्ष अभ्यर्थी को दिला दें। इस विभाजक व्यवस्था के अंतर्गत फालतू मतों की दिशा मोड़ना एकत्रित मत व्यवस्था की अपेक्षा कहीं अधिक संभव होगा। मत विभाजक व्यवस्था में हिंदू मतदाता हिंदू अभ्यर्थी को केवल एक वोट दे सकता है। दूसरा वोट जो हिंदू अभ्यर्थी के लिए उपयुक्त नहीं, केवल अस्पृश्य अभ्यर्थी के लिए होगा। इस प्रकार मत विभाजन मत व्यवस्था में अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित

सीटों में उम्मीदवारों की भरमार की संभावना है और यही कारण है कि हिंदू एकत्रित मत व्यवस्था की अपेक्षा उसे ही पसंद करते हैं। परंतु वे उस व्यवस्था को छोड़ना नहीं चाहते, क्योंकि उनके विचार से मत विभाजक व्यवस्था भी गलत साबित होती। मत विभाजक व्यवस्था के अंतर्गत मतदाता को अपने सभी मतों का प्रयोग करना जरूरी नहीं है। वह सवर्ण हिंदू को एक वोट दे सकता है और शेष मतों को प्रयोग न करने की उसे पूरी छूट है। यदि ऐसा ही होता, तो नामजद अस्पृश्य अभ्यर्थी को उन्हें जिताने की गुंजाइश नहीं रहेगी। इस अवसर को न छोड़ने के लिए ही सवर्ण हिंदू मत विभाजक व्यवस्था को इसलिए आवश्यक बनाना चाहते हैं, ताकि सवर्ण हिंदू मतदाता चाहते या न चाहते हुए भी अपना एक वोट अस्पृश्य अभ्यर्थी को दें, जो उनका नामजद किया हुआ हो और इस प्रकार उसे जिताने में उन्हें अवश्य सफलता मिलेगी।

इन बातों के संदर्भ में पूना पैक्ट अस्पृश्यों पर न केवल पहली चोट सिद्ध हुआ और वे हिंदू जो उसे पसंद नहीं करते थे, एक और वार करने पर आमादा थे। उन्होंने सवर्ण हिंदुओं ने दो प्रकार के विचार जो हेमंड समिति के सामने उठाए। उससे हिंदुओं द्वारा रचे गए षड्यंत्र का पक्का सबूत मिल जाता है कि उनका उद्देश्य यदि पूना पैक्ट को अस्वीकार करना नहीं, तो अस्पृश्यों को उससे कोई लाभ न होने देने का था। अस्पृश्यों की राजनीतिक मांगों को कांग्रेस ने किस प्रकार विफल किया, यह कहानी यहीं समाप्त नहीं हो जाती। जो कुछ पहले लिखा जा चुका है, आगे लिखे जाने वाले भागों में उससे भी अधिक प्रकाश पड़ेगा।

X

हम उस चुनाव से संबंधित कहानी को जारी रखते हैं। भारत सरकार अधिनियम, 1935 के अनुसार प्रांतीय विधान सभाओं के लिए फरवरी 1937 में जो चुनाव हुए थे, वह कांग्रेस के लिए चुनावों में उतरने का अवसर था। यह अस्पृश्यों के लिए भी पहला अवसर था, जब उन्हें अपने प्रतिनिधि चुनने की सुविधा मिली थी, जैसा कि स्व. दीवान बहादुर एम.सी. राजा ने बड़ी खुशी से आशा की थी कि अछूतों के लिए निर्धारित सीटों पर कांग्रेस कोई व्यवधान नही डालेगी। परंतु इन आशाओं की धज्जियां उड़ गईं। अस्पृश्यों के लिए आरक्षित स्थानों पर कांग्रेस के भाग लेने के पीछे उनके दो मकसद थे, पहला यह कि अपना बहुमत बनाने के लिए उन सुरक्षित सीटों को प्राप्त करना जिससे कांग्रेस सरकार बना सके। दूसरा श्री गांधी के इस कथन को साबित करना कि कांग्रेस अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करती है और अस्पृश्य कांग्रेस में विश्वास करते हैं। इसलिए कांग्रेस पूरी भूमिका निभाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाई। मैं तो यह कह सकता हूं कि उसने अस्पृश्यों के अहित की इच्छा से अस्पृश्यों के चुनाव में कांग्रेस टिकट पर अस्पृश्य

अभ्यर्थी को खड़ा किया और उन सीटों पर, जो अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित थीं, वित्तीय थैलियों के बल पर कांग्रेस ने अच्छा खासा लाभ कमाया।

गर्वनमेंट ऑफ इंडिया एक्ट 1935 के अंतर्गत अस्पृश्यों को 151 सीटें[1] सुरक्षित थीं। निम्न तालिका से स्पष्ट है कि कांग्रेस टिकट पर जो अस्पृश्य अभ्यर्थी थे, उन्हें कितनी अधिक सीटें प्राप्त हुईं –

तालिका – 5

प्रांत	अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित कुल सीटों की संख्या	कांग्रेस ने कुल कितनी सीटें प्राप्त की
संयुक्त प्रांत	20	16
मद्रास	30	26
बंगाल	30	06
मध्य प्रांत	20	07
बम्बई	15	04
बिहार	15	11
पंजाब	08	00
असम	07	04
उड़ीसा	06	04
	151	78

इससे स्पष्ट है कि अस्पृश्यों के लिए कुल सुरक्षित सीटों की लगभग 51 प्रतिशत सीटें कांग्रेस ने ले लीं। कांग्रेस ने 78 सीटें प्राप्त कर केवल 73 सीटें अस्पृश्यों के सही और स्वतंत्र प्रतिनिधियों के लिए छोड़ी। कम्युनल अवार्ड में उन अस्पृश्यों ने, जो कुछ प्राप्त किया था, पूना पैक्ट में बहुत कुछ गंवा दिया। प्रभावकारी प्रतिनिधित्व की दृष्टि से कम्युनल अवार्ड की अपेक्षा बहुत कम लाभ हुआ जबकि कांग्रेस को पूना पैक्ट से बहुत लाभ हुआ। यद्यपि पूना पैक्ट में दलितों का 151 सीटें दी गई थीं परंतु 78 कांग्रेस डकार गई जिससे कांग्रेस को अच्छा खासा लाभ हुआ। यह हानि 1937 के चुनाव ने अस्पृश्यों को पहुंचाई। यह कांग्रेस का अस्पृश्यों के मुंह पर दूसरा सबसे जोरदार और करारा तमाचा था। इससे उन्हें कार्यपालिका में स्थान पाने से वंचित कर दिया गया।

मैं आरंभ से ही गोलमेज सम्मेलन में बहस के दौरान इस बात पर बल देता

1. बिहार और उड़ीसा में सीटों के ठीक निश्चय करने में तीन सीटों के बढ़ जाने के कारण 148 से 151 हो गई।

रहा हूँ कि अस्पृश्यों को केवल व्यवस्थापिकाओं में ही अपने प्रतिनिधि भेजने का अधिकार न मिले, अपितु उन्हें मंत्रिमंडल में भी प्रतिनिधित्व का अधिकार मिले। अस्पृश्यों की परेशानी केवल कानूनों के कारण ही नहीं, वरन शासन में अस्पृश्यों के विरुद्ध प्राचीन काल से चले आ रहे पूर्वाग्रह के कारण भी है। जब तक सार्वजनिक सेवाओं में हिंदुओं का प्रभुत्व रहेगा तब तक अस्पृश्य लोग पुलिस से कभी सुरक्षा की आशा नहीं कर सकते, न्यायपालिका से भी न्याय की आशा नहीं कर सकते और वे प्रशासन से भी कुछ नहीं पा सकते। सार्वजनिक सेवाओं में क्रूरता से अस्पृश्यों को तभी मुक्ति मिल सकती है, जब कार्यकारी पदों पर अस्पृश्यों की नियुक्ति की जाए। गोलमेज सम्मेलन में मैंने इसी बात पर बल दिया था कि मंत्रिमंडल में उन्हें प्रतिनिधित्व को स्वीकार किया जाए, ठीक उसी प्रभावी ढंग से जैसा कि व्यवस्थापिकाओं में उनके प्रतिनिधित्व के अधिकार दिए जाएंगे। गोलमेज सम्मेलन ने इस दावे की वैधता को मान लिया था और उन्हें लागू करने के तरीके भी खोज लिए थे। उस प्रस्ताव को प्रभावी ढंग से लागू करने के दो तरीके थे। प्रथम यह था कि भारत सरकार के अधिनियम में कानूनसम्मत ऐसा उपबंध किया जाए कि उस कानूनी दायरे से बचना असंभव हो। दूसरा तरीका यह था कि कानूनसम्मत प्रावधान न होकर इंसानियत और भलमनसाहत से मामला आम सहमति पर छोड़ दिया जाए, जैसा कि प्रथा के अनुसार इंगलैंड के संविधान में प्रावधान है। मैंने तथा अल्पसंख्यक समुदायों के प्रतिनिधियों ने कुछ प्रमुख भारतीयों की इच्छानुसार देशवासियों से दूसरे तरीके पर कोई जोर नहीं दिया और इसलिए मध्यम मार्ग पर सहमति हो गई। गवर्नरों के लिए जो निर्देश जारी होने थे और उनमें एक यह धारा जोड़ी जाने वाली थी कि उन्हें इस बात का ध्यान रखना होगा कि मंत्रिमंडल का गठन करते समय उसमें अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व अवश्य हो। नियम इस प्रकार था –

> "मंत्रिमंडल का गठन करते समय गवर्नर निम्नलिखित तरीके से मंत्रिमंडल गठित करने का भरसक प्रयत्न करेगा – वह ऐसे व्यक्ति के परामर्श से जिसे विधानमंडल में स्थिर बहुमत प्राप्त हो, उन व्यक्तियों को नियुक्त करेगा (जिनमें जहां तक व्यवहार्य हो, महत्वपूर्ण समुदायों के अल्पसंख्यक सदस्य भी सम्मिलित होंगे) जिन्हें विधान–मंडल का सामूहिक विश्वास प्राप्त होगा। ऐसा करते हुए वह इस प्रकार मंत्रिमंडल का गठन करेगा कि उनमें मंत्रियों में सामूहिक दायित्व वहन करने की भावना हो।"

इस व्यवस्था का क्या हुआ इसकी भी एक दिलचस्प कहानी है। कांग्रेस ने घोषणा की कि वे विभिन्न कारणों से जिनका उल्लेख आवश्यक नहीं, भारत सरकार के अधिनियम 1935 को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं। यह सभी को

स्पष्ट था और बहुत से कांग्रेसी भी जानते थे कि इस घोषणा के पीछे कोई गंभीरता नहीं है। इसका उद्देश्य जनता की निगाहों में कांग्रेस की यह छवि बनाने को छोड़कर और कुछ नहीं था कि कांग्रेस ही एक क्रांतिकारी दल है, जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद को उखाड़ फेंकने की क्षमता रखता है। यही वह कथा थी, जिसकी कांग्रेस सदा रट लगाती थी। यह उनकी केवल एक चाल थी। कांग्रेस वही अधिकार प्राप्त करना चाहती थी, जो गवर्नर को संविधान के अंतर्गत विशेष परिस्थितियों में हस्तक्षेप करने के लिए मिले थे। कांग्रेस ने संविधान को अस्वीकार करने की घोषणा नहीं की, क्योंकि वह जानती थी कि संविधान ही वह साधन है, जिसके द्वारा ब्रिटिश सरकार नई संसदीय व्यवस्था चलाएगी और उसे कांग्रेस का सहयोग लेना होगा। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस को दरकिनार करने की धमकी दी थी। ब्रिटिश सरकार ने न केवल 1 अप्रैल 1937 को संविधान के प्रांतीय अंश का शुभारंभ किया, बल्कि वास्तव में गैरकांग्रेसी अंतरिम मंत्रिमंडल भी बना डाला। कांग्रेसी सिहर उठे, क्योंकि वे सत्ता के भूखे थे और इन्होंने सौतिया डाह वाले राजनीतिज्ञों का जमघट बना रखा था। उन्हें अनुभव हुआ कि वे परिश्रम का फल चखने से वंचित किए जा रहे हैं। ब्रिटिश सरकार तथा कांग्रेस हाई कमान के बीच समझौतों का दौर शुरू हुआ। कांग्रेस हाई कमान ने मांग की कि यदि ब्रिटिश सरकार यह वचन दे कि मुख्य दायित्व संबंधी धाराओं के अंतर्गत दिए गए अधिकारों का प्रांतीय शासन में गवर्नर रोजाना हस्तक्षेप नहीं करेंगे, तो कांग्रेस ने जो इस बात के लिए बहुत समय से आस लगाए बैठी थी कि नया संविधान लागू हो, वचन देने की शर्त मान ली। उस समर्थन का आशय आश्चर्यजनक है कि कांग्रेस हाई कमान ने उस वचनबद्धता को ऐसा विस्तृत रूप दिया कि प्रांतीय गवर्नरों को प्रांतीय मंत्रिमंडलों में प्रतिनिधित्व देने के जो निर्देश दिए गए थे और इसके लिए जो अधिकार उन्हें मिले थे, गवर्नर उनका उपयोग न कर सकें। गवर्नर जिन्होंने कांग्रेस को पूरा स्थान दिया और अपने अधिकारों का समर्पण कर दिया एवं कांग्रेस के संविधान द्वारा प्रदत्त व्यवस्था के अंतर्गत उन्हें सत्तासीन कर दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि कांग्रेस ने दिमागी कलाबाजी करके अविलंब अस्पृश्यों और अन्य अल्पसंख्यकों को मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व देने के स्थान पर अंगूठा दिखा दिया।

अस्पृश्यों को मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व से वंचित करने की योजना कांग्रेस के दुर्भाग्य की द्योतक है। कांग्रेस ने अपने मंत्रिमंडल में अल्पसंख्यक प्रतिनिधियो को शामिल न करने का, जो तर्क दिया था कि एक दलीय मंत्रिमंडल होना चाहिए, क्योंकि उसे सामूहिक दायित्व निभाना होता है और कांग्रेस अल्पसंख्यक समुदायों को मंत्रिमंडल में तभी स्थान दे सकती है, जबकि वे कांग्रेस में मिल जाए और उसकी सदस्यता ग्रहण कर लें। दूसरे अल्पसंख्यकों के लिए ऐसे तर्कों में कितना

भी वजन हो, परंतु अस्पृश्यों के लिए ऐसे तर्कों का कोई मूल्य नहीं है। कांग्रेस अस्पृश्यों को अपने मंत्रिमंडल में शामिल करने से अपने को नही बचा सकती थी। इसके दो कारण थे : पहला कारण यह है कि कांग्रेस पूना पैक्ट की शर्तों के अनुसार अस्पृश्यों को मंत्रिमंडल में प्रतिनिधित्व देने के लिए बाध्य थी और दूसरी बात कांग्रेस यह नहीं कह सकती थी कि कांग्रेस की नीति पर चलने वाली व्यवस्थापिकाओं में अस्पृश्य कांग्रेस के टिकट पर जीत कर पहुंचे थे। तब कांग्रेस ने अस्पृश्यों को प्रांतीय मंत्रिमंडलों में क्यों नहीं लिया? इसका उत्तर केवल यही है कि वह कांग्रेस की नीति का एक भाग था कि अस्पृश्यों को मंत्रिमंडलों में प्रतिनिधित्व न दिया जाए और इस नीति को श्री गांधी का समर्थन प्राप्त था। जिन्हें इस कथन की सत्यता में कोई संदेह हो वे निम्नलिखित प्रमाण पर विचार करें –

प्रमाण के लिए सर्वविदित पहली घटना हमें वहां मिलती है, जब माननीय डा. खरे मध्य प्रांत में कांग्रेस के प्रधानमंत्री (प्राइम मिनिस्टर) थे और उन्हें कांग्रेस से निकाल दिया गया। इसलिए अपने मंत्रिमंडल में आंतरिक झगड़ों और कठिनाइयाँ पैदा करने वालों के कारण डा. खरे ने उन मंत्रियों से छुटकारा पाने के लिए एक युक्तिसंगत तरीका यह अपनाया कि उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया तथा अन्य मंत्रियों के भी त्यागपत्र प्राप्त कर नई सरकार बनाने के लिए गवर्नर को सिफारिश की। इसके बाद गवर्नर ने वैधानिक औपचारिकताएं पूरी करते हुए डा. खरे को दूसरा मंत्रिमंडल गठित करने के लिए आमंत्रित किया। डा. खरे ने आमंत्रण स्वीकार किया और कुछ पुराने विवादास्पद मंत्रियों को छोड़ते हुए कुछ नए मंत्री शामिल करके मंत्रिमंडल का पुनः गठन किया। डा. खरे का नया मंत्रिमंडल इस अर्थ में पुराने मंत्रिमंडल से भिन्न था कि उसमें एक अस्पृश्य मंत्री, श्री अग्निभोज को शामिल किया गया था, जो कांग्रेस दल के थे और मध्य प्रांत की व्यवस्थापिका के सदस्य भी थे। इसके साथ–साथ वह मंत्री बनने योग्य पूर्ण शैक्षिक योग्यता प्राप्त सदस्य थे। 26 जुलाई 1938 को वर्धा में कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक हुई ओर यह प्रस्ताव पास किया गया कि डा. खरे ने पुराने मंत्रिमंडल के अपने सहयोगियों सहित त्यागपत्र देकर बहुत गंभीर गलती की और नया मंत्रिमंडल गठित कर उन्होंने अनुशासनहीनता की है। नए मंत्रिमंडल का गठन करने में उन्होंने क्या गलती की, इसके स्पष्टीकरण में डा. खरे ने खुले तौर पर कहा कि श्री गांधी के अनुसार एक अस्पृश्य को मंत्रिमंडल में शामिल करना अनुशासनहीनता थी। डा. खरे के अनुसार श्री गांधी ने कहा कि यह निर्णय गलत था, क्योंकि उन्होंने अस्पृश्यों की आकांक्षाओं और आशाओं को प्रोत्साहन दिया, जिसके लिए उन्हें क्षमा नहीं किया जा सकता। यह बयान डा. खरे ने कई बार खुलकर राजनीतिक मंच से दिया, जिसका श्री गांधी ने कभी खंडन नहीं किया।

इस बात को सिद्ध करने के लिए और भी स्पष्ट सबूत प्राप्त हैं। 1942 में अस्पृश्यों की अखिल भारतीय सभा हुई थी। उस सभा में दलितों की कुछ राजनैतिक मांगों के प्रस्ताव पास हुए थे। कांग्रेस पार्टी के एक अस्पृश्य सदस्य ने सभा में भाग लिया था। वह श्री गांधी के पास यह जानने के लिए गया कि वह उन मांगों के बारे में क्या कहते हैं और उनसे निम्नलिखित पांच प्रश्न पूछे–

"1. भावी संविधान में हरिजनों की क्या स्थिति होगी?

2. क्या आप सरकार और कांग्रेस को यह राय देंगे कि जनसंख्या के आधार पर पंचायत बोर्ड से राज्य परिषद तक पहुंचने के लिए पांच सीटें निश्चत की जाए?

3. क्या आप कांग्रेस और विभिन्न बहुमत वाले दलों के नेताओं से प्रांतीय विधानमंडलों में अनुसूचित जाति के जिन विधायकों को अनुसूचित जातियों का विश्वासप्राप्त है, उन्हें मंत्रिमंडल में नामजद करने की सलाह देंगे?

4. हरिजनों के पिछड़ेपन के कारण क्या आप सरकार को सलाह देंगे कि नियमों में इस प्रकार का प्रावधान किया जाए कि स्थानीय निकायों और म्युनिसिपिल कौंसिलों के कार्यकारी पदों पर बारी–बारी से सांप्रदायिक आधार पर हरिजनों को प्रधान और चेयरमैन बनने का अवसर दें?

5. जिला कांग्रेस कमेटी से कांग्रेस वर्किंग कमेटी तक हरिजनों को पहुंचने के लिए सीटों का कुछ प्रतिशत क्यों नहीं निश्चित किया जाता?"

गांधी जी ने 2 अगस्त 1942 के *हरिजन* पत्र के माध्यम से उनके प्रश्नों का उत्तर इस प्रकार दिया था –

"1. मेरी सहमति से बने संविधान में इस बात का प्रावधान किया जाएगा कि किसी भी रूप में अस्पृश्यता बरतना अपराध माना जाए और आबादी के अनुपात से अस्पृश्यों के लिए सभी निर्वाचित संस्थाओं में सीटें आरक्षित होंगी।

2. उपरोक्त ही देखें।

3. मैं नहीं कह सकता। यह सिद्धांत खतरनाक है। उपेक्षित वर्गों का संरक्षण उस सीमा तक ले जाना ठीक नहीं जहाँ से उनका और देश का नुकसान होता हो। एक मंत्री के रूप में किसी व्यक्ति का चुनाव उसकी उच्च योग्यता और उसकी सर्वव्यापी लोकप्रियता पर

निर्भर करता है। जो व्यक्ति चुनाव जीत कर सीट प्राप्त करता है, वह उसकी स्वाभाविक योग्यता और लोकप्रियता पर निर्भर करता है।

4. पहली बात तो यह है कि मौजूदा संविधान को मैं पसंद ही नहीं करता क्योंकि वह बेजान है। परंतु मैं उसी आधार पर जिसका उल्लेख ऊपर किया गया है, आपके प्रस्ताव का विरोध करता हूं।

5. पहले बताए कारणों से मैं इस सुझाव के भी विरुद्ध हूं। परंतु मैं निर्वाचक कांग्रेस संस्थाओं को विवश करुंगा कि वे कांग्रेस रजिस्टर में हरिजन सदस्यों की संख्या के अनुपात में हरिजनों को अवश्य निर्वाचित करें। अगर हरिजन चार आने की सदस्यता शुल्क देकर कांग्रेस के सदस्य नहीं होना चाहते तो उनका नाम निर्वाचित संस्थाओं में कैसे हो सकता है? परंतु मैं कांग्रेस कार्यकर्ताओं को जोर देकर कहूंगा कि वे हरिजनों के पास जाएं और उन्हें कांग्रेस सदस्य बनने के लिए प्रोत्साहित करें।"

अब क्या इसमें और भी कोई संदेह रह गया है कि श्री गांधी और कांग्रेस यह गांठ बांध कर बैठे हुए थे कि मंत्रिमंडल में अस्पृश्यों के प्रतिनिधित्व के अधिकार को मान्यता न मिल जाए। जहां तक योग्यता का प्रश्न है, यदि श्री गांधी समस्त अल्पसंख्यकों पर कुछ शर्तें लागू कर देते, तब भी उनकी कोई तुक होती। क्या श्री गांधी मुसलमानों की मांग पर यही कहने का साहस कर सकते थे? केवल अस्पृश्यों के लिए ही रास्ते बंद करने का क्या अर्थ था? किसी ने भी इस प्रकार का दावा नहीं किया है कि अयोग्य अस्पृश्य मंत्री बना दिए जाएं। इससे केवल श्री गांधी के मन में पड़ी गांठ ही परिलक्षित होती है।

कांग्रेस ने पूना पैक्ट को पलीता लगाने के लिए जितने पैतरे अपनाए उनमें से दो मुख्य हैं। पहले तो कांग्रेस की उस नीति से संबंधित है जो कांग्रेस संसदीय बोर्ड ने चुनाव के लिए उम्मीदवार चुनने के बारे में अपनाई थी। दुर्भाग्यवश इस प्रश्न का उसकी महत्ता के अनुसार गहन अध्ययन नहीं किया गया। मैंने इस प्रश्न का विवेचन किया है और मैं उसके नतीजे प्रमाण सहित अलग से प्रकाशित करने की आशा करता हूं। उन बोर्डों में अभ्यर्थियों के चुनाव के लिए जो सिद्धांत अपनाए गए थे, मैं उनका उल्लेख कर रहा हूं। बोर्डों में कांग्रेस सांप्रदायिकता की मुख्य भूमिका निभा रही थी। जिस निर्वाचनक्षेत्र में दो अभ्यर्थियों का चुनाव होना था, वहां योग्यता ताक पर रख दी गई। क्या कांग्रेस ने सुयोग्य को चुना? उन्होंने उस जाति के प्रत्याशी को चुना, जिसका वहां बाहुल्य था। धन दौलत भी उनका एक सूत्र था। एक गरीब और योग्य प्रत्याशी की अपेक्षा अधिक धनी अभ्यर्थी को प्राथमिकता दी जाती थी। ये सभी सिद्धांत न्यायोचित नहीं थे। परंतु उनका ध्येय था कि उम्मीदवार सरलता से सीट निकाल ले। परंतु कुछ अन्य ऐसे भी सिद्धांत थे, जिससे कांग्रेस की गहरी चाल स्पष्ट हो जाती है। विभिन्न वर्गों के अभ्यर्थियों

के लिए विभिन्न प्रकार की योग्यताएं निर्धारित की गई थीं। सवर्ण हिंदुओं, जैसे ब्राह्मणों और उनसे मिलती जुलती उच्च जातियों के काफी सुयोग्य प्रत्याशियों को ही चुना जाता था। वे गैर–ब्राह्मण जिनकी इस मामले में अच्छी योग्यता वालों की अपेक्षा कम योग्यता वालों को वरीयता दी जाती थी। अस्पृश्यों के मामले में अर्धशिक्षित या अंगूठा–टेक लिए जाते थे। मैं यह नहीं कहता कि ऐसा सभी मामलों में सही है। परंतु सामान्य रूझान यही था कि कांग्रेस द्वारा जिन प्रत्याशियों का चुनाव होता था, उनमें से ब्राह्मणों तथा सवर्ण हिंदुओं के उम्मीदवार सुयोग्य होते थे जबकि अछूतों में से अशिक्षितों को चुन लिया जाता था। इस प्रकार की साजिश का उद्देश्य केवल यही था कि ब्राह्मणों और उनकी सहयोगी जातियों का ही प्रभुत्व मंत्रिमंडल में रहे और उन्हें गैर–ब्राह्मणों तथा अस्पृश्यों का पूरा समर्थन मिलता रहे और आज्ञाकारी अस्पृश्य तथा गैर–ब्राह्मण कभी भी उस मंत्रिमंडल में उनके विरोधी बनने का स्वप्न न देख सकें, वरन वे इसी से संतुष्ट रहें कि वे विधानमंडलों के सदस्य हैं और वे सदस्य बन कर आ गए हैं। श्री गांधी मामले के इस पहलू को उस समय नहीं देख सके जब उन्होंने कहा था कि उसी अस्पृश्य को मंत्री बनाया जाए, जो सुयोग्य हो। अन्यथा वह समझते कि यदि कांग्रेसियों में योग्यता प्राप्त अस्पृश्य नहीं हैं, तो इसका कारण यह था कि कांग्रेस संसदीय बोर्ड अछूतों में से सुयोग्य अभ्यर्थियों को चुनता ही नहीं। यदि चुनाव की वर्तमान व्यवस्था कायम रहती है, तो कांग्रेस भारतीयों को विधानमंडल का सदस्य होने से सदैव रोक सकती है, जो मंत्रिमंडल में पहुंचने की पहली सीढ़ी है। यह बहुत दुखद बात है कि कांग्रेसियों द्वारा अस्पृश्य प्रत्याशियों का इस प्रकार चुनाव करने की योजना बनाना कि उन अस्पृश्यों को मंत्री पद से वंचित किया जाए, यह बहाना बना कर कि वे योग्यता प्राप्त नहीं हैं, उन पर बहुत बड़ा आघात करना है जो रहस्यमय ढंग से भीतर ही भीतर षड्यंत्र का अंग है।

कांग्रेस का दूसरा दोष यह था कि अस्पृश्य कांग्रेसियों को कड़े दलीय अनुशासन का डंडा दिखाया जाता था। वे कांग्रेस कार्यसमिति के नियंत्रण में रहते थे। वे ऐसा विधान नही ला सकते थे जिसे कांग्रेस पसंद न करती हो। वे बिना इजाजत कोई प्रस्ताव नहीं ला सकते थे। वे विधानमंडल में यह विधेयक नहीं ला सकते थे, जिस पर उन्हें एतराज हो। वे अपनी पसंद से मतदान नहीं कर सकते थे और उचित बात भी नहीं बोल सकते थे। वे वहां पर खींच कर लाए जाने वाले बेजबान जानवरों के समान थे। अस्पृश्यों के लिए विधानमंडल में प्रतिनिधित्व प्राप्त करने का मुख्य उद्देश्य अपने वर्ग की कठिनाइयों को उजागर करना और अत्याचारों पर काबू पाना था जिसे कांग्रेस ने सफलतापूर्वक प्रभावी ढंग से रोक दिया।

इस लंबी दुखभरी कहानी का अंत करने के लिए कांग्रेस ने पूना पैक्ट रूपी फल से प्राप्त रस को चूस लिया और छिलका अस्पृश्यों के मुंह पर दे मारा।

अध्याय : 4

घृणित समर्पण

कांग्रेस का निंदनीय पलायन

I

पूना पैक्ट पर दिनांक 24 सितंबर 1932 को हस्ताक्षर हुए थे। 25 सितंबर 1932 को अपना समर्थन देने के लिए बम्बई में हिंदुओं की एक सभा हुई। उस सभा में निम्नांकित प्रस्ताव पास किए गए :–

> "यह सम्मेलन दिनांक 25 सितंबर 1932 को सवर्ण हिंदुओं और दलित वर्गों के नेताओं में हुए पूना पैक्ट की पुष्टि करता है और विश्वास व्यक्त करता है कि अब ब्रिटिश सरकार हिंदुओं में पृथक मतदान प्रणाली के फैसले को वापस ले लेगी और इस समझौते को संपूर्ण रूप में स्वीकार कर लेगी। यह सम्मेलन सरकार से यह भी अनुरोध करता है कि सरकार इस पर तुरंत कार्यवाही करे, ताकि महात्मा गांधी इन्हीं शर्तों के अंतर्गत तुरंत अपना अनशन तोड़ दें, जिसमें पहले ही काफी विलम्ब हो गया है। यह सम्मेलन सभी संबंधित संप्रदायों के नेताओं से अपील करता है कि वे समझौते के प्रभावों को समझें और इस प्रस्ताव में रखी गई शर्तों को पूरा करने का भरसक प्रयत्न करें।
>
> यह सम्मेलन संकल्प करता है कि आज से हिंदुओं में कोई भी मनुष्य जन्म से अस्पृश्य नहीं समझा जाएगा और जो आज तक अस्पृश्य समझे गए हैं, सार्वजनिक कुंओं से पानी भरने, सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ने, सार्वजनिक मांगों पर चलने और अन्य सार्वजनिक संस्थाओं का उपयोग करने में अन्य हिंदुओं के साथ समान रूप से अधिकृत होंगे। इन अधिकारों को सबसे पहले कानूनसम्मत मान्यता दी जाएगी और यदि समय से पहले इसे वैसी मान्यता नहीं मिल पाती तो स्वराज संसद के अधिनियमों में यह सबसे पहला अधिनियम होगा।

इस बात पर भी सहमति प्रकट की जाती है कि यह हिंदू नेताओं का कर्तव्य होगा कि वे तथाकथित अस्पृश्य वर्गों पर रूढ़ियों के तौर पर चली आ रही सामाजिक पाबंदियों, जिनमें मन्दिर प्रवेश पर लगी पाबदीं भी शामिल है, को दूर करने के लिए मुनासिब और शांतिमय तरीके से यथाशीघ्र प्रयत्न करें।"

इस प्रस्ताव के पश्चात हिंदुओं ने जोशोखरोश से अस्पृश्यों के लिए मंदिरों के द्वार खोल दिए। कोई भी ऐसा सप्ताह खाली नहीं जाता था, जिसमें श्री गांधी द्वारा प्रकाशित "हरिजन" साप्ताहिक के प्रमुख पृष्ठ पर "वीक टू वीक" स्तंभ में अस्पृश्यों के लिए खोले गए मंदिरों की लंबी सूची न निकलती हो। उनके लिए कुएं खुलने, पाठशालाएं खुलने की खबरें भी प्रकाशित होती। मैं "हरिजन" के दो अंकों से "वीक टू वीक" स्तम्भ प्रस्तुत कर रहा हूं -

"हरिजन" 18 फरवरी 1933

वीक टू वीक

(7 फरवरी 1933 को समाप्त होने वाले सप्ताह में)

मंदिर खोले गए

उत्तरी कलकत्ता में डेढ लाख रूपये की लागत से हाल ही में बना मंदिर।

मद्रास के गंजम जिले में भापुर गांव का एक मंदिर।

पंजाब में जालंधर नौरानिया का एक ठाकुरद्वार मंदिर।

कुए खोले गंए

उड़ीसा के जिला कटक में जयपुर कस्बा में गुरियापुर का नगरपालिका कुआं। संयुक्तप्रांत के आगरा में वजीरपुरा और नीक्की गली में दो कुएं।

त्रिचिनापल्ली (मद्रास) में एक रूढ़िवादी हिंदू ने हरिजनों और सवर्ण हिंदुओं के लिए सांझा कुंआ खुदवाने पर खर्च करने की पेशकश।

स्कूल शुरू किए गए

सं.प्रां. के मेरठ जिले के बछरौटा में एक निशुल्क स्कूल।

राजपूताना के मेताह जिले में एक स्कूल।

राजपूताना के जयपुर रियासत में फतहपुर, चेमन और अभयपुर में तीन स्कूल।

संयुक्त प्रान्त के फतेहपुर जिले में एक स्कूल।

संयुक्त प्रांत के मथुरा में तीन रात्री स्कूल।

संयुक्त प्रांत के गोरखपुर शहर में तीन रात्री स्कूल।

संयुक्त प्रांत के गोरखपुर जिले के हाता में एक रात्री स्कूल।

सखोनिया में एक रात्री स्कूल।

भारतीय रियासतें

1. काठियावाड़ राज्य असेंबली के भारी बहुमत से तीन प्रस्ताव पारित किए गए कि हरिजनों को सुविधाएं दी जाएं।

2. मद्रास के संधूर राज्य ने हरिजनों की स्थिति सुधारने के लिए एक स्थाई समिति बनाई गई।

सामान्य

गोरखपुर जिले के विभिन्न गांवों के हरिजनों ने सड़ा मांस खाना छोड़ दिया, बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में हरिजन सेवक संघ के तत्त्वावधान में श्रीचर्तुभुज नाथजी मंदिर में बसंत पंचमी के अवसर पर वसंतोत्सव मनाया गया, जिसमें हिंदुओं की सभी जातियों ने भाग लिया। – ए.वी.ठक्कर, महासचिव

सार्जेट टी.आर.शिंदे, अध्यक्ष आल इंडिया एंटी–अनटचेबिलिटी लीग और डिप्रेस्ड मिशन सोसाइटी आफ इंडिया के संस्थापक न्यासी, पूना ने विधान सभा के सदस्यों को खुला पत्र लिखा है कि सार्जेंट रंगा अय्यर के अस्पृश्यता विधेयकों को जबरदस्त समर्थन दिया जाए।

बम्बई के तैकालवाड़ी के.जी.ब्लाक में हाल ही में एक अग्निकांड हुआ, जिसमें 48 महार परिवारों की झोंपड़ियां और बहुत सारा सामान जल गया। बम्बई प्रांतीय अस्पृश्यता सेवक समाज के अध्यक्ष ने उन परिवारों के सहायतार्थ 500 रूपये देने के लिए "जी" वार्ड की समिति बनाई। समिति ने उन 48 परिवारों में 402 रूपये आठ आना बांटे, जिसमें कुल मिला कर 163 व्यक्ति थे।

बम्बई सरकार ने समस्त स्थानीय निकायों को आदेश जारी किया कि कुओं, तालाबों, धर्मशालाओं के लिए दी जाने वाली जमीन केवल इस शर्त पर दी जाए कि उनका बिना जातिवाद का ख्याल किए समान रूप से उपयोग किया जायेगा।

"हरिजन" जुलाई 15, 1933 में
"वीक टू वीक"

शैक्षिक सुविधाएं

नार्थ आर्कट जिले में एस.यू.एस. द्वारा हरिजनों के लिए तीन वाचनालय खोले गए।

एस.यू.एस. वर्क्स ने मदुरै जिले में हरिजन बच्चों को विरगनूर तालुक बोर्ड स्कूल में भरती कराया।

मथुरा के एस.यू.एस. द्वारा संचालित मेलाचेरी स्कूल में बच्चों को बनियानें, तौलिए, सलेटें आदि निशुल्क बांटीं।

रामजस कालेज, दिल्ली के दो हरिजन विद्यार्थियों को छात्रवृत्ति और निशुल्क आवास सुविधा दी गई। एक को कालेज के आचार्य थडानी ने छात्रवृत्ति दी।

मोची गेट के बाहरी क्वार्टरों में लाहौर हरिजन सेवक संघ के तत्त्वावधान में हरिजन वयस्कों के लिए रात्रि स्कूल खोला गया। उसका उदघाटन श्रीमती बृजलाल नेहरू ने किया था।

जिला हरिजन सेवक संघ, गुंटूर के प्रयत्नों से हरिजन छात्रों को सवर्ण हिंदुओ के स्कूलों में पढ़ने की इजाजत दी गई।

कुएं

कोयम्बतूर जिले में तीन कुएं साफ किए गए जो खराब हालत में पड़े हुए थे और उपयोग करने योग्य बनाए गए।

दक्षिण आर्कट के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड प्रेसिडेंट ने एस.यू.एस. द्वारा चुने गए चार कुएं खुदवाने का वायदा किया।

31.5.33 के अंतिम सप्ताह में 125 कुएं से अधिक हरिजनों के लिए खोले गए और आंध्रप्रदेश में पाच नए कुएं बनवाए गए।

सामान्य

कलकत्ता में हाग मार्केट में, जहां डोम रहते हैं, एक दुकान खोली गई। वहा खाने की वस्तुएं सस्ते दामों पर दी जाती हैं।

कलकत्ता में बीबी बेगम बस्ती में एक हरिजन परिवार का ऋण चुकाने के लिए एस.यू.एस. बंगाल द्वारा 60 रूपये दिए गए।

अमृत समाज कलकत्ता ने कुछ हरिजनों को नौकरी दी।

बोलनुरा (बीरभूमि) के 450 हरिजनों ने शराब पीनी छोड़ दी और 1,275 मोचियों ने गोमांस न खाने की शपथ ली।

बांकुरा, मुर्शिदाबाद और 24 परगना में एस.यू.एस. के तीन नए केंद्र खोले गए।

त्रिचिनापल्ली तंजौर, त्रिनेलवल्ली, सेलम, डिंडीगुल, उत्तरी अर्काट और मदुरै में श्री गांधी के हरिजन सेवा के विचार को ग्रहण किया।

कोंयम्बतूर से 12 मील दूर अलदुराल गांव को 25 रुपये मुल्य का अनाज दिया गया। 100 रूपये के कपड़े और 5 रूपये का तेल उनके सहायतार्थ दिये गए।

चिदम्बरम में एक हरिजन यूथ लीग की स्थापना की गई।

तेनाली में हरिजनों को उचित मूल्य पर वस्तुएं दिलाने के लिए एक दुकान खोली गई।

वलाना पालेम में हरिजनों के आग लगने से ध्वस्त मकानों के पुनर्निर्माण के लिए 110 रुपये दिए गए।

येलिमन चिल्ली (विजग) में हरिजनों को सहायतार्थ प्रांतीय कमेटी ने 100 रुपये का चंदा दिया। उन हरिजनों के मकान जला दिये गए थे। स्थानीय हरिजन सेवक संघ अच्छे स्थानों पर उनके नए मकान बनाने का प्रयत्न कर रहा है और निर्माण कार्य सामग्री के लिए दान एकत्र कर रहा है।

ब्राह्मण कोडर (गुटूर) में हरिजन विद्यार्थियों के लिए एक छात्रावास आरंभ करने का निश्चय किया गया।

पूर्वी गोदावरी जिला हरिजन सेवक संघ ने काकीनाडा में पढ़ने वाली हरिजन छात्राओं के लिए एक छात्रावास आरंभ करने का निश्चय किया। एक साल के लिए 20 बारी चावल, लकड़ी तथा अन्य सामान के लिए और 15 विद्यार्थियों के लिए 63020 रुपये दान के तौर पर दिए गए।

अनंतपुर जिला हरिजन सेवक संघ ने उर्खाकोंडा में हरिजन विद्यार्थियो के लिए छात्रावास आरंभ करना तय किया। धन एकत्र करने के लिए प्रबंध किए गए है। होस्टल 20 विद्यार्थियों से आरंभ किया जाएगा।

गोला पलेम में एक सवर्ण हिंदू ने एक हरिजन को अपने यहां नौकरी दी।

जब मंदिरों के मालिक तथा न्यासी अस्पृश्यों के लिए मंदिर खोलने के लिए तैयार नहीं हुए, तों हिंदुओं ने उनके विरूद्ध सत्याग्रह किया। उन्हें मंदिर खोलने के लिए विवश किया गया। गुरूवयूर के मंदिर में अछूतों के प्रवेश हेतु श्री केलप्पन ने सत्याग्रह का नेतृत्व किया था, जो मंदिर प्रवेश आंदोलन का एक भाग था। आंदोलन की लहर को रोकने के लिए मंदिरों के न्यासियों के हाथ मजबूत करने के लिए बहुत से हिंदू विधायक एक के बाद एक आगे आए और अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश के समर्थन में आगे आए। यदि जनमतसंग्रह कराया जाता, तो अधिकांश हिंदू पुजारियों के पक्ष में रहते। ऐसे विधायकों की झड़ी कम की गई, हर विधायक आगे रहना चाहता था। मद्रास विधान परिषद के एक सदस्य डाक्टर सुब्बारायन ने केंद्रीय सभा में मंदिर प्रवेश का विधेयक पेश किया था। इसी प्रकार एक विधेयक श्री सी.एस.रंगा अय्यर, दूसरा श्री हरिबिलास शारदा, तीसरा श्री लालचंद नवलराय और चौथा विधेयक श्री एम.आर.जयकर ने पेश किया था।

इस आंदोलन में श्री गांधी ने भी भाग लिया। 1932 से पहले श्री गांधी अस्पृश्यों के हिंदू मंदिरों में प्रवेश करने के सर्वथा विरूद्ध थे। श्री गांधी के शब्दों में ही[1] –

> "यह कैसे संभव हो सकता है कि अन्त्यज (अस्पृश्य) के पास सभी वर्तमान हिंदू मंदिरों में प्रवेश करने के अधिकार हों? जब तक वर्णाश्रम विद्यमान है, हिंदू धर्म और हिंदू ग्रंथों को प्रमुख स्थान मिला हुआ है। यह कहना कि प्रत्येक व्यक्ति हिंदू मंदिर में प्रवेश कर सकता है, आजकल असंभव है।"

इसलिए श्री गांधी द्वारा मंदिर प्रवेश के आंदोलन में भाग लेना बड़े आश्चर्य की बात है। श्री गांधी ने ऐसी पलटी क्यों खाई यह कल्पना से बाहर की बात है? क्या सचमुच उनका हृदय–परिवर्तन हो गया था? और वह भी इसलिए कि हिंदुओं के मंदिरों में अस्पृश्यों के प्रवेश करने का विरोध कर उन्होंने गलती की थी? क्या हिंदुओं और अस्पृश्यों के बीच में राजनीति के दुराव के कारण ही पूना पैक्ट हुआ था? उन्हें लगा कहीं पूरा विभाजन न हो जाए? इसलिए श्री गांधी की आंखें खुलीं और उन्होंने दोनों वर्गों को सांस्कृतिक और धार्मिक बंधन में बांधने के लिए मंदिर–प्रवेश जैसा मार्ग अपनाया। अथवा मंदिर प्रवेश आंदोलन में उनका सम्मिलित होने का उद्‌देश्य अस्पृश्यों के लिए राजनीतिक अधिकारों के दावे को कमजोर करना और अस्पृश्यों तथा हिंदूओं के बीच अलगाव वाली दीवार को तोड़ना था। इस आंदोलन के द्वारा अस्पृश्यों का पृथक अस्तित्व समाप्त कर दिया जाए या उन्होंने लोकेषणावश वाहवाही लूटने की अपनी आदत के कारण किया? दूसरा और तीसरा कारण सही हो सकता है।

---

1. गांधी शिक्षण, भाग दो पृष्ठ 132

II

उस मंदिर प्रवेश के आंदोलन के विषय में अस्पृश्यों का क्या दृष्टिकोण था? श्री गांधी ने मंदिर प्रवेश आंदोलन में मेरा समर्थन मांगा। मैं ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हुआ और इस विषय में प्रेस में अपना बयान छपने को दे दिया। इस विषय में मेरे विचार का क्या आधार था, पाठकों को जानने में सहायता मिलेगी। वह बयान इस प्रकार था :–

मंदिर प्रवेश विधेयक पर बयान
14 फरवरी, 1933

यद्यपि मंदिर प्रवेश से संबंधित प्रश्न पर विवाद सनातनी हिंदुओं तथा श्री गांधी तक सीमित है, निस्संदेह दलित वर्गों को इस विषय में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी है क्योंकि वे निर्णायक पक्ष हैं और इस पर उन्हें गंभीरता से विचार करना है कि विधेयक के अंतिम निर्णय पर दलित वर्ग के लोग किस स्थिति में होंगे। इसलिए उनका दृष्टिकोण परिभाषित होना आवश्यक है, ताकि अनिश्चितता की गुंजाइश न रहे।

श्री रंगा अय्यर ने मंदिर प्रवेश विधेयक का जो प्रारूप तैयार किया है, दलित वर्ग के लोग संभवतः उसका समर्थन नहीं करेंगे। इस विधेयक का सिद्धांत यह है कि यदि म्युनिसिपल और स्थानीय निकायों के मतदाता, अपने पड़ोस के किसी मुख्य मंदिर के लिए जनमतसंग्रह का निश्चय करते हैं कि उस मंदिर में दलित वर्ग के लोगों को जाने की अनुमति दी जाएगी, तब मंदिर के न्यासी अथवा प्रबंधक उस फैसले को कार्यरूप में परिणित करेंगे। यह सिद्धात साधारणतः बहुमत शासन पर आधारित है, इसमें मौलिक अथवा क्रांतिकारी कुछ नहीं है और यदि सनातनी हिंदू बुद्धिमान हुए, तो वे बिना किसी शंका के उसे स्वीकार कर लेंगे।

इस सिद्धांत पर आधारित विधेयक को दलित वर्गों का समर्थन न मिलने के दो कारण है : पहला कारण यह है कि उस विधेयक से निकट भविष्य में अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश में शीघ्रता नहीं आ सकती। यह सच है कि उस विधेयक के अंतर्गत यदि बहुमत के फैसले के अनुसार, न्यासी अथवा प्रबंधक दलित वर्गों के लिए मंदिर खोल देता है तो अल्पसंख्यक को उसके विरूद्ध निषेधाज्ञा प्राप्त करने का अधिकार नहीं होगा। परंतु विधेयक की इस धारा से किसी प्रकार का कोई सन्तोष प्राप्त करने और विधेयक के प्रस्तावक को बधाई देने से पहले

हमें आवश्यक रूप से यह विश्वास हो जाना चाहिए कि जब प्रश्न पर मतदान होगा, तो बहुमत मंदिर प्रवेश के पक्ष में होगा। यदि कोई इस प्रकार के भ्रमजाल का शिकार नहीं हुआ है, तो उसे स्वीकार करना होगा कि मंदिर प्रवेश के पक्ष में बहुंमत की आशा मुश्किल से ही पूरी होगी। निस्संदेह बहुमत आज विरूद्ध है। दरअसल प्रस्तावक ने भी इसे शंकराचार्य के साथ हुए अपने पत्र व्यवहार में स्वीकार किया है।

विधेयक पास हो जाने के बाद उत्पन्न स्थिति में ऐसा क्या है जिससे यह आशा हो जाती है कि बहुमत भिन्न रुख अपनाएगा। मुझे ऐसा कुछ नजर नहीं आता। गुरूवयूर मंदिर के संबंध में, जो जनमतसंग्रह के परिणाम सामने आए थे, निस्संदेह मुझे वे याद आते हैं। परंतु मैं जनमतसंग्रह के प्रभाव को मानने के लिए तैयार नहीं हूँ, क्योंकि मैं श्री गांधी की जीवनचर्या को ही इसका प्रतिरूप मानता हूं। इस प्रकार का आकलन श्री गांधी की जीवनचर्या को दरकिनार करके ही किया जाए।

दूसरे, विधेयक अस्पृश्यता को पापाचार नही मानता। विधेयक अस्पृश्यता को केवल सामाजिक दोष मानता है और अन्य प्रकार की सामाजिक बुराइयों की अपेक्षा अधिक दोषपूर्ण नहीं मानता। यह विधेयक अस्पृश्यता को गैरकानूनी घोषित नहीं करता। यदि बहुमत ऐसा करने का फैसला करे, तो उसमें कोई जोर नहीं होगा। पाप और अनैतिकता बर्दाश्त करने योग्य नहीं बन सकती, यदि बहुमत उन्हीं के वशीभूत हो जाये अथवा उन अनैतिकताओं के अनुसार चलना पसंद करे। यदि अस्पृश्यता एक पापाचार एवं अनैतिकता है, तो दलित वर्गों की दृष्टि में उसे निस्संकोच तिलाजलि दे देनी चाहिए, चाहे बहुसंख्यक अस्पृश्यता के पक्ष में ही क्यों न हों। इसी तरीके से सभी अनैतिक पाए जाने वाले रीतिरिवाजों के संबंध में न्यायालयों में कार्रवाई होती है।

इस विधेयक में ऐसा कुछ नहीं है। विधेयक के लेखक ने अस्पृश्यता की प्रथा पर गंभीर रूख नहीं अपनाया है। केवल मद्यपान की आदत में थोड़े सुधार की चर्चा की गई है। वास्तव में वे उपरोक्त दोनों बुराइयों को एक पलड़े में तौलते हैं। वे मद्यपान बन्द करने के लिए स्थानीय जनभावना के द्वारा नशाबंदी चाहते हैं। दलित वर्गों के ऐसे हमदर्दों के प्रति कोई कृतज्ञता नहीं प्रकट कर सकता, जो अस्पृश्यता को शराब पीने की आदत से अधिक बुरा नहीं समझता। यदि श्री रंगा अय्यर केवल कुछ ही महीने पहले की उस बात को भूल न गए होते

जिसमें श्री गांधी ने अस्पृश्यता निवारण के लिए अपने को आमरण अनशन के लिए तैयार किया था, तो इस अभिशाप के प्रति वे और कठोर रूख अपनाते और एक व्यापक सुधार आंदोलन लेकर सामने आते कि इसे जड़–मूल से उखाड़ दिया जाए। क्षमता एवं गुणों की दृष्टि से उसमें चाहे जितनी कमियां हों, यदि विधेयक में अस्पृश्यता को पाप मान लिया जाता, तो दलित वर्ग उस विधेयक से कुछ आशा करता।

सचमुच मेरी समझ में नहीं आता कि इस विधेयक से श्री गांधी कैसे संतुष्ट हो गए जो अस्पृश्यता को पाप मानने पर जोर दिया करते थे। बहरहाल इस विधेयक से दलित वर्गों को संतोष नहीं हो सकता। विधेयक अच्छा है या बुरा, पर्याप्त है अथवा अपर्याप्त यह प्रश्न गौण है।

मुख्य प्रश्न है : दलित वर्ग के लोग मंदिर प्रवेश चाहते हैं अथवा नहीं? इस मुख्य प्रश्न को दलित वर्ग के लोग दो दृष्टिकोणों से देखते हैं। पहला है, भौतिक दृष्टिकोण। दलित वर्ग के लोग सोचते हैं कि उनका उत्थान उच्च स्तर की शिक्षा, उच्च स्तर की नौकरियां और जीविका के अच्छे साधनों से ही संभव है। एक बार जब वे सामाजिक जीवन के उच्च स्तर पर पहुच जाएंगे, तो उनका सम्मान बढ़ेगा और तब समाज में उनका आदर सम्मान होने लगेगा, तो रूढ़िवादी हिंदुओं में भी परिवर्तन आएगा और यदि ऐसा न हुआ, तो उससे उन दलित वर्गों के भौतिक हितों की कोई विशेष हानि न होने पाएगी। इन मार्गों पर चलते हुए दलित वर्ग के लोगों का कहना है कि वे मंदिर प्रवेश के थोथे आंदोलन में अपनी शक्ति बरबाद नहीं करेंगे। एक दूसरा कारण भी है, जिससे वे मंदिर प्रवेश के लिए नहीं झगड़ना चाहते और यह तो आत्म–सम्मान का प्रश्न है।

अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब क्लबों के दरवाजों और भारत के सामाजिक स्थानों में यूरोपियन लोगों ने तख्तियां टांगी थी और उन पर लिखा होता था – कुत्तों और भारतीयों को प्रवेश करने की अनुमति नहीं है। आज हिंदुओं के मंदिरों पर भी ऐसी ही तख्तिया लटकी हैं। अंतर केवल इतना है कि सभी हिंदू, यहा तक कि जानवर और कुत्ते भी मंदिर में प्रवेश कर सकते हैं, केवल अस्पृश्य प्रवेश नहीं कर सकते। दोनों मामलों में स्थिति एक सी है। परंतु हिंदुओं ने उन स्थानों पर प्रवेश करने की कभी अनुमति नही मांगी, जहां पर यूरोपियनों ने अपने

प्रबंध से उन्हें बहिष्कृत किया था। अस्पृश्य उस स्थान पर प्रवेश क्यों करना चाहते हैं, जहां हिंदुओं ने दंभ से उन्हें बहिष्कृत कर रखा है? वे हिंदुओं से यह कहने के लिए तैयार हैं कि तुम मंदिरों के दरवाजे खोलो या न खोलो, यह तुम्हारी मर्जी है, मैं इस पर विचलित नहीं होता। यदि आप सोचते हैं कि मानवीय व्यक्तित्व की पवित्रता को आदर का स्थान न देंना बुरी बात है, तब आप अपने मंदिरों को खोलिए और इन्सानियत दिखाइये। यदि आप भलेमानुष बनने की अपेक्षा हिंदू ही बने रहना ठीक समझते हैं, तो मंदिरों के दरवाजे बंद रखिए, और भाड़ में जाइए, हमें मंदिरों में आने की कोई जरूरत नहीं।

मैंने इस रूप में इस प्रकार का तर्क करना इसलिए आवश्यक समझा कि पंडित मदन मोहन मालवीय जैसे उन मनुष्यों के मस्तिष्क का भ्रम दूर करना चाहता हूं, जिन्हें विश्वास है कि दलित वर्गों के लोग अपने संरक्षण के लिए उनकी ओर आशा की दृष्टि से देख रहे हैं।

उनका दूसरा दृष्टिकोण आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। धर्मभीरू लोगों की तरह दलित वर्ग के लोग भी मंदिर प्रवेश चाहते हैं अथवा नहीं। इतना ही प्रश्न है। आध्यात्मिक दृष्टि से दलित वर्गों के लोग मंदिर प्रवेश के विरूद्ध भी नहीं है। परंतु भौतिक दृष्टिकोण को अकेला नहीं रख सकते। परंतु उनका अंतिम उत्तर श्री गांधी और हिंदुओं द्वारा इस प्रश्न के उत्तर पर निर्भर करता है कि मंदिर प्रवेश की अनुमति के पीछे उनका सर्वोच्च लक्ष्य क्या है? क्या मंदिर प्रवेश हिंदू समाज में दलित वर्गों के सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने का सर्वोच्च लक्ष्य है? अथवा यह उनके उत्थान का पहला कदम है। यदि पहला कदम है, तो अंतिम लक्ष्य क्या है? यदि मंदिर प्रवेश अंतिम उद्देश्य है, तो दलित वर्ग के लोग उसे दूर से ही प्रणाम करते हैं। वास्तव में वे उसे केवल अस्वीकार ही नहीं करेंगे, वरन् यदि वे अपने आपको हिंदुओं द्वारा अस्वीकृत पाएंगे, तब वे अपना भाग्य कहीं और आजमाएंगे। दूसरी ओर, यदि मंदिर प्रवेश इस दिशा में पहला कदम है, तो वे उसका समर्थन कर सकते हैं। तब आजकल देश में जो राजनीति चल रही है, स्थिति उसके अनुकूल होगी। सभी भारतीयों ने भारत के लिए डोमीनियन स्टेटस की मांग की है। वास्तविक संविधान डोमीनियन स्टेटस के आगे बहुत कम होगा। परंतु बहुत से भारतीय उसे स्वीकार कर लेंगे। क्यों? इसका उत्तर यह है कि चूंकि लक्ष्य घोषित कर दिया गया है इसलिए इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप उसे एक-एक पग बढ़ा कर

प्राप्त करें या एक छलांग में। परंतु यदि ब्रिटिश सरकार स्वशासन के लक्ष्य को नहीं स्वीकार करती, तो कोई भी आंशिक सुधार स्वीकार नहीं करेगा। अभी बहुत से लोग इसे स्वीकार करने के लिए तैयार हैं। इसी प्रकार यदि श्री गांधी और समाज सुधारक दलित वर्गों के लिए घोषणा करते हैं कि उनका लक्ष्य हिंदू समाज में अस्पृश्यों की हैसियत बढ़ाना है, तभी दलित वर्ग मंदिर प्रवेश पर कुछ कह सकते हैं। लक्ष्य घोषित होना ऐसा धर्म है, जो उन्हें समाज में समानता का स्तर दे सके, इस भ्रम को दूर करने के लिए मैं विस्तार से सैंकड़ों वर्षों से चली आ रही धर्मनिरपेक्ष सामाजिक कुरीतियों और धार्मिक मान्यताप्राप्त आस्थाओं के बीच में एक रेखा खींचता हूँ। सभ्य समाज में सामाजिक कुरीतियों का धर्म के आधार पर औचित्य ठहराना बहुत ही घृणित और अधम कार्य है। दलित वर्ग के लोग असमानताजनित अन्यायों और अत्याचारों का जुआ तो उतार कर नहीं फेंक सकते, परंतु अब उन्होंने पक्का इरादा कर लिया है कि अब उस धर्म को नहीं सहन करेंगे, जो अत्याचारों को जारी रखने का हामी हो।

यदि उनका धर्म हिंदू धर्म होता है, तो उस धर्म को सामाजिक समानता का धर्म होना पड़ेगा। केवल हिंदू धर्म संहिता में सबके लिए मंदिर प्रवेश को जोड़ कर संशोधन कर देने मात्र से वह धर्म सामाजिक समानता का धर्म नहीं बन जाता। यदि मैं राजनीतिक शब्दों का इस्तेमाल करूं, तो बस इतना ही कह सकता हूं कि आप उन्हें विदेशी न मान कर स्वदेशी ही मान लें। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि वे इससे उस स्तर तक पहुंच जाएंगे, जहां पर वे स्वतंत्र और समान हो जाएं, क्योंकि हिंदू धर्म सामाजिक स्तर पर समानता के सिद्धांत को मान्यता प्रदान नहीं करता। इसके विपरीत वह धर्म तो समाज में ब्राह्मण,क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की श्रेणियां बना कर असमानता का पोषण करता है, जिसमें ऊपर से नीचे तक की सीढ़ी के झंडों के समान ऊपर वाला नीचे वाले को घृणा और अनादर की दृष्टि से देखता है। हिंदू यदि सामाजिक समानता लाएं, तब उस धर्म संहिता में केवल मंदिर प्रवेश का विधान कर संशोधन करना पर्याप्त नही होगा। आवश्यकता चातुरवर्ण्य के सिद्धांत से इसको मुक्त करने की है। चतुर्वर्ण व्यवस्था ही सारी असमानताओं की जननी है और जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता का मूल भी, जो असमानताओं के विभिन्न रूपों में व्याप्त है। जब तक वर्ण व्यवस्था रहेगी दलित वर्ग के लोग मंदिर प्रवेश ही नहीं वरन हिंदू धर्म को भी अस्वीकार करेंगे। चातुरवर्ण्य और जाति व्यवस्था दोनों ही

दलित वर्गों के आत्म–सम्मान के विरूद्ध है। जब तक जाति व्यवस्था इस धर्म का मूल सिद्धांत रहेगी तब तक दलित वर्ग के लोग नीच समझे जाते रहेंगे। दलित वर्ग के लोग कह सकते हैं कि वे हिंदू तभी हैं, जब चातुर्वर्ण्य और जाति व्यवस्था को दफन कर दिया जाए और हिंदू शास्त्रों से उस व्यवस्था को बिल्कुल हटा दिया जाए। क्या महात्मा गांधी और समाज सुधारक इसे अपना लक्ष्य बना कर चल सकते हैं और इसके लिए कुछ कार्य करने का साहस करेंगे? मैं इस विषय में अपना विचार अंतिम रूप से निश्चित करने से पहले भविष्य में उनकी घोषणा की प्रतीक्षा करूंगा। परंतु श्री गांधी और हिंदू चाहे इसके लिए तैयार हों अथवा नहीं एक बार ही यह सबको मालूम हो जाना चाहिए कि इससे कम में दलित वर्ग संतुष्ट नहीं होंगे और तभी वे मंदिर प्रवेश को स्वीकार करेंगे। मंदिर प्रवेश को स्वीकार कर लेना और उससे संतुष्ट हो जाना पाप के साथ समझौता करने और मानवता की पवित्रता का ही सौदा करने के समान होगा।

मैंने जो नीति अपनाई है, उसके विरूद्ध श्री गांधी और हिंदू सुधारक एक तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं। वे कह सकते हैं कि दलित वर्गों द्वारा मंदिर प्रवेश स्वीकार कर लेने से चातुर्वर्ण्य और जाति व्यवस्था के विरूद्ध आंदोलन करने से उन्हें कोई नहीं रोकता। यदि ऐसा उनका विचार है, तो मैं इस तर्क का अभी सीधे सामना करने को तैयार हूं और भविष्य में प्रगति के मार्ग को साफ कर देना चाहता हूं। मेरा उत्तर यह है कि यह सच्चाई है कि यदि मैं इस समय मंदिर प्रवेश स्वीकार कर लूं, तो चातुर्वर्ण्य और जाति व्यवस्था को समाप्त करने के लिए आंदोलन करने का हमारा अधिकार समाप्त नहीं हो जाएगा। परंतु जब यह प्रश्न सामने आएगा, तब श्री गांधी कहां होंगे? यदि वे मेरे विरोधियों के खेमे में होंगे, तो मैं बतला देना चाहता हूं कि मैं अब उनके साथ नहीं हो सकता। यदि वह मेरे साथ होंगे तो उन्हें अभी से मेरे साथ आ जाना चाहिए।"

दीवान बहादुर आर. श्रीनिवासन ने भी जिन्होंने गोलमेज सम्मेलन में मेरे साथ अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व किया था, मंदिर प्रवेश का समर्थन नहीं किया। उन्होंने प्रेस को अपने बयान में कहा था –

"जब किसी दलित वर्ग के सदस्य को मंदिर में प्रवेश को अनुमति दी जाएगी, तब उसे चारों वर्णों में से किसी में भी नहीं गिना जाएगा। वरन् उसे पंचम वर्ण का कहा जाएगा, जो अंतिम और निम्न वर्ग

> समझा जाता है। यह कहलाने में भी गहरा कलंक है। तब उस पर अनेक धार्मिक प्रतिबंध लग जाएंगे और उसे घोर अपमान सहना होगा। दलित वर्ग के लोग इस प्रकार से प्रवेश करने वालों का हुक्का पानी बंद कर देंगे। दलित वर्ग के करोड़ों लोग जातीय बंधनों को स्वीकार नहीं करेंगे। यदि वे ऐसा करेंगे, तो वे टुकड़ो में बंट जाएंगे। कानून की जबरदस्ती से मंदिर में प्रवेश नही कराया जा सकता। गांवों में सवर्ण हिंदू खुले तौर से अथवा परोक्ष रूप में कानून का उल्लंघन करेंगे। गांव के दलित वर्ग के लिए वह वैसा ही होगा जैसे कि कोई किसी कागज पर मिठाई लिख कर दे दी जाए और अस्पृश्य से उसका स्वाद लेने के लिए कहे। देश को भ्रम और गड़बडी से बचाने के लिए जनता के बीच उपरोक्त तथ्य लाए गए हैं।"

मैंने अपने बयान में भी श्री गांधी के सामने जो प्रश्न रखा था, उसका उन्होंने मुझे टका सा जवाब दे दिया। उन्होंने कहा कि वह यद्यपि अस्पृश्यता के विरूद्ध हैं, जाति के विरूद्ध नहीं हैं। यदि वह तनिक भी उसके पक्ष में होते तो अस्पृश्यता निवारण के अतिरिक्त भी वह सामाजिक सुधार का कार्य न करते। मेरे लिए अपना दृष्टिकोण निश्चित करने के लिए इतना ही पर्याप्त था। मैंने अब और आगे मंदिर प्रवेश के विषय में चुप लगाए रहने का फैसला किया।

स्व. दीवान बहादुर राजा अस्पृश्य जाति के एकमात्र प्रमुख नेता थे। ऐसा कहने में किसी को कोई संकोच नहीं होगा कि श्री राजा ने इस दिशा में खेदजनक भूमिका निभाई। श्री दीवान बहादुर वर्ष 1927 से केंद्रीय सभा के नामजद सदस्य थे। सभा के भीतर अथवा बाहर उन्हें कांग्रेस से कोई मतलब नहीं था। न किसी संयोगवश और न किसी भूल से ही वह कांग्रेस के पक्ष में थे। वास्तव में वह केवल कांग्रेस के आलोचक नहीं थे वरन उसके विरोधी थे। वह सरकार के बहुत विश्वासपात्र मित्रों में से थे। वह अस्पृश्यों के पृथक निर्वाचन के पक्ष में खड़े हुए थे, जिसका कांग्रेस पूर्णरूपेण विरोध करती थी। वर्ष 1932 के कठिन समय में दीवान बहादुर ने अचानक सरकार का साथ छोड़ने और कांग्रेस का पक्ष लेने का फैसला किया। वह संयुक्त चुनाव और मंदिर प्रवेश के विषय में कांग्रेस के समर्थक सिद्ध हुए। सार्वजनिक जीवन में ऐसा चरित्र मिलना मुश्किल है। उनका एक ही उद्देश्य था कि अपना उल्लू सीधा करना। दीवान बहादुर एक दम कट क्यों गए? उसका कारण यह था कि सरकार ने गोलमेज सम्मेलन में अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने के लिए उन्हें नामजद नहीं किया था। वरन् उनके स्थान पर दीवान बहादुर और श्रीनिवासन को नामजद किया था। लेकिन भारत सरकार के पास उन्हें नामजद न करने के पर्याप्त आधार थे। यह निश्चय किया गया था कि न तो साइमन कमीशन का सदस्य और न ही केंद्रीय सभा का सदस्य

गोलमेज सम्मेलन का सदस्य हो सकता है। स्व. दीवान बहादुर केंद्रीय सभा के सदस्य थे। इसलिए उनको छोड़ना पड़ा। यह स्वाभाविक स्पष्टीकरण था। परंतु दंभ से चूर दीवान बहादुर राजा उस बात को नही सह सके। जब मद्रास में कांग्रेस मंत्रिमंडल बना, जैसे ही उन्होंने देखा कि पूना पैक्ट किस प्रकार पैरों के नीचे कुचला जा रहा है और किस प्रकार उसके विरोधी मंत्री बन गए और किस प्रकार कांग्रेस कार्यकर्ता होते हुए भी उनकी उपेक्षा की गई थी, वह घोर पश्चाताप करने लगे। सत्य तो यह है कि वर्ष 1932 मे कठिनाई के दिनों में दीवान बहादुर राजा ने कांग्रेस को जोरदार समर्थन दिया था। वह केवल कांग्रेस की भीड़ के साथ–साथ दौड़ ही नहीं रहे थे, वरन् अस्पृश्यता के विरूद्ध कानून बनाने का विरोध करने में कांग्रेस का साथ भी दे रहे थे। उन्होंने दो विधेयक पेश करने का श्रेय भी लिया। उनका पहला विधेयक था, अस्पृश्यता निवारण विधेयक और दूसरा था दंड प्रक्रिया संशोधन विधेयक।

III

श्री गांधी ने किसी विरोध पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने इस बात की भी परवाह नहीं की कि वह विरोध चाहे सनातनी हिंदुओं की ओर से हुआ हो, अथवा अस्पृश्यों की ओर से। वह अपने लक्ष्य की ओर दीवानगी की हालत में बढ़ते रहे। यह जानना भी दिनचस्प है कि इस आंदोलन का क्या हुआ? इस पुस्तक के सीमित पृष्ठों में प्रत्येक घटना को विस्तार से वर्णन करना संभव नहीं है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि अस्पृश्यता निवारण की दिशा में मंदिर और कुएं खोल देने के बाद हिंदुओं की मनोवृति कुत्ते की पूंछ की तरह फिर टेढ़ी हो गई। श्री गांधी के पत्र "हरिजन" के स्तंभ 'वीक टू वीक' में जो रिपोर्ट निकला करती थी, वे धीरे–धीरे कम होकर नदारद होने लगी। जहां तक मेरी बात का संबंध है, मुझे यह समझने में कोई आश्चर्य नही हुआ कि हिंदू दिल को इतनी जल्दी लकवा मार जाएगा। मुझे कभी भी विश्वास नहीं था कि हिंदुओं के सीने में कोई सह्रदयता भी है। "हरिजन" पत्र के स्तंभ 'वीक टू वीक' में दुनियां की ऑखों में धूल झोकने के लिए गप्प छप रहा था। वास्तव में "हरिजन" के स्तंभ का अधिकांश भाग जिन समाचारों से भरा रहता था, वह एक साजिश का हिस्सा थे, केवल कांग्रेस द्वारा दुनियां को दिखाने के लिए फरेब और प्रोपेगंडा था कि हिंदुओं ने अस्पृश्यता निवारण का बीड़ा उठा रखा है। अधिकांश मंदिर, जो अस्पृश्यों के लिए खोले गए बताये थे, ऐसी जीर्ण–शीर्ण अवस्था में थे कि वहां पर कुत्ते और गधों की महफिल जुड़ा करती थी। कांग्रेस आंदोलन का बुरा प्रभाव यह हुआ कि राजनीतिक मस्तिष्क वाले हिंदुओं का एक ऐसा झुंड तैयार हो गया जिसे अपने लाभ के लिए झूठ बोलने में हिचक नहीं थी। इस प्रकार मंदिर प्रवेश

आंदोलन, जिसमें हिंदुओं ने साधारण जनता के सामने अपने को प्रदर्शित किया उसका अध्याय समाप्त हो गया। गुरूवयूर मंदिर सत्याग्रह के विषय में और मंदिर प्रवेश के विधेयक के संबंध में भी ऐसा ही हुआ। ये वे घटनाएं हैं, जिनका यह संक्षेप में इतिहास है। इनमें श्री गांधी और कांग्रेसियों की सच्ची भावनाएं झलकती हैं।

IV

गुरूवयूर मंदिर सत्याग्रह कैसे आरंभ हुआ? मालाबार में पोन्नानि तालुक में गुरूवयूर में कृष्ण का एक मंदिर है। कालीकट का जमोरिन उस मंदिर का न्यासी है। एक हिंदू जिसका नाम केलप्पन था, मालाबार में अस्पृश्यों के लिए कार्य कर रहा था। उसने उस मंदिर में अस्पृश्यों के प्रवेश करने के लिए आंदोलन आरंभ किया। कालीकट के जमोरिन ने, जो उस मंदिर का न्यासी था, अस्पृश्यों के प्रवेश के लिए मन्दिर खोलने से इंकार किया और अपने बचाव में हिंदू धर्म दाय अधिनियम की धारा 40 का सहारा लिया, जिसके अनुसार मंदिरों के विषय में चली आ रही परंपरा और रीतिरिवाज के विरुद्ध कोई भी न्यासी कुछ नहीं कर सकता था। 20 सितंबर, 1932 को श्री केलप्पन ने सामने धूप में बैठ कर भूख हड़ताल शुरू कर दी। जमोरिन ने उस फजीहत और कठिनाई से छुटकारा पाने के लिए गांधी जी से अपील की कि वह केलप्पन को कुछ समय तक अनशन स्थगित करने के लिए कहें। श्री गांधी के अनुरोध पर केलप्पन ने दस दिन अनशन करने के बाद अक्तूबर 1, 1932 को तीन महीने के लिए अपना अनशन स्थगित कर दिया। जमोरिन ने कुछ नहीं किया। श्री गांधी ने उसे एक तार भेजते हुए कहा कि वह कानूनी अथवा अन्य कठिनाइयों को दूर करें। श्री गांधी ने जमोरिन को भी कहा कि श्री केलप्पन ने उनके अनुरोध पर अनशन स्थगित किया था। इसलिए अस्पृश्यों को मंदिर प्रवेश का अधिकार दिलाने के लिए वह जिम्मेदार हो गए हैं। नवंबर 5, 1932 को श्री गांधी ने प्रेस को निम्नलिखित बयान छपने के लिए दिया –

> "केरल के गुरूवयूर मंदिर में प्रवेश के लिए यह दूसरा अनशन होने वाला है। श्री केलप्पन ने मेरे तात्कालिक अनुरोध पर तीन महीने के लिए अनशन स्थगित किया था। वह अनशन उन्हें मौत के दरवाजे तक ले जाने वाला था। यदि जनवरी 1, 1933 तक अथवा उसके पहले अस्पृश्यो के लिए उन्हीं शर्तों पर मंदिर नहीं खोला गया, जिन शर्तों पर सवर्णों के लिए खुला है तो मुझे विवश होकर श्री केलप्पन के साथ ही अनशन करना पड़ेगा।"

जमोरिन ने इसे मानने से इंकार कर दिया और उपरोक्त बयान के जवाब

में प्रेस को निम्नांकित बयान छपने के लिए भेजा –

> "अस्पृश्य लोगों के लिए मंदिर प्रवेश की तरह–तरह की अपीलें की जा रही हैं, इससे समस्या हल होने वाली नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में यह सोचने का कोई औचित्य नहीं कि यह मेरे ही अधिकार में है कि मैं गुरूवयूर मंदिर को अवर्ण लोगों के लिए खोल दूं, जैसा कि मंदिर प्रवेश आंदोलन के समर्थक चाहते हैं।"

इन परिस्थितियों में श्री गांधी के लिए अनशन करना आवश्यक हो गया था। परंतु उन्होंने अनशन नहीं किया। उन्होंने अपनी स्थिति में परिवर्तन करते हुए कहा कि यदि पोन्ननि तालुक में जनमतसंग्रह कराया जाए, जहां पर मंदिर स्थित है और यह फैसला हो कि वहां के अधिकांश लोग अस्पृश्य लोगों के लिए मंदिर खोलने के विरूद्ध हैं, तो मैं अनशन रोक दूंगा। तदनुसार जनमतसंग्रह किया गया। मतदान केवल उन्हीं तक सीमित था, जो वास्तव में मंदिर में जाया करते थे। जो मंदिर के अधिकारी नहीं थे और जो मंदिर नहीं जाते थे, वे मतदाता सूची से निकाल दिए गए। यह रिपोर्ट दी गई कि जो प्रतिशत मतदान करने योग्य था, उनमें से 73 प्रतिशत ने मतदान किया। परिणाम यह घोषित किया गया कि 56 प्रतिशत मंदिर प्रवेश के पक्ष में 9 प्रतिशत विरोध में, 8 प्रतिशत निष्पक्ष और 27 प्रतिशत ने मतदान में भाग नही लिया।

जनमतसंग्रह के इस परिणाम पर श्री गांधी को अनशन करना था, परंतु उन्होंने नहीं किया। इसके बजाय 29 दिसंबर 1932 को गांधी जी ने निम्नलिखित बयान छपने के लिए प्रेस को दिया –

> "इस शासकीय घोषणा को ध्यान में रखते हुए कि चूंकि मद्रास विधान परिषद में मंदिर प्रवेश के बारे में डा. सुब्बारायन द्वारा विधेयक पेश किए जाने की अनुमति संबंधी वायसराय के निर्णय की घोषणा संभवतः 15 जनवरी से पहले नहीं की जा सकती, अतः नव वर्ष के दूसरे दिन से आरंभ किया जाने वाला अनशन अनिश्चित काल के लिये स्थगित कर दिया जाएगा और सरकारी फैसले तक के लिए स्थगित रहेगा। श्री केलप्पन इस स्थगन से सहमत हैं।"

वायसराय की जिस घोषणा का उल्लेख श्री गांधी ने किया, उसमें विधानमंडल में मंदिर प्रवेश विधेयक पेश होने की अनुमति वायसराय देते या न देते यह निश्चित नहीं था। वायसराय ने विधेयक पेश करने की अनुमति दे दी। फिर भी श्री गांधी ने अनशन नहीं किया। उन्होंने केवल अनशन करना ही नहीं छोड़ दिया, वरन् उस आंदोलन को ही बिल्कुल भुला दिया। तब से गुरूवयूर मंदिर प्रवेश सत्याग्रह के बारे में कुछ नहीं सुना गया और आज भी मंदिर अस्पृश्यों के लिए बंद है।

V

इस प्रकार गुरूवयूर मंदिर का अध्याय समाप्त हुआ। अब मैं दूसरी योजना पर आता हूँ, जो मंदिर प्रवेश का कानून बनाने के विषय में है। बहुत से विधेयकों में से केंद्रीय सभा में श्री रंगा अय्यर द्वारा लाए गए विधेयक पर विचार किया गया। अन्य सभी विधेयक रोक दिए गए। विधेयक के आरंभ मे हीं तूफान खड़ा हो गया। गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट के अनुसार कोई भी विधेयक जिससे धर्म, परंपरा और प्रचलित प्रथाएं प्रभावित होती हों, सदन में उस समय तक पेश नहीं किया जा सकता, जब तक उस पर वायसराय की पूर्व अनुमति न ले ली जाए। जब इस प्रकार की अनुमति के लिए विधेयक वायसराय के पास भेजा गया, तब यह खबर उड़ा दी गई कि वायसराय विधेयक पर अनुमति देने से इंकार कर रहे हैं और इस प्रकार एक हगांमा खड़ा हो गया। श्री गाधी ऐसी खबरों से उत्तेजित हो उठे और उन्होंने 21 जनवरी 1933 को प्रेस को छपने के लिए इस प्रकार बयान दिया –

> "यदि वायसराय के फैसले के बारे में पहले ही जानकारी है, तो मैं कहूंगा कि यह बहुत बड़ी दुखद बात है। मैं स्पष्टतः इस मत को अस्वीकार करता हूं कि इन बातों के पीछे कोई राजनीतिक इरादा है। यदि न्यायालय के फैसलों से संदेहास्पद प्रथाएं कानूनी रुप धारण न कर लेतीं तो किसी विधेयक की कोई आवश्यकता नहीं थी। मैं स्वयं राज्य द्वारा धार्मिक मामलों में हस्तक्षेप को एक असहनीय दोष मानता हूं। परंतु यहां पर विधेयक कानूनी अड़चन को दूर करने के लिए लोकप्रिय मुद्दों पर आधारित होने के कारण नितांत आवश्यक हो गया है। जहां तक मैं समझता हूं, दलों के बीच परस्पर विरोधी विचार होते हुए भी टकराव का कोई प्रश्न नहीं उठता।"

सरकार का फैसला 23 जनवरी 1933 को धोषित किया गया। लार्ड विलिंगटन ने मद्रास कौंसिल में डा. सुब्बारायन के मंदिर प्रवेश विधेयक पर स्वीकृति देने से इंकार कर दिया। परंतु उन्होंने मद्रास असेंबली में श्री रंगा अय्यर को अस्पृश्यता निवारण विधेयक के पेश करने की अनुमति दे दी। यह तय करने के लिए कि क्या रुख अपनाना चाहिए, पहले सरकार ने हिंदुओं के विचार जानने की आवश्यकता पर बल दिया। घोषणा में आगे कहा गया कि गवर्नर जनरल और भारत सरकार ने यह स्पष्ट कर देने की इच्छा की है कि यह आवश्यक है कि किसी ऐसी बात पर विचार तब तक न किया जाए, जब तक कि प्रस्तावों के प्रत्येक पहलू की पूरी तरह जांच न कर ली जाए। यह जांच केवल असेंबली में ही नहीं, वरन् उसके बाहर उन लोगों से भी हो, जो इससे प्रभावित होंगे। यह

शर्त तभी पूरी हो सकती है जब उस विधेयक को व्यापक रूप से उस पर जनता की राय जानने के लिए परिचालित किया जाए। यह भी समझ लेना चाहिए कि मंदिर प्रवेश से संबंधित विधेयक केंद्रीय विधानमंडल में पेश होने की स्वीकृति किसी भी प्रकार से सरकार की प्रतिबद्धता नहीं कही जा सकती। दूसरे ही दिन श्री गांधी ने एक बयान इस प्रकार जारी किया –

> "मैं इसे हरि इच्छा मानता हूं। वह हर समय मेरी परीक्षा लेना चाहता है। अखिल–भारतीय विधेयक को दी गई स्वीकृति हिंदू धर्म तथा सुधारकों के लिए अनजाने में दी गई चुनौती है। यदि सुधारक अपने आप में सच्चा है, तो हिंदू धर्म अपनी रक्षा स्वयं कर लेगा। इस प्रकार सरकारी फैसले को हरि इच्छा के रूप में स्वीकार करना चाहिए। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है तथा इससे भारत और संसार को समझ जाना चाहिए कि भारत में अब नैतिक संघर्ष प्रबलता से चल रहा है। सनातनी हिंदू जो चाहे फैसला करें, मंदिर प्रवेश का आंदोलन धुर दक्षिण में, गुरूवयूर से उत्तर में हरिद्वार तक फैल गया है। मेरा अनशन जो कि अभी तक स्थगित है, अब केवल गुरूवयूर पर ही निर्भर नहीं है, बल्कि स्वतः ही सभी मंदिरों तक अपने आप फैलता जा रहा है।"

इस बात को कोई भी समझ सकता है कि विधेयक की विधायी प्रक्रिया में कैसा तमाशा हुआ। 24 मार्च, 1933 को श्री रंगा अय्यर ने सभा में विधिवत विधेयक पेश किया, क्योंकि वह विधेयक श्री गांधी की चाहत थी, असेम्बली के कांग्रेसी सदस्य विधेयक को समर्थन देने के लिए तैयार थे। श्री गांधी ने श्री राजगोपालाचारी और घनश्याम दास बिड़ला को विधेयक आसानी से पास कराने के विचार से गैर–कांग्रेसियों से समर्थन जुटाने के लिए नियुक्त किया। श्री गांधी ने कहा कि वे उनकी अपेक्षा अच्छे प्रचारक हैं। कोलेगोंड के राजा ने विधेयक को पुरःस्थापित करने के प्रस्ताव का विरोध किया तथा श्री थम्पन ने कहा कि विधेयक विधानमंडल के अधिकार–क्षेत्र से बाहर है। प्रेसीडेंट ने श्री थम्पन की आपत्ति को अस्वीकार कर दिया और विधेयक पुरःस्थापित किये जाने की अनुमति दे दी। श्री रंगा अय्यर ने फिर एक प्रस्ताव रखा कि मंदिर प्रवेश विधेयक को 30 जुलाई तक उस पर जनमत जानने के लिए परिचालित किया जाए। राजा बहादुर कृष्णमाचारी ने परिचालन में प्रस्ताव का विरोध किया और प्रस्तावित विधेयक का भी तीव्र विरोध किया। अंत में उन्होंने जोर देकर कहा कि परिचालन की तिथि 31 जुलाई के स्थान पर 31 दिसम्बर निश्चित की जाए। श्री गुंजाल ने पुरः स्थापित किए जाने की बात का विरोध करते हुए सदन से कहा कि विधेयक का समर्थन न करें। शाम के पांच बज चुके थे और अधिवेशन का वह अंतिम दिन था। प्रेसीडेंट सदन को देर तक बैठने पर विचार जानना चाहते थे। चूंकि

इसके लिए विशाल बहुमत नहीं था, उन्होंने सदन की बैठक स्थगित कर दी। इस प्रकार विधेयक असेम्बली के शरदकालीन सत्र तक स्थगित हो गया।

विधेयक पर केन्द्रीय विधानमंडल के शरदकालीन सत्र में 24 अगस्त 1933 को फिर बहस शुरू हुई। सरकार की ओर से सर हैरी हेग ने स्पष्ट किया कि विधेयक को परिचालित करने के प्रस्ताव के हमारे समर्थन का अर्थ यह कदापि नहीं लगाया जाना चाहिए कि सरकार उसके उपबंधों का भी समर्थन करती है। यह तो सही है कि सरकार की दलितों के प्रति सहानुभूति है और उनके सामाजिक आर्थिक विकास के लिए चिंतित है। उन्होंने पिछली जनवरी को जो सरकारी विज्ञप्ति घोषित की थी उसका उल्लेख किया। उस विज्ञप्ति में सरकार का विचार पूरी तौर से स्पष्ट किया गया था। जहां तक मंदिर जाने वाले हिंदुओं के लिए परिचालन की शर्त का प्रश्न था, श्री हेग ने कहा कि यह शर्त पूरी करना व्यावहारिक रूप से उपयुक्त नहीं होगा। सरकार चाहती थी कि हिंदू समाज के सभी वर्गों द्वारा उस विषय पर बहस हो, इसलिए श्री शर्मा के संशोधन को वे पूर्ण समर्थन देते हैं। जून 1934 तक परिचालित करने के लिए श्री शर्मा का संशोधन स्वीकार कर लिया गया। बाकायदा तुरंत राय ली गई, जो हजारों पुलस्केप कागजों पर दर्ज थी। दूसरे चरण के लिए विधेयक तैयार कर दिया गया कि उस पर विचार करने के लिए एक प्रवर समिति गठित की जाए। श्री रंगा अय्यर ने भी इस प्रकार के प्रस्ताव की सूचना दी। तभी एक अनोखी घटना घटी। भारत सरकार ने असेम्बली भंग करने का फैसला किया और नए चुनाव का आदेश दे दिया। इस घोषणा का परिणाम यह हुआ कि श्री रंगा के विधेयक के संबंध में केंद्रीय विधानमंडल में कांग्रेस सदस्यों का रूख अचानक बदल गया। सभी सदस्य उस विधेयक के विरोधी हो गए और भविष्य में किसी प्रकार का समर्थन देना अस्वीकार कर दिया। उन्हें चुनावों का भय सताने लगा। श्री रंगा अय्यर की स्थिति बड़ी दयनीय थी। उन्होंने इसका बड़ी तीखी भाषा में विरोध किया, जिसका उद्धरण नीचे दिया गया है। श्री रंगा ने अपना प्रस्ताव पेश करते हुए कहा –

> "महोदय, मैं मंदिर प्रवेश विधेयक पेश करता हूं, ताकि तथाकथित दलित वर्गों पर लगे प्रतिबंध हट सकें। श्रीमन् मैं प्रस्ताव करता हूँ :
>
> 'हिंदू मंदिरों में प्रवेश के संबंध में तथाकथित दलित वर्गों पर लगे प्रतिबंध दूर करने वाले विधेयक को एक प्रवर समिति को सौपा जाये जिसमें माननीय सर नृपेन्द्र सरकार, माननीय सर हेनरी क्रैक, भाई परमानंद, राय बहादुर एम.सी.राजा, श्री टी.एम. रामकृष्ण रेड्डी, राय बहादुर बी.एल.पाटिल और प्रस्तावक सदस्य के रूप में हों।'
>
> "मैं आपकी अनुमति से शब्द 'इस निर्देश के साथ कि वह एक पखवाड़े में अपना प्रतिवेदन दे' निकाले देता हू और प्रस्ताव के शेष

बचे भाग को यथावत रखूंगाः

'और समिति की बैठक गठित करने के लिए आवश्यक सदस्यों की न्यूनतम संख्या पांच होगी।'

"महोदय, इस प्रस्ताव की सूचना देते समय मैं यह नहीं सोच सकता था कि हम एक पखवाड़ा पहले ही अधर में लटक जाएंगे। इसलिए मैं विधेयक की सीमाएं समझ सकता हूं। हमें प्रवर समिति तक पहुंचने का समय नहीं मिलेगा। मैं यह भी समझता हूं कि इस विषय में हमारे पास अभी अपनी राय व्यक्त करने का अवसर है।

"मैंने पहले ही कहा है कि मैंने श्री सत्यमूर्ति से क्षमा मांग ली है, क्योंकि श्री मुदालियार इतनी तेजी से भाषण दे रहे थे और मेरी बात कह रहे थे, इसलिए मैं अपनी बात स्पष्ट करने की स्थिति में उस समय नहीं था। यदि मैं ऐसा करता, तो श्री मुदालियार के भाषण में रुकावट डालता जो कि गलत होता। मैं जानता हूं कि श्री सत्यमूर्ति ने, जो मंदिर प्रवेश विधेयक के पक्ष में कभी नहीं रहे, कांग्रेस को उस विधेयक से हाथ खींच लेने के लिए तैयार कर लेने में सफलता प्राप्त कर ली है। मैं मद्रास के पत्र "हिंदू" में 16 अगस्त को श्री राजगोपालाचारी का जो बयान प्रकाशित हुआ था, पढ़ रहा हूं – "हिंदू" मद्रास का बहुत उत्तरदायी अखबार है, क्योंकि यह तार द्वारा दिया गया साक्षात्कार नहीं था, बल्कि लिखित बयान है, मुझे विश्वास है कि श्री राजगोपालाचारी का बयान बहुत सच माना जाएगा। श्री राजगोपालाचारी अस्पृश्यों के साथ विश्वासघात करने के कारण जनता से माफी मांग रहे हैं।" श्री गांधी के प्रमुख सिपहसालार होने के नाते उनका विश्वासघात रिकार्ड में अवश्य आ जाना चाहिए। उनका कहना है –

"कुछ सनातनी हिंदुओं द्वारा प्रश्न उठाया गया है कि क्या कांग्रेस प्रत्याशी यह वचन देंगे कि कांग्रेस किसी भी ऐसे वैधानिक प्रस्ताव का समर्थन नहीं करेगी, जो धार्मिक कृत्यों के आड़े आयेगा। इसी प्रकार के प्रश्न अन्य विषयों पर भी पूछे जा सकते हैं। इस प्रकार के प्रश्न केवल कांग्रेस प्रत्याशियों से पूछे जाते हैं। अन्य दलों के प्रत्याशियों और अन्य निर्दलीय प्रत्याशियों से इस प्रकार का स्पष्टीकरण नहीं मांगा जाता। यह कांग्रेस के लिए बड़ी प्रशंसा की बात है।"

"यह श्रीमान राजगोपालाचारी का बयान है। उस साधारण से विषय पर जनता की प्रशंसा के अनुरूप कार्य करने के बजाय लोकमत उभारने के लिए एक महान कांग्रेसी नेता अपने दामाद देवदास गांधी के साथ

हमारे घर धरने पर बैठ गए। उन्होंने बार–बार मुझे दिल्ली बुलाया और कहा कि हम इस वैधानिक प्रस्ताव पर संयुक्त समर्थन की तलाश में हैं। अब शेक्सपियर की भाषा में केवड़े की तरह वही आदमी थूक कर चाट गया। दक्षिण के इस सूक्ष्म बुद्धि वाले व्यक्ति का कहना है कि राजनीतिक दलों की विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न प्रश्नों को लेकर भिन्न–भिन्न नीतियां हैं।

"किसी एक समय में उन सभी को चुनावी मुद्दा नहीं बनाया जा सकता।"

"मान्यवर, यह कांग्रेसी नेता जनता की भावनाओं का सामना करने से डरता है, जो उसी की भड़काई हुई होती है। क्या कांग्रेस के लोग गुलाम हैं?

जो दलित और कमजोर लोगों के लिए कुछ कहने से डरते हैं, वे गुलाम हैं।"

"मिल्टन के अनुसार 'कहना और सीधे कह कर मुकर जाना सिद्ध करता है, वह झूठा ही नहीं बल्कि इससे भी बढ़कर कायर है।' श्री राजगोपालाचारी आम चुनाव से पहले प्रत्येक मंच से, जो भी कहा करते थे, अब उससे मुकरते हैं। वह कहा करते थे –

"इस चुनाव में कांग्रेस प्रत्याशी सुस्पष्ट सामाजिक मुद्दे लेकर चुनाव में गए हैं।"

"यह कहने का अर्थ है कि वे जनता को, उनके पूर्वाग्रहों को बढ़ावा देने के लिए गए हैं। जिन्हें उन्होंने गुमराह किया था परन्तु अब वे स्वयं दलदल में फंस गए हैं। लार्ड विलिंगटन ने असेम्बली भंग कर उन्हें दलदल से बचा लिया और संवैधानिक वायसराय होने के नाते संवैधानिकता के मार्ग पर लाकर सुरक्षित कर दिया। इसलिए वे अपने दोषों से बच गए और अब विधानमंडल में अधिक से अधिक संख्या में आने की चालें चल रहे हैं। यदि वे मंदिर प्रवेश विधेयक अथवा अस्पृश्यता के प्रश्न को लेकर चले होते, तो उन्हें शायद बहुत से मतों से हाथ धोना पड़ता, क्योंकि उनका मुख्य मुद्दा वह नहीं था। श्री गांधी द्वारा सार्वजनिक रूप से मेरा विरोध किए जाने के बावजूद मैंने यह कहा था। मैंने उस समय भी यही कहा था जब शंकराचार्य मालाबार में स्थित पालघाट में मेरे भाई के घर पर ठहरे हुए थे। मेरा भाई विधेयक का विरोध करने के लिए प्रतिनिधिमंडल बना कर वायसराय के पास आया। मैंने कहा "मैं जानता हूं कि मालाबार में सुधारक बहुमत में नहीं हैं।" सुधारक कहीं पर भी बहुमत में नहीं हैं,

परंतु वे बहुमत को अपने पक्ष में रख कर विश्वास रखते हैं। तब मैंने कहा कि मालाबार में गुरुवयूर मंदिर के संबंध में कांग्रेसियों ने जो जनमतसंग्रह कराया उसका कोई भी परिणाम हो सकता है। मैं बिल्कुल विश्वास नहीं करता कि मालाबार में मंदिर में जाने वालों का बहुमत मंदिरों में अस्पृश्यों के प्रवेश के पक्ष में था। परंतु मैं उनके पक्ष में लड़ने के लिए तैयार था, उसके पक्ष में तर्क–वितर्क करने के लिए तैयार था। उन्हें मनाने और उन्हीं के हित में उन्हें तैयार करने के पक्ष में था, क्योंकि मैं समझता हूं कि अस्पृश्य मेरे ही समाज का अंग हैं। महोदय, यदि मेरे समाज के एक तिहाई भाग को धर्म के नाम पर बहिष्कृत हुआ पड़ा रहना है, तो मैं समझता हूं कि ऐसे समाज को जीवित रहने का ही अधिकार नहीं है। यह इस विचार से कि हिंदू जाति संगठित हो, इस विचार से भी कि भविष्य में हिंदू जाति का उत्थान हो, जैसा कि उसका अतीत रहा है, जब वैदिक काल में अस्पृश्यता नाम की कोई चीज नहीं थी, मैं उनके हक के लिए लड़ रहा हूँ। अब मैं समझता हूं कि जो कांग्रेसी कल अस्पृश्यता के संबंध में जितने उत्सुक थे, आज उतने ही उदासीन हैं। श्री राजगोपालाचारी ने किस प्रकार मंदिर प्रवेश विधेयक की अर्थी पर रस्सी लपेट दी, जैसा कि राज बहादुर कृष्णमचारी, कोलेगोंड के राजा साहेब और सर सत्य चरण मुखर्जी, जो देश में सनातनी हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं भी सम्भवतः यह कहना पसन्द करेंगे :

"महोदय! श्री राजगोपालाचारी कहते फिरते हैं कि अब और कोई मुद्दा नहीं है। इसका अर्थ यही है कि मंदिर–प्रवेश का मुद्दा नहीं वरन् राजनीति, अंग्रेज भय की बात, ब्रिटिश विरोधी बात, उनका मुद्दा है, क्योंकि उन्होंने जन भावनाओं को भुना कर उसे जातीय जामा पहना दिया है। वे अहिंसा और धर्म की दुहाई देते हैं, क्योंकि अहिंसा को धार्मिक रंग दे दिया जाता है। देश में अविश्वास का वातावरण फैला दिया गया है। वे सोचते हैं कि अस्पृश्यता विरोध के नाम व्यापक मुद्दा उठाने पर शायद परिस्थितियां सहायक नहीं हो सकतीं। उन्होंने मुद्दे बदल डाले। वे अपने वचन से फिर गए। वे गुलाम हैं जो दो तीन आदमियों के साथ सच्चाई पर चलने से डरते हैं।

"तब श्री गांधी के प्रमुख सिपहसालार राजगोपालाचारी ने आगे और कहा : 'यदि चुनाव में सफलता मिल जाती है, तो वे इस बात में विश्वास नहीं करेंगे कि किसी अन्य प्रश्न पर जनता की राय मालूम की जाए।'

"इसका मतलब यह हुआ कि वे मंदिर–प्रवेश विधेयक के संबंध में जनता की राय नहीं जानना चाहते। वह महाशय, जो हमारे दरवाजों पर गिड़गिड़ा कर कांग्रेस के लिए समर्थन मांगते थे, जिन्होंने मंदिर–प्रवेश विधेयक के समर्थन में हमें आश्वासन दिया था, जिन्होंने कांग्रेस के समर्थन की भीख मांगी थी कि वह मंदिर प्रवेश चाहते हैं, वे आज अस्पृश्यों के हितों के विरुद्ध विश्वासघात नहीं कर रहे हैं, वरन् स्वयं श्री गांधी के सिद्धांतों के साथ भी विश्वासघात कर रहे हैं क्योंकि हमें मालूम है कि कम्युनल एवार्ड में अस्पृश्यों के उत्थान की जो सुविधाएं दी गई थीं, उन्हीं के कारण श्री गांधी ने अनशन किया था जिसको कांग्रेस ने संशय के साथ अस्वीकार किया था और इसीलिए हम जानते हैं कि अस्पृश्यता का प्रश्न, जिसे हल करना है, जिसके लिए महान श्री गांधी सारे देश का भ्रमण करना चाहते थे, आज कांग्रेसी उनके साथ ही विश्वासघात कर रहे हैं। पहले भी इन्होंने काउंसिलों का बाईकाट करने के प्रश्न पर विश्वासघात किया था। वे काउंसिलों में फिर आए और आगे चल कर, उन्हीं के संबंधी श्री राजगोपालाचारी की सहायता से उनके साथ विश्वासघात किया और वही आज कह रहे हैं कि वे जनता का आदेश है कि अस्पृश्यता के प्रश्न और मंदिर प्रवेश विधेयक पर कुछ नहीं करेंगे।

"महोदय! मैं पूछता हूं कि राजा बहादुर कृष्णमाचारी और श्रीमान राजगोपालाचारी के बीच कहां अंतर है? राजा बहादुर कृष्णमाचारी सदैव मानते थे कि पहले जनता से आदेश लो, तब आओ और कानून बनाओ। महोदय! वह बुजदिल नहीं हैं। वह अपने आप में बहुत बड़ा सनातनी हिंदू है। वह सभी परिस्थितियों का सामना करने को तैयार हैं। ठीक इसके विपरीत ये लोग, जो सनातनी हिंदुओं को ऊपर से नीचे तक, सारे देश में जकड़कर सूली पर लटका देना चाहते हैं, भूल जाते हैं कि सनातन धर्म स्वयं अपने में पूर्ण सत्य है और वे जैसा व्यवहार करते हैं, सनातनी हिंदू भी उसे ठीक नहीं कहेगा, क्योंकि सनातन धर्म सनातन सत्य है और सत्य के साथ विश्वासघात करना केवल झूठों का ही काम है। ये बहुत से सिद्धांत जिनसे हम अपने राष्ट्रीय लक्ष्य पर पहुंच सकते हैं, उनके साथ विश्वास करके अस्पृश्यों का मामला लेकर अपनी खाल बचाने के लिए हाथ झाड़ कर खड़े हो सकते हैं। श्री गांधी को अपवाद मान कर जैसा कि हम इस समय देख रहे हैं कि क्षेत्र के सभी बड़े कांग्रेसी नेताओं ने आगामी चुनाव में प्रमुख संयोजक श्री राजगोपालाचारी के माध्यम से कहा है कि –

> "समस्त कांग्रेस के लोगों को इस बात की छूट है कि इसे अधिकाधिक कांग्रेसी विधेयक बनाने से पहले उस पर अच्छी तरह सोच विचार कर लें।"
>
> "मुझे आशा है कि सभी संविधानवेत्ता चाहे हिंदू हों अथवा मुसलमान, अस्पृश्यों के हितों की रक्षा करने के लिए एकजुट हो जाएंगे। उनमें बाद में सांप्रदायिक मुद्दों पर मतभेद हो सकते हैं, परंतु वे संगठित होंगे और कांग्रेस की नौटंकियों से लड़ने में सहयोग कर उन्हें पराजित करेंगे। महोदय! मैं समझता हूं कि अस्पृश्यों और दलितों के हितों के साथ यह विश्वासघात है। मैं इस आंदोलन में विश्वास नहीं रखता, यदि श्री गांधी पहले ही इस समस्या को अपने हाथ में ले लेते अथवा श्री राजगोपालाचारी दिल्ली में हर दरवाजे पर दस्तक न देते तो मैं इस प्रकार का विधेयक न लाता।"

VI

यह गरिमा से पीछे हटने की बात थी और वह भी कितनी निंदनीय। इस पर श्री गांधी की क्या प्रतिक्रिया थी? 4 नवंबर, 1932 को एक बयान में श्री गांधी ने कहा –

> "गांवों में अस्पृश्यों को अनुभव करना चाहिए कि उनकी बेड़ियां टूट चुकी हैं, वे दूसरे ग्रामवासियों से किसी तरह हीन नहीं हैं। वे उसी ईश्वर के पुजारी हैं, जिसके अन्य ग्रामवासी हैं और उन सभी अधिकारों और सुविधाओं के हकदार हैं, जो अन्य सभी ग्रामवासियों को प्राप्त हैं। परंतु यदि सवर्ण हिंदुओं द्वारा समझौते की मूलभूत शर्तों का पालन नहीं किया जाता, तो मैं भगवान को और समाज को क्या मुंह दिखाऊंगा। मैं दलित वर्ग से संबंधित मित्रों डा. अम्बेडकर और राव बहादुर एम.सी. राजा से कहता हूं कि वे सवर्ण हिंदुओं को रास्ते पर लाने तक मुझे अपना बंधक समझें। यदि इसके लिए अनशन भी करना पड़ता है, तो सुधारों के विरोधी इसे बलपूर्वक नहीं रोक सकेंगे। जो मेरे मित्र हैं, और जिन्होंने मेरे साथ अस्पृश्यता निवारण का संकल्प लिया है, वे उस कार्य को करेंगे। यदि वे अपने संकल्प से पीछे हटते हैं अथवा यदि उन शर्तों से आंख चुराते हैं या साथ मिल कर नहीं चलते हैं और कहते हैं कि हिंदुत्व केवल पाखंड है, तो मेरा जीवन निरर्थक है।"

श्री गांधी इसे दुहराते कभी नहीं थकते थे। हिंदु मंदिरों से अस्पृश्यों के

बहिष्कार को उन्होंने अपनी आत्मा की पीड़ा की संज्ञा दी। इसके संबंध में श्री गांधी ने क्या किया? उस योजना पर राजगोपालाचारी के विश्वासघात के बाद, जिसके संबंध में उन्होंने कहा था कि उसके बगैर उन्हें जीवन में कोई रुचि नहीं रह गई है, क्या श्री गांधी ने प्रतिकार किया? क्या इसका यह अर्थ नहीं कि केवल चुनाव जीतने के लिए कांग्रेस ने जो विश्वासघात किया था, इसी कारण श्री गांधी नें उस कुकृत्य की भर्त्सना नहीं की। बल्कि इसके विपरीत, उन्होंने श्री राजगोपालाचारी को दोषी ठहराने के बजाए श्री रंगा अय्यर को इसलिए दोषी ठहराया कि उन्होंने विधेयक पर कांग्रेसी समर्थन की वापसी पर आक्रोश में आकर भर्त्सना की थी। हरिजन के 31 अगस्त 1934 के अंक में उन्होंने लिखा –

> "अभागे मंदिर प्रवेश विधेयक को, जैसा इसके प्रस्तावक ने किया वैसे नही बल्कि अधिक शिष्ट ढंग से दफनाया जाना चाहिए था। इस विधेयक को सुधारवादियों का संरक्षण नहीं मिला हुआ था। इसलिए विधेयक पेश करने वाले को चाहिए था कि वह समाज–सुधारकों से विधेयक के संबंध में राय लेता और उनके निर्देशानुसार कार्य करता। जहां तक मुझे मालूम है, विधेयक प्रस्तावक के लिए क्रोध करने की गुंजाइश नहीं थी, जिसके कारण उसने कांग्रेसियों को विश्वासघाती बताते हुए अपनी अप्रसन्नता प्रकट की। वह विधेयक सीधे–सीधे धार्मिक व्यवहार के उद्देश्य से लाया गया था और बम्बई में 25 सितंबर 1932 को पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में हिंदू प्रतिनिधियों की सभा में की गई घोषणा पर आधारित था। इच्छुक पाठक घोषणा के विषय में तत्कालीन पत्र "हरिजन" के मुख्य पृष्ठ पर छपे प्रत्येक सप्ताह के लेख में पढ़ सकते हैं। इसलिए प्रत्येक हिंदू चाहे वह सवर्ण हो अथवा हरिजन, इस विषय में रुचि लेता था। यह वह विषय नहीं था, जिसमें दूसरे हिंदुओं की अपेक्षा कांग्रेसी हिंदू ही अधिक रुचि लेते रहे हों। इसलिए वादविवाद में कांग्रेस का ही नाम घसीटना दुर्भाग्यपूर्ण था। विधेयक को सौम्य ढंग से संचालित करना चाहिए था।"

मंदिर–प्रवेश विधेयक के बारे में कहा जा सकता है कि वह राजनीतिक कलाबाजी थी। श्री गांधी का मंदिर–प्रवेश विधेयक पर फिसलना शुरु हो गया था। जब अस्पृश्य राजनीतिक अधिकारों की मांग पेश करते हैं तब श्री गांधी अपनी स्थिति बदल देते हैं और मंदिर प्रवेश के समर्थक बन जाते हैं। हिंदू जब चुनावों में कांग्रेस को हराने की धमकी देते हैं, तब राजनीतिक शक्ति को कांग्रेस के हाथों में सुरक्षित रखने के लिए मंदिर–प्रवेश समर्थन को माचिस दिखा देते हैं। क्या यही ईमानदारी है? क्या यह कोई संकल्प है? क्या यह कोई आत्मिक संताप नही था, जिसको श्री गांधी ने घुमाफिरा कर कहा।

अध्याय : 5

राजनीतिक दान

कांग्रेस की अस्पृश्यों को मेहरबानी करके मारने की योजना

I

बम्बई के कावस जी जहांगीर हाल में, पंडित मदनमोहन मालवीय की अध्यक्षता में 30 सितम्बर 1932 को एक सभा हुई, जिसमें हिंदुओं ने बहुत बड़ी संख्या में भाग लिया। सभा का उद्देश्य था अखिल भारतीय अस्पृश्यता विरोधी संघ (आल इंडिया अंटी–अंटचेबुलिटी लीग) की स्थापना करना, तथा उसकी शाखाएं विभिन्न प्रांतों और केंद्रों में खोलना। दिल्ली में उस लीग का मुख्यालय बनने वाला था। श्री घनश्यांम दास बिड़ला उसके अध्यक्ष और अमृतलाल ठक्कर उसके महामंत्री बनने वाले थे। आल इंडिया एंटी अनटचेबिलिटी लीग की स्थापना करना श्री गांधी की योजना थी। उस लीग को श्री गांधी से प्रोत्साहन मिला था और यह पूना पैक्ट का परिणाम था। उत्पत्ति काल से ही यह लीग एक प्रकार से श्री गांधी का धर्मपुत्र था। श्री गांधी ने पहला काम यह किया कि उसका नाम बदल दिया। एक प्रेस विज्ञप्ति, जो 9 दिसंबर 1932 को प्रसारित हुई थी, जिसमें गांधी ने जनता से कहा था कि यह संस्था अब से "सर्वेंट्स आफ दि अंटचेबुल्स सोसायटी" के नाम से जानी जाएगी। यह नाम गांधीजी को पसंद नहीं था और वह दूसरे नाम की तलाश में थे। अंत में उन्होंने उसका नया नामकरण किया "हरिजन सेवक संघ" – जिसका अर्थ था, उन लोगों की संस्था, जो अस्पृश्यों की सेवा में लगे हों। यह श्री गांधी द्वारा दिया हुआ नाम था, जिसे वह अस्पृश्यों के लिए प्रयोग करते थे। इससे शैवों और वैष्णवों के बीच विवाद खड़ा हो गया। विष्णु के सौ नामों में से "हरि" एक नाम है, जबकि "हर" शिव के सौ नामों में से एक है। "हरिजन" नाम चुनने में श्री गांधी को किसी एक पंथ का पक्षपाती होने का दोषी ठहराया गया। शैवों का विचार था कि अछूतों को "हरजन" कहा जाए, जिसे श्री गांधी ने स्वीकार नहीं किया और उस नई संस्था का नाम "हरिजन" पर रखा गया।

श्री बिड़ला और ठक्कर ने 3 नवंबर 1932 को एक प्रेस विज्ञप्ति जारी की जिसमें उन्होंने उस संस्था का कार्यक्रम बनाया और यह भी बताया कि संस्था उस कार्यक्रम को कैसे कार्यान्वित करेगी।

कार्यक्रम के बारे में विज्ञप्ति में कहा गया :

> "संस्था का विश्वास है कि सनातनी हिंदुओं में सूझबूझ वाले लोग अस्पृश्यता निवारण के उतना विरुद्ध नहीं है, जितना कि अंतर्जातीय भोज और अंतर्जातीय विवाह के। चूंकि संस्था की यह आकांक्षा नहीं है कि अपनी सीमा से बाहर के सुधारों को हाथ में ले, यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि संस्था सवर्ण हिंदुओं में अस्पृश्यता के चिन्हों को समझा बुझा कर समाप्त करने का कार्य करेगी, उसका मुख्य कार्य रचनात्मक होगा; जैसे शैक्षिक, आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र में दलित वर्गों का उत्थान, जिससे अस्पश्यता निवारण को बहुत बल मिलेगा। ऐसे कार्य से कट्टरपंथी सनातनी हिंदू भी विरोध करने के बजाय सहानुभूति दिखाएंगे और मुख्यतया इस संस्था का निर्माण इसीलिए किया गया है। सामाजिक सुधार जैसे जाति व्यवस्था को समाप्त करना और अंतर्जातीय सहभोज इस संस्था की परिधि से बाहर रखे गए हैं।"

योजना को सहजता से चलाने के लिए यह प्रस्ताव रखा गया कि प्रत्येक प्रांत इकाइयों में विभाजित कर दिया जाए और प्रत्येक इकाई का वेतनभोगी उसका प्रभारी हो। जरूरी नहीं कि एक जिले में एक इकाई हो, वह इकाई दो जिलों अथवा दो राज्यों को भी मिलाकर बनाई जा सकती है। एक वर्ष के लिए एक साधारण बजट का मसविदा भी बनाया गया। वह बजट निम्न प्रकार होगा–

> "पूरे खर्च का कम से कम दो तिहाई धन उनके वास्तविक कल्याण कार्यों पर व्यय होना चाहिए और शेष एक तिहाई धन कर्मचारियों और उनके भत्तों पर व्यय होना चाहिए। इसके लिए न्यूनतम दो वेतनभोगी कार्यकर्ता होंगे, उन्हें महीने में 15 से 29 दिन तक गांवों में भ्रमण करना होगा।

दो भ्रमणशील कार्यकर्ताओं का रखरखाव एवं भत्ता –	30+20=50×12 =	600
दो भ्रमणशील कार्यकर्ताओं का यात्रा भत्ता –	2×10×12 =	240
कार्यकर्ताओं का विविध खर्च –	2×10×12 =	240
कल्याणकार्य अर्थात, स्कूली पुस्तकों का मूल्य, छात्रवृत्ति, पुरस्कार, कुओं के लिए अनुदान और और हरिजन पंचायतों का निर्माण	=	2000
	योग	3080

पूरे देश का बजट

हम यहां पूरे देश के लिए मोटे तौर से न्यूनतम वार्षिक राशि का विवरण दे रहे हैं। उस महान कार्य के विचार से योजना बहुत किफायती थी और इस विशाल कार्य के लिए धन एकत्र करने में जनता को कोई कठिनाई नहीं होती। उस कार्य के लिए दी गई पाई–पाई मूल्यवान थी, इसलिए हम चंदे के रूप में योगदान करने की अपील जनता से करते हैं। प्रत्येक प्रांत के लिए इकाइयों की प्रस्तावित संख्या केवल अस्थाई प्रस्ताव है। वास्तव में अंतिम निर्णय प्रांतीय बोर्डों द्वारा अपने आप लेना होगा।

"यह हिसाब लगाया गया है कि फिलहाल इकाइयों की निम्नलिखित संख्या विभिन्न प्रांतों में कार्य करने के लिए आवश्यक होगी। जिलों और राज्यों में इकाइयों की सख्या प्रत्येक प्रांत में निम्न प्रकार थी।

प्रांत का नाम	जिलों की संख्या	इकाइयों की संख्या
असम	11	6
आंध्र	–	6
बंगाल	26	15
कलकत्ता नगर	1	3
बिहार	16	16
बम्बई नगर एवं उपनगरीय जिला	1	3
महाराष्ट्र	10	8
गुजरात, बड़ौदा, काठियावाड़, कच्छ और दूसरे राज्य 5 और राज्य 10 मध्यप्रांत एवं बरार (मराठी)	9	7
मध्य भारत के राज्य	11	8
दिल्ली प्रांत	1	2
काश्मीर	1	1
मालाबार, कोचीन एवं त्रावनकोर	4	10
मैसूर, कर्नाटक, बम्बई के जिले		

और मद्रास	8	10
निजाम का राज्य	14	10
उड़ीसा जागीरदारी राज्य 5+26 = स्टेट्स		8
पंजाब एवं उत्तरी पश्चिमी सीमा प्रांत तथा पंजाब राज्य (स्टेटस) 32+7 =	39	10
राजपूताना रजवाड़े अजमेर–मारवाड़ राज्य ब्रिटिश शासित खंड – 18+1 =	19	9
सिंध	8	5
तमिलनाडु	13	8
संयुक्त प्रांत	48	24
योग		184

184 इकाइयों का खर्च होगा –	3000 × 184	=	5,52,000 रुपये
केंद्रीय एवं प्रांतीय कार्यालय			
केंद्रीय कार्यालय –	1000 × 12	=	12,000
प्रांतीय कार्यालय –	4000 × 12	=	48,000
संपूर्ण योग			6,12,000 रुपये

इस धनराशि को केंद्रीय कोष से तथा प्रांतों और जिलों से एकत्र करना होगा। यह देखा जा सकता है कि 6 लाख रुपये एकत्र करने का इरादा किया गया था और इसे पूरे देश में अस्पृश्यता निवारण के लिए तथा हरिजनों के उत्थान पर खर्च करना था। यह उत्थान का कार्यक्रम कम से कम पांच वर्ष तक अवश्य चलना चाहिए। देसी राज्यों को मिला कर इस योजना का प्रसार जब 22 प्रांतों में फैल गया तो चार करोड़ अथवा चार सौ लाख हरिजनों के लिए यह धनराशि वास्तव में कम थी।"

हरिजन सेवक संघ का कार्य करने के लिए धन जुटाने को श्री गांधी ने 7 नवंबर, 1933 से 29 जुलाई 1934 के मध्य देशभर की यात्रा की और आठ लाख

रुपये[1] इकट्ठे किए। जैसा कि यात्रा का मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों के हित में सवर्ण हिंदुओं के अंदर उत्साह पैदा करना था और धन भी एकत्र करना था, श्री गांधी ने अधिकतर यात्रा पैदल चल कर की। श्री गांधी ने आठ लाख रुपये एकत्र किए। उपरोक्त धनराशि तथा श्री गांधी के धनी मित्रों द्वारा दानस्वरूप, जो धन एकत्र हुआ, उसमें हरिजन सेवक संघ ने अपना काम आरंभ किया।

हरिजन सेवक संघ सितंबर 1932 से चल रहा है। अस्पृश्यों की दुर्दशा पर तथा उनके उत्थान के लिए श्री गांधी कितने चिन्तित हैं, और उनकी आत्मा में जो व्यथा है उसका यह संघ शानदार साक्षी है। संघ के महामंत्री ने दिल्ली में संघ के भवन में बहुत से अमरीकी लोगों को आमंत्रित किया और उन्हें दिखाया कि श्री गांधी द्वारा अस्पृश्यों के कल्याण के लिए कितना अनूठा कार्य किया जा रहा है।

सभी को पददलित लोगों के कल्याण के लिए किए जा रहे कार्यों की प्रशंसा करनी चाहिए। परंतु इसका अर्थ यह नहीं कि उसकी कभी आलोचना न की जाए। यह जांच करना उचित ही होगा कि जब से संघ बना है तब से वह क्या कार्य कर रहा है। जिस किसी ने भी संघ की वार्षिक रिपोर्ट का अवलोकन किया है, वह देखेगा कि वही घिसीपिटी बातें दोहराई जा रही हैं। शिक्षा के क्षेत्र में, संघ ने अस्पृश्यों के लिए कला, प्राविधिक तथा व्यावसायिक पाठ्यक्रमों के लिए छात्रवृत्तियां आरम्भ करके उनकी सहायता कर उनमें उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया है। संघ हाई स्कूल तक के विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां भी देता है। संघ उन अस्पृश्य विद्यार्थियों के लिए, जो कालेजों और हाई स्कूलों में पढ़ते हैं, छात्रावास का प्रबंध करता है। जहां आस–पास में सामान्य स्कूल नहीं थे अथवा जहां उनके लिए सामान्य स्कूल बंद थे, वहां प्राथमिक स्तर पर बच्चों के लिए पृथक स्कूल कायम करना संघ का मुख्य शैक्षिक कार्यकलाप है।

संघ का दूसरा कार्य कल्याणकारी गतिविधियां थीं। संघ का अस्पृश्यों को चिकित्सा सहायता पहुंचाने का कार्य इसी शीर्षक के अन्तर्गत आता है। संघ के वे भ्रमण करने वाले कर्मचारी हरिजनों के घरों में बीमारों और आपदाओं में फंसे लोगों को चिकित्सा सहायता पहुंचाने जाते हैं। अस्पृश्यों के उपयोग हेतु संघ की ओर से कुछ औषधालयों का प्रबंध किया जाता है। यह संघ का लघुतर कार्य है।

संघ का अधिक महत्वपूर्ण कार्य हरिजनों के लिए पेय जल सप्लाई करना है। वह यह कार्य (1) नए कुएं खुदवाकर अथवा नलकूप और पंप लगवाकर (2) पुराने कुओं, नलकूपों, पंपों की मरम्मत करा कर और (3) स्थानीय निकायों को नए

1. हरिजन अगस्त, 3, 1934

कुएं खुदवाने के लिए प्रोत्साहन देकर करता है।

संघ ने तीसरा काम आर्थिक क्षेत्र में किया। संघ ने कुछ औद्योगिक स्कूल चलाए हैं और यह दावा किया जाता है कि संघ द्वारा संचालित स्कूलों से कुछ संख्या में प्रशिक्षित कारीगर निकले जो स्वतंत्र रूप से अपना जीविकोपार्जन कर सकते हैं। परंतु रिपोर्टों के अनुसार अधिक सफल और महत्वपूर्ण कार्य अस्पृश्यों में सहकारी समितियां स्थापित करके किया गया है।

II

संघ की गतिविधियों के इस संक्षिप्त विवरण से दिमाग में यह बात आती है कि संघ अस्पृश्यों के कल्याण के लिए बहुत बड़ी धनराशि खर्च कर रहा है। परंतु वास्तविकता क्या है? यह स्मरण होगा कि अस्पृश्यों की उन्नति के लिए 6 लाख रुपये संघ से प्रति वर्ष खर्च करने की अपेक्षा की जाती थी, लेकिन संघ ने वास्तव में कितना खर्च किया? उस के सचिव ने मई 1941 की अपनी रिपोर्ट* में बताया कि –

> "आठ वर्षों में संघ ने हरिजनों के लिए अपनी विभिन्न शाखाओं और केंद्रीय कार्यालय के माध्यम से क्रमशः लगभग 24,25,700 रुपये तथा 3,41,607 रुपये खर्च किये। समस्या की आवश्यकताओं को देखते हुए यह 27,67,307 रुपये की धनराशि अपर्याप्त हैं।"

इस आधार पर संघ का वार्षिक व्यय 3,45,888 रुपये आता है, जो संघ की अपेक्षित धनराशि से 50 प्रतिशत कम था। इससे स्पष्ट है कि संघ उतना बड़ा कार्य नहीं कर रहा है, जितना संघ के लोग प्रचार करते हैं। संघ बड़ी नाजुक स्थिति में चल रहा है। पांच करोड़ अस्पृश्यों की आबादी पर तीन लाख रुपये का वार्षिक बजट उतना नहीं है, जितने से अछूतों की आवश्यकताएं पूरी की जा सकें। इससे और भी स्पष्ट हो जाता है कि विभिन्न प्रांतों में कांग्रेस के शासन होने के बावजूद दो वर्षों में संघ को यथोचित अनुदान सरकार की ओर से न मिल सका।

संघ को उसकी दयनीय आर्थिक स्थिति के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। सारा दोष हिंदुओं का है। यदि संघ की ह्रासोन्मुख न होकर जैसी की तैसी स्थिति भी रही तो भी यह स्पष्ट है कि हिंदुओं में अस्पृश्यों के कल्याण के प्रति कितनी उपेक्षा है। राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए उन्होंने एक करोड़ रुपये चंदा एकत्र किया, जो तिलक स्वराज्य कोष में गया। सामान्य हितों

---

* रिपोर्ट, पृष्ठ 58

के लिए अभी उन्होंने जल्दी ही एक करोड़ पन्द्रह लाख रुपये चंदे के रूप में एकत्र किए, जिससे कस्तूरबा स्मारक कोष बना। इसकी तुलना में हिंदुओं ने हरिजन सेवक संघ के लिए जो चंदा एकत्र किया वह धनराशि नगण्य है।

अस्पृश्यों के कल्याण के लिए संघ जिस ढंग से काम करता है, उससे किसी को मतभेद हो सकता है। संघ अधिकतर जो कार्य करता है, वह ऐसा कार्य है, जिसे किसी भी सुसभ्य सरकार को सरकारी साधनों से करना चाहिए। यह पूछा जा सकता है कि संघ सरकार से इस कार्य को अपने हाथ में लेने के लिए क्यों नहीं कहता और उन योजनाओं पर क्यों नहीं खर्च करता, जिन्हें शीघ्रता से निपटाने की आवश्यकता है?

यद्यपि इससे अस्पृश्यों में संघ के प्रति वैमनस्य की भावनाएं नहीं उठ सकतीं, तब भी यह माना जा सकता है कि वैमनस्य की भावना मौजूद है। इन परिस्थितियों एवं कारणों[1] पर एक लेखक ने 14 अक्तूबर 1944 को इंडियन सोशल रिफार्मर में लिखा था –

> "अनुसूचित जातियों का एक प्रतिनिधिमंडल सेवाग्राम में श्री गांधी के पास यह निवेदन करने गया कि हरिजन सेवक संघ प्रबंधक मंडल में अनुसूचित जाति के सदस्यों को भी प्रतिनिधित्व दिया जाए। ऐसी सूचना मिली है कि श्री गांधी ने उन्हें उत्तर दिया कि संघ हरिजनों की सहायता के लिए है। वह हरिजन संस्था नहीं है, अतः उनका अनुरोध मान्य नहीं है। गोलमेज सम्मेलन में श्री गांधी ने हरिजनों के लिए सीट आरक्षण का इस आधार पर विरोध किया था कि वे हिंदू हैं और उन्हें सामान्य हिंदुओं से अलग न किया जाए। इसके पश्चात यर्वदा पैक्ट में उन्होंने सीटों के बंटवारे में हिंदू कोटे से सीटें देने पर विचार किया। जब इस संबंध में मसौदा तैयार होकर बम्बई की आम सभा में पुष्टि हेतु लाया गया, तब उस बैठक के अध्यक्ष पंडित मदनमोहन मालवीय थे, उस सभा में से एक दर्शक ने कहा कि कोई आवश्यकता नहीं है कि इसके लिए अधिक धन खर्च किया जाए, जैसा कि पंडित जी की राय है। हिंदू समाज का कलंक मिटाने के लिए धन एकत्र किया जाए इसकी क्या आवश्यकता है? जितने भी लोग यहां पर उपस्थित हैं, यदि प्रत्येक नर–नारी निश्चिय कर ले (उपस्थित महिलाओं की संख्या काफी थी) कि वे सामान्य हिंदुओं की भांति हरिजनों को भी

1. इस लेखक की टिप्पणी का आधार 26 सितम्बर, 1944 को अखबारों में छपा यह समाचार था कि कुछ अछूत श्री गांधी से मिले और उनसे आग्रह किया कि हरिजन सेवक संघ की कार्यकारी परिषद् में अछूतों के प्रतिनिधियों को नियुक्त किया जाये, परन्तु श्री गांधी ने इनकार कर दिया। समझा जाता है कि लिखने वाला और कोई नहीं श्री के. नटराजन थे।

अपने घर पर आदर का स्थान देंगे, तो यह समस्या समाप्त हो जाएगी। बम्बई के एक रईस व्यापारी ने घुसपैठिये को यह कह कर चुप कर दिया कि 'तुमने उनसे भीतरी बात कही है, उनमें से कोई भी उस सत्य को अंगीकार करने के लिए तैयार नहीं है।' पहली बात से मुझे ज्ञात होता है कि यह हरिजन सेवक संघ की मूलभूत कमजोरी रही है। परिणाम क्या हुआ? संघ का प्रत्येक लाभार्थी डा. अम्बेडकर का कट्टर अनुयायी है, जो इस बात का परिचायक है कि हिंदुओं के प्रति डा. अम्बेडकर की तरह उनका मन भी घृणा से भरा हुआ है। इस बयान की पुष्टि में मैं कई उदाहरण दे सकता हूं, परंतु उससे बात बिगड़ेगी। मैं समझता हूं कि समस्त महत्वपूर्ण निकायों में चाहे वे स्थानीय हों अथवा केंद्रीय, हरिजन पुरुषों और महिलाओं को अन्य हिंदुओं के साथ मिलाने से उस घृणा भाव से बचा जा सकता है। हरिजनों से घुले–मिले बिना उनकी सहायता करने का विचार सामाजिक सुधार की भावना के विपरीत है। हरिजनों के उत्थान से संबंधित पहले के आंदोलनों से मैं सम्बद्ध था। मैंने उन पुरुषों और महिलाओं में कभी शत्रु भाव अनुभव नहीं किया। ऐसा इसलिए कि आंदोलन को खड़ा करने वाले धार्मिक विश्वास सामाजिक अभिशाप को दूर करने के लिए कटिबद्ध थे और दलित वर्गों के साथ उनका व्यवहार भेदभावपूर्ण नहीं था। मैं समझता हूं कि श्री गांधी का यह कथन ठीक नहीं था कि अनुसूचित जातियों के लोग हरिजन सेवक संघ में नहीं शामिल किए जा सकते। एक मित्र ने मुझे बताया था कि जब संघ बना था, डा. अम्बेडकर उसके एक सदस्य थे।"

मैंने यह उद्धरण इसलिए प्रस्तुत किया है कि इससे मुझे संघ के क्षोभ के कारणों तथा उसके वास्तविक स्वरूप को स्पष्ट करने का अवसर मिलता है।

III

"इंडियन सोशल रिफार्मर" में लेखक ने दलील दी कि अस्पृश्यों को संघ के प्रबंध में शामिल किया जाना चाहिए। उनके बयान से शायद लोगों को विश्वास हो जाए कि अस्पृश्यों को संघ के केंद्रीय बोर्ड में कभी भी प्रतिनिधित्व नहीं मिला। ऐसा सोचना भूल होगी। वास्तविक स्थिति यह है कि आरंभ में संघ के केंद्रीय बोर्ड में कुछ प्रमुख अस्पृश्य प्रतिनिधि थे। श्री बिड़ला और श्री ठक्कर ने 3 नवंबर 1932 को, जो बयान जारी किया उससे जो केंद्रीय बोर्ड के सदस्यों ने उनके नाम दिए हुए हैं, उस केंद्रीय बोर्ड में निम्नलिखित सदस्य हैं –

> "सार्जेंट श्री घनश्याम दास बिड़ला, दिल्ली और कलकत्ता, सर पुरुषोत्तम दास ठाकुर दास, बम्बई, सर लल्लू भाई सामलदास, बम्बई, डा. बी. आर. अम्बेडकर, बम्बई, सेठ अम्बालाल साराभाई, अहमदाबाद, डा. बी. सी. राय, कलकत्ता, लाला श्रीराम, दिल्ली, राव बहादुर एम.सी. राजा, मद्रास, डा. टी.एस.एस. राजन त्रिचनापल्ली, राव बहादुर श्री निवासन, मद्रास, श्री ए.वी. ठक्कर, महामंत्री, दिल्ली।"

यह स्पष्ट है कि आठ सदस्यों में से तीन सदस्य अस्पृश्यों में से लिए गए थे। मेरे बोर्ड से हटने पर अन्य दो सदस्य, राय बहादुर एम.सी. राजा तथा राय बहादुर श्रीनिवासन भी उससे अलग हो गए। संघ से उनके अलग होने का क्या कारण था, मुझे मालूम नहीं।

मैंने संघ से सम्बंध क्यों तोड़े, इसका कारण स्पष्ट कर देना उचित होगा। पूना पैक्ट के बाद मैंने 'भूलो और क्षमा करो' की भावना अपनाई। मैंने बहुत से मित्रों के कहने पर श्री गांधी की सदाशयता स्वीकार कर ली। उसी भावना में मैंने संघ के केंद्रीय बोर्ड की सदस्यता स्वीकार की थी। मैं इसके जरिए कुछ करना चाहता था। वास्तव में, मैं श्री गांधी से संघ की उस योजना के विषय में चर्चा करना चाहता था। चर्चा करने से पहले तीसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए लंदन से मेरा बुलावा आ गया। मैं इतना ही कर सकता था कि मैं संघ के महामंत्री श्री ए.वी. ठक्कर को अपने विचार लिख कर भेज दूं। तदनुसार मैंने स्टीमर पर से उन्हें निम्नलिखित पत्र लिखा –

> "एन.एन. विक्टोरिया पोर्टसईद
> नवंबर 14, 1933
>
> प्रिय श्री ठक्कर,
>
> लंदन की यात्रा आरंभ करने से पहले मुझे आपका तार मिला, जिसमें केंद्रीय बोर्ड के लिए राय बहादुर श्रीनिवासन तथा बम्बई प्रांतीय बोर्ड के लिए श्री डी.बी. नाइक के नामजद करने की मेरी सलाह स्वीकार कर ली गई है। मैं इस बात से भी प्रसन्न हूं कि इस प्रश्न को शांतिपूर्वक हल कर लिया गया और अब हम एंटी अनटचेबिलिटी लीग[1] की योजना को मिलजुल कर चला सकते हैं। मैं सेंट्रल बोर्ड के सदस्यों से मिल कर, उनसे उन सिद्धांतों पर चर्चा करना चाहता था, जो लीग की योजना बनाने से सम्बद्ध हैं, परंतु दुर्भाग्यवश अल्प सूचना पर लंदन के लिए रवाना होने के कारण मुझे वह अवसर गंवाना

1. लीग को ही अंत में हरिजन सेवक संघ का नाम दिया गया।

पड़ रहा है। तथापि मैं दूसरा सर्वोत्तम विकल्प लिखित रूप में अपने विचार से भेज रहा हूं। इस अनुरोध के साथ कि आप इन विचारों को केंद्रीय बोर्ड के समक्ष विचारार्थ प्रस्तुत करेंगे।

मेरे विचार से दलित वर्गों के उत्थान के लिए दो विभिन्न पद्धतियां हो सकती हैं। एक वर्ग ऐसा है जो यह सोचता है कि दलित वर्ग के सदस्यों की स्थिति उनके व्यक्तिगत आचरण पर निर्भर करती है। यदि वे कंगाली और मुसीबतों में फंसे हैं, तो इसका कारण यहीं है कि वे स्वयं ही दुष्ट और पापी हैं। सामाजिक कार्यकर्ताओं का यह वर्ग, योजना को हाथ में लेते हुए, उन सभी प्रयत्नों और साधनों पर अपना ध्यान केंद्रित करता है जो इस योजना की सफलता में आवश्यक है; जैसे इस में संयम, व्यायाम, सहयोग, पुस्तकालय, पाठशालाएं इत्यादि शामिल की जा सकती हैं, जो किसी व्यक्ति के उत्थान के लिए आवश्यक है। मेरे विचार से इस समस्या से निपटने का एक और भी तरीका है। वह तरीका इस भावना से पैदा होता है कि कोई मनुष्य जिस प्रकार की परिस्थितियों और वातावरण में रहता है, उसी पर उसका भाग्य निर्भर करता है। यदि कोई मनुष्य गरीबी और मुसीबत से सदैव पीड़ित रहता है, तो उसका कारण यही है कि वातावरण उसके लिए अनुकूल और हितकर नहीं है। मुझे इस बात में कोई संदेह नहीं कि दूसरा विचार अधिक सही है, पहला विचार कुछ लोगों का स्तर उठाने में सहायक हो सकता है, परंतु पूरा वर्ग इससे ऊंचा नहीं उठ सकता। एंटी अनटचेबिलिटी लीग के उद्देश्य के संबंध में मेरा विचार यह है कि इससे दलित वर्ग के केवल कुछ ही चुने हुए बच्चों को उन्नति करने में सहायता न मिले बल्कि पूरे वर्ग का स्तर उठाने में वह विचार सहायक सिद्ध हो। अतः मैं नहीं चाहता कि लीग केवल स्वयं की योजना को कार्यान्वित करने में अपनी शक्ति व्यर्थ में बरबाद करे। मैं चाहूंगा कि बोर्ड अपनी सारी शक्तियों को ऐसी योजना पर केंद्रित करे, जिससे दलित वर्ग के लोगों को स्वच्छ सामाजिक वातावरण मिल सके। अपने विचारों को सामान्य ढंग से रखते हुए लीग की योजना के लिए मैं कुछ ठोस प्रस्ताव पेश करता हूं –

1. नागरिक अधिकारों को प्राप्त करने का आंदोलन

मेरे विचार से लीग का पहला काम यह होना चाहिए कि दलित वर्गों को गांवों के सामान्य कुओं से पानी भरने, ग्रामीण स्कूलों में उनके बच्चों को पढाने, सार्वजनिक यातायात के साधनों का उपयोग करने,

जैसे नागरिक अधिकारों की सुविधा के लिए पूरे देश में आंदोलन छेड़ा जाए। गांवों में ऐसा कार्यक्रम चलाने से हिंदू समाज में वांछित सामाजिक क्रांति आएगी। बिना ऐसे आंदोलनों के दलितों को समाज की बराबरी के अवसर नहीं मिल सकते। बोर्ड पता लगाए कि नागरिक अधिकारों के आंदोलन में क्या कठिनाइयां आ सकती हैं? मैं अपने अनुभव के आधार पर कह सकता हूं कि मैंने दलित वर्ग संस्थान और सोशल इक्वेलिटी लीग का अध्यक्ष होने के नाते देखा है कि बम्बई प्रेसीडेंसी के कोलाबा और नासिक जिलों में जो योजना चलाई थी उसमें क्या हुआ था? सबसे पहले तो दलित वर्गों और सवर्ण हिंदुओं के बीच दंगे, फसाद होते हैं, जिसमें दोनों तरफ के लोगों के सिर फूटते हैं और फौजदारी के मुकदमें चलते हैं। इस लड़ाई में दलित वर्ग के लोगों को बहुत नुकसान होता है, क्योंकि पुलिस तथा मजिस्ट्रेट उनके विरुद्ध होते हैं। उपरोक्त दोनों जिलों में सामाजिक संघर्ष के समय एक भी केस ऐसा नहीं था, जिसमें पुलिस और मजिस्ट्रेट दलित वर्गों के बचाव में आगे आए हों। चाहे वे न्याय के मार्ग पर ही क्यों न हों? पुलिस और मजिस्ट्रेट जितना भ्रष्ट हो सकते हैं, उतने भ्रष्ट हैं। परंतु इससे भी बुरी बात यह है कि वे इस अर्थ में राजनीति से प्रेरित हैं कि वे यह नहीं देख सकते कि इन्हें न्याय मिले। वे तो चाहते हैं कि दलित वर्गों के मुकाबले सवर्ण हिंदुओं का वर्चस्व और उनका हित सुरक्षित रहे। दूसरे, गांवों के लोग दलित वर्गों का पूर्णतया बहिष्कार करते हैं जब उन्हें यह आभास हो जाता है कि दलित वर्ग के लोग उनकी बराबरी पर आने का प्रयत्न कर रहे हैं। आप उनकी परेशानी, भुखमरी और बेरोजगारी की दर्दनाक कहानियां जानते हैं? उन्होंने ये कहानियां स्टार्ट समिति के समक्ष दोहराई थी जिसके आप भी सदस्य थे। इसलिए मैं इस उपाय के प्रभाव के विषय में और कुछ नहीं कह सकता। न ही इस विषय में इससे अधिक कहने की गुंजाइश है कि दलित वर्गों को उनकी विकट अवस्था से ऊंचे उठाने के लिए प्रयत्न किए जाएंगे।

मैंने दलित वर्गों के उत्थान के मार्ग में आड़े आने वाली बहुत सी कठिनाइयों में से केवल दो का उल्लेख किया है, जिन पर लीग को काबू पाना है। यदि नागरिक अधिकारों के इस अभियान में लीग को सफलता प्राप्त करनी है, तो देहाती क्षेत्रों में कार्य करने वाले स्वयंसेवक दल तैयार करने होंगे, जो दलित वर्ग के लोगों को अपने अधिकारों के लिए प्रोत्साहित करेंगे और कानूनी दाव–पेंचों में सफलतापूर्वक

उनकी सहायता करेंगे, तब मैं लीग के इस कार्यक्रम को प्रभावकारी समझूंगा और मुझे यह कहने में जरा सी भी हिचक न होगी कि लीग दूसरी समस्याओं की अपेक्षा उन्हें प्राथमिकता देती है। यह सच है कि इस कार्यक्रम से सामाजिक उथल-पुथल और खून-खराबा भी हो सकता है। परन्तु इससे बचा नहीं जा सकता। मैं, न्यूनतम विरोध करने की वैकल्पिक नीति को भी जानता हूं। मुझे विश्वास है कि यह अस्पृश्यता को जड़ से समाप्त करने के मामले में प्रभावी नहीं होगी। अधिकतर नासमझ सवर्ण हिंदुओं में, जो प्राचीनकाल से अविवेकपूर्ण विचार चले आ रहे हैं, उनके कारण वे उन दलित वर्गों के उत्थान का कार्य नहीं कर सकते। सबसे पहली बात है सवर्ण हिंदू मानव स्वभाव के अनुकूल दलित वर्गों के साथ परंपरागत अस्पृश्यता को मान कर चलता है। प्रायः लोग अपने पुराने रीतिरिवाजों के अनुसार व्यवहार करना नहीं छोड़ते, क्योंकि कुछ लोग उन रीतियों को छोड़ने के विरुद्ध प्रचार करते हैं। परंतु पुराने रीतिरिवाजों के अनुसार बर्ताव करने को धार्मिक स्वीकृति मिली हुई है। यदि उसे गलत करार नहीं दिया जाता अथवा उसे नहीं रोका जाता, तो लोगों के मस्तिष्क पर कोई अच्छा प्रभाव डाले बिना सब किए-कराए पर पानी फिर जाता है। उन आपदाओं से दलित वर्गों को तभी मुक्ति मिल सकती है, जब सवर्ण हिंदुओं को समझाया जाएगा और उन्हें यह अनुभव करने के लिए विवश किया जाएगा कि वे अपने पुराने तौर-तरीके बदलें। उन सवर्ण हिंदुओं में पुराने समय से प्रचलित रीति-रिवाजों की जो प्रथा है, उसके विरुद्ध आपको सीधी कार्यवाही करके आंदोलन चलाना है। उस आंदोलन के बाद उन्हें सोचना होगा और वे अगर सोचेंगे तो इससे उनमें परिवर्तन आएगा। इस शांत परिवर्तन का मुख्य उद्देश्य यही है कि यह बौद्धिकता के दबाव में नहीं होगा। उसके बाद आंदोलन में आगे नहीं बढ़ेगा। महाद में चावदार, तालाब, नासिक के काला राम मंदिर और बालाबार के गुरुवयूर मंदिर प्रवेश के संबंध में, जो सीधी कार्यवाही की गई उससे कुछ ही दिनों में जो परिणाम निकला, वह परिणाम उपदेशात्मक रीति से लाखों दिनों में नहीं निकल सकता था। इसलिए मैं जोरदार शब्दों में ऐसा आंदोलन छेड़ने का सुझाव देता हूं कि सीधी कार्यवाही कर अस्पृश्यता निवारण लीग दलित वर्ग के लोगों को नागरिक अधिकार दिला सकती है। मुझे इस आंदोलन की कठिनाइयों का भी अहसास है और अपने अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि शांति और व्यवस्था को कायम रखने वाले अधिकारी भी हमारे पक्ष में होंगे। इसी वजह से मैंने उस योजना से जान-बूझकर मंदिर प्रवेश की बात को

निकाल दिया है और इसे क्रेवल नागरिक अधिकारों की प्राप्ति तक ही सीमित रखा है। इसे कार्यान्वित करने में शासन भी प्रोत्साहन देगा।

2. अवसर की समानता

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि लीग को दलित वर्गों को समान अवसर प्राप्त करने का कार्य अपने हाथ में ले लेना चाहिए। दलित वर्गों की गरीबी और बदहाली का मुख्य कारण अस्पृश्यता के कारण उन्हें समान अवसरों से वंचित रखना है। मुझे विश्वास है कि आप इस बात से भली भांति अवगत हैं कि दलित वर्ग के लोग अन्य लोगों की तरह गांवों में तथा शहरों में सब्जियां, दूध, घी बेच कर अपनी जीविका नहीं कमा सकते। सवर्ण हिंदू उन वस्तुओं को एक गैर–हिंदू से तो खरीद सकता है, परंतु दलित वर्ग से नहीं। नौकरियों के क्षेत्र में उसकी दशा और भी खराब है। सरकारी विभागों में भेदभाव का भूत मौजूद है। दलितों को पुलिस में सिपाही अथवा संदेशवाहक तक नहीं बनाया जाता। कारखानों में भी वही हाल है। अमरीका की तरह खुशहाली के दिनों में नीग्रो को सबसे अंत में नौकरी मिलेगी और मुसीबत के दिनों में सबसे पहला शिकार वही होगा। यदि वह कहीं कदम जमा कर खड़ा भी हो जाए, तो उसका भविष्य बहुत बुरा होगा। बम्बई और अहमदाबाद की सूती मिलों में उसे न्यूनतम मजदूरी ही उपलब्ध है जहां वह केवल 25 रुपये मासिक कमा सकता है। बुनाई के दरवाजे जैसे अधिक आय वाले विभाग उनके लिए हमेशा बंद रहते है। अल्प वेतन विभाग से भी वह तरक्की की सीढ़ी नहीं चढ़ सकता। अधिकारियों के स्थान सवर्ण हिंदुओं के लिए सुरक्षित रहते हैं, जबकि दलित वर्ग के कर्मचारी कुत्तों की तरह दुम हिलाने वाले गुलाम होते हैं, चाहे वे कितने ही पुराने और कुशल क्यों न हों? उन विभागों में जहां काम के आधार पर पैसा मिलता है, उसके साथ सामाजिक भेदभाव ज्यों का त्यो है। उसे सवर्ण हिंदुओं के मुकाबले ठेकेदारी के काम से वंचित रखा जाता है। अटेरन विभाग में काम करने वाली दलित वर्गों की औरतें सैंकड़ों की संख्या में शिकायत लेकर मेरे पास आईं। उन्होंने बताया कि वहां की नायक कच्चे माल को समस्त मजदूरों में समान रूप से बांटने की अपेक्षा सवर्ण हिंदू औरतों को ही अधिक काम देती है और उन्हें काम से प्रायः वंचित कर दिया जाता है। सवर्ण हिंदुओं के हाथों दलित वर्गों के लोगों को सताने और विकट भेदभाव के केवल कुछ ही उदाहरण मैंने आपके सामने रखे हैं।

इसलिए मैं यह उचित समझता हू कि ऐसी असमानता की सार्वजनिक रूप से निंदा की जाए। अस्पृश्यता निवारण के इस प्रश्न को इसी नीयत से अपने हाथ में लिया जाय। इसके लिए संस्थाएं बनाई जाएं, तो और अधिक अच्छा होगा। मैं तो यही चाहूंगा कि सूती मिलों के बुनाई विभागों में दलित वर्गों को शामिल करने का अवसर दिया जाए। हिंदुओं द्वारा संचालित प्राइवेट फर्म और कंपनियों में, उनके दफ्तरों में, विभिन्न श्रेणियों के पदों के लिए, जहाँ दलित वर्ग के योग्य अभ्यर्थी उपलब्ध हों, तो उन्हें नौकरी दिला कर बहुत कुछ किया जा सकता है।

3. सामाजिक मेलजोल

अतः मैं कहना चाहता हूं कि हिंदुओं के मन में दलितों के प्रति जो द्वेष भाव की मनोवृत्ति घर कर गई है, उसे दूर किया जाए। यही उनके बीच अलगाव का मुख्य कारण है। मेरे विचार से सबसे अच्छा तरीका तो यही है कि दोनों में नजदीकी रिश्ता कायम किया जाए। दोनों वर्गों में आपसी मेल–जोल से ही ऐसी भ्रमपूर्ण भावनाओं पर नियंत्रण पाया जा सकता है। मेरे विचार से सवर्ण हिंदुओं के घरों में दलितों को मेहमानों अथवा नौकरों के रूप में प्रवेश दिलाने से अधिक प्रभावकारी उपाय और कोई नहीं हो सकता। इस प्रकार का पारस्परिक मेल–जोल उन दोनों वर्गों को नजदीक लाएगा और हमारी उस एकता का मार्ग प्रशस्त होगा, जिसके लिए हम सभी प्रयत्नशील हैं। मुझे अफसोस है कि बहुत से सवर्ण हिंदू, जो अपने को बड़ा उत्तरदायी होने का दिखावा करते हैं, इसके लिए तैयार नहीं होंगे। श्री गांधी के दस दिनों के अनशन के समय जब भारतीय समाज कांप उठा था, तब विले पारले और महाद में ऐसी कुछ बातें हुईं, जहां सवर्ण हिंदू नौकरों ने अपना काम छोड़ दिया, क्योंकि उनके मालिकों ने अस्पृश्यों के साथ भाईचारे का बर्ताव कर अस्पृश्यता के पुराने नियमों को तोड़ दिया था। मुझे आशा थी कि वे मालिक उनके स्थानों पर अस्पृश्यों को नौकरी देकर हड़ताल समाप्त कर गलती करने वाले लोगों को पाठ सिखाएंगे। ऐसा करने की अपेक्षा, उन्होंने रूढ़िवादियों के सामने हथियार डाल दिए और उन्हें पहले से अधिक मजबूत कर दिया। मैं नहीं समझता कि दलित वर्गों के ऐसे अवसरवादी मित्र कहां तक उनके सहायक सिद्ध होंगे? जब लोग मुसीबत में होते हैं, तो उन्हें केवल इतना तो संतोष होता है कि कुछ लोग हैं, जो उनसे हमदर्दी रखते हैं। इसलिए मैं लीग

से कह सकता हूं कि दलित वर्ग के लोग इन सवर्ण हिंदुओं को अपना हितैषी तब तक नहीं मानेंगे, जब तक यह सिद्ध न हो जाए कि वे अपने प्रियजनों की भांति अस्पृश्यों के लिए लड़ने को वैसे ही तैयार हैं, जैसे कि उत्तर के गोरों ने अपने प्रियजनों के लिए लड़ाई लड़ी। जब दक्षिणी के गोरों ने नीग्रों की मुक्ति के लिए कमरकस के लड़ाई लड़ी थी, परंतु इस बात के साथ यह भी आवश्यक है कि लीग हिंदू जनता को अछूतों और सवर्ण हिंदुओं के बीच सामाजिक सहचर्य की आवश्यकता समझाए, जैसा कि मैंने ऊपर स्पष्ट किया है।

4. नियुक्त की जाने वाली एजेंसी

संघ को अपने कार्यक्रम का संचालन करने के लिए बड़ी संख्या में स्वयंसेवक तैयार करने होंगे। सामाजिक कार्यकर्ताओं का गठन कुछ लोगों की दृष्टि में बहुत छोटी सी बात हो सकती है। मैं इस कार्य के लिए सामाजिक कार्यकर्ताओं के संगठन के चुनाव को बहुत महत्वपूर्ण समझता हूं। सामाजिक कार्यकर्ताओं को यदि वेतन दिया जाएगा, तो वे विशेषतया उसी काम को करेंगे, जिसके लिए उन्हें रखा जाता है। मुझे विश्वास है कि ऐसे भाड़े के कार्यकर्ताओं से लीग का उद्देश्य पूरा न होगा। जैसा कि टाल्सटाय ने कहा था "केवल वे जो प्रेम करते हैं, वे ही सेवा कर सकते हैं।" मेरे विचार से दलित वर्गों से ही लिए गए कार्यकर्ता इस कसौटी पर अधिक खरे उतरेंगे। इसलिए लीग इस प्रश्न को अपने दिमाग में रख कर निश्चय करे कि किन्हें कार्यकर्ता चुनना है? मैं यह नहीं कहता कि दलितों में बदमाश नहीं हैं, जो कुछ काम न कर पाने पर स्वार्थवश सामाजिक सेवा का धंधा अपनाते हैं। परंतु यह निश्चय है और आप भी देखेंगे कि दलित वर्गों से लिए गए कार्यकर्ता सफलतापूर्वक कितने प्रेम और लगन से लीग का काम करते हैं। लीग को इसी की जरूरत है। दूसरी बात यह है कि कुछ संस्थाएं बिना किसी निश्चित दायरे के ऐसी समाज–सेवा कर रही हैं। उनकी भी सेवाएं अस्पृश्यता निवारण लीग कुछ अनुदान देकर प्राप्त कर सकती है। परंतु मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि भाड़े पर कार्य कराने की ऐसी व्यवस्था से कोई अच्छा परिणाम निकलने वाला नहीं है। वास्तव में लीग को ऐसे लोगों की आवश्यकता है कि जो एकाग्रचित्त होकर कार्य करें। मैं ऐसे व्यक्तियों और संस्थाओं को ही ऐसा कार्य करने के लिए चुनना पसंद करूंगा, जो समाज के हित में दीवानगी की हद तक कार्य करें। समाज का महत्वपूर्ण कार्य ऐसे व्यक्तियों को

सौंपा जाए, जो मात्र दलित वर्गों की सेवा के लिए अपने आपको समर्पित करने को तैयार हों।

मुझे अफ़सोस है कि मैंने पत्र की सीमा का उल्लंघन किया है। मैं आगे कोई और गलती नहीं करूंगा और इसे हनुमान की पूंछ की तरह और आगे नहीं बढ़ाऊंगा। मुझे बहुत सी और भी बातें कहनी थीं, परंतु उन्हें फिर कभी कहूंगा। पत्र समाप्त करने से पहले मुझे अभी कुछ और कहना है। बेल्फर ने कहा था कि ब्रिटिश राज्य को कानून ने नहीं अपितु प्रेम की डोर ने ही बांध कर रखा था। मैं समझता हूं कि यह बात हिंदू समाज पर भी लागू होती है। अस्पृश्यों और सवर्णों में कानून द्वारा एकता नहीं लाई जा सकती – संयुक्त मतदान से भी नहीं। यदि कोई बात उनमें समरसता ला सकती है, तो वह है परस्पर प्रेम। मेरे विचार से पारिवारिक बंधन तोड़ कर ही ऐसा प्रेम करना संभव होगा और अस्पृश्यता निवारण लीग का कर्तव्य होना चाहिए कि वह देखे कि सवर्ण अस्पृश्यों से प्रेम करते हैं और अस्पृश्यों के साथ न्याय करते हैं अथवा नहीं। मेरे विचार से लीग के अस्तित्व अथवा उसकी योजना का औचित्य इसी बात में निहित है।

सादर।

आपका विश्वासपात्र

(डा. बी.आर. अम्बेडकर)

पुनश्चः

मैं इसे प्रकाशन हेतु प्रेस को भेज रहा हूं ताकि आम जनता भी मेरे विचारों से अवगत हो और उसे विचार करने का अवसर मिले।

सेवा में,

ए.बी. ठक्कर
महामंत्री
अस्पृश्यता निवारण लीग
बिड़ला हाउस,
नई दिल्ली

IV

मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि मेरे प्रस्तावों पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। यहां तक कि मेरे पत्र की पावती भी नहीं भेजी गई। मैंने यही अनुभव किया कि संघ में मेरा बने रहना लाभप्रद नहीं है। मैंने अपने को संघ से अलग कर लिया। मुझे मालूम हुआ कि मेरी अनुपस्थिति में संघ के लक्ष्य और उद्देश्यों में आमूल परिवर्तन कर दिए गए। बम्बई में 30 सितम्बर, 1932 को कावसजी जहांगीर हाल में जो बैठक हुई उसमें संस्था के उद्देश्यों को इस प्रकार बतलाया गया –

> "अस्पृश्यता के विरोध में प्रचार करना और इसके लिए जितना व्यावहारिक हो, इस शर्त के साथ आवश्यक कदम उठाना, कि कोई दबाव या जबरदस्ती नहीं की जाएगी, बल्कि केवल शांतिपूर्ण ढंग से समझाबुझा कर सभी सार्वजनिक कुएं, धर्मशालाएं, सड़कें, पाठशालाएं, शमशान भूमि, शमशान घाट और सभी सार्वजनिक मंदिर दलित वर्गों के लिए खुले घोषित किए जाएंगे।"

परंतु उसके उद्घाटन के दो महीने बाद 3 नवंबर को श्री घनश्याम दास बिड़ला और श्री ए.बी. ठक्कर ने एक बयान जारी किया –

> "लीग को विश्वास है कि समझदार सनातनी हिंदू अस्पृश्यता निवारण के उतना ज्यादा विरुद्ध नही है, जितना कि अंतर्जातीय भोज और अंतर्जातीय विवाहों के विरुद्ध हैं। चूंकि लीग की इच्छा नहीं है कि लीग अपनी सीमा के बाहर जाकर सुधारों को अपने हाथों में ले, इसलिए यहां पर यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक हो जाता है कि लीग सवर्ण हिंदुओं के बीच में जाकर अस्पृश्यता के अवशेष मिटाने की बातें उन्हें समझाएगी। उनके कार्य की रूपरेखा रचनात्मक होगी; जैसे कि दलित वर्गों का शैक्षिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में उत्थान, जिससे अस्पृश्यता निवारण का स्वतः मार्ग खुलेगा। ऐसे कार्यों से कट्टर सनातनी हिंदू भी खींचातानी करने की अपेक्षा उनसे सहानुभूति रखेंगे। यही वह कार्य है जिसके लिए लीग की स्थापना की गई थी। जाति प्रथा की समाप्ति और अंतर्जातीय सहभोज, जैसे समाज सुधार के कार्य लीग की कार्य सीमा से बाहर रखे गए हैं।"

यहां संस्था के मूलभूत उद्देश्यों के पूर्णतया विपरीत कार्य किया गया था। अब भी योजना में अस्पृश्यता निवारण को नाम मात्र के लिए स्थान दिया गया था। रचनात्मक कार्य संघ के कार्य का मुख्य अंग था। यह पूछना समीचीन होगा कि लीग के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों में इस प्रकार का परिवर्तन क्यों किया गया?

संघ के लक्ष्यों और उद्देश्यों में श्री गांधी की जानकारी में लाए बिना तथा उनकी राय के बिना कोई परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। इसका कारण यही था कि संघ का मूल कार्य श्री गांधी के लिए बहुत ही असुविधाजनक था। अस्पृश्यता निवारण को मंच ही बनाए रखना बहुत अच्छा था, परंतु जहां तक कार्यक्रम को व्यावहारिक रूप देने का संबंध है, उससे हिंदुओं के बीच में श्री गांधी की भद्द पिट जाती। ऐसी अलोकप्रियता के लिए श्री गांधी तैयार नहीं थे। इसीलिए उनके लिए रचनात्मक कार्यक्रम बेकार था। हिंदुओं ने इस कार्य पर एतराज नहीं किया। श्री गांधी ने हिंदुओं को प्रसन्न करते हुए यह काम शुरू किया। रचनात्मक कार्य के उस कार्यक्रम से अस्पृश्यों के उस स्वतंत्र आंदोलन को पलीता लगाना था, जिस आंदोलन ने 1932 में गांधी जी को पूना पैक्ट के लिए विवश किया था। इसलिए कांग्रेसियों ने लाभ समझ कर रचनात्मक कार्य को ही अपने हाथ में लिया। इसके फलस्वरूप कुछ अस्पृश्य कांग्रेसी हो गए। रचनात्मक कार्य की योजना का प्रयोजन अस्पृश्यों को अपने मार्ग से हटा कर श्री गांधी मार्ग पर अग्रसर करना था, वह भी बड़े सौम्य भाव से। वास्तव में यही हुआ। हरिजन सेवक संघ अस्पृश्यों के किसी ऐसे आंदोलन को बर्दाश्त नहीं कर सकता था जो स्वतंत्र हो और हिंदुओं तथा कांग्रेस के विरुद्ध हो। संघ उसे नष्ट करने पर आमादा हो गया। संघ के लक्ष्यों एवं उद्देश्यों में ऐसे परिवर्तन के फलस्वरूप मैंने संघ से नाता तोड़ लिया।

सबसे पहले जब कुछ अस्पृश्यों ने संघ छोड़ा तो श्री गांधी ने उनके स्थान पर अन्य अस्पृश्यों को नियुक्त करने का प्रयास नहीं किया। इसके बजाए संघ का संपूर्ण प्रबंध कांग्रेस के सवर्ण हिंदुओं के हाथों में सौंप दिया गया। वास्तव में अब संघ की नीति यही हो गई है कि संघ के प्रबंध और उच्चतर निर्देशन से अस्पृश्यों को दूर रखा जाए और उन्हें संघ में न लिया जाए। अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व[1] जो श्री गांधी से संघ की प्रबंधक समिति में अस्पृश्यों को नियुक्त करने के अनुरोध के साथ मिला था, अस्वीकार कर दिया। उसी से उनकी भावना का पता चलता है। श्री गांधी ने प्रतिनिधियों को एक नया सिद्धांत बतला कर धीरज बंधाया। उनका कहना है "अस्पृश्यों के लिए कल्याणकारी कार्य करना हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यता के पाप का प्रायश्चित करना है। जो धन एकत्र किया गया है, वह हिंदुओं के चंदे से एकत्र किया गया है। दोनों दृष्टिकोणों से हिंदुओं को ही संघ को चलाना है। नैतिकता या अधिकार से अस्पृश्य किसी सीट के लिए अपने अधिकार का औचित्य सिद्ध नहीं कर सकते हैं। श्री गांधी को इस बात का अहसास नहीं हुआ कि उन्होंने अपने इस उपदेश से अस्पृश्यों को कितना अपमानित किया। इससे उनके इस रूखे व्यवहार को छिपाया नहीं जा सकता। यदि श्री गांधी यही

1. अस्पृश्यों का जो प्रतिनिधित्व श्री गांधी से मिला था, वह नए पहलू का नहीं था। इससे पहले कई प्रतिनिधिमंडल उनसे मिले थे और उनका भी वही परिणाम रहा।

समझते हैं कि धन हिंदुओं द्वारा एकत्र किया गया है इसलिए अस्पृश्यों को यह पूछने का अधिकार नहीं कि धन कैसे खर्च किया जाएगा, तो कोई भी स्वाभिमानी अस्पृश्य उनके पास इस प्रकार नहीं जाएगा। सौभाग्यवश जो अस्पृश्य उनसे जा चिपके रहे, वही बेरोजगार और लफंगे थे, जो राजनीति को अपनी कमाई का धंधा बनाना चाहते हैं। परंतु श्री गांधी को सोचना चाहिए कि इस विषय में वह जो कुछ कह रहे हैं, वह परिवर्तन के औचित्य पर लीपापोती ही है। इससे यह नहीं स्पष्ट होता है कि संघ के मूल उद्देश्यों में परिवर्तन का क्या कारण था? सवाल यह है कि "श्री गांधी किसी समय अस्पृश्यों को संघ की प्रबंधक बोर्ड में रखने के इच्छुक थे और अब उन्हें उस संस्था से निकालने के पक्ष में क्यों हैं?"

V

इंडियन सोशल रिफार्मर में पत्र के लेखक का यह कथन सत्य है कि अस्पृश्यों ने 'डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन सोसायटी' से कोई द्वेष भाव नहीं रखा। वह सोसायटी भी हरिजन सेवक संघ के समान अस्पृश्यों के बीच में कल्याण कार्य कर रही थी। हिंदुओं और अस्पृश्य, दोनों ने पूरी लगन से कंधे से कंधा मिलाकर मिशन के कार्य को आगे बढ़ाया। लेखक का यह कहना सही नहीं है कि इसका कारण 'डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन' का अपनी प्रबंध समिति में कुछ अस्पृश्य लोगों को रखना था। यह बिल्कुल सही है। इसी वजह से मिशन और अस्पृश्यों में द्वेष भावना नहीं थी और ठीक इसके विपरीत संघ और अस्पृश्यों के बीच विद्वेष मौजूद था। इसका कारण यह था कि मिशन का कार्य राजनीतिक उद्देश्यों से परे था, परंतु संघ का उद्देश्य राजनीतिक था।

यह सच है कि मूल विचार संघ को राजनीति से बिल्कुल अलग रखना था। तीन नवंबर 1932 को जारी किए गए बयान में कहा गया था –

> "संघ बिना किसी राजनीति के अपने कार्य को चालू रख सकता है और संघ का निश्चय है कि वह राजनीतिक अथवा धार्मिक किसी भी प्रकार के प्रचार से अपने को सम्बद्ध नहीं करेगा। इसीलिए प्रांतीय तथा केंद्रीय कार्यकारिणी के अध्यक्ष अपने कार्यकर्ताओं का चुनाव बड़ी सावधानी से करेंगे। इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि संघ के पूर्णकालिक वेतनभोगी कार्यकर्ता राजनीति अथवा किसी वर्ग के धार्मिक प्रचार में भाग नहीं ले सकते।"

परतु इस घोषणा पर अमल कम हुआ, और उल्लंघन अधिक। इसका कारण यह था कि अस्पृश्यों को कांग्रेस के फंदे में लाने का लोभ संवरण नहीं किया जा सका। इसके लिए हरिजन सेवक संघ को उपयोग में लाया गया ताकि अस्पृश्य

कांग्रेस की राजनीति स्वीकार कर सके और कांग्रेस की 'विचारधारा के प्रभाव में आकर उसकी हां में हां मिलाने लगें। ऐसा भी हो सकता है कि अस्पृश्यों के लिए काम करने के साथ–साथ हरिजन सेवक संघ उन्हें कांग्रेस के सांचे में ढाल दे। अस्पृश्यों को जीवन संग्राम में लड़ने योग्य बनाने के साथ–साथ उन्हें अपना राजनीतिक क्षेत्र चुनने के लिए स्वतंत्र छोड़ देना स्पष्टतः एक तरह का दान होगा। परन्तु हिन्दू ऐसे दान का कब तक समर्थन करते? अधिक समय तक नहीं। हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यों पर, जो अत्याचार किए जाते रहे हैं, उसके प्रति उनमें पश्चाताप और आत्मग्लानि नहीं है। संघ जिस दान पर जीता है वह समाप्त हो जायेगा। यदि वह इससे बचना चाहता है, तो उसे चाहिए कि वह हिंदुओं को बताए कि अस्पृश्य धर्म और राजनीति को लेकर हिन्दुओं के विरुद्ध नहीं हैं। इस विषय में मेरी विवेचना सही नहीं भी हो सकती है। परंतु इस वास्तविकता से इंकार नहीं किया जा सकता कि हरिजन सेवक संघ एक राजनीतिक संस्था है, जिसका प्रत्यक्ष लक्ष्य और उद्देश्य है – अस्पृश्यों को कांग्रेस में लाना।

मैं कुछ उदाहरण दे सकता हूं, जो मुझे महत्वपूर्ण लगते हैं। हरिजन सेवक संघ अपने कार्यकर्ताओं के सम्मेलन आयोजित करता है। सम्मेलन विभिन्न भाषाई अंचलों में संगठन के कार्य की प्रगति की समीक्षा और विचार तथा अनुभवों का आदान–प्रदान करने के लिए होते हैं। इसी प्रकार की एक सभा पूना में वर्ष 1939 में जून के पहले सप्ताह में हुई थी। मालूम हुआ कि उस सभा मे एक ऐसे प्रस्ताव की योजना बनाई गई कि सरकार से कहा जाए कि पूना पैक्ट के अंतर्गत की गई मतदान व्यवस्था बदली जाए और विभाजक मतदान को एकीकृत मतदान में बदला जाए। मैं पहले ही बता चुका हूं कि पूना पैक्ट के समय हथियार डाल देने पर कांग्रेस ने विभाजक मतदान प्रथा पर कितना जोर डाला और अस्पृश्यों के लिए यह कितनी खतरनाक बात थी। पैक्ट को विफल करने में कांग्रेस असफल रही। संघ ने उसका झंडा थाम लिया और यह भलीभांति जानते हुए कि अछूत उसका विरोध करते थे, एक गैर–राजनीतिक संस्था के लिए यह कितना आश्चर्यजनक प्रस्ताव था। यह तो वही बात हुई कि नशे में धुत्त शराबी ढोल पीटता फिरे कि उसने तो कभी छुई भी नहीं। हरिजन सेवक संघ पर अस्पृश्यों से प्रदर्शन कराने जैसे कार्यों पर रोक लगी हुई थी।

मैं यह कह सकता हूं कि हरिजन सेवक संघ की बम्बई शाखा ने अपने कांग्रेस विरोधी दृष्टिकोण के कारण शहर में रहने वाली कुछ अस्पृश्य जातियों को काली सूची में दर्ज करने की नीति अपनाई। जातियों को जिन काली सूची में दर्ज किया गया था उनके विद्यार्थियों की छात्रवृत्ति बंद कर दी गई और अन्य शैक्षिक सहायता से उन्हें वंचित कर दिया गया। महार जाति जो अस्पृश्यों के राजनीतिक आंदोलन की अग्रणी रही थी और जो सदैव कांग्रेस के साथ लड़ाई

लड़ती रही है, काली सूची में डाल दी गई और महार विद्यार्थियों के साथ उस समय तक भेदभाव किया जाता था, जब तक कि वे यह न सिद्ध कर दें कि वे कांग्रेस के विरुद्ध विचारों वाली संस्था में भाग नहीं लेते।

अंतिम उदाहरण जो मैं प्रस्तुत कर रहा हूं, श्री ए.वी. ठक्कर से संबंधित है। वे हरिजन सेवक सघ के महामंत्री हैं। श्री ठक्कर बम्बई सरकार के पिछड़ी जाति बोर्ड के सदस्य भी हैं। इस बोर्ड की स्थापना 1929 में हुई थी। इसकी बैठकें समय–समय पर होती हैं और वह अस्पृश्यों और पिछड़ी जातियों से संबंधित विषयों पर सरकार को सलाह देता है।

बोर्ड की बैठक में श्री ठक्कर एक प्रस्ताव लाए थे, जिसमें सरकार से इस बात की सिफारिश की गई थी कि अस्पृश्य विद्यार्थियों को सरकार द्वारा दी जाने वाली छात्रवृत्ति में से, महार छात्रों को निकाल दिया जाए, क्योंकि महार जाति शिक्षा में काफी आगे बढ़ गई है। अतः उन्हें छात्रवृत्ति देना सरकारी धन का दुरुपयोग करना होगा। अतः उसे अन्य अस्पृश्य जातियों के लिए सुरिक्षत रखा जाए। प्रस्ताव के तथ्यों का पता लगाने के लिए भेजा गया। जांच रिपोर्ट से ज्ञात हुआ कि प्रस्तुत के तथ्य गलत थे और यह भी ज्ञात हुआ कि महार आगे बढ़ जाने के बजाए शिक्षा के क्षेत्र में अन्य अस्पृश्य जातियों की अपेक्षा वास्तव में काफी पिछड़े हुए हैं। वह प्रस्ताव राजनीतिक कपट के सिवाय और कुछ नहीं था और वह भी उस व्यक्ति द्वारा, जो हरिजन सेवक संघ का महामंत्री था और कांग्रेस–विरोधी होने के कारण उन्हें सजा देना चाहता था।

इन सब बातों से क्या सिद्ध होता है? क्या इससे यह साबित नहीं होता कि हरिजन सेवक संघ केवल नाम के लिए धर्मार्थ संस्था है और उसका मुख्य लक्ष्य अस्पृश्यों को कांग्रेसी जाल में फंसाना, उन्हें हिंदुओं और कांग्रेस के पिट्ठू बनाना, उनके उन आंदोलनों को रोकना, जिनका लक्ष्य हो अपने आप को सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्रों में हिंदुओं के प्रभुत्व से छुटकारा दिलाना। क्या इस बात में भी कोई आश्चर्य है कि अस्पृश्य हरिजन सेवक संघ को इस कारण घृणा की निगाह से देखते हैं कि संघ उन्हें पुचकार कर मारना चाहता है।

अध्याय : 6

एक झूठा दावा

I

कांग्रेस बराबर ढ़ोल पीट–पीट कर दावा करती रही है कि भारत में केवल कांग्रेस ही ऐसी राजनीतिक संस्था है, जो भारत की समस्त जनता का प्रतिनिधित्व करती है। एक समय था जब कांग्रेस दावा किया करती थी कि वह मुसलमानों का भी प्रतिनिधित्व करती है। परंतु अब वह ऐसा दावा नहीं करती। अब उसका जोशखरोश ठंडा पड़ गया है। परंतु जहां तक अस्पृश्यों का संबंध है, वह गला फाड़ कर अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने का प्रचार करती है। दूसरी ओर, गैर–कांग्रेसी राजनीतिक दलों ने सदैव इस दावे का विरोध किया है और यह सच है कि अछूतों ने सदा कांग्रेस के इस दावे की बखिया उधेड़ी है।

इस प्रतियोगिता में कांग्रेस अछूतों को और अन्य गैर–कांग्रेसी दलों को अपनी शक्ति तथा जनता में प्रचार के माध्यम से पछाड़ने में सफल हो गई। इसका परिणाम यह रहा कि बहुत से विदेशी, जो भारतीय मामलों में रुचि रखते थे, इस प्रचार से गुमराह हुए और कांग्रेस के दावों पर विश्वास करने लगे। क्योंकि दुनिया केवल प्रचारकों पर विश्वास करती है, इसलिए कांग्रेस ने विदेशियों को बहुत आसानी से उल्लू बनाया और उन लोगों का कोई वश न चला, जिन्होंने कांग्रेस द्वारा सबका प्रतिनिधित्व करने के दावे को गलत बताया। क्योंकि उनके पास स्थिति से निपटने के कोई साधन नहीं थे। परंतु प्रांतीय विधानमंडलों के लिए 1937 में हुए चुनावों से स्थिति बदल गई। प्रचार पर आधारित, सामान्य बयानों पर निर्भर रहने के बजाए, अब सीटों और मतों के आधार पर बातें होने लगी, जो प्रचार से अधिक ठोस मूल्यांकन करने का साधन है।

अब यह देखना है कि सन् 1937 में हुए चुनाव से क्या स्पष्ट होता है और कांग्रेस ने कुल कितनी सीटें प्राप्त की?

पहले तो हमें कांग्रेस द्वारा प्राप्त की गई सीटों की संख्या निश्चित तौर पर ज्ञात करनी है। चुनाव होने के तुरंत बाद उन सभी लोगों ने एक जलसा किया,

जो कांग्रेस टिकट पर चुनाव जीत कर प्रांतीय विधानमंडलों में आ गए थे। उनकी बैठक 19 व 20 मार्च 1937 को नई दिल्ली में हुई। उस जलसे में कांग्रेस ने एक बुलेटिन छापा, जिसमें उनके नाम दिए हुए हैं। उस सूचना को सही मानते हुए प्रांतीय विधानमंडलों में कांग्रेस की संख्या निम्नलिखित थी –

तालिका – 6

प्रांतीय विधानमंडलों में कांग्रेसी सदस्यों की संख्या

प्रांत	*कुल सदस्यों की संख्या*	*कांग्रेस सदस्यों की संख्या*
असम	108	35
बंगाल	250	60
बिहार	152	95
बम्बई	175	85
मध्यप्रांत एवं बिरार	112	70
मद्रास	215	159
उड़ीसा	60	36
पंजाब	175	18
सिंध	60	08
संयुक्त प्रांत	228	134
पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत	50	19
कुल	1585	719

तालिका – 7

प्रांतीय विधान परिषदों में कांग्रेसियों की संख्या

प्रांत	*परिषद में सदस्यों की कुल संख्या*	*परिषद में कांग्रेस सदस्य की संख्या*
असम	18	00
बंगाल	57	10
बिहार	26	08
बम्बई	26	14
मद्रास	46	26
कुल	173	58

इन तालिकाओं से स्पष्ट होता है कि दोनों सदनों को मिलाकर कांग्रेस को कुल 1758 में से 777 सीटें मिलीं। स्पष्ट है कि कांग्रेस बहुमत में नहीं आई। उसे कुल सीटों में से आधी सीटें भी नहीं मिली।

सीटों की संख्या की दृष्टि से कांग्रेस की यह स्थिति है। परंतु मतदान के विचार से कांग्रेस की क्या स्थिति है? निम्नांकित संख्याओं से मतदान के विचार से भी कांग्रेस अल्पसंख्या में थी –

तालिका नं. – 8

चुनावों में मतदान के अनुसार कांग्रेस और गैर–कांग्रेस दलों की प्राप्त मत संख्या

प्रांत		कुल मतदान में मतों की संख्या	कांग्रेस के पक्ष में मतों की संख्या	गैर कांग्रेस दलों के पक्ष में मतों की संख्या
मद्रास	सभा	4,327,734	2,658,966	1,668,768
	परिषद	33,511	16,907	16,604
बम्बई	सभा	3,408,308	1,568,093	184,215
	परिषद	23,730	9,420	14,310
बंगाल	सभा	3,475,730	1,055,900	2,419,830
	परिषद	5,593	1,489	4,104
संयुक्त प्रांत	सभा	3,362,736	1,899,32	1,463,411
	परिषद	9,795	1580	8,215
बिहार	सभा	1,477,668	992,642	485,026
	परिषद	4,318	96	4,222
पंजाब	सभा	1,710,934	181,265	1,529,669
मध्य प्रांत	सभा	1,317,461	678,265	639,196
असम	सभा	522,332	129,218	393,114
	परिषद	2,623	00	2,623
पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत	सभा	179,529	43,845	135,684
उड़ीसा	सभा	304,749	198,680	1,06,069
सिंध	सभा	333,589	18,944	314,645
कुल		20,500,340	9,454,635	11,0457,705

इन्हीं संख्याओं को जानना पर्याप्त नहीं है। उन्हें दूसरी परिस्थितियों के प्रकाश में भी पढ़ा जाना चाहिए। पहली परिस्थिति है मताधिकार का आधार और दूसरी स्थिति है चुनावों में दो पार्टियों की सापेक्ष स्थिति। बिना इन बातों पर विचार किए चुनावों के परिणामों के महत्व को ठीक से समझना सम्भव नही होगा। जहां तक मतदान का प्रश्न है, कुल आबादी के अनुपात में वास्तव में मतदान बहुत कम हुआ। कुल आबादी के कितने भाग ने मतदान किया, यह निम्नलिखित तुलनात्मक आकड़ों से स्पष्ट हो जाएगा।

तालिका 9

प्रांत	*जनसंख्या (1931)*	*निर्वाचन गण*
मद्रास	47193602	6145450
बम्बई एवं सिंध	26398997	3249500
बंगाल	·1087338	6695483
संयुक्त प्रांत	49614833	5335309
पंजाब	24018639	2686094
बिहार एवं उड़ीसा	4232983	2932454
मध्य प्रांत	17990937	1741364
असम	9247857	815341
पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत	4684364	246609
कुल	272566150	29847604

कुल जनसंख्या के केवल दसवें भाग को ही मतदान करने का अधिकार था। अधिक से अधिक मतदान करने वाली मध्यवर्ग की तथा प्रबुद्ध जनता थी जो पूरी तरह कांग्रेस के पक्ष में थी। जहां तक कांग्रेस तथा गैर–कांग्रेसी दलों के संबंधों की बात है, निम्नलिखित बातों पर मुख्यतया ध्यान देना आवश्यक है। कांग्रेस के पास धन, संगठन और अन्य युद्ध साधन थे। गैर–कांग्रेसी प्रत्याशियों के पास न तो धन था और न ही उनका कोई संगठन था। कांग्रेस प्रत्यांशी उच्च वर्ग के थे। वे ब्रिटिश साम्राज्य के शत्रु थे और देश को स्वतंत्र कराना चाहते थे। कांग्रेसी प्रत्याशियों को जेल यात्रा से शहीदी का दर्जा मिला था। यह नियम बन गया था कि जो देश के लिए जेल जा चुका हो वही कांग्रेस प्रत्याशी हो सकता था। कांग्रेसी प्रेस ने गैर–कांग्रेसी उम्मीदवारों को टोरी बच्चा बताते हुए कहा कि उन्होंने न तो देश सेवा की है और न ही देश के लिए कोई बलिदान किया है। वे तो अंग्रेजी साम्राज्य के दलाल हैं, देश के शत्रु हैं और धंधेबाज हैं। पिद्दी का

शोरबा हैं, जो देश के हितों का सौदा करते हैं, आदि। जैसा कि मैंने कहा, भारत में काग्रेसी प्रेस के अतिरिक्त कोई और प्रेस है ही नहीं। दूसरी मुख्य बात एक और थी जो कांग्रेसी उम्मीदवारों के पक्ष में कही जाती थी और गैर–कांग्रेसी उम्मीदवारों के विरोध में। कांग्रेस ने सन 1920 के चेम्सफोर्ड सुधारों का बहिष्कार किया था और कांग्रेस प्रत्याशियों को देश के शासन के संबंध में हुई किसी भूल–चूक का कोई जवाब नहीं देना था। दूसरी ओर, गैर–कांग्रेसी प्रत्याशी वे थे जिन्होंने सुधारों का समर्थन किया था। उन्हें कमीशन की भूल–चूक का जवाब देना था। वे लोग जो प्रशासन का उत्तरदायित्व अपने कंधे पर वहन करने का साहस रखते हैं उन्हें यह सब करना ही पड़ता है। गैर–कांग्रेसी प्रत्याशियों को गंद, बला, आदि कहा गया और कांग्रेसी प्रत्याशी देवदूत घोषित किए गए थे, जो भारी कुप्रथाओं को दूर करते हैं। ऐसी परिस्थिति में समझा जा सकता है कि कांग्रेस का पक्ष कितना भारी था, फिर भी आश्चर्य की बात है कि कांग्रेस को चुनाव में मात खानी पड़ी। इन सभी साधनों तथा जनता में प्रशंसा और सहानुभूति के कारण कांग्रेस को चुनाव में सफलता मिलनी चाहिए थी। परंतु तब भी उसे 50 प्रतिशत सीटें अथवा मत नहीं प्राप्त हो सके।

क्या इसमें अब भी संदेह है कि जो कांग्रेस सभी वर्गों एवं जातियों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है, उसका दावा थोथा एवं झूठा है और तथ्यों पर आधारित नहीं है।

II

कांग्रेस अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करती है, इस दावे का भी मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इस दावे की जांच भी वर्ष 1937 में हुए चुनावों के नतीजों के सदंर्भ में की जा सकती है। जिन–जिन सीटों पर कांग्रेस और अस्पृश्य प्रत्याशियों की टक्कर हुई, उस विषय में सही ढंग से समझना संभव न होगा कि अस्पृश्यों को प्रतिनिधित्व देने के लिए क्या विधि अपनाई गई थी। इसलिए मैं भारतीय चुनाव प्रणाली को पहले उदाहरण के तौर पर स्पष्ट कर देना आवश्यक समझता हूं। खास तौर से विदेशियों के लिए, किसी भी चुनाव व्यवस्था के चार मूल–तत्वों का विवेचन किया जाता है, जैसे कि (1) निर्वाचक, जिसे भारत में लोग निर्वाचन–क्षेत्र कहते है, (2) मतदान का अधिकार (3) निर्वाचन के लिए प्रत्याशी के रूप में खडे होने का अधिकार और (4) कौन प्रत्याशी सफल हो सकता है, इसे निश्चय करने के नियम।

1. गवर्नमेंट ऑफ इडिया एक्ट 1935 द्वारा अनुमोदित निर्वाचन–क्षेत्र दो तरह के होते हैं –

(1) गैर–प्रादेशिक (नानटेरीटोरियल)

(2) प्रादेशिक (टेरीटोरियल)

2. गैर–प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्र में वे क्षेत्र आते हैं, जिनमें किसी विशेष वर्ग को प्रतिनिधित्व दिया जाता है, जैसे जमींदार (लेंडलार्ड) व्यापार मंडल, श्रमिक संघ इत्यादि।

3. प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्रों की तीन श्रेणियां हैं –

(1) पृथक प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्र जिन्हें संक्षेप में पृथक निर्वाचन के नाम से जाना जाता है।

(2) सामान्य निर्वाचन–क्षेत्र।

(3) संयुक्त प्रादेशिक निर्वाचन–क्षेत्र जिसमें कुछ सीटें सुरक्षित हों।

4. पृथक निर्वाचन क्षेत्र सांप्रदायिक चुनाव क्षेत्र है। उनका उद्देश्य संप्रदाय विशेष को प्रतिनिधित्व देना होता है, जैसे कि मुसलमान, भारतीय ईसाई, यूरोपीयन लोग तथा एंग्लो इंडियन। इन सभी संप्रदायों के मतदाताओं के लिए एक निर्वाचन क्षेत्र अलग से मतदाता प्रतिनिधि के रूप में चुनते हैं और पृथक निर्वाचन का मुख्य सिद्धांत होता है कि पृथक निर्वाचन के माध्यम से केवल किसी एक समुदाय के मतदाता ही मत दे सकते हैं तथा चुनाव के लिए खड़े हो सकते हैं। यदि मुस्लिम निर्वाचन–क्षेत्र है, तो मतदाता और प्रत्याशी मुसलमान ही होना चाहिए। इसी प्रकार ईसाइयों का निर्वाचन क्षेत्र है, तो मतदाता और प्रत्याशी ईसाई ही होना चाहिए। ऐसे में किसी विशेष समुदाय के मतदाताओं के बहुमत के आधार पर चुनाव का निर्णय किया जाता है।

5. सामान्य निर्वाचन क्षेत्र उस निर्वाचन क्षेत्र का साधारण रूप है, जिसमें उस क्षेत्र में रहने वाले समस्त मतदाता होते हैं, परंतु पृथक निर्वाचन–क्षेत्रों से बाहर के। इसे सामान्य चुनाव कहते हैं, क्योंकि यह वह चुनाव क्षेत्र होता है जिसमें संप्रदाय और धर्म को कोई स्थान नहीं होता।

सामान्य निर्वाचन में –

(1) पृथक निर्वाचन क्षेत्र का मतदाता इसमें मतदान नहीं कर सकता और न वह प्रत्याशी के रूप में खड़ा ही हो सकता है।

(2) प्रत्येक मतदाता, जो मतदाता सूची में हैं, मतदान करने का अधिकारी होता हैं और जाति अथवा संप्रदाय का उल्लेख किए बिना चुनाव में खड़ा हो सकता है।

(3) चुनाव का परिणाम मतदान के बहुमत के आधार पर निश्चित किया जाता है।

6. संयुक्त चुनाव पृथक चुनाव तथा सामान्य चुनाव प्रणाली के मध्य की तीसरी प्रणाली है। इसमें पृथक निर्वाचन तथा सामान्य निर्वाचन की कुछ–कुछ सामान्य बातें मिलती हैं। परंतु अन्य कुछ मुख्य बातें दोनों पद्धतियों में भिन्न हैं, सामान्य प्रचलित और भिन्न बातें निम्न प्रकार हैं –

(एक) संयुक्त निर्वाचन की तुलना पृथक निर्वाचन से :

(1) संयुक्त निर्वाचन तथा पृथक निर्वाचन दोनों एक समान हैं तथा दोनों का उद्देश्य किसी संप्रदाय विशेष के लिए सीट निश्चित करना है।

(2) संयुक्त निर्वाचन पृथक निर्वाचन से दो बातों में भिन्न है।

(क) पृथक निर्वाचन में चुनाव में मतदान का अधिकार उस संप्रदाय के मतदाताओं तक सीमित रहता है, जिसके लिए वह सीट निश्चित रहती है जबकि संयुक्त निर्वाचन में यद्यपि किसी संप्रदाय विशेष के सदस्य को प्रत्याशी के रूप में खड़े होने का अधिकार होता है। सामान्य चुनाव की तरह अन्य सभी संप्रदायों के मतदाताओं को भी मतदान का अधिकार होता है।

(ख) दोनों पद्धतियों में बहुमत के आधार पर ही चुनाव परिणाम घोषित किया जाता है। परंतु पृथक निर्वाचन पद्धति में जिस संप्रदाय का उम्मीदवार हो उसी संप्रदाय के मतदाताओं का बहुमत होना चाहिए, जबकि संयुक्त निर्वाचन पद्धति में प्रत्याशी को जीतने के लिए उसी संप्रदाय के बहुमत की आवश्यकता नहीं होती।

(दो) संयुक्त निर्वाचन की सामान्य निर्वाचन से तुलना –

(1) संयुक्त निर्वाचन और सामान्य निर्वाचन में घनिष्ठ समरूपता है। सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में मतदाता खड़े हुए किसी भी प्रत्याशी को अपना वोट दे सकता है।

(2) संयुक्त निर्वाचन पृथक निर्वाचन से दो बातों में भिन्न है –

(अ) सामान्य निर्वाचन क्षेत्र एक सदस्यीय क्षेत्र हो सकता है, परंतु संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में कम से कम दो सदस्य – एक सामान्य निर्वाचन क्षेत्र की सीट तथा दूसरा आरक्षित सीट के लिए – आवश्यक होना चाहिए।

(ब) सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में से किसी संप्रदाय विशेष के लिए

कोई सीट निश्चित नहीं की जाती। परंतु संयुक्त निर्वाचन प्रणाली में कम से कम एक सीट अवश्य आरक्षित होती है।

7. संयुक्त निर्वाचन पद्धति की मुख्य बातें आरक्षित सीटों वाली संयुक्त निर्वाचन पद्धति अनिवार्यतः सामान्य निर्वाचन पद्धति ही है परन्तु वह निम्नलिखित विशेषताओं के कारण भिन्न है–

(1) सामान्य निर्वाचन पद्धति में एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र हो सकता है। परंतु संयुक्त निर्वाचन पद्धति में आवश्यक रूप से एक से अधिक सदस्य होने चाहिए।

(2) सामान्य निर्वाचन पद्धति में सभी संप्रदायों के लिए एक अथवा एक से अधिक सीटों के चुनाव द्वारा भरे जाने के लिए दरवाजा खुला है। सांप्रदायिक निर्वाचन की परिधि में आने वालों को छोड़ कर अन्य कोई भी चुनाव लड़ सकता है। परिणाम सांप्रदायिकता का बिना भेदभाव किए प्राप्त मत के बहुमत के आधार पर निश्चित किया जाता है, परंतु संयुक्त निर्वाचन में कम से कम एक सीट किसी संप्रदाय विशेष के लिए अवश्य निश्चित रहती है। जिसका अर्थ यह है कि ऐसी सुरक्षित सीट के लिए केवल संप्रदाय विशेष के सदस्यों में से ही प्रत्याशी खड़े हो सकते हैं।

(3) संयुक्त निर्वाचन पद्धति में उम्मीदवार के रूप में खड़े होने का अधिकार प्रतिबंधित है। परंतु सामान्य निर्वाचन पद्धति में मतदान का अधिकार प्रतिबंधित नहीं है अैर समस्त मतदाता वे चाहे जिस भी संप्रदाय से संबंधित हों, सभी लोग चुनाव में सुरक्षित सीट के लिए खड़े प्रत्याशी को वोट दे सकते हैं।

(4) सुरक्षित सीट के लिए परिणाम की घोषणा में यह आवश्यक नहीं कि सफल उम्मीदवार को किसी संप्रदाय के मतदाताओं के मतों की निश्चित संख्या प्राप्त करना आवश्यक हो। नियम यह है कि किसी समुदाय का प्रत्याशी जिस सप्रदाय के लिए सीट आरक्षित है यदि केवल एक ही है अथवा एक से अधिक है तो उनमें जिसके मतों की संख्या सबसे अधिक होगी उसे निर्वाचित घोषित कर दिया जाएगा चाहे दूसरा उम्मीदवार जो सामान्य सम्प्रदाय का हो और उसने साम्प्रदायिक उम्मीदवार से अधिक संख्या में मत क्यों न प्राप्त किये हों।

भारत में इस प्रकार की चुनाव व्यवस्था है जो चुनाव व्यवस्था अस्पृश्यों पर लागू की गई है वह संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था, जिसमें सीटों की आरक्षण की व्यवस्था होती है जैसा कि ऊपर पैरा – 7 में दर्शाया गया है। अस्पृश्यों के लिए

आरक्षण के सिद्धांत को लागू करने के लिए यह किया गया है कि सामान्य चुनावों के वांछित संख्या में क्षेत्र निकाल कर वांछित संख्या के सदस्यों के क्षेत्रों में परिवर्तित कर एक अथवा दो सीटें अस्पृश्यों के लिए आरक्षित की जायें। विभिन्न प्रांतों में इस प्रकार विभिन्न निर्वाचन पद्धतियां थीं। प्रांतीय विधानमंडलों में अस्पृश्यों के लिए उनकी वास्तविक संख्या के अनुसार सीटें निश्चित की जाती थीं। उस योजना के मुख्य बिंदुओं पर भी ध्यान दिया जाना चाहिए, जो चुनाव नतीजे की दृष्टि से निर्णायक ढंग के हैं।

संयुक्त निर्वाचन पद्धति सामान्य निर्वाचन पद्धति ही है। परन्तु इससे यह नहीं मान लिया जाना चाहिए कि वह निर्वाचन क्षेत्र सामान्य मतदाताओं का ही क्षेत्र है। जैसा कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, मुसलमान भारतीय ईसाई एंग्लों–इंडियन और यूरोपियन मतदाता संयुक्त निर्वाचन से अलग कर दिए गए हैं। परिणाम यह है कि संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र वह क्षेत्र है, जिसमें वहीं मतदाता शामिल हैं जो अस्पृश्य जाति के हिंदू हैं, पारसी हैं तथा यहूदी हैं। जैसा कि पारसी और यहूदी केवल बम्बई को छोड़ अन्यत्र नगण्य हैं, संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में केवल हिंदू और अस्पृश्य रह जाते हैं।

यद्यपि अस्पृश्यों के लिए एक सीट आरक्षित करने के लिए चुना गया सामान्य निर्वाचन क्षेत्र दो सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र से बड़ा हो सकता है और किसी एक सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में अस्पृश्यों के लिए एक सीट से अधिक भी आरक्षित की जा सकती हैं, सभी प्रांतों में सामान्य योजना यह है कि दो सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र बनाया जाय, जिसमें एक सीट हिन्दुओं के लिए तथा दूसरी सीट अस्पृश्यों के लिए हो। ऐसा केवल बंगाल में है जहां तीन निर्वाचन क्षेत्र ऐसे हैं, जिनमें दो सीटें अस्पृश्यों के लिए आरक्षित हैं। इस प्रकार संयुक्त निर्वाचन सम्बद्ध निर्वाचन क्षेत्र हैं। इस संयुक्त निर्वाचन की दो मुख्य बातें ध्यान देने योग्य हैं : (1) संयुक्त निर्वाचन में हिन्दू मतदाता अधिकतर बहुमत में होते हैं, यदि अधिक बहुमत में नहीं होते तो भी अस्पृश्य जाति के मतदाता सदैव अल्पसंख्या में होतें हैं, भले ही बहुत कम अल्पमत में हो; और (2) आरक्षित सीट के लिए खड़े अस्पृश्य उम्मीदवार को हिन्दू मतदाता वोट दे सकता है और अस्पृश्य मतदाता हिन्दू सीट के लिए खड़े हिन्दू उम्मीदवार को वोट दे सकता है।

इस व्यवस्था में क्या संभावनाएं हो सकती हैं? क्या अस्पृश्य जातियों के मतदाता आरक्षित सीट के लिए अपने विश्वास का अस्पृश्य उम्मीदवार चुन सकते हैं अथवा क्या हिंदू लोग ऐसे अस्पृश्य उम्मीदवार को ही नही चुनेंगे, जो उन्हीं का पिट्ठू हो और जिसमें अस्पृश्यों का कोई विश्वास न हों। ऐसा होने की सभावनाएं दो बातों से निश्चित की जाती हैं : (1) हिंदुओं के लिए आरक्षित सीटों की संख्या से। (2) हिंदुओं में प्रचलित राजनीतिक संस्थाओं के आधार पर। यदि

केवल एक सीट है और वह हिंदुओं के लिए आरक्षित है और हिंदू उस ढंग से संगठित हैं कि वे इस सीट के लिए आपसी टकराव को रोक सकते हैं और अपने बचे मतों का उपयोग आरक्षित सीट के लिए करते हैं, तो निश्चित है कि हिंदुओं द्वारा नामजद अस्पृश्य विजयी होगा। कारण यह है कि हिंदू, जिसके पास अपेक्षाकृत अधिक मतदान शक्ति है, उसे काफी फालतू मत मिलेंगे, जिससे उन्हें उस सीट का चुनाव कराने की आवश्यकता नहीं होगी और उतने मत वे अपने द्वारा नामजद उस अस्पृश्य उम्मीदवार को दे सकते हैं जिसे वे जिताना चाहते हैं। संयुक्त निर्वाचन व्यवस्था में दो सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र हैं। कांग्रेस की छत्रछाया में हिंदू इतने अधिक संगठित हैं कि उनके लिए चुनाव लड़ने की संभावना ही नहीं होती और वे अपने मतों को यूं ही नहीं गंवाते। परिणाम यह है कि इस व्यवस्था से हिंदुओं को आरक्षित सीट को जीतने में काफी सहायता मिलती है और अस्पृश्य उम्मीदवारों का विरोध करते हैं। संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित सीटें जीत लेने में इस वजह से हिंदुओं को अत्यधि ाक सहायता मिलती है, क्योंकि यह आवश्यक नहीं कि अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित क्षेत्र में उनका बहुमत भी हो।

संयुक्त निर्वाचन पद्धति की इन कमजोरियों से किस तरह कांग्रेस ने 1937 के चुनावों में अत्यधिक लाभ उठाया इसका वर्णन आगे किया जाएगा। अभी मैं उस चुनाव विधि का वर्णन कर रहा हूं जिसमें अनुसूचित जातियों को प्रतिनिधित्व दिया गया और उसकी हालत कितनी खस्ता है।

III

अब हमें चुनाव विवरणों का परीक्षण करना है। इस संदर्भ में एक छोटा सा प्रश्न है। कांग्रेसियों के यह कहने का क्या यह अर्थ है कि 1937 के चुनावों से स्पष्ट है कि कांग्रेस अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करती है? इसका स्पष्टीकरण आवश्यक है, क्योंकि इस प्रश्न के दो रूप हैं। इसका एक रूप यह हो सकता है कि अस्पृश्यों के लिए आरक्षित सीटों पर कांग्रेस टिकट पर खड़े हुए अस्पृश्य उम्मीदवार उन अस्पृश्य उम्मीदवारों के मुकाबले जीत गए जो कांग्रेस टिकट पर खड़े नहीं हुए थे। इसका दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि जो अस्पृश्य उम्मीदवार कांग्रेस टिकट से खड़े हुए थे, उनके पक्ष में अछूतों के मत गैर-कांग्रेसी उम्मीदवारों की अपेक्षा अधिक पड़े। मैं दोनो दृष्टियों से उन विवरणों की मीमांसा करना चाहूंगा।

जो सीटें जीती गई थीं, उनके संबंध में चुनावों का परिणाम हम पहले ही प्रस्तुत कर चुके हैं। यह आवश्यक नहीं कि उन्हीं संख्याओं को यहां दुहराया जाय। यह बतलाया जा चुका है कि 151 सीटों में से कांग्रेस ने 78 सीटें जीती थीं। यह नहीं कहा जा सकता कि कांग्रेस और अस्पृश्यों के बीच में चुनाव संघर्ष का

परिणाम कांग्रेस के इस दावे को ठोस बनाता है कि कांग्रेस ही अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करती है। यदि कांग्रेस के अस्पृश्य उम्मीदवारों को 78 सीटें मिली थीं, तो गैर–कांग्रेसी अस्पृश्यों को भी 73 सीटें मिली थीं। यह एक कांटे का संघर्ष था।

अब हमें कांग्रेस के उस दावे का परीक्षण करना है, जिसमें कांग्रेस अपने पक्ष के अस्पृश्य उम्मीदवारों को मिले मतों का हवाला देती है। 1937 के चुनावों में कुल 1,586,456 वोट पड़े थे। निम्नलिखित तालिका में दिखाया गया है कि चुनाव में वोट कैसे बंटे। कितने वोट अस्पृश्य कांग्रेसी उम्मीदवारों के पक्ष में पड़े थे और कितने गैर–कांग्रेसी अस्पृश्यों के पक्ष में :

तालिका – 10

अस्पृश्य मतदाताओं द्वारा डाले गये मत

प्रांत	*कांग्रेस के पक्ष में*	*कांग्रेस के विरोध में*	*चुनाव में अस्पृश्य मतदाताओं द्वारा डाले गये कुल मत*
संयुक्त प्रांत	52609	79571	132180
मद्रास	126152	195464	321616
बंगाल	59646	624797	684443
मध्य प्रांत	19507	115354	134861
बम्बई	12971	158076	171047
बिहार	8654	22187	30841
पंजाब	शून्य	69126	69126
असम	5320	22437	27757
उड़ीसा	5878	8707	14585
कुल	290737	1295719	1586456

यह सभी जानते हैं कि एक पार्टी द्वारा प्राप्त की गई सीटों की संख्या सदा पार्टी के पक्ष में डाले गए मतों की संख्या के अनुपात में नहीं हुआ करती। अक्सर अल्पसंख्या में प्राप्त मतों के आधार पर भी पार्टी बहुमत प्राप्त कर लेती है। यह बात मुख्यतः वहां खरी उतरती है, जहां एक सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र होता है, जैसा भारत में है। पार्टी की वास्तविक शक्ति का मापदंड पार्टी द्वारा प्राप्त मत होते हैं। इस बात पर विचार करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कुल मतों

की संख्या 1,586,456 में से 290737 अर्थात् 18 प्रतिशत वोट कांग्रेस के पक्ष में और 80 प्रतिशत वोट कांग्रेस के विरूद्ध पड़े थे। कांग्रेस अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करती हैं, इसके लिए क्या इससे और भी कोई पक्का सबूत हो सकता है? संभव है कि कांग्रेसी मतों को मापदंड के रूप में स्वीकार न करें और प्राप्त की गई सीटों को ही अस्पृश्यों के प्रतिनिधित्व के दावे का आधार बताए। कोई भी समझदार व्यक्ति 151 में से 78 सीटों अथवा 5 सीटों के बहुमत को ऐसी विजय नहीं कहेगा जिसकी चर्चा की जाए। वास्तव में सीटों के आधार पर भी कांग्रेस का दावा करना निरर्थक है। निर्वाचन परिणामों का और विवेचन करने से स्पष्ट हो जाता है कि जो सीटें अस्पृश्यों के लिए आरक्षित थीं, उनमें से बहुमत में सीटें प्राप्त करना कांग्रेस के लिए बहुत दूर की बात थी। उसने केवल अल्पसंख्या में सीटें प्राप्त कीं। यदि मान लिया जाए कि कांग्रेस की उपलब्धियां फर्जी न होकर वास्तविक हैं, तो भी कांग्रेस द्वारा जीती गई 78 सीटों में से निम्नलिखित कम कर दी जाएं--

1. जो सीटें कांग्रेस ने हिंदू मतदाताओं की सहायता से जीती और यदि उनका निर्णय अस्पृश्य मतदाताओं पर छोड़ दिया जाता तो वहां वे सीटें कांग्रेस के हाथ से निकल जातीं।

2. जो सीटें कांग्रेस ने जीती वे पूर्ण बहुमत के कारण नहीं वरन कांग्रेस के मुकाबले में खड़े हुए गैर–कांग्रेसी अस्पृश्य उम्मीदवारों के बीच में वोट बंट जाने के कारण जीतीं।

3. वे सीटें जिन्हें अस्पृश्य जीत सकते थे बशर्ते कि सुरक्षित सीटों के चुनावों में वे अस्पृश्यों को ही वोट देने और सामान्य अथवा गैर–दलितों के उम्मीदवारों को वोट न देते।

मैं नहीं समझता कि कोई निष्पक्ष व्यक्ति ऐसी कसौटियों पर कैसे एतराज करेगा? उस उम्मीदवार को जिसे बहुमत अस्पृश्यों के मतों के कारण प्राप्त नहीं हुआ हो, यह कहने का कोई अधिकार नहीं है कि वह अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करता है और कांग्रेस भी केवल इस कारण से कि वह अस्पृश्य कांग्रेस के टिकट पर खड़ा हुआ था, यह नहीं कह सकती कि वह इस उम्मीदवार के माध्यम से अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करती है। वह अस्पृश्य उम्मीदवार जिसे केवल इसलिए बहुमत मिल गया कि उसके विरोध में कई उम्मीदवारों के बीच वोट बंट गए थे, और वह ही ऐसा उम्मीदवार था जो अस्पृश्य था और जो कांग्रेस के टिकट पर खड़ा हुआ था, अस्पृश्यों का वास्तविक प्रतिनिधि नहीं कहला सकता। वह उम्मीदवार भी अस्पृश्यों का प्रतिनिधि नहीं कहला सकता, जो किसी आरक्षित सीट के लिए भारी संख्या में लोंगों के चुनाव में रुचि न रखने के बावजूद जीता हो। ऐसी अस्पृश्य सीटें भी कांग्रेस सूची से निकाल दी जाएं।

कांग्रेस केवल उन्हीं अस्पृश्य सीटों को जीतने का दावा कर सकती है, जिन पर वह केवल अस्पृश्य मतदाताओं के बलबूते पर जीती है। शेष सभी सीटें उसके खाते से घटा दी जानी चाहिए। निम्नांकित तालिका में अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित सीटों का विभाजन और कांग्रेस द्वारा जीती गई सीटें तथा उनकी सफलता की परिस्थितियों का दिग्दर्शन होता है –

तालिका – 11

कांग्रेस द्वारा जीती गई सीटों के जीते जाने की परिस्थितियों का विश्लेषण

कांग्रेस द्वारा जीती गई सीटें

प्रांत	*हिंदू वोटों से*	*गैर–हिंदू वोटों से*	*अस्पृश्यों के वोट बंट जाने के कारण*	*अस्पृश्य सीटों के चुनाव में अस्पृश्यों रुचि न लेने के कारण*	*योग*
संयुक्त प्रांत	3	6	3	4	16
मद्रास	5	15	4	2	26
बंगाल	–	4	–	2	6
मध्यप्रांत	1	5	–	1	7
बम्बई	1	1	1	1	4
बिहार	1	3	–	7	11
पंजाब	–	–	–	–	–
असम	1	2	–	1	4
उड़ीसा	1	2	–	1	4
कुल	13	38	8	19	78

चुनाव परिणामों का अध्ययन करने से उपरोक्त तथ्य सामने आते हैं। वे तथ्य निर्विवाद रूप से स्वीकार कर लिए जाने चाहिए। मतदान की समीक्षा से ज्ञात होता है कि कांग्रेस का अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने का दावा तो दूर अस्पृश्य कांग्रेस को बिल्कुल अस्वीकार कर चुके हैं। सीटों का विश्लेषण करने से ज्ञात होता है कि कांग्रेस ने 151 सीटों में से केवल 38 सीटें जीती हैं। हिसाब लगाने से प्रतीत होता है कि कांग्रेस 73 सीटें जीतने में असफल रही। 13 उसने हिंदू

वोटों के बलबूते पर जीतीं, 8 सीटें कांग्रेस अस्पृश्यों के विरुद्ध बहुत से उम्मीदवारों में वोट बंट जाने के कारण और 19 सीटें अस्पृश्यों की उस मूर्खता के कारण कांग्रेस को मिली, जिसमें उन्होंने अपने लिए सुरक्षित सीटों को प्राप्त करने के लिए चुनाव में कोई रुचि नहीं ली।

निम्नलिखित तालिका में उन निर्वाचन क्षेत्रों को दर्शाया गया है, जहां ऐसा चमत्कार हुआ। उन्हें प्रांतवार तीन श्रेणियों में वर्गीकृत किया गया है, और परिशिष्टों में उनका उल्लेख उनकी क्रम संख्या के अनुसार किया गया है–

तालिका – 12[1]

अनुसूचित जाति निर्वाचन क्षेत्रों का विश्लेषण

प्रांत	*उन निर्वाचन क्षेत्रों की क्रम संख्यायें जहां कांग्रेस ने हिन्दू मतों से विजय पाई*	*उन निर्वाचन क्षेत्रों की क्रम संख्यायें जिनमें अस्पृश्यों के मतों में विभाजन हो जाने के कारण कांग्रेस ने विजय पाई*	*उन निर्वाचन क्षेत्रों की क्रम संख्या जिनमें अस्पृश्यों के अधिक रुचि न लेने के कारण कांग्रेस को सीटें मिलीं*
संयुक्त प्रांत	1,3 और 4	8, 9 और 10	11,13,14, और 18
मद्रास	1, 22, 23, 24, 25	8, 12, 15, और 17	4 और 21
बंगाल	शून्य	शून्य	6 और 7
मध्य प्रांत	6	शून्य	15
बम्बई	1	14	3
बिहार	11	शून्य	2,6,7,8,9,10 और13
पंजाब	शून्य	शून्य	शून्य
असम	1	शून्य	4
उड़ीसा	6	शून्य	2

इस प्रकार कांग्रेस का अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने का दावा अंत तक बिल्कुल थोथा है। यह कपोल कल्पना है, जिसकी चुनाव के नतीजों को देखते हुए पोल खुल चुकी है। और भी दिलचस्प तथ्य स्पष्ट हुए हैं जिन्हें निम्नलिखित दो तालिकाओं द्वारा स्पष्ट किया गया है –

1. विस्तार रूप से परिशिष्ट संख्या–२ में वर्णन किया गया है।

तालिका – 13

अनुसूचित जाति की सीटों के लिए चुनाव

प्रांत	*जिन सीटों पर चुनाव लड़ा गया*	*जिन सीटों पर चुनाव नहीं लड़ा गया*	*योग*
संयुक्त प्रांत	15	5	20
मद्रास	26	4	30
बंगाल	28	2	30
मध्य प्रांत	19	1	20
बम्बई	14	1	15
बिहार	6	9	15
पंजाब	6	2	8
असम	6	1	7
उड़ीसा	4	2	6
	124	27	151

तालिका 14

अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित सीटें, जो कांग्रेस ने जीती

प्रांत	*चुनाव लड़ने से*	*बिना लड़े*	*योग*
संयुक्त प्रांत	14	2	16
मद्रास	24	2	26
बंगाल	6	शून्य	6
मध्य प्रांत	6	1	7
बम्बई	3	1	4
बिहार	4	7	11
पंजाब	शून्य	शून्य	शून्य
असम	3	1	4
उड़ीसा	4	शून्य	4
	64	14	78

तालिका 13 से स्पष्ट हो जाता है कि अस्पृश्यों ने उनके लिए आरक्षित सीटों पर चुनाव में कितनी दिलचस्पी दिखाई थी। 151 सीटों में से 121 पर चुनाव लड़े गये थे। इससे यह आरोप गलत सिद्ध हो जाता है कि अस्पृश्यों को राजनैतिक अधिकार देने में कोई फायदा नहीं है, क्योंकि न तो उन लोगों में राजनैतिक शिक्षा है और न राजनैतिक चेतना ही। तालिका 14 से स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने कांग्रेस को अपना मित्र समझने के बजाय उन्हें अपना पहले दर्जे का रानजीतिक शत्रु माना है। उन्होंने चुनाव में अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित सीटों पर कांग्रेस को मुश्किल से किसी अन्य को चुन जाने दिया। बहुत जगहों पर जहां कांग्रेस ने अस्पृश्यों के लिए आरक्षित किसी सीट पर किसी अस्पृश्य उम्मीदवार को चुनाव लड़ने के लिए खड़ा किया तो अस्पृश्यों ने वह सीट चुपचाप कांग्रेस को नहीं दे दी। वरन् गैर–कांग्रेसी टिकट पर अपना उम्मीदवार खड़ा कर चुनाव लड़ा। अस्पृश्यों की सीटों के लिए कांग्रेस ने जो 78 उम्मीदवार खड़े किए थे उनमें से 64 सीटों पर मुकाबले हुए।

IV

यह कहना कि 1937 के चुनाव में अस्पृश्यों के बीच कांग्रेस जीती एक गलत बयानी है। वास्तव में अस्पृश्यों ने ही कांग्रेस को पछाड़ दिया। यदि बहुत से लोग इसे मानने को तैयार नहीं, तो शायद इसका कारण उनकी यह जानने की अनिच्छा या उनकी अनभिज्ञता होगी कि चुनावों में कांग्रेस के मुकाबले अस्पृश्यों को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। वे कठिनाइयां वास्तविक थीं और बहुत थीं। उनका सविस्तार वर्णन करना उचित होगा, ताकि लोग यह जान सकें कि अस्पृश्य कितने साहस और लगन के साथ यह सिद्ध करने के लिए लड़े कि वे कांग्रेस से स्वतंत्र हैं और कांग्रेस उनका प्रतिनिधित्व नहीं करती।

उन कठिनाइयों को दो शीर्षों में बांटा जा सकता है :

1. संगठनात्मक, और
2. चुनाव प्रक्रिया संबंधी।

प्रथम शीर्ष के अंतर्गत दो बातों का मुख्यतया उल्लेख किया जा सकता है – पहला तो कांग्रेस की और अस्पृश्यों की साधन–संपन्नता के बीच के अन्तर का है। कांग्रेस संपन्न राजनीतिक दल है, इसमें दो राय नहीं। 1937 के चुनावों में कांग्रेस ने कितना धन खर्च किया उसका अभी तक कोई अनुमान नहीं लगाया गया। यदि जांच की जाए तो यह पता चल जायेगा कि कांग्रेस ने विज्ञापन, यातायात, साधनों पर और उन उम्मीदवारों के प्रचार में, जो कांग्रेस टिकट पर खड़े हुए थे, जो धन खर्च किया उसकी मात्रा विशाल थी। कांग्रेस के टिकट

तालिका 15

अनुसूचित जाति के मतदाताओं और प्रत्येक 100 हिन्दू मतदाताओं के अनुपात के अनुसार वर्गीकृत निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या

प्रांत	दस और उससे कम	11-15	16-20	21-25	26-30	31-25	36-40	41-45	46-50	50 से ऊपर	योग
संयुक्त प्रांत	शून्य	7	3	6	2	1	शन्य	1	शून्य	शून्य	20
मद्रास	शून्य	5	6	10	3	3	1	1	1	शून्य	30
बंगाल	शून्य	शून्य	शून्य	3	1	3	1	3	शून्य	14	25[1]
मध्य प्रांत	5	5	1	2	1	शून्य	1	1	1	3	20
बिहार	4	5	2	2	2	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	15
पंजाब	1	1	शून्य	1	2	शून्य	शून्य	1	शून्य	2	8
उडीसा	2	शून्य	शून्य	2	शून्य	2	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	6
आसाम	3	1	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	1	शून्य	2	7
बम्बई	5	3	6	1	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	15
योग	20	27	18	27	11	9	3	8	2	21	146

1. पाच निर्वाचन क्षेत्रो में दो सीटें अस्पृश्यों के लिए आरक्षित थीं जिससे बंगाल के अस्पृश्यों की आरक्षित सीटों की संख्या तीस हो जाती है।

पर खड़े होने वाले उन सभी उम्मीदवारों पर कांग्रेस ने बेतहाशा धन खर्च किया। गैर–कांग्रेसी अस्पृश्य उम्मीदवारों को कांग्रेस द्वारा खर्च की गई धनराशि का दस लाखवां भाग भी खर्च करने को उपलब्ध नहीं था। उनमें से कुछ ने तो धन उधार लेकर खर्च किया था। उन्होंने बिना प्रचार की सहायता के विज्ञापनों के अभाव में पैदल घूम–घूम कर चुनाव लड़ा था।

दूसरी बात है कि कांग्रेस का पार्टी तंत्र अत्यंत संगठित और मजबूत था जबकि अस्पृश्यों के पास इसका पूर्णतया अभाव था। जैसाकि सभी को मालूम है, पार्टी तंत्र कांग्रेस की वास्तविक शक्ति है। इस प्रकार का पार्टी तंत्र बनाने का श्रेय श्री गांधी को है। यह पिछले बीस वर्षों से अस्तित्व में है तथा सभी स्रोतों के असमान होने से, ऐसी मशीनरी सदैव कार्य करने के लिए तैयार रहती हैं केवल बटन दबाने की देर है। उनका तंत्र इतना व्यापाक है कि 'देश के सभी नगरों और गांवों तक इसकी जड़ें फैली हुई हैं। कोई ऐसा क्षेत्र नहीं है, जहां कांग्रेस कार्यकर्ता उस मशीनरी को चलाने के लिए न मिल सकें। जो अस्पृश्य उम्मीदवार कांग्रेस टिकट से खड़े हुए थे, कांग्रेस के पार्टी तंत्र ने उनके चुनाव में खूब काम किया। जो अस्पृश्य कांग्रेस के विरोध में खड़े हुए थे उनकी सहायता के लिए ऐसी कोई पार्टी मशीनरी नहीं थी। पृथक प्रतिनिधित्व की योजना भारतीय राजनीति में सबसे पहले वर्ष 1909 में लागू की गई थी। इसका लाभ उस समय केवल मुस्लिम संप्रदाय को हुआ था। वर्ष 1920 में संविधान का पुनरीक्षण हुआ। उस संविधान संशोधन में वह सुविधा गैर–ब्राह्मण लोगों को भी दी गई। अस्पृश्यों को तब भी उससे वंचित रखा गया। उन्हें विभिन्न प्रांतीय विधानमंडलों में एक दो सीटों पर नामजद करके आंसू पोंछ दिए गए। 1935 में यह पहला अवसर था कि उन्हें मताधिकार मिला और चुनावों में भागीदारी का अधिकार मिला। इससे स्पष्ट है कि जब अस्पृश्यों को मताधिकार प्राप्त नहीं था, तब उन्हें अपना पार्टी तंत्र बनाने की आवश्यकता महसूस नहीं हुई। इसलिए जब उन्हें कोई चुनाव लड़ना पड़ा तब उनके पास चुनाव के लिए अपनी पार्टी मशीनरी तैयार करने का कोई समय नहीं था। कांग्रेस और अस्पृश्यों की वह लड़ाई ठीक उसी प्रकार की थी जैसे हथियारबंद फौज और निहत्थी भीड़ की लड़ाई।

अस्पृश्यों के सामने चुनाव की कठिनाइयां भी उतनी ही बड़ी थी। उन सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में जहां अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित सीटों के लिए हिंदू और अस्पृश्य मतदाताओं की मत संख्या समान थी, पहले वहां कठिनाई अनुभव की गई। आगे तालिका में दोनों दलों की मतदान शक्ति दर्शाई गई है।

तालिका से स्पष्ट होता है कि सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में हिंदू मतदाताओं की संख्या अस्पृश्य मतदाताओं से कितनी बढ़ा दी गई। उस अनुपात की ओर विशेष ध्यान देना है, जिसमें हिंदुओं की संख्या बढ़ा दी गई है। जैसाकि तालिका के

आंकड़ों से स्पष्ट है, 20 निर्वाचन–क्षेत्रों में अस्पृश्य मतदाताओं और हिंदू मतदाताओं में 10 और 100 तक का अनुपात, 27 निर्वाचन क्षेत्रों में से 11 से 15 और 100 के बीच, 18 निर्वाचन क्षेत्रों में 15 से 20 और 100 तक, 27 निर्वाचन क्षेत्रों में 21 से 25 और 100 तक और 11 निर्वाचन क्षेत्रों में 20 से लेकर 30 और 100 के मध्य था। इन उदाहरणों से स्पष्ट हो जाएगा कि हिंदू मतदाताओं का बहुमत कितना अधिक था और उन्होंने इस लड़ाई में कैसे अस्पृश्य मतदाताओं को मात दी। इस संबंध में यह अवश्य याद रखना होगा कि प्रत्येक अनुसूचित जातीय निर्वाचन क्षेत्र संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र है जिनमें दोनों वर्गों के मतदाता–अनुसूचित जातीय तथ सवर्ण हिंदू मतदाता – अस्पृश्य उम्मीदवार को वोट दे सकते हैं और उस सीट को प्राप्त करने की स्पर्धा में थे। इस खेल में दोनों वर्गों की मत संख्या काफी विषमतापूर्ण परन्तु महत्वपूर्ण है।

चुनाव में सफलता के लिए ऐसे संयुक्त निर्वाचन क्षेत्र में मुख्यतया ग्रुपों की मत सापेक्षता का बहुत महत्व है।

चुनाव में दूसरी कठिनाई वहां पर उत्पन्न होती है, जहां सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों के लिए सीटों की संख्या निश्चित है और उनमें अस्पृश्यों के लिए सीटें आरक्षित होती हैं। निम्नांकित तालिका से ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रांतों में अलग–अलग तरीके अपनाए गए थे।

तालिका – 16

उन सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों का वर्गीकरण जिनमें अस्पृश्यों के लिए सीटें सुरक्षित हैं।

प्रांत	*अस्पृश्यों के लिए आरक्षित सीटों की संख्या*	*उन निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या जहां दो सीटें हैं*	*उन निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या जहां तीन सीटें हैं*	*उन निर्वाचन क्षेत्रों की संख्या जहां चार सीटें हैं*
मद्रास	30	30	शून्य	शून्य
बम्बई	15	शून्य	6	9
बंगाल	30	20	5	शून्य
संयुक्त प्रांत	20	20	शून्य	शून्य
पंजाब	8	8	शून्य	शून्य
बिहार	15	15	शून्य	शून्य
मध्य प्रांत	20	20	शून्य	शून्य
असम	7	6	1	शून्य
उड़ीसा	6	6	शून्य	शून्य
योग	151	125	12	9

इस तालिका से ज्ञात होता है कि जिन 151 निर्वाचन क्षेत्रों को अस्पृश्यों के लिए आरक्षित घोषित किया जाना था उनमें 130 दो सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र थे जिनमें एक सीट अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित की गई तथा दूसरी सीट सामान्य रखी गई। यह बिल्कुल सम्भव है कि बहुत से लोग यह न समझ पाएं कि इस दो सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र पद्धति में अस्पृश्यों के लिए चुनाव संबंधी कौनसा खतरा अन्तर्ग्रस्त है। खतरा कितना वास्तविक है यह स्पष्ट हो जाएगा यदि सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में हिंदू मतों तथा अस्पृश्य मतों की सापेक्ष संख्या पर विचार किया जाए जैसा कि इस विषय में पहले ही कहा जा चुका है। जहां पर निर्वाचन क्षेत्र बहुसदस्यीय – तीन अथवा चार सदस्यों वाला निर्वाचन क्षेत्र हो जिनमें एक सीट अस्पृश्य के लिए आरक्षित और दो अथवा तीन सामान्य जातियों के लिए छोड़ दी गई हैं। वहां समानुपात में हिंदुओं की अधिक मत संख्या उतनी अधिक खतरनाक नहीं है, जितनी कि दो–सदस्यीय निर्वाचन क्षेत्र में, जहां पर हिंदुओं के केवल एक सदस्य को चुनना होता है। अधिक उम्मीदवारों के चयन में हिंदुओं की मत संख्या बंट जाती है, जैसे कि वे सामान्य सीट पर अपने उम्मीदवारों के चयन की लड़ाई में व्यस्त रहते है और उनके पास फालतू वोट नहीं बच पाते हैं जिसके फलस्वरूप निर्वाचन क्षेत्र में उनकी अधिक मत संख्या के कारण अस्पृश्यों के लिए अधिक अड़चन नहीं आती। परंतु जब उन्हें केवल एक सीट जीतनी होती है, तो उनके वोटों के बंट जाने की संभावनाएं बहुत कम हो जाती हैं। कांग्रेस जैसी संगठित पार्टी व्यवस्था के अंतर्गत तो ये संभावनाएं नगण्य हैं। बचे मतों की संख्या उनके लिए अनावश्यक हो जाती है जिसका उपयोग वे अपने उस अस्पृश्य उम्मीदवार के समर्थन में करते हैं, जो उनकी पसंद का होता है और जो उस अस्पृश्य उम्मीदवार के विरोध में कांग्रेस टिकट पर खड़ा होता है जो स्वतंत्र है और कांग्रेस का पिट्ठू बनने के लिए तैयार नहीं है। हिंदुओं ने अपने फालतू वोटों से कैसा तूफान मचाया, यह चुनावों के नतीजों से स्पष्ट है।

मतदान की पद्धति और निश्चित सीटों की संख्या पर तथा सामान्य निर्वाचन में वोटों के विभाजन पर यदि विचार करें, तो प्रतीत होता है कि अस्पृश्यों को धोखा देने की इससे अच्छी तरकीब नहीं निकाली जा सकती है। वह संयुक्त निर्वाचन पद्धति, जिससे अनुसूचित जाति के लोग उम्मीदवार बनाए जाते हैं, ऐसी सड़ी हुई खुड़िडयां है, जो 1832 के सुधार अधिनियम से पहले इंगलैंड में हुआ करती थी। इसके अंतर्गत निर्वाचित उम्मीदवार वास्तव में उन प्रभावशाली व्यक्तियों द्वारा नामजद किया हुआ होता था, जो इन सड़ी हुई खुड़िडयों को नियंत्रित करते थे। ठीक उसी प्रकार संयुक्त निर्वाचक पद्धति के अंतर्गत, जो अस्पृश्य उम्मीदवार विधानमंडल के लिए चुना जाता है वह हिंदुओं का नामजद किया होता है। यही कारण है जिसकी वजह से श्री गांधी संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को ही बहुत पसंद करते हैं।

मुस्लिम लीग जो दिनोंदिन शक्तिशाली होती जा रही है, के विषय में अधिक चर्चा है। परंतु बहुत कम लोग समझ पाते हैं कि इसका मुख्य कारण उनकी पृथक निर्वाचक व्यवस्था का होना है। मुसलमान लोग कांग्रेस की धमकियों और उनके कुचक्रों से बचे हुए हैं, परंतु अस्पृश्य नहीं। वे कांग्रसी धन, कांग्रेसी वोटों और कांग्रेसी प्रचार के भंवर में फंस जाते हैं। परंतु कुछ अस्पृश्यों ने इससे दूर रह कर बिना धन स्रोत के पार्टीतंत्र तथा अनेक प्रकार की चुनाव कठिनाइयों को पार करते हुए, जो विजय पाई वह कांग्रेस पर उनकी विजय और उनकी स्वतंत्रता को बनाए रखने की प्रतीक है।

अध्याय : 7

झूठा आरोप

क्या अस्पृश्य अंग्रेजों की कठपुतली हैं?

जैसा मैंने पहले कहा था, जब से श्री गांधी कांग्रेस के कर्ताधर्ता बने तब से उसका कायाकल्प हो गया। उसमें एक मोड़ ध्यान देने योग्य है, क्योंकि यही वह मोड़ है, जिस पर आकर कांग्रेस का भाव बढ़ा और लोगों का ध्यान कांग्रेस की ओर गया। श्री गांधी से पहले कांग्रेस की गतिविधियां केवल विभिन्न स्थानों पर वार्षिक बैठकें कर लेने और भारत में ब्रिटिश प्रशासन संबंधी प्रस्ताव पास करने तक ही सीमित थीं। 1919 में श्री गांधी द्वारा कांग्रेस की बागडोर संभाल लेने के बाद यह कांग्रेस जीवंत दल बन गई और उसने ऐसे कार्य किए, जिनके विषय में कभी किसी ने सोचा भी नहीं था। जिन कार्यों से कांग्रेस को जनसमर्थन मिला और इसने एक के बाद एक हथियार प्रयोग किए जैसे (1) असहयोग (2) बहिष्कार (3) सविनय अवज्ञा, और (4) अनशन। असहयोग का उद्देश्य था सरकारी स्कूलों, कालेजों, न्यायालयों में सरकारी नौकरी से छुटटी कर उनकी अनदेखी कर सरकार को पंगु बना देना। बहिष्कार कांग्रेस का दूसरा हथियार था, जिसका उद्देश्य था कांग्रेस के आदेशों के अनुसार ही लोगों को सरकार को सहयोग देने से रोकना। इसकी दो धारें थीं, सामाजिक और आर्थिक। सामाजिक धारा वह थी जिसके द्वारा दोषी व्यक्ति के प्रति सामाजिक व्यवहार, यहां तक कि नाइयों, धोबियों, कसाइयों, पंसारियों तथा व्यापारियों की सेवाएं तक बंद कर देना था। आर्थिक धारा यह थी, जिसके द्वारा माल के क्रय–विक्रय आदि सभी व्यापारिक संबंधों से नाता तोड़ लेना। उसका लक्ष्य था वे व्यापारी, जो विदेशी माल बेचते थे। उनका सविनय अवज्ञा का सीधा हमला ब्रिटिश सरकार पर था। न्यायिक हिरासत में, जेल भरो और सरकार को नीचा दिखाओ के लिए जानबूझकर कानून का उल्लघंन करना उसका हथियार है। ऐसा सामूहिक सविनय अवज्ञा अथवा व्यक्तिगत सविनय अवज्ञा द्वारा किया जाता है। दुर्भाग्यवश कांग्रेस द्वारा सामूहिक अनशन नहीं किया गया। अनशन केवल व्यक्तिगत क्षेत्र तक ही सीमित रखा गया। दुर्भायवश आमरण अनशन पर कांग्रेसियों ने ही अमल नहीं किया। यह सदैव किसी

शर्त तक ही सीमित रहा। यह वह अमोघ अस्त्र है, जिसे श्री गांधी ने अपने लिए सुरक्षित रखा हुआ है। वह भी उसे किसी विशेष परिस्थिति में चलाते हैं। ये वे चार हथियार हैं, जिन्हें कांग्रेस ने भारत की स्वतंत्रता की मांग करने में इस्तेमाल किया।

इन्हीं चारों हथियारों का यथासमय प्रयोग करते हुए कांग्रेस ने आंदोलन किए। 1920 से 1942 के मध्य देश ने देखा कि कांग्रेस ने उन्हीं हथियारों में से किसी न किसी एक का सहारा लेकर देश में प्रदर्शन किए। उन कांग्रेसियों ने जनता का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए जमीन आसमान एक कर दिया। उसका स्वाधीनता संग्राम के नाम से वर्णन किया जानें लगा। ऐसे कार्यो से क्या लाभ हुआ? यह एक ऐसा विषय है, जिस पर गंभीरता से विचार किया जाना चाहिए। परंतु उस पर विचार करने के लिए यहां स्थान नहीं है। यही समझना काफी है कि पुरानी कांग्रेस ने इतना खराब काम नहीं किया था। उन चारों अस्त्रों का प्रयोग वास्तव में एक दुखद घटना है। स्वराज की मांग जो कि पहले से ही की जा रही है, उसमें जनसमर्थन का असावधानी से उपयोग करने के कारण भारत के विभाजन की संभावना अधिक बननी निश्चित होने लगी तथा और नजदीक आने लगी। इस समर्थन के प्रयोग के परिणामस्वरूप क्या लाभ हुए उन पर विचार करना संभव नहीं है। परंतु तथ्य स्पष्ट होने ही चाहिए कि स्वाधीनता संग्राम का संचालन अधिकतर हिंदुओं द्वारा ही किया गया। इसमें मुसलमानों ने केवल एक बार भाग लिया था और वह भी खिलाफत आंदोलन के दौरान जो अल्पकालीन था। वे शीघ्र ही उससे अलग हो गए। दूसरे समुदायों मुख्यतया अस्पृश्यों ने कभी उस आंदोलन में भाग नहीं लिया कुछ भूले–भटके अस्पृश्य लोगों ने व्यक्तिगत स्वार्थवश उसमें हाथ बढ़ाया था, परंतु जहां तक समुदाय का प्रश्न है, वे उस आंदोलन से बाहर रहे। यह स्थिति अगस्त, 1942 में कांग्रेस द्वारा पास किए गए 'भारत छोड़ो' प्रस्ताव के बाद 'स्वतंत्रता संग्राम' के अन्तिम आन्दोलन में विशेष रूप से थी।

यह एकदम स्पष्ट तथ्य है जिसे मुख्यतया भारत आने वाला विदेशी देखता है कि आधे से अधिक जनसंख्या स्वाधीनता संग्राम में कैसे कांग्रेस के साथ असहयोग करती है। स्वभावतः वह इस स्थिति को देखकर हतप्रभ हो जाता है। यह विदेशी पूछ बैठता है – मुसलमान, ईसाई और अस्पृश्य स्वाधीनता संग्राम में भाग क्यों नहीं ले रहे हैं?" वह कांग्रेस से इसका स्वष्टीकरण मांगता है। कांग्रेस के पास इसका उत्तर तैयार रहता है। उत्तर यह है कि अस्पृश्य ब्रिटिश साम्राज्य की कठपुतली हैं और यही कारण है कि वे स्वाधीनता संग्राम में भाग नहीं लेते। इस लांछन की गूंज लड़ाई के दौरान बहुत से विदेशियों के मुख से सुनी गयी। जो बात बहुत ही निराशाजनक अनुभव की है वह यह है कि उन विदेशियों में

बहुतों ने उस लांछन को सत्य माना है। सरलता और छद्म के कारण ही ऐसे तर्क आसानी से हजम हो जाते है। इससे उनको दोहरी कामयाबी हाथ लगती है। एक तो इससे कांग्रेस को स्थिति को स्पष्ट करने में सहायता मिलती है और परिस्थितियों के प्रपंच को वास्तविक सा बना देती है।

यदि यह सच न होता कि महत्वपूर्ण विदेशी भी इस झांसे में आ गए हैं, तो ऐसे दुर्भाग्यपूर्ण प्रचार पर कोई ध्यान न देता। स्वतंत्रता संग्राम में अस्पृश्यों ने कांग्रेस से असहयोग क्यों किया? कांग्रेस का स्पष्टीकरण वाहियात झूंठा एवं आधारहीन है। केवल धूर्त ही ऐसा स्पष्टीकरण देने का साहस कर सकता है और बेवकूफ के सिवाय और कोई उस को सही नहीं मान सकता। जो घटनाएं घट रही हैं, उन पर विदेशी लोग भारत की समस्याओं के विषय में क्या सोचेंगे? मैं यही स्थिति स्पष्ट कर देना चाहता हूं और अस्पृश्यों के विषय में जो गलत धारणा बनाई गई है, उसे उनके मस्तिष्क से निकाल देना चाहता हूं। मुख्यतया इस संदर्भ में, जबकि यह सिद्ध करना आसान हो कि अस्पृश्यों पर लगाया गया यह आरोप बिल्कुल गलत है और यदि अस्पृश्यों ने "स्वतंत्रता संग्राम" में भाग नहीं लिया, तो इसका कारण यह नहीं है कि वे ब्रिटिश साम्राज्य के पिटठू थे बल्कि कारण यह है कि उन्हें डर है कि भारत की स्वतंत्रता से हिंदू राज्य स्थापित हो जाएगा। अस्पृश्यों के लिए सभी दरवाजे बंद जो जाएंगे और सदा के लिए उनकी आशाओं स्वतंत्रता और खुशियों के रास्ते बंद हो जाएंगे, तथा वे केवल लकड़ी चीरने वाले और पानी खींचने वाले ही बना दिए जाएंगे।

"स्वतंत्रता संग्राम" में अस्पृश्यों का शामिल होने से इंकार करना स्वयं में सबूत है कि कांग्रेस से असहयोग करने का उनका कारण बचकाना नहीं हो सकता जैसा कि कांग्रेस कहती है। इसमें कुछ वास्तविकता अवश्य हो सकती है। वह क्या है? जिस कारण से अछूत कांग्रेस से असहयोग करते हैं, वह उन्होंने सामान्य रूप से यह कह कर स्पष्ट कर दिया है कि वे "हिंदू राज" में विश्वास नही करते, जिसमें शासक वर्ग बनिया और ब्राह्मण होंगे और निम्न वर्ग के हिंदू उनके हुकम–बरदार होंगे जो पीढ़ी दर पीढ़ी अस्पृश्यों के शत्रु रहे हैं। यह भाषा कड़वी हो सकती है, परंतु यह नहीं समझना चाहिए कि ऐसे नारे आक्रामक हैं, उनके स्वर आपत्तिजनक हैं और वह नासमझी है अथवा उनके भावों के प्रतीक मात्र हैं और उनमें किसी को विवश करने की शक्ति नहीं है और वे राजनीतिक दर्शन को सही अर्थों में प्रस्तुत नहीं कर सकते।

यदि इन्हें राजनीति शास्त्र के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए, तो इन नारों का क्या अर्थ है? उनका अर्थ है कि अस्पृश्य ब्रिटिश साम्राज्य से मुक्ति प्राप्त करने के विरुद्ध नही हैं परन्तु वे ब्रिटिश साम्राज्य से केवल मुक्ति प्राप्त करने में ही संतुष्ट नहीं रहना चाहते। वे जोर देकर कहते हैं कि देश का स्वतंत्र होना ही काफी

नहीं है। स्वतंत्र भारत को लोकतंत्र के योग्य बनाया जाना चाहिए। इस उद्देश्य के संदर्भ में वे कहते हैं कि भारत में एक खास तरह की सामाजिक व्यवस्था होने के कारण हिंदू सांप्रदायिक बहुमत के मुकाबले में कुछ अल्पसंख्यक जातियां हैं। यदि हिंदू सांप्रदायिक बहुमत के जहरीले दांत तोड़ने के लिए भावी संविधान में प्रावधान नहीं किया जाता, तो भारत लोकतंत्र के लिए सुरक्षित नहीं रह पाएगा। इसलिए अस्पृश्य इस बात पर जोर देते हैं कि ऐसे प्रयत्न किए जाएं कि संविधान में विशेष तौर पर ऐसे संरक्षण प्रदान किए जाएं, जो भारतीय समाज में हिंदू सांप्रदायिक बहुमत को ऐसे राजनैतिक अधिकार हड़पने से रोकें, जिनके द्वारा हिंदू अस्पृश्यों को दबाते और कुचलते रहे हैं और अस्पृश्यों को कम से कम इतने राजनीतिक अधिकार दे दिए जाएं कि वे शोषण तथा हिंदुओं के अत्याचार से अपनी सुरक्षा कर सकें और अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए सांप्रदायिक बहुमत से संघर्ष कर सकें। संक्षेप में अस्पृश्य ऐसे संरक्षण चाहते हैं जिनसे वे हिंदू सांप्रदायिक बहुमत के अत्याचारों से अपनी सुरक्षा कर सकें।

दूसरी ओर कांग्रेस का चरम लक्ष्य केवल ब्रिटिश साम्राज्य से स्वाधीन हो जाना मात्र है। कांग्रेस स्वतंत्र भारत के लिए इससे और अधिक कल्याणकारी बात नहीं सोचती। जहां तक स्वतंत्र भारत के संविधान का प्रश्न है, कांग्रेस इस सिरदर्द से मुक्त रहना चाहती है। जब यह पूछा जाता है कि स्वतंत्र भारत का संविधान कैसा होना चाहिए तो कांग्रेस का उत्तर होता है कि वह लोकतंत्र और वयस्क मताधिकार पर आधारित होगा। क्या वयस्क मताधिकार से बढ़कर भी संविधान में ऐसे संरक्षण दिए जाएंगे जो हिंदू सांप्रदायिक बहुमत के अत्याचारों को रोकने में सक्षम होंगे? कांग्रेस का उत्तर पूर्णतया नकारात्मक है। पूछा जाता है कि संरक्षण के विषय में ऐसा विरोध क्यों? कांग्रेस का कहना है कि ऐसा करना राष्ट्र का विघटन करना होगा। यह एक ऐसा अजीब तर्क है जिसमें अपनी बेवकूफी छिपाने की कोशिश की गई है और जो श्री गांधी के मस्तिष्क की उपज है, जिसके लिए संरक्षण के विरोधी उच्चवर्गीय हिंदू श्री गांधी के बड़े कृतज्ञ हैं।

अस्पृश्य इस प्रकार के बुद्धिहीन प्रपंच को सर्वथा अस्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि भारतीय सामाजिक जीवन को उसके जातिवादी लक्षणों के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना चाहिए। उससे भाग खड़े होने की कोई गुंजाइश नहीं दीखती। जातियां भारतीय समाज की भयानक वास्तविकता हैं। जातीय प्रवृत्ति एवं प्रभाव तथा जातीय पक्षपात जातियों के बंधन को ढीले नही होने देते। हिंदू बहुसंख्यक समाज का सामाजिक–मनोविज्ञान उस धर्मनीति से दबा होता है, जो धार्मिक सिद्धांत केवल विषमता को ही मान्यता नहीं देता, वरन् उसमें असमानता की भी परतें बनी हुई हैं, जैसे कि वे सभी जातियों के आंतरिक संबंधों के नियामक सूत्र हों। विभिन्न परतों में ढली विषमता का धार्मिक सिद्धांत स्वतंत्रता और भ्रातृत्व

का पक्का शत्रु है। यह विश्वास नहीं किया जा सकता कि इस प्रकार की वर्गीय विषमता कभी समाप्त होगी अथवा हिंदू सांप्रदायिक बहुमत कभी इसे तिलांजलि देने का प्रयास करेगा। इस प्रकार की परत दर परत विषमताएं आकस्मिक अथवा कभी मिटने वाली नहीं है। विषमताएं अटल सत्य हैं और इस बला से मुक्ति असंभव है। हिंदुओं का यही धर्म है। यह उनका मूल अधिकारिक सिद्धांत है। यह उनकी आस्था है और कोई हिंदू उसे तिलांजलि देने के लिए तैयार नहीं होगा। इसलिए हिंदुओं में परत दर परत सांप्रदायिकता बहुत फीकी नहीं पड़ सकती है। यह एक शाश्वत सत्य और अभिशाप है। भारत की संविधान रचना में रक्षा कवच की व्यवस्था कर समस्या की मौजूदा सांप्रदायिक बहुमत के रहते अनदेखी नही की जा सकती। यही अस्पृश्यों का तर्क है।

अस्पृश्य जिस संवैधानिक रक्षा कवच की मांग एक अरसे से करते चले आ रहे हैं, उसका उल्लेख अखिल भारतीय परिगणित जाति संघ के हाल ही में पारित प्रस्ताव में किया गया है, जो परिशिष्ट ग्यारह में दिया गया है। उसमें से मैं तीन बातों का उल्लेख करना चाहता हूं : (1) विधानमंडलों में न्यूनतम प्रतिनिधित्व की गारंटी (2) कार्यपलिका में न्यूनतम प्रतिनिधित्व की गारंटी (3) सरकारी सेवाओं में न्यूनतम प्रतिनिधित्व की गारंटी। स्वयं सांप्रदायिक कांग्रेस और उसके पदलोलुप अस्पृश्य प्रतिनिधियों ने इसका सांप्रदायिक कह कर मजाक उड़ा दिया है। कांग्रेस ऐसी गारंटी से मुकरती है, जो राष्ट्रीयता के शिखर पर संकटमोचन बनी बैठी है। विदेशियों को संरक्षण के बारे में कांग्रेस के वाहियात तर्क समझ में आना कठिन है, परंतु यदि वे संरक्षण के तात्पर्य पर दृष्टि डालेंगे, तो वे भी उसे सांप्रदायिकता का हिस्सा और खुली बेहूदगी मान लेंगे।

अस्पृश्यों द्वारा मांगी जाने वाली इन गारंटियों का उद्देश्य है, केवल विधायिका, कार्यपालिका और प्रशासन में अस्पृश्यों को प्रतिनिधित्व दिलाना ही नहीं, वरन् ऐसी गारंटियां दिलाना है जिनका वास्तव में एक धरातल होगा और जिनके नीचे अस्पृश्य गिर कर बहुसंख्यक सांप्रदायिक हिंदुओं द्वारा कुचले नहीं जायेंगे। वे बहुसंख्यक सांप्रदायिक हिंदुओं को सीमा में रखना चाहते हैं, क्योंकि यदि अस्पृश्यों के लिए ऐसी गारंटियां नहीं मिली तो परिणाम यह होगा कि बहुसंख्यक सांप्रदायिक हिंदू केवल विधायिका, कार्यपालिका और प्रशासन पर ही पूरी तरह हावी नहीं हो जाएंगे वरन् राज्य के ये तीन महत्वपूर्ण अंग अल्पसंख्यकों की सुरक्षा करने के बजाए, बहुसंख्यक सांप्रदायिक हिंदू समाज के शस्त्र बन जाएंगे।

इस स्पष्टीकरण के प्रकाश में किसी साधारण सोच वाले विदेशी को भी कांग्रेस और अस्पृश्यों के बीच मुद्दों को समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी। पहली बात तो यह देखें कि इनके बीच जो मुद्दा है, वह कांग्रेस ने इस तथ्य को स्वीकार करने से इन्कार करके पैदा किया है कि सांप्रदायिक बहुमत के रहते

राजनीतिक लोकतंत्र के लिए भारी खतरा पैदा हो जायेगा जबकि अस्पृश्यों का मत इसके विपरीत है और वे जोर देकर कहते हैं कि इस खतरे को दूर करने के लिए संविधान में ऐसी कारगर व्यवस्था की जानी चाहिए। दूसरे शब्दों में, अस्पृश्य भारत को लोकतंत्र के योग्य बनाने के उत्सुक हैं जबकि कांग्रेस भले ही लोकतंत्र के विरूद्ध न हो, परंतु वह उन परिस्थितियों के विरूद्ध है, जिनसे वास्तविक प्रजातंत्र बन पाएगा।

दूसरी बात यह है कि विदेशी को यह देखने को मिलेगा कि अस्पृश्यों की संरक्षणों की यह मांग कोई नई मांग नहीं है। यदि वह संरक्षणों को निगरानी मानकर चले तो उसे समझने में और भी आसानी होगी। राजनीतिक प्रजातंत्र को विनाश से बचाने के लिए कोई ऐसा संविधान नहीं है, जिसमें निगरानी रखने का प्रावधान न किया गया हो, जैसा कि अमरीका के संविधान में मौलिक अधिकारों और अधिकार के विभाजन पर है। यह विदेशी इस सिद्धांत से सहमत हो जाता है तो उसे इसे समझने में कोई कठिनाई नहीं होगी, कि अस्पृश्यों द्वारा मांगे गए संरक्षण वैसे ही है, जैसे कि दूसरे देशों में हैं। अंतर केवल दोनों के स्वरूप का है। क्योंकि राजनीतिक प्रजातंत्र के लिए खतरा पैदा करने वाली शक्तियों का स्वरूप संरक्षणों के स्वरूप से भिन्न हो सकता है जैसे कि भारत में है। यहां इन शक्तियों का स्वरूप भिन्न है और इसलिए संरक्षणों का भी भिन्न रूप होना आवश्यक है।

तीसरी बात यह है कि विदेशी को यह समझने में कठिनाई नहीं होनी चाहिए कि यदि कोई दल सांप्रदायिक है तो वह है कांग्रेस, न कि अस्पृश्य। कांग्रेस चाहे जो दार्शनिक आदर्श प्रस्तुत करे, कांग्रेस द्वारा संवैधानिक गारंटी की मांग का विरोध करने में उसका वास्तविक उद्देश्य यही है कि वह राजनीतिक क्षेत्र में बहुसंख्यक हिंदू संप्रदाय को स्वतंत्रतापूर्वक विचरण करने देना चाहती है। उस विदेशी को यह भी समझ में आ जाएगा कि यद्यपि कांग्रेस खुल कर ऐसी बातें नहीं कहती तब भी कांग्रेस कितनी सांप्रदायिक है। बहुसंख्यक हिंदू समुदाय कांग्रेस का मेरूदंड है। यह संस्था हिंदुओं से बनी है और उसका पोषण हिंदुओं द्वारा ही किया जाता है। इस संस्था के अधिकांश सदस्य हिन्दू हैं और उनके अधिकारों की रक्षा करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। इससे यह आसानी से समझ में आ जाएगा कि अस्पृश्यों के अधिकारों के संरक्षण की मांग का विरोध कांग्रेस राष्ट्रीयता के नाम पर करके अपने तर्कों से लोगों को कैसे–कैसे भ्रमित करती है। दूसरी बात यह भी समझ में आ जाएगी कि कांग्रेस राष्ट्रीयता के बहाने दुनिया को धोखा दे रही है ताकि उसे सांप्रदायिकता की मनमानी करने की पूरी स्वतंत्रता मिल सके।

अंत में, उस विदेशी को यह भी ज्ञात हो जाएगा कि भारतीय राजनीति में

कांग्रेस का प्रतिनिधिक स्वरूप उतने महत्व का मुद्दा कैसे बन गया है। उसे पता चल जाएगा कि कोई इस बात की परवाह नहीं करता कि कांग्रेस का प्रतिनिधिक स्वरूप क्या है? कांग्रेस किसका प्रतिनिधित्व करती है और किसका नहीं। कांग्रेस ने अपने आप ही यह कहने का अधिकार ले लिया कि स्वतंत्र भारत का संविधान कैसा होना चाहिए। देश के नाम पर इस प्रकार बोलने का अधिकार एक महत्वपूर्ण मुद्दा बनता है और जो इसे नहीं मानते उनके पास इस कथन को चुनौती देने के सिवाय और कोई विकल्प नहीं है।

II

इस सबके के बावजूद विदेशियों ने पूछा कि स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस का साथ क्यों नहीं दिया जाता? कांग्रेस के साथ सहयोग करने से पहले संविधान में संरक्षण की शर्त क्यों रखी जाती है? स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात ही संरक्षण की बात चलाई जा सकती है। एक विदेशी इन तर्कों को सुन कर समझ जायेगा कि अस्पृश्यों ने स्वतंत्रता संग्राम में कांग्रेस का सहयोग करने में अपने को सुरक्षित क्यों नहीं समझा। परंतु कुछ ऐसे भी लोग होंगे, जो ऐसी कल्पना नहीं कर सकते और उसके विषय में जानना चाहेंगे। कारण अनेक हैं; उनमें से जो महत्वपूर्ण हैं, वे इस प्रकार हैं :–

प्रथम कारण सहज सोच पर आधारित है। अस्पृश्यों का कहना है कि कांग्रेस से अग्रिम रूप में मांग मनवाने में क्या हानि है? यदि कांग्रेस पहले ही गारंटी दे देती है, तो इससे कांग्रेस का क्या नुकसान है? वे तर्क देते है कि यदि कांग्रेस पहले से ही संरक्षणों की मांग पर सहमत हो जाती है, तो उसका दोहरा असर पड़ेगा। पहली बात तो यह कि जो अस्पृश्य आशंकित हैं, उन्हें विश्वास दिलाना होगा कि बहुसंख्यक हिंदू संप्रदाय के अंतर्गत उनके भाग्य का निपटारा कैसे किया जाएगा। दूसरी बात यह कि इस प्रकार का आश्वासन कांग्रेस का सहयोग करने के लिए अस्पृश्यों को प्रेरित करने के अभिप्राय से किया जाता है। आखिरकार अस्पृश्य कांग्रेस से असहयोग क्यों करते हैं? इन सबका उत्तर यही है कि उन्हें इस बात का डर है कि यदि इस प्रकार स्वतंत्रता प्राप्त कर ली जाती है, तो बहुसंख्यक हिंदू उन्हें पुनः गुलाम बना लेंगे। तब इस डर को यदि थोड़ी कीमत चुका कर दूर किया जा सकता है, तो अग्रिम रूप में मांगें मानने का समझौता क्यों न कर लिया जाए?

दूसरा कारण आज तक के अनुभवों में निहित है। अस्पृश्यों का कहना है कि संसार के अनुभवों से इस आशा की पुष्टि नहीं होती कि स्वतंत्रता संग्राम की समाप्ति के बाद शक्तिशाली वर्ग कमजोर वर्ग को सुरक्षा देने की उदारता दिखाते हों। इस प्रकार के विश्वासघात के बहुत से उदाहरण दिए जा सकते

हैं। सबसे कुत्सित उदाहरण अमरीका का है, जहां गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद नीग्रो लोगों के साथ विश्वासघात किया गया। उस गृहयुद्ध में नीग्रो लोगों ने जो भूमिका निभाई थी, उसके विषय में श्री हरबर्ट अपथेकर ने लिखा है[1] :–

> "संघीय सेना में गुलाम राज्यों से 12 लाख पचास हजार नीग्रों लोगों ने सेवा की। वे उत्तर के अस्सी हजार के साथ साढ़े चार सौ लड़ाइयों में बड़े उत्साह और साहस के साथ लड़े और गुलामी का जुआ उतारने में महत्वपूर्ण योगदान किया।
>
> "दो लाख नीग्रो सैनिक बड़ी लगन और सत्यनिष्ठा के साथ लड़ रहे थे। परंतु फिर भी उन्हें नीच और गुलामी के काबिल ही समझा गया।
>
> "और गणराज्य के नीग्रो लोगों ने शर्मनाक भेदभाव और प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद लड़ाई लड़ी। गोरे सैनिक 13 डालर प्रतिमाह पाते थे, तो नीग्रो सैनिक मात्र सात डालर। 14 जुलाई 1864 तक, जब वेतन 1 जनवरी 1864 से बराबर कर दिया गया, गोरे रंगरूटों को पारितोषिक रूप में सूचीबद्ध किया गया था, परंतु नीग्रो लोगों को नहीं। (15 जून 1864 तक), यही नहीं नीग्रो के लिए कमीशंड आफिसर के रैंक तक उन्नति पाने की कोई संभावनाएं नहीं थीं। संघ (कन्फेड्रेसी) ने युद्ध में बंदी बनाये गये नीग्रो सैनिकों को जो गुलाम थे कभी युद्ध–बंदियों के रुप में मान्यता नहीं दी तथा युद्ध के बंदी आजाद नीग्रो को अक्तूबर 1864 तक युद्ध के बंदी का दर्जा नहीं दिया गया। नीग्रो या तो मारे गए या दासता में फिर जकड़ लिए गए अथवा उन्हें कठिन परिश्रम करने के लिए कारागार में डाल दिया गया।
>
> × × ×
>
> "हजारो नीग्रो लोगों को, जो अभी तक गुलाम थे और जिन पर जुल्म सितम होते रहते थे, हथियार दिए गए और उन्हें अपने देशों को भेज दिया गया ताकि वे वहां पर अपनी रक्षा कर सकें और इंसानों की तरह ही रह सकें तथा वे अपने साथियों को आजाद कर सकें और अपने माता–पिता और बच्चों और पत्नियों को स्वतंत्र कर सकें। यह बात सदैव याद रखी जाएगी कि प्रजातंत्र की रक्षा के लिए 37000 नीग्रो सैनिकों ने कुर्बानी दी।"

गृहयुद्ध समाप्त होने के बाद नीग्रो लोगों का क्या हुआ? विजय के पहले चरण में गणराज्य के लोग, जिन्होंने संघ की सुरक्षा के लिए नीग्रो लोगों की

1. नीग्रो इन द सिविल वार पृष्ठ 35 - 40

सहायता ली थी, संविधान में तेरहवां संशोधन करने का प्रस्ताव लाए। उस संशोधन के अंतर्गत नीग्रो लोगों को कानूनन मुक्ति मिली। परंतु क्या नीग्रो लोगों को शासन में कोई अन्य अथवा मताधिकार प्रदान किए गए? दक्षिणी राज्यों को यह दिखाने के लिए कि नीग्रो लोगों को भी गोरे लोगों के समान ही राजनीतिक अधिकार हैं, गणराज्य के लोगों ने कदम उठाए। यह प्रयास संविधान में चौदहवें संशोधन द्वारा किया गया, जिसके अंतर्गत उन्हें नागरिकता प्रदान की गई। समस्त राज्यों और संघ में नीग्रो लोगों सहित सभी को नागरिकता दे दी गई। विशेषाधिकारों और कानून की परिधियों से मुक्ति के अधिकारों के विरूद्ध कानून बना और राज्यों में कांग्रेस ने उन नागरिकों की जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व कम किया, जहां मताधिकार प्राप्ति सीमित थी। दक्षिणी राज्य 14वें संशोधन को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे। टेनेसी के अतिरिक्त सभी ने संशोधन अस्वीकार कर दिया और गोरों की सरकारें बनाई गई। तब रिपब्लिकन लोगों ने आगे बढ़कर 2 मार्च 1867 को कथित पुनर्निर्माण अधिनियम (बागी राज्यों के लिए सक्षम सरकार देने का विधेयक) पास करना चाहा, जिसका आशय उन सभी राज्यों को संघ में फिर शामिल करना था, जिन्हें उस समय तक संघ में शामिल नहीं माना गया था। (गोरे निवासियों द्वारा स्थापित सरकारों की उपेक्षा करते हुए और उन्हें दुबारा शामिल करने के लिए यथोचित शर्तों का निश्चय करना। इस अधिनियम के द्वारा उस समय वे राज्य अर्थात् टेनेसी के अतिरिक्त सभी विद्रोही दक्षिणी राज्य पांच सैनिक जिलों में बांट दिए गए और प्रत्येक जिला संघीय सेना के ब्रिगेडियर जनरल द्वारा उस समय तक शासित होता रहा, जब तक (1) राज्य एक नए संविधान का निर्माण नहीं कर लेता। (2) चौदहवें संशोधन की पुष्टि नहीं करता, और (3) राज्यों को विधिवत फिर शामिल नहीं कर लिया जाता। रिपब्लिकन लोगों द्वारा दूसरा संशोधन लाया गया, जिसे पन्द्रहवां संशोधन कहा जाता है। इसके अनुसार उन्हें वर्ण भेद अथवा पूर्व प्रचलित दासता और जाति–भेद बरतने के कारण मताधिकार से वंचित कर दिया गया था। वह संशोधन संविधान का एक भाग बना और सभी राज्यों को उसे मानना पड़ा। दक्षिणी राज्य के गोरे लोग नीग्रो लोगों को समान नागरिकता प्रदान नहीं करना चाहते थे। नीग्रो लोगों को मताधिकार से वंचित रखने का प्रश्न शीघ्रता से आगे बढ़ा। इसे दक्षिणी राज्य सरकारों तथा वहां के श्वेत नागरिकों का परम् कर्तव्य कहा गया। 15वें संशोधन को निरस्त करने के लिए राज्य सरकारों ने मताधिकार के ऐसे कानून बनाए, जिनसे नीग्रो लोगों को वोट देने के अधिकार से जातिभेद और रंगभेद के अतिरिक्त अन्य आधारों पर वंचित कर दिया जा सकता था। उनमें से बहुतों ने पितामह धारा[1] घुसेड़ दी जिससे नीग्रो लोगों को मताधिकार से वंचित

1. इसलिए कहा जाता है कि इससे उस मनुष्य के मताधिकार पर यह बंदिश लगा दी गई कि उसके पितामह ने उस मताधिकार का उपयोग किया हो।

किया गया और गोरे निवासियों को पूरे अधिकार मिल गए। यह प्रस्ताव कूक्लक्स क्लान द्वारा लाया गया था। टेनेस के युवाओं ने विनोद के लिए मूल रूप में क्लान के नाम से एक गुप्त संस्था बनाई थी जिसे ऐसी संस्था के रूप में परिणित कर दिया गया, जिससे नीग्रो लोगों को दबाया जा सके और उन्हें राजनीतिक अधिकारों को उपयोग करने से रोका जा सके। उस संस्था ने नीग्रो लोगों पर अत्याचार करना आरंभ कर दिया और वे नाम मात्र के लिए गोरे लोगों पर भी ज्यादती करते थे, ताकि नीग्रो लोगों और दक्षिण के प्रति उनकी सहानुभूति भी प्रतीत हो। उन अत्याचारियों की जड़ का पता नहीं लगाया गया। इसेसे स्पष्ट है कि दक्षिण की समस्त श्वेत जनता क्लान संस्था का समर्थन करती थी। उन्हें रोकने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया। न तो उनकी गतिविधियां रोकी गई न कांग्रेस द्वारा पारित कानून ही उन अत्याचारों को रोकने के लिए लागू किए गए। दक्षिण में उन्हें बेंतों से मारना, उनके घर जलाना और कत्ल करना किसी भी बात को प्रभावी ढ़ंग से नहीं रोका गया।

दक्षिणी राज्यों तथा दक्षिण के गोरे लोगों के कारनामों को अमरीका के सुप्रीम कोर्ट के फेसले से और भी शह मिली। सुप्रीम कोर्ट ने फैसला दिया था कि पन्द्रहवां संशोधन पास होने के बावजूद राज्य कानूनों के अंतर्गत नीग्रो लोगों को मताधिकार से वंचित रखना वैध है, क्योंकि मताधिकार से वंचित करना जातिभेद और रंगभेद पर आधारित नहीं है। इसी प्रकार सुप्रीम कोर्ट ने निर्णय दिया कि कूक्लक्स क्लान की वे करतूतें, जिनसे नीग्रोजन को मताधिकार से रोका गया था, ठीक थीं, क्योंकि पन्द्रहवें संशोधन द्वारा राज्यों को तो मताधिकार में हस्तक्षेप करने से रोक दिया गया, परन्तु निजी संस्थाएं मनमानी कर सकती थीं।

रिपब्लिकन लोगों ने क्या किया? संविधान में संशोधन कर नीग्रो लोगों को और अधिक प्रभावी ढ़ग से गांरटी देने के बजाए, वे दक्षिणी राज्यों को मान्यता देने और संघ में शामिल करने पर सहमत हो गए। यह भी कहा गया कि विद्रोहियों को क्षमा किया जाए ओर वहां भेजी गई सेना को वापस बुला कर नीग्रो लोगों की मेहरबानी पर छोड़ दिया जाए। जैसा कि श्री एपथेकर ने कहा है[1]:–

> "परंतु नीग्रो लोग उनके साथी दक्षिण में प्रजातंत्र के लिए भूमि और नागरिक अधिकारों के लिए बड़ी बहादुरी से लड़े, परंतु उत्तर के उद्योगों और बुर्जुआओं द्वारा किए गए शर्मनाक विश्वासघात के कारण पराजित हुए। 1877 में उत्तर के लोगों ने दक्षिणी हथकंडों से मेल कर लिया। रिपब्लिकन पार्टी के प्रतिक्रियावादियों से मिलकर उत्तर के बुर्जुआ लोगों ने दक्षिणी राज्यों में पुराने गुलामों के अल्पतंत्र

1. द नीग्रोज इन द सिविल वार पृष्ठ 45-46

> (होमरूल) के नाम पर क्रांति को नाकाम कर दिया। उस भलमनसाहत के समझौते का अर्थ था नीग्रो लोगों के मताधिकार को समाप्त करना, बटाईदारी हक छीन कर दैनिक मजदूर बना देना, मारपीट और नागरिक स्वतंत्रता तथा उनके शैक्षिक अवसरों पर डाका डालना।"

विश्वासघात का किस्सा यहीं तमाम नहीं हुआ। यहां यह भी बताना आवश्यक है कि यदि रिपब्लिकन पार्टी दक्षिण के डेमोक्रेट्स का चुनावो में सामना करते, तो नीग्रो लोग नरक यातना भोगने से बचाए जा सकते थे। क्योंकि जानने वालों का कहना है कि यदि दक्षिण में उत्तर की तरह दोनों दल बंट जाते, तो दक्षिण में कोई राज्य ऐसा नहीं जहां नीग्रो लोगों का बाहुल्य न हो। रिपब्लिकन भी ऐसा न कर पाते। लगता है कि रिपब्लिकनों ओर डेमोक्रट की मिलीभगत थी कि नीग्रो लोगों का प्रचार न करें क्योंकि दक्षिण में रिपब्लिकन ढूंढे नहीं मिलते। वहां वे अस्तित्व में नहीं है। उन्हें डर था कि कहां उन्हें नीग्रो लोगों का पक्ष न लेना पड़ जाए।

अस्पृश्य नीग्रो लोगों की गति नहीं भूल सकते। इसी दगाबाजी से बचने के लिए उन्होंने स्वाधीनता आंदोलन के प्रति यह रूख अपनाया। इसमें गलती क्या है? क्या वे वर्क के कथन से भी आगे है कि आधी–अधूरी सुरक्षा को छोड़ कर पूरी के लिए दौड़ने से तो कायर कहलाना ही भला है।

तीसरा तर्क यह है कि कांग्रेस के इस कथन का कोई औचित्य नहीं कि पहले स्वाधीनता संग्राम लड़ा जाए और संवैधानिक सरक्षणों का मुद्दा बाद मे उठाया जाए।

अस्पृश्य अनुभव करते हैं कि स्वतंत्रता के लिए भारत के अधिकार के बारे में ब्रिटिश सरकार के रूख को देखते हुए, इस लड़ाई का जिससे कांग्रेस को बहुत प्यार है, कोई औचित्य नहीं है। यह तो घोडे के आगे गाडी खडी कर देना है। स्वतंत्रता के संबंध में भारत के अधिकार के विषय में ब्रिटिश सरकार का जो रूख है वह 1857 के विद्रोह के बाद बिल्कुल बदल गया है। एक समय ऐसा था जब ब्रिटिश सरकार का कहना था कि भारत की स्वतंत्रता के अधिकार की बात तक न की जाए। ऐसी घोषणा लारेंस द्वारा की गई थी जिनकी मूर्ति कलकत्ता में लगी हुई है। उनका कहना था "ब्रिटिश ने भारत को तलवार की धार से जीता है और वे तलवार के बल पर ही राज करेंगे।" अब यह दावा काफूर हो गया है और यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि आज प्रत्येक अंग्रेज को ऐसा कहने में लज्जा का अनुभव होता है। इस स्थिति के बाद दूसरी स्थिति आई, जिसमें भारतीय स्वतंत्रता के विरूद्ध ब्रिटिश सरकार का तर्क था कि जनतंत्र प्रणाली को चलाने में भारतीय अभी सक्षम नही है। यह स्थिति लार्ड रिपन के काल से आरम्भ हुई जिसमें भारतीयों को राजनीतिक प्रशिक्षण देने का प्रयत्न किया गया। सबसे पहले स्थानीय स्वायत्त शासन के क्षेत्र में और उसके

बाद मांटेग्यू चेम्सपोड सुधारों के माध्यम से प्रांतीय सरकारों में प्रशिक्षण के तौर पर अवसर प्रदान किए गए। अब हम तृतीय चरण अर्थात वर्तमान स्थिति पर पहुंचे हैं। ब्रिटिश सरकार को अब यह कहते हुए लज्जा आती है कि वह तलवार के बल पर भारत पर शासन करेंगे। अब वह यह नहीं कहते कि भारतीय लोग जनतंत्र प्रणाली के अनुसार शासन चलाने में सक्षम नहीं हैं। ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता के लिए भारत के अधिकार को ही नहीं, वरन पूर्ण स्वाधीनता के अधिकार को भी मानने लगी है। ब्रिटिश सरकार यह भी मानने लगी है कि भारतीय अपनी मर्जी का संविधान बना सकते हैं। उनके नए दृष्टिकोण का क्रिप्स योजना से बढ़कर और कोई बड़ा सबूत नहीं हो सकता, जो ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत की आबादी के संबंध में रखा गया है। पहले की शर्तें यह थीं कि भारतीयों को चाहिए कि वे ऐसे संविधान का निर्माण करें, जिसमें देश के राष्ट्रीय जीवन में सभी महत्वपूर्ण वर्गों की सहमति झलकती हो। आज हम इस स्थिति तक पहुंच चुके हैं। इसलिए अस्पृश्य नहीं समझ सकते कि कांग्रेस, भारतीयों में सहमति की प्राप्ति करने के बजाए, स्वतंत्रता संग्राम के सिद्धांत पर ही बात क्यों चलाती रहे और स्वतंत्रता संग्राम में शामिल न होने के लिए अस्पृश्यों को बदनाम करती रहे।

III

कांग्रेस ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव का विरोध क्यों करती है? कांग्रेस दो बातों पर अपने विरोध को उचित ठहराती है। कांग्रेस का कहना है कि ब्रिटिश सरकार द्वारा निर्धारित शर्त, स्वतंत्रता में अस्पृश्यों के हाथों में वीटो के समान है। यह दलील दो कारणों से बेवकूफी की है। पहला यह कि अस्पृश्यों ने कोई आसमान के तारे नहीं मांगे। यहां तक कि उन्होंने कोई बेतुकी मांग भी नहीं रखी है। उन्होंने ऐसा भी नहीं कहा जैसा कर्सन ने रेडबोण्ड से कहा था – "तुम्हारे संरक्षण भाड़ में जाएं, हम तुम्हारे द्वारा शासित नहीं होना चाहते।" हिंदुओं की असामाजिक तथा अप्रजातांत्रिक नीति के बावजूद अस्पृश्य बहुसंख्यक हिंदुओं के शासन में आने को, पूर्णतः स्वीकार करने को तैयार हैं। परंतु शर्त यह है कि संविधान में उन्हें न्यायोचित संरक्षण प्रदान किए जाएं। यह कहना कि अस्पृश्य असंभव मांगें पेश करके भारत की आजादी प्राप्त करने में वीटो का काम कर रहे हैं, सफेद झूठ है जिसका कोई औचित्य नहीं है। यदि कांग्रेस इस आशंका को सही मानती है, तो उसका निराकरण भी उसी के हाथ में है। क्योंकि कांग्रेस चाहे तो हिंदू और अस्पृश्यों में कोई समझौता न होने की स्थिति में यह मामला अंतर्राष्ट्रीय पंचफैसले के लिए भेज सकती है। यदि कांग्रेस इस बात पर सहमत हो, तो मुझे विश्वास है कि न तो ब्रिटिश सरकार को और न अस्पृश्यों को ही इस बात पर कोई एतराज होगा। परंतु जब परस्पर समर्पित संविधान लाने के लिए ईमानदारी से सही प्रयत्न करने के बजाए कांग्रेस स्वतंत्रता आंदोलन छेड़ने की ही बात करती

है, तो इससे अस्पृश्य यही निष्कर्ष निकालते हैं कि कांग्रेस अस्पृश्यों द्वारा की गई संरक्षण की मांग पर सहमत हुए बिना ब्रिटिश सरकार को सत्ता हस्तांतरित करने के लिए विवश करना चाहती है अथवा श्री गांधी के शब्दों में, "कांग्रेस को चाबी सौंप देने" की बात कहती है। सक्षेप में कांग्रेस चाहती है कि भारत को असीमित स्वाधीनता दी जाए और हिंदू अस्पृश्यों के साथ खुले खेल खेलते रहें। यदि अस्पृश्य इस बेईमानी के खेल में उनका हाथ न बंटाए तो इसमें आश्चर्य क्या है, भले ही उस खेल को स्वधीनता संग्राम जैसा भारी भरकम नाम ही क्यों न दे दिया गया हो?

दूसरा आधार जिस पर कांग्रेस समझौते के प्रश्न को टालने के लिए कहती है वह यह है कि ब्रिटिश सरकार ईमानदार नही है और ऐसी घोषणा करने पर भी ब्रिटिश सरकार सत्ता का हस्तांतरण नहीं करेगी चाहे भारतीय लोग संविधान के लिए सहमत ही क्यों न हो जाएं? अततः इसीलिए भारतीय लोग अंग्रेज सरकार से सत्ता छीनने के लिए संघर्ष करेंगे ही। अस्पृश्यों का उत्तर है कि अंग्रेजों के वायदे पर अविश्वास करने का कोई कारण नहीं है। आखिरकार ब्रिटिश सरकार इस देश में भारतीय लोगों की आकांक्षाओं को पूरा करने की दिशा में कार्य करती रही है और कर रही है। यदि प्रगति धीमी पड़ती है, तो इसका भी कारण यही है कि भारतीय कम कीमत पर ही संतुष्ट होना चाहते है। जब से अंग्रेजों ने भारत पर आधिपत्य जमाया है, तब से 1886 तक भारतीयों ने इस बात की भी परवाह नहीं की कि उन पर कौन शासन कर रहा है अथवा किस प्रकार शासन किया जा रहा है। वे इन प्रश्नों से आंदोलित हुए बिना आंख मूंदे पड़े थे। वर्ष 1886 में कांग्रेस की स्थापना हुई और वह पहला अवसर था जब से भारतीयों ने देश के शासन में दिलचस्पी लेना आरंभ किया। परंतु कांग्रेस भी वर्ष 1910 तक केवल ठीकठाक सरकार के लिए ही आंदोलन कर रही थी। 1910 में कांग्रेस ने सर्वप्रथम स्वायत्त शासन की मांग की। जब 1919 मे मांटेग्यू चेम्सफोर्ड सुधार लागू हुए, तो भारतीयों के लिए स्वायत्त शासन की मांग उठाने का ध्यान आया। भारतीयों ने 1917 में 19 मांगों का ज्ञापन तैयार किया। लोग जानते होंगे कि उस समय भारतीय अधिकतर प्रांतों में दोहरी शासन प्रणाली से ही संतुष्ट थे। कुछ भारतीय नेता जैसे सर श्री दिनेश वाचा और श्री समरनाथ इसे भी भारतीयों की लंबी–लंबी छलांग मानते थे।[1]

वर्ष 1930 में कांग्रेस के प्रस्तावों में पूर्ण स्वतंत्रता पर जोर दिए जाने के बावजूद गांधी जी गोलमेज सम्मेलन में केवल प्रांतीय स्वतंत्रता प्रदान कर देने

1. मांटेग्यू ने अपनी इंडियन डायरी में यह लिखा है कि जब उन नेताओं ने राजनीतिक सुधार के प्रश्न पर मुझसे बात की, तो उन्होंने कहा, "सरकार पर प्रभाव डालने के प्रस्ताव पास करने का अधिकार हमें दिया जाए, जिसे हम मृदु स्वर में सरकार के सामने प्रयोग कर सकें। परंतु हम उत्तरदायी सरकार बनाने के योग्य नहीं हैं।"

से संतुष्ट हो जाने को तैयार थे।[1]

अस्पृश्य सोचते हैं कि वह स्थिति कब की बीत चुकी है जब ब्रिटिश सरकार स्वतंत्रता रूपी धन पर सांप की तरह कुंडली मारे बैठी थी और लोगों को अपने पास फटकने तक न देती थी। भारत की स्वतंत्रता उस धन के समान है जो किसी मुख्तार के कब्जे में होता है। ब्रिटिश सरकार ने अपने आपको मुख्तार बना रखा था। जैसे ही आपसी विवाद समाप्त हो जाए और भावी संविधान का स्वरूप उभर कर सामने आ जाए तभी ब्रिटिश सरकार उस धरोहर को यथोचित अधिकारी स्वामियों अर्थात् भारतीयों को सौप दे। अस्पृश्य पूछते हैं कि इससे फायदा क्यों न उठाया जाए? देश की संपत्ति के मामले को सीधे और ईमानदारी के साथ समझौता करके क्यों न निपटाया जाए? और तब स्वतंत्रता का संयुक्त दावा क्यों न किया जाए? अस्पृश्यों का कहना है कि कांग्रेस उपरोक्त ढंग से स्वतंत्रता की लड़ाई नहीं लड़ना चाहती। इसीलिए स्वतंत्रता संग्राम का कांग्रेस का नारा जालसाजी के सिवाय कुछ नहीं है, जिसका उद्देश्य अस्पृश्यों की सर्व विधा समर्थित संविधान की मांग को दरकिनार करके ब्रिटिश सरकार से स्वतंत्रता प्राप्त करना है।

अस्पृश्य यह नहीं कहते कि वे ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई घोषणा को कम करके देखना चाहते हैं, वे यह भी नहीं मानते कि यदि भारतीय समझौते पर सहमत हो जाते है, तो तुरंत सिम--सिम का दरवाजा खुल जाएगा या अलादीन का जादुई चिराग करिश्मा दिखा देगा। उन्हें इस बात का भी अहसास है कि ब्रिटिश सरकार अपनी घोषणा से मुकर भी सकती है। यह भी हो सकता है कि सहमति का संविधान बन भी जाए तो भी वे अपने वायदे को पूरा करें, तब स्वतंत्रता की लड़ाई आवश्यक हो जाएगी। अस्पृश्य इन संभावनाओं की उपेक्षा नहीं कर सकते। परंतु उस विषय में अस्पृश्यों का कहना है कि भारतीयों ने अंग्रेजों की अभी परीक्षा नही ली है। उनकी परीक्षा तब तक नहीं ली जा सकती, जब तक कि सर्व–समर्थित संविधान उनके सामने न प्रस्तुत कर दिया जाए। जब तक कांग्रेस इस दिशा में पहले कार्रवाई नहीं करती – यद्यपि वह कार्रवाई का अंतिम चरण नहीं होगा – अस्पृश्यों को अनुभव होता है कि कांग्रेस का उनके प्रति यहां तक कि देश के प्रति ईमानदारी का रवैया नहीं है। कौन कह सकता है कि अस्पृश्यों का कांग्रेस के "स्वतंत्रता संग्राम" में सम्मिलित न होने का उनका तर्क न्यायोचित नहीं है।

---

1. गोलमेज सम्मेलन में क्या हुआ था, यह कहानी पहले ही बतलाई जा चुकी है। परंतु जो लोग गोलमेज सम्मेलन में उपस्थित थे, वे जानते है कि श्री गांधी प्रांतीय स्वायत्तता से किस प्रकार सहमत हुए थे। यदि 1935 के गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट में केंद्रीय सरकार के लिए जिन उत्तरदायित्वों तथा मौलिक तत्वो की व्यवस्था की गई है, उसका श्रेय गैर–कांग्रेसी पार्टियों के उन प्रतिनिधियों को जाता है जिन्होंने गोलमेज सम्मेलन मे भाग लिया था। अंग्रेज सरकार ने उस मांग से अधिक मंजूर किया। यदि 1939 में इस दिशा में कोई रूकावट आई, तो उसका मुख्य कारण यही था कि भारतीय इस बात पर सहमत नहीं थे कि वे अपने देश के लिए कैसा संविधान चाहते है।

अध्याय : 8

वास्तविक मुद्दा

क्या अस्पृश्य पृथक वर्ग नहीं है?

I

कांग्रेस और अस्पृश्यों के मध्य विवाद में मूल मुद्दा क्या है? जहां तक इस विषय में मेरी जानकारी है, मूल मुद्दा यह है कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अस्पृश्य पृथक वर्ग है अथवा नहीं।

इस विवाद का यही मूल प्रश्न है और इस आधार पर कांग्रेस और अस्पृश्य एक दूसरे के विरोधी पक्ष हैं। इस विषय में अस्पृश्यों का उत्तर हां में है। उनका कहना है कि वे हिंदुओं से बिल्कुल भिन्न हैं। दूसरी ओर कांग्रेस का कहना है "नहीं" और वह दृढ़तापूर्वक कहती है कि वे हिंदू समाज के ही अंग हैं। इस मूल प्रश्न पर दोनों पक्षों की अलग–अलग सोच है। इस विषय में ब्रिटिश सरकार का रुख लार्ड लिनलिथगो ने जो भारत के वायसराय और गवर्नर–जनरल थे अपनी घोषणा में बहुत ही स्पष्ट करते हुए कहा था कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अस्पृश्यों का बिल्कुल पृथक अस्तित्व है।[1] बहुत से लोग जो वैधानिक संरक्षणों को मूल प्रश्न मानते हैं, उन्हें यह जानकर आश्चर्य होगा कि वे उस प्रश्न को जैसा समझते हैं और जैसा मैं समझता हू, उन दोनों विचारों में भेद है। वास्तव में ऊपर से कोई अंतर नहीं मालूम होता। यह सब इस बात पर निर्भर करता है कि कौन किसे प्रस्तावना और किसे उपसंहार मानता है। मैं इसे प्रस्तावना मानता हू। जिसे मैंने मूल प्रश्न कहा है, उसे मैं उपसंहार कहता हू, जो प्रस्तावना के बाद आता है। जैसा कि न्याय प्रक्रिया में तर्कों के बाद निष्कर्ष आता है। यह अधिक अच्छा होगा कि इस अंतर के विषय में मैं कुछ लिखूं। मुझे भारत के संविधान का विकास ऐसा लगता है, जैसे तर्क–वितर्क के बाद निष्कर्ष का अंश उभर कर सामने आया है, और निष्कर्ष वाक्य है, कि भारतीय राजनीति की

---

1. परिशिष्ट संख्या 6 से मद 9 तथा 12

संवैधानिक प्रगति के इतिहास में यही मिलता है कि जो समुदाय अपने को स्वतंत्र सामाजिक ईकाई सिद्ध करने में सफल हो गया, उसका पृथक संवैधानिक अधिकारों का हक भी मान लिया गया। जो तत्व संवैधानिक सुरक्षा का दावा करते हैं, उन्हें प्रमाणित करना होगा कि वे शेष से भिन्न है। यदि वह सिद्ध कर देते हैं कि उनका अस्तित्व है, तो उन्हें संवैधानिक संरक्षण मिलना चाहिए।

भारत में मुसलमानों, ईसाइयों, एंग्लो–इंडियनों, यूरोपियनों और सिखों के लिए संवैधानिक संरक्षण के विधान कैसे किए गए? यह सच है कि भारत का संविधान सिद्धांतों को आधार मान कर नहीं बनाया गया है। यह अनाप–शनाप तत्वों का पिटारा है, जो समय के साथ–साथ बढ़ता गया। इसका विकास सैद्धांतिक नहीं है। इसकी अवधारणा कामचलाऊ तो है ही, बेशक यह सिद्धांतों पर न भी टिका हो। संवैधानिक संरक्षण के लिए दलों के अधिकार को आनुषंगिक माना गया है। यदि यह बात मौलिक शर्त हो कि भारत में उनका अलग अस्तित्व है तो लोग उसे स्वतः मानने लगेंगे। इस दृष्टिकोण से इस प्रश्न पर विचार करने पर मैं सोचता हूं कि अस्पृश्यों का मामला इतने पर ही समाप्त नही कर दिया जाना चाहिए कि इस बारे में बहस की जरूरत नहीं। मुझे संवैधानिक संरक्षण की प्रस्तावना पर विचार करना होगा। उपसंहार खुद–ब–खुद सामने आ जाएगा, चाहे वह एक उदाहरणस्वरूप ही क्यों न हो।

मैंने अस्पृश्यों के लिए जो अनुमानित पृथक अस्तित्व का सृजन किया है, वह सभी प्रकार से युक्तिसगत है। यह भी आवश्यक है कि अस्पृश्यों के पृथक अस्तित्व की समस्या पर अलग से और मौलिक ढंग से विचार किया जाए, क्योंकि कांग्रेस यह अच्छी तरह जानती है कि यदि एक बार वह मान लेती है कि अस्पृश्यों का पृथक अस्तित्व है, तो कांग्रेस अस्पृश्यों के संवैधानिक संरक्षण का अधिकार पाने से उन्हें नहीं रोक सकती। यदि कांग्रेस इस मांग का विरोध करती है तो केवल इसलिए कि वह समझती है कि लड़ाई का यह पहला मोर्चा है। यदि कांग्रेस इस प्रथम लड़ाई में पिछड़ गई, तो वह आगे की परिस्थितियों का सामना नहीं कर पाएगी।

II

जो लोग भारत की परिस्थितियों से परिचित हैं, उन्हें यह जान कर आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि कांग्रेस निर्विवाद को भी विवादास्पद बना देती है जैसे उनका यह कहना कि अस्पृश्य हिंदुओं से भिन्न हैं। परंतु चूंकि कांग्रेस यह कह रही है, इसलिए मुझे पूरी शक्ति से इस मामले को उठाना पड़ेगा।

अस्पृश्यों का हिंदुओं से पृथक अस्तित्व होने के जो आधार अस्पृश्यों द्वारा बताए गए हैं उन्हें समझने में कोई कठिनाई नही है। न ही इस विषय मे विस्तृत बयान

देने की आवश्यकता है। उनकी समस्या का उत्तर एक साधारण प्रश्न द्वारा दिया जा सकता है। अस्पृश्य किन अर्थों में हिंदू हैं? पहली बात तो यह है कि "हिंदू" शब्द विभिन्न अर्थों में प्रयोग किया जाता है। परंतु इस प्रश्न को समझने से पहले यह जानना जरूरी है कि "हिंदू" शब्द साधारणतया किन अर्थों में प्रयोग किया जाता है। कुछ लोग क्षेत्रीय अर्थ में "हिंदू" शब्द का प्रयोग करते हैं। जो लोग हिंदुस्तान में रहते हैं, वे सभी हिंदू हैं। इस अर्थ में अस्पृश्य और साथ में मुसलमान, ईसाई, सिख, यहूदी और फारसी इत्यादि सभी हिंदू हुए। दूसरा और मुख्य अर्थ धार्मिक विश्वास का है। इसका कोई नतीजा निकालने से पहले यह नितांत आवश्यक है कि हिंदू धर्म के सिद्धांतों को हिंदू धर्म की उपासना पद्धति से अलग करके विचार किया जाए। क्या अस्पृश्य उस धार्मिक अर्थ में हिंदू हैं जिस पर हिंदू धर्म निर्भर करता है। यदि हिंदू धर्म का परीक्षण उसके वर्ण और अस्पृश्यता के सिद्धांतों पर किया जाए तो प्रत्येक अस्पृश्य अपने को हिंदू होने और हिंदू धर्म को स्वीकार करने से इंकार कर देगा। यदि परीक्षण धार्मिक उपासना की पद्धति पर किया जाए जैसे कि राम, कृष्ण, विष्णु और शिव तथा हिंदू धर्म द्वारा स्थापित अन्य हिंदू देवी देवताओं की उपासना, जो अस्पृश्य भी करते हैं, इस दृष्टि से वे हिंदू कहे जाते है क्योंकि उनकी और हिंदुओं की उपासना तथा उपास्य देवता एक हैं। कांग्रेस ने ऐसे दलाल अस्पृश्यों के संगठन बनाए हुए हैं, जो आवश्यकता पड़ने पर गला फाड़ कर कहते हैं, अस्पृश्य हिंदू हैं और हिंदू रह कर मरेंगे। परंतु यही भाडे के टट्टू यदि वे अपने आप को हिंदू होने की घोषणा करें, तो वे हिंदू नही माने जाएंगे, क्योंकि हिंदू धर्म का अर्थ है, वर्ण, व्यवस्था और अस्पृश्यता में विश्वास रखना।

एक विचार और है जिस पर गौर किया जाना चाहिए। अभी की गई व्याख्या के अनुसार उपासना पद्धति को सीमित अर्थों में लिया जाए, तो अस्पृश्य वर्ग हिंदू धर्म का अंग नही हो सकता है। यहां भी जो लोग अस्पृश्यों और हिंदुओं को समान धर्म में मान कर नतीजा निकालते है उन्हें चेतावनी देना भी आवश्यक है। वास्तविकता यह है कि समान उपासना करने वालों को भी एक ही धर्म का नहीं कहा जा सकता, उन्हें तो यह कहा जाएगा कि वे समान धर्म को मानते हैं। एक समान धर्म का अर्थ है लोगों द्वारा समान रूप से उस धर्म वर्ग के कृत्यों में भाग लेना। उपासना करने में भी सभी को समान रूप से सम्मिलित होने का अधिकार नहीं है। हिंदू और अस्पृश्य अलग-अलग उपासना करते हैं। उनकी उपासना पद्धति में एकरूपता होते हुए भी, वे दोनों विभिन्न मतावलंबियों के समान हैं। "हिंदू" शब्द के इन दोनों अर्थों में से कोई भी अर्थ स्वयं में इस योग्य नहीं है जिससे कोई ऐसा हल निकाला जा सके, जो राजनीतिक प्रश्न को हल करने में सहायक हो।

यदि किसी परीक्षण से कोई लाभ निकल सकता है, तो वह सामाजिक अर्थ

है जिससे अस्पृश्यों को हिंदू समाज का सदस्य कहा जा सकता है। क्या अस्पृश्यों को हिंदू समाज का अंग माना जा सकता है? क्या कोई ऐसा मानवीय सूत्र है जो अस्पृश्यों को शेष हिंदुओं से बांध सकता है? कोई ऐसा मानवीय बंधन नहीं है। हिंदुओं से उनका रोटी–बेटी का कोई संबंध नहीं है। उनके स्पर्श मात्र से हिन्दू अपवित्र हो जाते हैं। व्यवहार तो दूर की बात है। हिंदुओं की पूरी व्यवस्था ऐसी है, जिससे अस्पृश्यों का पृथक अस्तित्व होना सिद्ध होता है और इसी पर जोर दिया जाता है। हिंदुओं की परम्परागत परिभाषा, जिसमें हिंदू और अस्पृश्य अलग–अलग बतलाए गए हैं, अस्पृश्यों के भिन्न होने की धारणा के पक्ष में पक्का सबूत है। इस परम्परागत परिभाषा के अनुसार हिंदू "सवर्ण" कहलाते हैं और अस्पृश्य "अवर्ण" कहलाते हैं। इससे हिंदू "चातुर्वर्णिक" कहलाते हैं और अस्पृश्य "पंचम" कहलाते हैं। यदि इस प्रकार का अलगाव इतना महत्वपूर्ण न होता, तो उक्त परिभाषा का अस्तित्व ही नही होता और इस व्यवस्था का पालन करना इतना आवश्यक है, जैसे सिक्के के दो पहलू, जो एक ही सिक्के के पहलू होते हुए भी अपनी स्थिति अलग–अलग प्रकट करते हैं।

इस प्रकार कांग्रेस के इस तर्क में कोई सार नहीं है कि "अस्पृश्य" हिंदू हैं और वे मुसलमानों तथा अन्य समुदायों की भांति राजनीतिक अधिकार की मांग नहीं कर सकते। जबकि परम्पराओं की दृष्टि से यह तर्क एकदम मान्य है कि अस्पृश्य हिंदू नही हैं। देखने में हो सकता है यह तर्क लचर लगे। इसलिए मेरे लिए कांग्रेस के इस तर्क का सामना करना आवश्यक है। मैं कांग्रेस का मुकाबला किए बिना मैदान से नहीं हटूंगा। इसी गरज से मुझे कहना है कि धर्म से अस्पृश्य हिंदू हैं। परन्तु इससे क्या फर्क पड़ता है यदि वे हिन्दू हैं। क्या उन्हें भारत के राष्ट्रीय जीवन में अलग अस्तित्व बनाए रखने से रोका जा सकता है? अस्पृश्यों को हिंदू कह देने भर से वे हिंदू समाज का अभिन्न भाग बन गए, यह मान लेना कठिन है।

हम यह तर्क मान लेते हैं कि धर्म से अस्पृश्य हिंदू हैं। क्या मेरे विचारों के अनुसार इसका अर्थ इससे और अधिक हो सकता है कि ठीक है अस्पृश्य उन सभी देवी देवताओं की पूजा करते हैं, जिनकी अन्य सभी हिंदू करते हैं, वे उन्हीं स्थानों की तीर्थ यात्रा करने जाते हैं, उन्हीं अंधविश्वासों को मानते हैं और उन्हीं पत्थरों, पेड़ों और पर्वतों को पूजते है जिन्हें हिंदू पूजते हैं तो क्या हिंदू होने का यही आधार है? बस, इतने पर ही दोनों को एक संप्रदाय का माना जा सकता है? यदि कांग्रेस का यही तर्क है तो बेल्जियम, डच, नार्वे, ईसाई, स्वीटजरलैंड के निवासी, जर्मन निवासी, फ्रांसीसी, इटली निवासी और स्लोवाकिया के निवासी आदि के विषय में क्या सोचा जाएगा? क्या वे सभी ईसाई नहीं हैं? क्या वे सभी उसी ईश्वर की पूजा नही करते? क्या वे सभी ईसा को अपना मुक्तिदाता नहीं

मानते? क्या उन सबका धार्मिक विश्वास एक सा नहीं है? स्पष्ट है कि उन सबके विचारों, पूजा–पाठ और विश्वासों में पूर्णतया धार्मिक एकता है। तब भी इस बात पर कौन विवाद कर सकता है कि फ्रांसीसी, जर्मन और इटालियन और अन्य निवासी एक ही समुदाय के नहीं हैं? दूसरा उदाहरण लीजिए, अमेरिका में श्वेत और नीग्रो लोगों की समस्या। उनका भी एक साझा धर्म है। दोनों ईसाई हैं। क्या यह कहा जा सकता है कि धर्म के नाते दोनों एक ही समुदाय के हैं? तीसरा उदाहरण लीजिए, भारतीय ईसाइयों, यूरोपियनों, और एंग्लो–इंडियनों का। वे सभी उसी एक धर्म के मानने वाले हैं। परंतु तब भी यह माना जाता है कि उनका एक और केवल एक ईसाई समुदाय नहीं है। सिक्खों का उदाहरण लीजिए। सिख, वे सभी सिख धर्म को मानते हैं, मजहबी सिख और रामदसिया सिख अलग–अलग हैं। यह सभी मानते हैं कि उनका एक समुदाय नहीं है। इन उदाहरणों के हिसाब से यह स्पष्ट है कि कांग्रेस का तर्क भ्रांतियों से परिपूर्ण है।

कांग्रेस का पहला दोष यह है कि वह यह नहीं जानना चाहती है कि समस्या को हल करने का आधारभूत कारण यह होता है कि विभाजित समाज में जनसंख्या के आधार पर संवैधानिक संरक्षण प्रदान किए जाएं अथवा नहीं। धर्म केवल वह स्थिति है जहां पर एकता अथवा अलगाव का अनुमान लगाया जा सकता है। प्रतीत होता है कि कांग्रेस को यह मालूम नहीं कि मुसलमानों और भारतीय ईसाइयों को जो पृथक राजनीतिक मान्यता दी गई है वह इसलिए नहीं दी गई है कि वे मुसलमान हैं अथवा ईसाई हैं, वरन् इसलिए कि वे वास्तव में हिंदुओं से अपना पृथक अस्तित्व रखते हैं।

कांग्रेस की दूसरी ग़लती यह है कि वह यह साबित करने में लगी हुई है कि जहां साझा धर्म है, वहां सामाजिक मेलमिलाप भी अवश्य होना चाहिए। इस तर्क के आधार पर ही कांग्रेस जीतने की उम्मीद रखती है। दुर्भाग्य से कांग्रेस इसमें सफल नही हो सकती। क्योंकि उसके तर्क के विरुद्ध काफी मजबूत अनकहे तथ्य हैं। यदि धर्म ही ऐसी परिस्थिति होता, जिससे सामाजिक एकता का तर्क दिया जाता है, तब इटेलियन, फ्रांसीसी, जर्मन और यूरोप के स्लाव, अमरीका के श्वेत लोग और नीग्रो और भारत के ईसाई यूरोपियन, एंग्लो–इंडियन केवल एक ही समाज क्यों नहीं कहलाते यद्यपि उन सबका धर्म ईसाई ही है, और हिंदू समाज के लिए ही ऐसा तर्क क्यों माना जाए। अफसोस की बात है कि कांग्रेस धर्म पर आधारित अपने तर्क पर इतना अधिक आसक्त है कि उसे अहसास ही नहीं होता कि इसे सहधर्मिता नहीं कह सकते। और ऐसे भी दृष्टांत हैं जहां धर्म अलग होते हुए भी उनमें अलगाव नहीं है, और ऐसे भी मामले हैं जहां सांझा धर्म होने के बावजूद अलगाव मौजूद है। परंतु अपने यहां का अलगाव बदतर है क्योंकि उस पर धर्म की मोहर लगी हुई है।

कांग्रेस के तर्क को काटने के लिए उन सभी मामलों का एक–एक दृष्टांत देना आवश्यक है। उनमें सबसे पहला और सरल उदाहरण सिखों और हिंदुओं का है। वे धर्म के अनुसार अलग–अलग हैं, परंतु सामाजिक रूप से अलग नहीं हैं, वे एक साथ भोजन करते हैं, आपस में विवाह संबंध करते हैं और साथ–साथ रहते हैं। किसी हिंदू परिवार में एक पुत्र सिख हो सकता है और दूसरा हिंदू। धार्मिक भिन्नता से सामाजिक संबंध नहीं टूटते। दूसरा दृष्टांत इटली निवासी, फ्रांसीसी, यूरोप में जर्मन लोग और अमरीका में गोरे और नीग्रो लोगों का है। ऐसा वहां होता है, जहां धर्म बंधन का काम करता है। परंतु धर्म उन दूसरी शक्तियों को रोकने में सक्षम नहीं होता जो जातीय भावना के विभाजन को प्रज्वलित करती है। हिंदू और हिंदू धर्म इस तीसरी बात के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण हैं जहा धर्म ही विषमता उत्पन्न करता है।

तीसरे वर्ग में हिंदुओं का उदाहरण सर्वोपरि है, जो जुड़ने की जगह टूटने का उपदेश देता है। हिंदू का धर्म है दूर रहो, सब बातों में भिन्न रहो। कहा जाता है कि हिंदुओं में जात–पात और अस्पृश्यता नहीं है। यह सच्चाई पर पर्दा डालना है। हिंदू धर्म की वास्तविक भावना ही विभाजन की है। यह निर्विवाद सत्य है। जातिया और अस्पृश्यता किसलिए हैं? उत्तर स्पष्ट है – अलगाव के लिए! क्योंकि जाति अलगाव का ही दूसरा नाम है और अस्पृश्यता एक जाति से दूसरी जाति के अलगाव की चरम सीमा का परम सत्य है। यह भी निर्विवाद सत्य है कि जाति और अस्पृश्यता का सिद्धांत मृत्यु के पश्चात आत्मा की दशा से संबंधित अन्य धार्मिक सिद्धांतों की तुलना में कम घातक सिद्धांत नहीं है। जातियां और अस्पृश्यता हिंदुओं की आचार संहिता का वह अंग हैं जिनका इस संसार में प्रत्येक हिंदू को आजीवन पालन करना अनिवार्य है। जाति और अस्पृश्यता केवल सिद्धांतों से ही नहीं हैं, बल्कि उससे भी बहुत आगे है, वही तत्व हिंदू धर्म की आस्थाओं की सर्वोच्च श्रेणी में आता है। किसी हिंदू को केवल जातपात और अस्पृश्यता के सिद्धांत पर न केवल विश्वास करना ही काफी है, वरन् उसे अपने जीवन में जातपात और अस्पृश्यता के अनुसार आचरण करना आवश्यक है।

हिंदू धर्म द्वारा अस्पृश्यता के सिद्धात को धार्मिक रूप देकर हिंदुओं और अस्पृश्यों के बीच अलगाव पैदा किया गया है। यह मात्र वैसी अलगाव की कल्पित रेखा नहीं है जैसी पुर्तगालियों और उनके शत्रुओं के बीच औपनिवेशिक अधिकार को लेकर हुए संघर्ष में पोप ने खींची थी। यह उस रंगीन रेखा के समान नहीं है, जो लंबी तो है परंतु चौड़ी नहीं और जिसे चाहे तो कोई माने न चाहे तो न माने। यह तो जातिगत खाई है, जो विभेद करती है साम्यता नहीं लाती। इसमें गहराई और चौड़ाई दोनों हैं। वास्तव में हिंदू और अस्पृश्यों के बीच ऐसी बाढ़

लगी है, जिसमें कांटेदार तार लगे हैं। यह एक लक्ष्मण रेखा है, जिसे हिंदू लांघ नहीं सकते।

सामान्यतः हिंदू धर्म और सामाजिक एकता दोनों में सामंजस्य नहीं है। हिंदू धर्म में विश्वासों का आधार सामाजिक भिन्नता है, जिसका दूसरा नाम सामाजिक विभेद है और जिससे सामाजिक अलगाव को बढ़ावा मिलता है। यदि हिंदू आपसी एकता लाना चाहते हैं, तो उन्हें हिंदू धर्म से नाता तोड़ना पड़ेगा। बिना हिंदू धर्म का परित्याग किए वे एकताबद्ध नहीं हो सकते। हिंदू धर्म ही एकजुटता के मार्ग में बाधक है। यह परस्पर एकता का उत्साह नहीं दिखा सकता, जो सामाजिक एकता का सूत्र है। हिंदू धर्म इसके विपरीत अलगाव की कामना करता है।

ऐसा लगता है कि कांग्रेस को यह नहीं मालूम कि उसका तर्क स्वयं उसके विरुद्ध जाता है। कांग्रेस के विचार का समर्थन करना तो दूर रहा, यह तो अस्पृश्यों के पक्ष को सही साबित करने के लिए सर्वोत्तम तथा सबसे अधिक प्रभावशाली तर्क है। क्योंकि इस काल्पनिक वास्तविकता से कि अस्पृश्य हिंदू हैं, कोई नतीजा निकाला जा सकता है तो वह यह है कि हिंदू धर्म ने सदैव सिद्धांत और व्यवहार दोनों ढंग से अस्पृश्यों को हिंदू समाज का अंग होने की मान्यता नहीं दी है और उन्हें हिंदुओं से दूर ही माना है।

यदि अस्पृश्य कहते हैं कि उनका अलग अस्तित्व है, तो उन्हें कोई भी इस बात के लिए दोषी नहीं ठहरा सकता कि उन्होंने अपने राजनीतिक लाभ के लिए नए सिद्धांत गढ़ लिए हैं। वे केवल उन तथ्यों की ओर संकेत करते हैं, जो हिंदू धर्म को विरासत में मिले हैं। कांग्रेस ईमानदारी और दृढ़ता से अस्पृश्यों के अलग अस्तित्व को मान्यता देने से इकार करने के लिए धार्मिक सहारा नहीं ले सकती। यह तो निरा स्वार्थ है। वह जानती है कि राष्ट्रीय जीवन में अस्पृश्यों को अलग मान लेने से कार्यपालिका, विधायिका तथा सार्वजनिक सेवाओं में अस्पृश्यों और हिंदुओं की उचित भागीदारी बन जाएगी, जिससे हिंदुओं की थाली का पकवान बंट जाएगा। कांग्रेस यह नहीं चाहती कि अस्पृश्यों के हिस्से के उन अधिकारों को हड़पने से हिंदू वंचित कर दिए जाएं, जिन्हें वे अपने तक ही सीमित रखने के अभ्यस्त हैं। यही मुख्य कारण है कि कांग्रेस भारत के राष्ट्रीय जीवन में अस्पृश्यों के पृथक अस्तित्व को मानने से इंकार करती है। कांग्रेस का दूसरा तर्क यह है कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अस्पृश्यों के पृथक अस्तित्व को राजनीतिक मान्यता देना इस आधार पर नहीं स्वीकार किया जा सकता कि इससे अस्पृश्यों और हिंदुओं का अलगाव स्थाई हो जाएगा।

यह तर्क बालू के दीवार की तरह है। यह अपने आप में सबसे कमजोर तर्क है और इससे स्पष्ट होता है कि इससे अच्छा उत्तर कांग्रेस के पास नहीं है। अपने पहले तर्क का प्रतिवाद करने के साथ यह एकदम निराधार भी है।

यदि अस्पृश्यों और हिंदुओं के बीच वास्तविक भिन्नता है और यदि अस्पृश्यों को हिंदुओं से पक्षपात का खतरा है, तब अस्पृश्यों को राजनीतिक मान्यता मिलनी ही चाहिए और हिंदुओं के अत्याचारों से बचाने के लिए उनका राजनीतिक संरक्षण अनिवार्य है। बेहतर भविष्य की सम्भावना वर्तमान में हो रहे अत्याचारों से अपनी रक्षा करने से नहीं रोक सकती।

दूसरी बात यह है कि ऐसा तर्क केवल उन्हीं लोगों द्वारा दिया जा सकता है जो हिंदुओं और अस्पृश्यों की सामाजिक समरसता में विश्वास करते हैं और उनमें एकरूपता लाने के लिए सक्रिय उपाय और प्रयत्न करते हैं। अक्सर कांग्रेसियों को यह कहते हुए सुना गया है कि अस्पृश्यों की समस्या सामाजिक और राजनीतिक दोनों हैं। परंतु प्रश्न यह उठता है कि जब कांग्रेसी इसे सामाजिक कहते है तो क्या वे इस मामले में ईमानदार हैं? क्या वे ऐसे शब्दों का प्रयोग एक बहाने के तौर पर नहीं करते हैं, ताकि अस्पृश्यों द्वारा राजनीतिक हिस्सेदारी के अधिकारों की मांग को हवा में उड़ा दिया जाए? और यदि वे सामाजिक प्रश्नों पर ईमानदार हैं, तो उसका सबूत क्या है? क्या कांग्रेसियों ने हिंदुओं में सामाजिक सुधार लाने का कोई कार्य किया है? क्या उन्होंने रोटी–बेटी के व्यवहार के पक्ष में कोई जेहाद छेड़ा है? सामाजिक क्षेत्र में कांग्रेसियों की कथनी और करनी क्या रही है?

III

यह बता देना उचित होगा कि अस्पृश्यों के अस्पृश्यता के विषय में क्या विचार हैं। अंग्रेजों के आगमन से पहले अस्पृश्य, अस्पृश्य रहने में ही संतुष्ट थे। अस्पृश्यों की भाग्य रेखा हिंदू ईश्वर द्वारा पहले से ही लिख दी गई थी और हिंदू शासकों द्वारा उस पर आचरण कराया जाता था। इसलिए उससे छुटकारा पाने की कोई गुंजाइश नहीं थी। भाग्यवश अथवा दुर्भाग्यवश ईस्ट इंडिया कंपनी को उनकी फौज में सिपाहियों की आवश्यकता थी और उसे अस्पृश्यों के अतिरिक्त और कोई नहीं मिला। ईस्ट इंडिया कंपनी ने आरंभ में अपनी सेना में अस्पृश्यों को रखा, यद्यपि अब अस्पृश्य लड़ाकू जातियों से बाहर कर दिए गए हैं। परंतु अंग्रेजों ने अस्पृश्यों की सेना की मदद से ही भारत को जीता था। ईस्ट इंडिया कंपनी की सेना में भारतीय सैनिकों तथा उनके बच्चों के लिए अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था थी। अस्पृश्यों को सेना में, जो शिक्षा मिली उससे उनको जो लाभ हुआ, वह अभूतपूर्व था। इससे उन्हे नई दिशा और नई दृष्टि मिली। उनमें चेतना जगी कि उनकी दुर्दशा उनके माथे की लकीर नही है। वह मक्कारों की करतूत है और वह एक कलंक का टीका है। इससे उन्हें बड़ी लज्जा का अनुभव हुआ। ऐसा अनुभव उन्हें पहले कभी नहीं हुआ था, इसीलिए उन्होंने इससे छुटकारा पाने का निश्चय किया। आरंभ में उन्होंने भी यही सोचा कि उनकी समस्या सामाजिक समस्या है और

उसे हल करने के लिए उन्होंने लड़ाई भी लड़ी। यह बिल्कुल स्वाभाविक था। क्योंकि उन्होंने देखा कि उन्हें नीव बनाए रखने के लिए जो बाहरी झंडे गाढ़े गए थे, उनमें अस्पृश्यों और हिंदुओं के बीच रोटी–बेटी के व्यवहार पर घोर प्रतिबंध था। उन्होंने स्वभावतः यह निष्कर्ष निकाला कि उस परंपरागत कलंक को मिटाने के लिए यह आवश्यक था कि समानता के आधार पर हिंदुओं से सामाजिक व्यवहार स्थापित किया जाए, जिसका अर्थ था अंतर्जातीय भोज तथा अंतर्जातीय विवाह के विरुद्ध बनाए गए नियमों को समाप्त करना। दूसरे शब्दों में जब उन्हें अपनी दासता की स्थिति का पूरा ज्ञान हुआ तो उस कलंक को धोने के लिए अस्पृश्यों की अपनी योजना का पहला कार्यक्रम यह था कि समस्त हिंदुओं में सामाजिक समानता लाने के लिए जातपांत को समाप्त करने पर बल दिया जाय।

इसमें अस्पृश्यों को हिंदुओं के एक वर्ग में अपना मित्र मिला। अस्पृश्यों की तरह अंग्रेजों के संपर्क में आने पर हिंदुओं ने भी यह अनुभव किया कि उनकी सामाजिक व्यवस्था बहुत दूषित है और वही अनगिनत सामाजिक बुराइयों की जननी है। इसीलिए उन्होंने भी सामाजिक सुधार के लिए आंदोलन किए। इसका आरंभ बंगाल में राजा राम मोहन राय से आरंभ हुआ और सारे देश में फैल गया और अंत में इंडियन सोशल रेफार्म कान्फ्रेंस का रूप ले लिया, जिसका मंत्र था राजनीतिक सुधार से पहले सामाजिक सुधार। अस्पृश्यों ने सोशल रेफार्म कान्फ्रेंस का अनुसरण किया और उसका समर्थन करने को उठ खड़े हुए। सभी को मालूम है कि सोशल रेफार्म कान्फ्रेंस का दम घोंट दिया गया। आज लोग इसे भूल गए हैं। इसे किसने समाप्त किया? क्या कांग्रेस ने? कांग्रेस का अपना नारा था "आद्योपांत राजनीति" और सोशल रेफार्म कान्फ्रेंस को इसका विरोधी समझा गया। कांग्रेस ने सोशल रेफार्म कान्फ्रेंस के उस मत को मान्यता नहीं दी जिसके अनुसार राजनीतिक सुधार के लिए सामाजिक सुधार आवश्यक और शीघ्रता से उठाया जाने वाला कदम था। कांग्रेस ने इसे अपना प्रतिद्वंद्वी माना। उसने यह मानने से इंकार किया कि कांग्रेस मंच और व्यक्तिगत रूप से कांग्रेसी नेताओं ने सोशल रेफार्म कान्फ्रेंस के माध्यम से अपनी मुक्ति की सभी आशाएं धूल–धूसरित होती हुई देखी, तब उन्होंने अपने आपको सुरक्षित करने के लिए राजनीतिक साधनों की तलाश करने पर जोर दिया। कांग्रेसियों का यह कहना कि सामाजिक समस्या कोई समस्या नहीं है, कोरा पाखंड है।

यह कहना गलत है कि अस्पृश्यों की समस्या केवल सामाजिक समस्या है। क्योंकि यह दहेज प्रथा, विधवा विवाह आदि जैसे उदाहरण, जिन्हें सामाजिक समस्याएं कहा जाता है, से नितांत भिन्न है। मूलतः यह बिल्कुल भिन्न समस्या है। यह समस्या दरअसल अल्पसंख्यकों को उन बहुसंख्यकों के चंगुल से निकालने से संबंधित है जो किसी षड्यंत्र के तहत उनको समानता और स्वतंत्रता का

अधिकार देने से मुकरते हैं। इस परिप्रेक्ष्य में अस्पृश्यों की समस्या मूलतः राजनीतिक समस्या है। अगर यह तर्क मान भी लिया जाए कि यह एक सामाजिक समस्या है तब भी यह समझना कठिन है कि अस्पृश्यों की सुरक्षा के लिए राजनीतिक संरक्षण और राजनीतिक मान्यता देने के कारण हिंदुओं के साथ सामाजिक एकीकरण करने में क्या दिक्कत पेश आ रही है? ऐसे तर्क देते समय अपने कांग्रेसी लोग कुतर्क करने लगते हैं। वे राजनीतिक एवं सामाजिक मामलों के अंतर्संबंधों से दो चार हुए नहीं प्रतीत होते। इसका स्पष्ट उदाहरण कांग्रेस द्वारा पृथक चुनाव का विरोध करने और संयुक्त निर्वाचन प्रणाली को प्राथमिकता देने में मिलता है। उनके तर्कों का ढंग विचारणीय है। संयुक्त निर्वाचन में हिंदू अस्पृश्य को वोट देंगे, अस्पृश्य हिंदू को। इससे सामाजिक एकता मजबूत होती है। पृथक निर्वाचन प्रणाली में हिंदू लोग हिंदू उम्मीदवार को तथा अस्पृश्य मतदाता अस्पृश्य उम्मीदवार को वोट देंगे, तो इससे सामाजिक एकता ढह जाएगी। यह ऐसा दृष्टिकोण नहीं है, जिसकी ओर अस्पृश्य लोग चुनाव के दृष्टिकोण देखते हैं। उनकी चिंता यह है कि दोनों प्रकार के चुनावों में कौन ऐसा है, जिसके द्वारा अस्पृश्य अपनी पसंद का प्रतिनिधि चुन सकते हैं। परंतु मैं कांग्रेस के तर्क की परीक्षा करना चाहूंगा। मैं अपने परीक्षण को लंबा खींचकर तर्क को उलझाना नहीं चाहता हूं। कांग्रेस का तर्क सही प्रतीत होता है, परंतु यह फालतू की बात है। ये चुनाव पांच साल में एक बार होते हैं। यह पूछना युक्तिसंगत है कि अस्पृश्यों और हिंदुओं में पांच साल में केवल एक दिन के संयुक्त मतदान से सामाजिक एकता कैसे लाई जा सकती है, जबकि ये अस्पृश्य उन हिंदुओं से अलग दयनीय जीवन व्यतीत करते हैं। इसी प्रकार यह भी पूछा जा सकता है कि पांच साल में केवल एक दिन पृथक निर्वाचन में वोट देकर कौन सा बड़ा बदलाव आ जाएगा। अथवा पांच साल में केवल एक दिन में अलग वोट देने से जो लोग दोनों वर्गों में एकता का कार्य कर रहे हैं, उन्हें क्या कठिनाई होगी? उस एकता को सुदृढ़ करने के लिए अस्पृश्यों के साथ पृथक निर्वाचन से रोटी–बेटी के व्यवहार पर क्यों आंच आती है? केवल घोर मूर्ख ही कहेगा कि आंच जाएगी। इसलिए यह कहना बचकानापन है कि अस्पृश्यों के पृथक अस्तित्व को राजनीतिक मान्यता देना और उनकी संवैधानिक संरक्षणों की मांग स्वीकार करना, उनमें अलगाव को गहरा कर देना है, यदि हिंदू उसे समाप्त करना चाहें तो भी नहीं कर सकेंगे।

IV

राजनीतिक अधिकारों के लिए अस्पृश्यों के दावों को लेकर कुछ और भी तर्क हैं जिनकी समीक्षा करना आवश्यक है। इन तर्कों में से एक केवल भारत में ही नहीं यूरोप में भी है परंतु यूरोप में संविधान रचना के समय उनका कोई नाम

नहीं लिया गया। भारत में ही उन्हें क्यों गिना जाता है। सिद्धांत साधारण हैं, परंतु इस बात पर इतना व्यापक विचार किया जाना चाहिए कि अस्पृश्यों का दावा भी उसी में समा जाए। मेरा विचार है कि वैसे इस बात में कोई दम नहीं है।

मैं अपनी टिप्पणी में कथन और तर्कों का अलग से जिक्र करूंगा। बात सटीक है। कहा जाता है कि हर समाज में समुदाय होते हैं, इस कथन को चुनौती नहीं दी जा सकती। इसलिए यूरोप और अमरीकी समाज में भी विभिन्न प्रकार के भिन्न–भिन्न समुदाय हैं। कुछ रिश्तेनातों, से बंधे हैं जिनमें रक्त और भाषा की समानता है। कुछ एक सामाजिक हैसियत और रुतबों पर आधारित हैं। कुछ धार्मिक संघ हैं, जिनकी कुछ आस्थाएं हैं। राजनीतिक दलों, औद्योगिक निगमों, अपराधी गिरोहों का तो कुछ कहना ही नहीं। उनमें कुछ ढीले–ढाले हैं और कुछ भाईचारे से बंधे हैं। परंतु जब यह कथन आगे बढ़ता है और कहा जाता है कि भारत की जातियां यूरोपीय और अमरीकी समुदायों से भिन्न नहीं हैं, तो यह बकवास है। देखने में यूरोप के ये वर्ग और समुदाय भारत की जाति प्रथा के समान लगते हैं। किंतु मौलिक रूप से दोनों में जमीन आसमान का फर्क है। पहचान का प्रमुख लक्षण बहिष्कार और छांट कर अलग कर देना है, जो जातिवादी भारत की जीवन शैली है। यह दैनिक क्रिया ही नहीं, बल्कि आस्था है, जो यूरोप और अमरीका में दुर्लभ है।

भारत की सामाजिक व्यवस्था पर विचार करने से ज्ञात होता है कि यहां की सामाजिक व्यवस्था यूरोप और अमरीका की व्यवस्था से बिल्कुल भिन्न है। यूरोप और अमरीका में संविधान का निर्माण करते समय सामाजिक व्यवस्था और उसकी परिस्थितियों को ध्यान में रखने की आवश्यकता नहीं पड़ी। परंतु भारत में संविधान का निर्माण करते समय जाति और अस्पृश्यता की समस्या की उपेक्षा नहीं की जा सकती। मुझे यह स्पष्ट करना है कि यूरोप में ऐसी आवश्यकता क्यों नहीं पड़ी? केवल भारत में ही क्यों जरूरी है? जो समाज समुदायों में बंटा रहता है, उसके लिए केवल यही खतरा है कि उसमें प्रत्येक समुदाय केवल अपनी उन्नति की फिक्र करता है और ग्रुप अपने हितों को देखता है। संवैधानिक सुरक्षा की तब आवश्यकता पड़ती है जब कोई वर्ग शरारतन दूसरे के विरुद्ध काम करता है। गैर–राजनीतिक हथकंड़ों के खिलाफ संवैधानिक संरक्षणों की आवश्यकता नहीं पड़ती। परंतु यदि हानि पहुंचाने वाले गैर–राजनीतिक साधन नहीं हैं, तब संवैधानिक संरक्षणों का अवश्य प्रावधान होना चाहिए।

यूरोप में भी अपने हितसाधन के लिए दूसरे को नीचा दिखाने की घटनाएं होती हैं। परंतु इसमें अंतर यह है कि वहां विभित्र समूहों में अलगाव का चलन नहीं है जिससे उनमें आपसी बातचीत की गुंजाइश होती है। परिणाम यह निकलता है कि वह समुदाय अपने हितों की रक्षा के लिए अपने प्रयत्न बढ़ा सकता है।

यूरोप के समुदायों में यह बीज तत्व भिन्न है, जो ऐसे समाज का स्वरूप है, जो लक्ष्यों में विचारशीलता, सहिष्णुता और एकता पर आधारित है। परंतु भारत में स्थिति बिल्कुल भिन्न है। यहां पर जातपांत ही विभेद और पृथकता की जननी है। इससे विभिन्न जातियों में परस्पर संवादहीनता है। विभिन्न जातियां या जाति समूह खुदगर्ज हैं और अन्य उनकी आंख की किरकिरी के समान हैं। वे सदा अपने को परम पवित्र मानती हैं। इसलिए सहभोज दुर्लभ है। उनमें भावात्मक या बौद्धिक प्रेरणा नहीं होती। सहयोग भी होता है, तो रूढ़िगत ही रहता है। उनकी प्रवृत्ति में कोई परिवर्तन नहीं आता। इसलिए आपाधापी के इस माहौल में निरुत्साहित जातियों की रक्षा के लिए संवैधानिक संरक्षण नितात आवश्यक है।

हमारे यहां जात पांत की अपनी अलग ही विशिष्ट प्रवृत्ति है। यही कारण है कि भारतीय संविधान में इस प्रकार की व्यवस्था की जाए कि इस प्रवृत्ति से निपटा जा सके। समुदाय तो प्रत्येक समाज में होते हैं, परंतु उनमें समानता चाहिए। अन्य स्थानों पर इन समुदायों के परस्पर संबंध वैसे नहीं हैं। किसी समाज में ऐसे समुदाय हो सकते हैं, जो सामाजिकता के प्रति उदासीन हों, परंतु उनमें कुछ समाज विरोधी भी हो सकते हैं। जहां वे सामाजिक उदासीनता रखते हैं, वहां संविधान बनाते समय उन पर ध्यान देने की आवश्यकता नहीं है। सामाजिकता हीन समुदाय से कोई भय नहीं होता। परंतु जहां एक दूसरे के प्रति सामाजिक विरोधी भावनाएं पनप गई हों, जो समरूपता की शत्रु हों वहां संविधान रचना के समय इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए और जो वर्ग समाज विरोधी तत्वों का शिकार हो उसे समुचित संरक्षण दिया जाना चाहिए। हिंदू समाज अस्पृश्यों के प्रति कितना समाज विरोधी है, इसके लिए कुछ उदाहरण पर्याप्त हैं। उदाहरण के लिए हिंदू अस्पृश्यों को कुएं से पानी नहीं भरने देते। हिंदू अस्पृश्यों को बस में सफर नहीं करने देतें। अपने साथ हिंदू अस्पृश्यों को रेलवे में एक डिब्बे में सफर नहीं करने देते। हिंदू अस्पृश्यों को स्कूलों में प्रवेश नहीं करने देते। हिंदू अस्पृश्यों को गहने जेवर नहीं पहनने देते। हिंदू अस्पृश्यों को अपने घरों की छतें खपरैल से नहीं बनाने देते। हिंदू अस्पृश्यों को जमीन के मालिक के रूप में देखना बरदाश्त नहीं करते। हिंदू अस्पृश्यों को जानवर नहीं पालने देते। हिंदू यह नहीं बरदाश्त करते कि अस्पृश्य उनके सामने चारपाई पर बैठा रहे। हिंदुओं में यह मुट्ठी भर लोगों का ही दर्प नहीं है, वरन् अस्पृश्यों के प्रति हिंदू जाति की समाज विरोधी भावनाओं के उद्गम हैं।[1]

मामले को आगे बढ़ाना अनावश्यक होगा। यही कहना काफी है कि हिंदुओं का शास्त्र गप्पों से भरा हुआ है। यदि इसका प्रयोग अस्पृश्यों के संवैधानिक

1. विस्तृत जानकारी के लिए मेरी पुस्तक देखें "व्हाट द हिंदूज हैव डन टू अस"।

संरक्षणों की मांग का विरोध करने का आधार बनाया जाता है, तो यह कुतर्कों का शर्मनाक नमूना है।

V

एक और तर्क पेश किया जाता है जिसका आधार यह है कि अस्पृश्यता तो कुछ दिनों की मेहमान है। यह शाश्वत सत्य है कि सभी वस्तुएं मिटने वाली हैं, इसलिए उनके प्रति संरक्षणों की जरूरत नहीं है। जीवन में कोई भी वस्तु स्थायी नहीं। इस बात पर विचार किया जाना चाहिए कि जब तक यह स्थिति नहीं आती, तब तक तो इंतजाम किया जाए। समाज–वृक्ष की डाल–डाल, पात–पात पर अस्पृश्यता विद्यमान है। हम सभी को आशा करनी चाहिए कि अस्पृश्यता से मुक्ति मिले, परंतु हमें उन लोगों के छलावे से सावधान रहना है, जो असाध्य आशावादी होने का दम भरते हैं। आशावादियों द्वारा मायूसों की हिम्मत बढ़ाना अच्छी बात है, पर सब्जबाग में कुछ सच्चाई तो हो।

यह तर्क कोई तर्क नहीं है। परंतु कुछ लोग इस ओर आकर्षित हो सकते हैं। इसलिए मैं उसकी पोल खोलना चाहता हूं कि ऐसा तर्क कितना थोथा है। जो लोग इस प्रकार के तर्क देते हैं वे अस्पृश्यता की छुईमुई और दूसरे उसकी मानसिक धारणा के सामाजिक पक्ष में विभेद करते नहीं प्रतीत होते। उपरोक्त दोनों प्रकार की अस्पृश्यता में काफी अंतर है। ऐसा हो सकता है कि अस्पृश्यता को लेकर छुई–मुई धारणा की नगरों में धीरे–धीरे मिट रही हो, यद्यपि इसमें संदेह है कि इतनी अधिक तेजी से अस्पृश्यता मिट रही है। परंतु मुझे विश्वास है कि अस्पृश्यता जैसी कि हिंदुओं की प्रवृत्ति है, अस्पृश्यों से भेदभाव करना – अस्पृश्यता नगरों अथवा गांवों में कल्पनातीत समय में नहीं मिट पाएगी। अस्पृश्यता ही केवल भेदभावमूलक प्रवृत्ति के तौर पर नहीं मिट पाएगी, वरन् अस्पृश्यता "मुझे मत छुओ" की धारणा निश्चित समय में उन गांवों में समाप्त नहीं होगी, जहां हिंदू बड़ी संख्या में रहते हैं और जो अस्पृश्यता को कायम रखने में विश्वास करते हैं। जिस मनुष्य के मस्तिष्क में दो हजार वर्षों से, जो भावना घर कर गई है, उसे विपरीत दिशा में नहीं मोड़ा जा सकता।

मुझे अच्छी तरह से पता है कि हिंदू धर्म में कुछ ऐसे दिग्गज हैं जिनका कहना है कि हिंदू धर्म बहुत ही लचीला है, यह प्रत्येक बाह्य तत्व के साथ तालमेल बिठा सकता है और उसे अपने में आत्मसात कर लेता है। मैं नहीं समझता कि धर्म की ऐसी क्षमता को कोई गुण मान कर उस पर गर्व करेगा। मैं ऐसी बचकाना बातों को महत्व नहीं देता कि कोई गोबर खाकर उसे पचा ले। परंतु वह अलग बात है। यह बिल्कुल सत्य है कि हिंदू धर्म अपने आप में कई बातें आत्मसात

कर सकता है। इसके आत्मसात करने का सबसे अच्छा उदाहरण है, साहित्यिक कृति "अल्लाहुपनिषद" जिसे अकबर के शासन–काल के ब्राह्मणों ने अकबर के दीन इलाही (दीनइलाही) को हवा देने के लिए तैयार किया था और उसे हिन्दू धर्म के सप्तम दर्शन की मान्यता दी थी। यह सत्य है कि हिंदू धर्म अपने में बहुत सी बातें आत्मसात कर सकता है। गोमांस भक्षण करने वालों (हिंदू धर्म) ने बौद्ध धर्म के अहिंसावादी सिद्धांत को अपने में आत्मसात कर लिया और पूर्ण शाकाहारी धर्म बन गया। यही हिन्दू धर्म आदिकाल में ब्राह्मण धर्म के नाम से जाना जाता था। परंतु हिंदू धर्म एक बात जो कभी नहीं कर सका वह यह है कि वह अस्पृश्यों को आत्मसात नहीं कर सका अथवा अस्पृश्यता की खाई को नहीं पाट सका। श्री गांधी से पहले बहुत से सुधारक हुए, जिन्होंने अस्पृश्यता को मिटाने के प्रयत्न किए। परंतु सभी सुधारक ढाक के तीन पात ही साबित हुए। मेरे विचार से उनकी असफलता का कारण बहुत मामूली था। हिंदुओं को अस्पृश्यों से कोई डरने की बात नहीं थी और अस्पृश्यता निवारण से उन हिंदुओं को कोई लाभ नहीं होने वाला था। हिंदुओं ने अल्लाहुपनिषद लिखा, क्योंकि अकबर द्वारा नए धर्म की स्थापना से अकबर की सहायता का लालच था। उन्हें सब कुछ मिल सकता था, "अल्लाहुपनिषद" के लेखक ने सम्राट को प्रसन्न कर धनराशि प्राप्त की और नए धर्म दीनेइलाही की स्थापना में सम्राट की सहायता की, जिससे पहले की अपेक्षा इस्लाम द्वारा हिंदुओं के उत्पीडन और दमन में कमी हुई। ये बातें अस्पृश्यों के लिए तो गूलर का फूल ही थीं कि हिंदू अस्पृश्यता अभिशाप को मिटा दें।

अस्पृश्यों को हिंदू समाज में मिलाने के विषय में हिंदुओं को न तो कोई डर था और न ही कोई लाभ होने वाला था। वास्तव में उन्हें तो अस्पृश्यता समाप्त करने पर काफी हानी उठानी पड़ती। अस्पृश्यता की व्यवस्था हिंदुओं के लिए सोने की चिड़िया के समान थी। हिंदुओं की 24 करोड़ आबादी में से 6 करोड़ अस्पृश्य उनके नौकर चाकर की तरह उनकी सेवा करें, जिससे हिंदू व्यर्थ का आडम्बर और दिखावे के रूप में शिष्टाचार करके अपने को गर्व के साथ मालिक की उस श्रेणी में ला सकें। ऐसा तब तक नहीं हो सकता था जब तक उनके अधीन कमजोर लोग न हों। चौबीस करोड़ हिंदुओं में 6 करोड़ अस्पृश्यों से बेगार कराई जाती है, क्योंकि उनको अपनी निर्धनता और बेबसी के कारण विवश होकर थोड़े से पारिश्रमिक पर बेगार करनी पड़ती है और कभी–कभी तो उन्हें कुछ नहीं मिलता। इन 24 करोड़ हिंदुओं में 6 करोड़ अस्पृश्य अधिकतर भंगियों और झाड़ू लगाने वालों के रूप में हिंदुओं के घरों की सफाई का काम करते हैं, क्योंकि हिंदू धर्मानुसार उस गंदे काम को नहीं कर सकते। यह कार्य केवल हिंदुओं के लिए गैर–हिंदुओं को करना होता है और वे गैर–हिंदू दूसरे नहीं, अस्पृश्य ही हो सकते हैं। 24 करोड़ हिंदुओं में 6 करोड़ अस्पृश्यों को नीच कामों तक ही सीमित रखा

जाता है और उच्च श्रेणी के कार्यों तक पहुंचने से उन्हें रोका जाता है, क्योंकि उच्च श्रेणी के कार्य हिंदुओं के लिए सुरक्षित हैं। 24 करोड़ की जनसंख्या में 6 करोड़ अस्पृश्यों को गंदे स्थानों में रहने के लिए विवश किया जाता है। मानवता के इस अवमूल्यन में अस्पृश्य पहले जलता है और हिंदू बाद में।

कुछ लोगों का विश्वास है कि अस्पृश्यता धार्मिक व्यवस्था है। यह सच है, परंतु केवल यह मान लेना कि यह केवल धार्मिक व्यवस्था है भूल होगी। अस्पृश्यता धार्मिक व्यवस्था से कही बढ़ कर है। अस्पृश्यता आर्थिक व्यवस्था भी है, जो गुलामी से बदतर है। गुलामी में किसी हद तक मालिक गुलाम के भरण–पोषण की तो जिम्मेदारी लेता है, उसे खाना–कपड़े देता है, रहने के लिए घर देता है और उसे अच्छी हालत में रखता है, जिससे गुलाम का बाजारू मूल्य कम हो अर्थात् गुलाम ऐसे मालिक की गुलामी करने के लिए आसानी से मिल सकें। परंतु अस्पृश्यता की व्यवस्था में हिंदू अस्पृश्यों के भरण–पोषण अर्थात् उनके खाने–कपड़े की जिम्मेदारी नहीं लेता। आर्थिक व्यवस्था ऐसी है कि जिससे अस्पृश्यों का बेरोक–टोक शोषण होता है। अस्पृश्यता अमिट आर्थिक शोषण का साधन भी है। यही कारण है कि इसकी भर्त्सना निष्पक्ष प्रशासकीय मशीनरी भी नहीं करती है, जो इस पर प्रतिबंध लगाए। क्योंकि ऐसी सार्वजनिक विचार की कोई संस्था नहीं जिससे अपील की जा सके, क्योंकि धारणाएं ऐसी हैं कि वहां पर भी उन हिंदुओं के विचारक शोषक वर्ग से संबंधित हैं, जिसके फलस्वरूप वे ऐसे शोषण के पक्षधर होते हैं। पुलिस अथवा न्यायपालिका का उन पर कोई प्रभाव नहीं, क्योंकि वे सभी हिंदुओं का ही खून होते हैं और शोषकों के पक्षपाती होते हैं।

ऐसा प्रतीत होता है कि वे लोग जो विश्वास करते हैं कि अस्पृश्यता मिटने ही वाली है, वे हिंदुओं को मिलने वाले आर्थिक लाभ पर ध्यान नहीं देते। अस्पृश्यता से छुटकारा पाने के लिए अस्पृश्य कुछ नहीं कर सकते। इसमें अस्पृश्यों का कोई दोष नहीं है। अस्पृश्यता हिंदुओं की मनोवृत्ति है। अस्पृश्यता निवारण के लिए हिंदुओं को अपने में परिवर्तन लाना होगा। क्या वे परिवर्तन लाएंगे?

क्या हिंदुओं का कोई ज़मीर है? क्या उनमें उचित–अनुचित के निर्धारण के लिए आवश्यक नीर–क्षीर विवेक है? क्या कभी हिंदुओं ने नैतिक बुराइयों के विरुद्ध क्रोध व्यक्त किया है? क्या हिंदू अस्पृश्यता को नैतिक दुराचार मान कर परिवर्तन लाने की धृष्टता करेगा? यदि यही मान लिया जाए कि हिंदू इतना जागरूक है कि वह सोच सके कि वह भगवान को क्या जवाब देगा, तो क्या वह अस्पृश्यता से होने वाले आर्थिक और सामाजिक लाभ को छोड़ने के लिए तैयार है? इतिहास ऐसे निष्कर्षों को न्यायोचित नहीं ठहरायेगा कि हिंदू समाज के पास विवेक है अथवा उसमें ऐसा नैतिक रोष है कि अस्पृश्यता जैसे दुराचार की जड़ खोदने के लिए

जेहाद का आह्वान करे। इतिहास साक्षी है कि जहां नैतिक शास्त्र और अर्थशास्त्र का टकराव होता है, वहां अर्थशास्त्र की विजय होती है। यह कभी नहीं देखा गया कि निजी स्वार्थ वाले लोगों ने अपना स्वार्थ स्वतः ही त्याग दिया हो। उन पर दबाव डालने वाली शक्ति पैदा करने की क्षमता अस्पृश्यों में नहीं है। वे गरीब हैं और असंगठित हैं। यदि वे अपना सर उठाते हैं, तो कुचल दिए जाते हैं।

ऐसी व्याख्या से स्पष्ट हो जाता है कि स्वराज्य से हिंदू अधिक दबंग बनेंगे और अस्पृश्य अधिक निस्सहाय और यह संभव है कि उनसे हिंदुओं को, जो आर्थिक लाभ मिलता है, स्वराज्य से अस्पृश्यता समाप्त होने के बजाए और बढ़ेगी। यह कहना कि अस्पृश्यता समाप्त हो रही है, प्रकट रूप में एक खुशफहमी है और इसके पीछे है सफेद झूठ। अगर यह आपराधिक नहीं भी हो तो घोर मूर्खता की बात अवश्य होगी यदि अस्पृश्यता की समस्या को अस्थाई समस्या कह कर अस्पृश्यों के संवैधानिक संरक्षणों की जड़ काट दी जाए और अनिश्चित काल के लिए इस प्रकार के वास्तविक तथ्यों की तरफ से आंख मूंद ली जाए।

अध्याय : 9

विदेशियों से आग्रह

निर्दयी को दास बनाने की स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए

I

दुनिया जानती है कि कुछ अपवादों को छोड़कर अधिकतर सभी विदेशी, जो भारत के राजनीतिक मामलों में रुचि लेते हैं, कांग्रेस के पक्षधर हैं। यह उलझन की बात है, जिससे देश की अन्य राजनीतिक पार्टियों के लिए – जैसे मुस्लिम लीग, जो मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है, जस्टिस पार्टी, जिसमें अब कोई जान नहीं है, जिसे गैर–ब्राह्मण दल के नाम से भी जाना जाता है और भारतीय परिगणित जाति संघ, जो अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने का दावा करती है – स्वभावतः पहले से ही परेशानी पैदा हो गई है और ये सभी पार्टियां विदेशियों से समर्थन की अपील करती हैं, परंतु विदेशी उनकी अपील सहानुभूति के तौर पर भी सुनने को तैयार नहीं हैं। विदेशी लोग कांग्रेस का समर्थन क्यों करते हैं और अन्य पार्टियों का क्यों नहीं? विदेशियों ने अपने इस व्यवहार के दो कारण गिनाए हैं। कांग्रेस को समर्थन देने का एक कारण वे यह बताते हैं कि उनके विचार में भारतीय नागरिकों का प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था केवल कांग्रेस है और वही संस्था भारत के नाम पर बोल रही है यहां तक कि अस्पृश्यों के संदर्भ में भी। क्या उनकी सोच सही है?

पहला कारण है भारतीय प्रेस द्वारा इस विचार का प्रचार किया जाता है। भारत में प्रेस कांग्रेस को वही सहयोग देती है जैसे किसी अपराधी को कोई सहयोग दे। प्रेस इस सिद्धांत में विश्वास रखती है कि कांग्रेस कभी गलती नहीं कर सकती। प्रेस किसी ऐसी सूचना को छापना गंवारा नहीं करती, जो कांग्रेस की प्रतिष्ठा तथा उसकी विचारधारा के विरूद्ध हो। केवल प्रेस के ही कारण कांग्रेस यह शोर मचाती रहती है कि कांग्रेस ही सबका प्रतिनिधित्व करती है। इसे अबाध रूप से विज्ञापित किया गया है कि इसी के फलस्वरूप इंगलैंड और अमरीका

के लोग केवल कांग्रेस को ही सबका प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था के रूप में जानते हैं।

दूसरी परिस्थिति यह है कि भारत के बाहर के लोग विश्वास करते हैं कि कांग्रेस ही एकमात्र संस्था है, जो भारत का प्रतिनिधित्व करती है, यहां तक कि अस्पृश्यों का भी। इसका कारण यह कि अस्पृश्यों के पास अपना कोई साधन नहीं है, जिससे वे कांग्रेस के मुकाबले में अपना दावा जता सकें। अस्पृश्यों की इस कमजोरी के और भी कई कारण हैं। उनके पास प्रेस नहीं है और कांग्रेस का प्रेस उनके लिए बंद है। उसने अस्पृश्यों का रत्ती भर भी प्रचार न करने की कसम खा रखी है। अस्पृश्य अपना प्रेस स्थापित नहीं कर सकते। यह स्पष्ट है कि कोई भी समाचारपत्र बिना विज्ञापन राशि के नहीं चल सकता। विज्ञापन राशि केवल व्यावसायिक विज्ञापनों से आती है। चाहे छोटे व्यवसाय हों या बड़े वे सभी कांग्रेस से जुड़े हैं और गैर–कांग्रेसी संस्था का पक्ष नहीं ले सकते। भारत के एसोसिएटेड प्रेस का स्टाफ, जो भारत की समाचार एजेंसी है, पूर्णतया मद्रासी ब्राह्मणों से भरा पड़ा है। वास्तव में भारत का संपूर्ण प्रेस उन्हीं की मुट्ठी में है और वह पूर्णतया कांग्रेस की पिट्ठू है, जो कांग्रेस के विरूद्ध किसी समाचार को नहीं छाप सकती। यही कारण है जो अस्पृश्यों की पहुंच के बाहर है। परंतु किसी हद तक स्वयं अस्पृश्यों में प्रचार करने की प्रवृत्ति का न होना भी एक कारण है। प्रचार करने की प्रवृत्ति का न होना, उनकी देशभक्ति के कारण भी है कि कहीं ऐसा न हो कि कोई बात ऐसी हो जाए, जिससे देश की प्रतिष्ठा पर बाहर आंच आए। भारत की राजनीति के दो भिन्न–भिन्न पहलू हैं जिनका विदेशी राजनीति और संवैधानिक राजनीति के रूप में भेद किया जा सकता है। भारत की विदेशी राजनीति ब्रिटिश साम्राज्य से भारत को आजादी प्राप्त करने के संबंध में है, जबकि संवैधानिक राजनीति आजाद भारत के लिए भावी संविधान से संबंधित है। दोनों वास्तव में एक दूसरे से भिन्न हैं। परंतु अस्पृश्यों को डर है कि भारतीय राजनीति के दो पहलू हैं, जो अलग–अलग किए जा सकते हैं। कांग्रेसी लोग अस्पृश्यों के देश प्रेम के सिद्धांत को नहीं मानेंगे और वे कांग्रेसी प्रचार पर चुप्पी साधे हुए हैं। वास्तविक बात यह है कि अपने मामले में मुखर न होने और कांग्रेस की खुली चुनौती की उपेक्षा करने के कारण ही लोगों को भ्रम होने लगा कि कांग्रेस ही सबका प्रतिनिधित्व करती है, यहां तक कि अस्पृश्यों का भी।

यद्यपि यह स्थिति खेदपूर्ण है तथापि यदि विदेशी प्रचार से प्रभावित हो जाते हैं तो उन्हें दोष नहीं दिया जा सकता, क्योंकि चुनाव में कांग्रेस के प्रतिनिधित्व के दावे की परीक्षा नहीं हुई थी। परंतु 1937 के चुनावों में कांग्रेस की परीक्षा हुई। उससे चुनाव के जो परिणाम सामने आए, कांग्रेस को जो भी विजय मिली वह प्रचार के बल पर मिली और उसका सबका प्रतिनिधित्व करने का दावा झूठा

साबित हुआ। उस चुनाव से क्या परिणाम सामने आए वह इस पुस्तक के छठे अध्याय में दर्शाया जा चुका है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि विदेशियों के समक्ष जब तथ्य पेश होते है, तो कांग्रेस द्वारा सबका प्रतिनिधित्व करने का प्रचार यहां तक कि अस्पृश्यों का प्रतिनिधित्व करने का प्रचार झूठा साबित होता है और स्पष्ट हो जाता है कि कांग्रेस के अतिरिक्त दूसरी पार्टियां मुख्यतया अस्पृश्य भारत की राजनीतिक समस्या पर कुछ भिन्न मत रखती हैं।

दूसरा कारण विदेशियों का कांग्रेस को समर्थन देने का यह है कि उनका विश्वास है कि कांग्रेस देश की आजादी की लड़ाई लड़ रही है। वे देखते हैं कि कांग्रेस सविनय अवज्ञा आंदोलन करके, विदेशी सरकार द्वारा बनाए कानून का उल्लंघन करके, करों का भुगतान रूकवा कर, अदालतों में गिरफ्तारी देकर, सरकार से असहयोग करने का प्रचार करके, कार्यालयों का बहिष्कार करके तथा देश की आजादी के लिए आत्म–बलिदान एवं त्याग का प्रचार करके ब्रिटिश सरकार से लड़ने में जुटी है। विदेशियों की निगाह में कांग्रेस के अतिरिक्त अन्य पार्टियां नगण्य हैं। इन सबसे विदेशी यह नतीजा निकालते हैं कि जब कांग्रेस स्वतंत्रता प्रेमी के रूप में देश की आजादी के लिए लड़ाई लड़ रही है तो फिर स्वतंत्रता संग्राम में दूसरी पार्टियों ने कांग्रेस का साथ क्यों नहीं दिया? यहां मैं इस प्रश्न के दूसरे पहलू पर स्थिति स्पष्ट करना चाहूंगा कि कांग्रेस किस आजादी के लिए लड़ रही है। मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि आजादी की लड़ाई में दूसरी पर्टियों ने कांग्रेस का साथ क्यों नहीं दिया? यहां मैं इस प्रश्न के दूसरे पहलू पर स्थिति स्पष्ट करना चाहूंगा कि कांग्रेस किसकी आजादी के लिए लड़ाई लड़ रही है?

II

कांग्रेस के स्वाधीनता संग्राम का पक्ष लेते हुए विदेशी इस बात में भेद नहीं करते कि देश की आजादी की लडाई किसके लिए लड़ी जा रही है – देश की आजादी के लिए या देश के सभी निवासियों की आजादी के लिए। यह भेद न समझने के कारण विदेशी गुमराह हो गए हैं। क्योंकि समाज, राष्ट्र और देश अमूर्त हैं। यह बताने की आवश्यकता नहीं कि राष्ट्र यद्यपि एक शब्द है परन्तु वह कई वर्गों को समेटता है। दर्शन शास्त्र के अनुसार "राष्ट्र" यद्यपि एक शब्द है, पर अर्थ बहुवर्गीय है। दर्शन शास्त्र के अनुसार "राष्ट्र" को एक इकाई कहा जा सकता है, परंतु समाज शास्त्र के अनुसार यह कई वर्गों वाला समूह होता है और आजादी यदि वास्तविक रूप मे आती है तो वह राष्ट्र मे समाहित सभी वर्गों के लिए होनी चाहिए मुख्यतया उन लोगों के लिए जो दासता का जीवन बिता रहे हैं। इसके फलस्वरूप केवल इस तथ्य से संतुष्ट हो जाना मूर्खता होगी कि कांग्रेस भारत

की आजादी की लड़ाई लड़ रही है और निम्न स्तर के लोगों की आजादी के लिए भी लड़ रही है।

यह प्रश्न कि आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही है, कोई महत्व नहीं रखता। महत्व इस प्रश्न का है कि कांग्रेस किसके लिए आजादी की लड़ाई लड़ रही है। यह युक्तिसंगत और आवश्यक परीक्षा है और बिना तथ्य का पता लगाए किसी स्वतंत्रता प्रेमी के लिए आंख मूंद कर कांग्रेस का समर्थन देना बड़ी भूल होगी। परंतु वे विदेशी, जो कांग्रेस का ही पक्ष लेते हैं, ऐसे प्रश्न उठाने की चिंता नहीं करते.। ऐसे महत्वपूर्ण प्रश्न पर विदेशी उदासीन क्यों हो जाते हैं? जहां तक मैं इसे समझ सकता हूं, इस उदासीनता का कारण पश्चिम में प्रचलित स्वायत्त शासन और प्रजातंत्र के बारे में विद्यमान गलत धारणाओं में पाया जाता है और उसी से भारत की राजनीति में रुचि रखने वाले विदेशी प्रभावित हैं।

राजनीतिक क्षेत्र में पश्चिमी विचारकों द्वारा सिद्धांत प्रतिपादित किए गए हैं कि स्वायत्शासी सरकार के लिए संवैधानिक नैतिकता का होना आवश्यक है जिसे ग्रोट[1] के अनुसार : "किसी संवैधानिक स्वरूप का सर्वोच्च सम्मान इसी बात में है कि उसके अधीन कार्यरत कार्यपालकों से आज्ञापालन कराया जाए, यद्यपि उनको एक निश्चित वैधानिक संयम के अंतर्गत स्पष्ट बोलने की छूट दी जा सकती है तथापि उनके सार्वजनिक कृत्यों के लिए जन-भावनाओं पर संपूर्ण विश्वास के साथ उन्हें जम कर फटकार भी लगाई जाए तथा पार्टी कार्यों में कड़वाहट को स्वीकार किया जाए, तभी संवैधानिक स्वरूप निर्दोष कहा जा सकता है। वह विरोधियों की दृष्टि में और भी अधिक पवित्र होगा।" यदि जनसाधारण में ऐसी आदतें विद्यमान हैं, तब पाश्चात्य राजनीतिक विचारकों के अनुसार स्वायत्त-शासन एक वास्तविकता हो सकता है और उसके आगे और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। इसी प्रकार पश्चिमी विचारक प्रजातंत्र के विषय में विश्वास करते हैं कि आदर्श प्रजातंत्र के लिए क्या आवश्यक है। जैसा कि जनता का शासन एक वास्तविकता हो सकता है और उसके आगे और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं, उसी प्रकार पश्चिमी विचारकों को प्रजातंत्र के विषय में विश्वास है कि आदर्श प्रजातंत्र में वयस्क मताधिकार की व्यवस्था हो और दूसरे उपाय भी सुझाए गए हैं, जैसे कि प्रतिनिधियों को वापस बुला लेने का अधिकार, जनमतसंग्रह और अल्पकालिक संसद। कुछ देशों में वयस्क मताधिकार से अधिक कुछ करना आवश्यक नहीं समझा गया।

मुझे यह कहने में कोई हिचक नहीं कि ये दोनों धारणाएं मिथ्या और भ्रामक हैं। यदि प्रजातंत्र और स्वराज्य सभी देशों में असफल रहे हैं, तो इसका सबसे

1. ग्रोट हिस्ट्री आफ ग्रीस, खंड 3, पेज संख्या 347

बड़ा कारण इन गलत धारणाओं का होना है। संवैधानिक नैतिकता के संस्कार संवैधानिक ढंग की सरकार को कायम रखने के लिए आवश्यक हो सकते हैं, परंतु संवैधानिक ढंग की सरकार कायम रखना वैसा ही नहीं है, जैसा कि जनता की स्वराज्य सरकार। इसी प्रकार यह भी स्वीकार किया जा सकता है कि वयस्क मताधिकार के आधार पर तार्किक विचार से एक सम्राट की सरकार के मुकाबले में भेद रखते हुए जनता की सरकार बन सकती है। परंतु उसे जनता द्वारा सरकार और जनता के लिए सरकार के विचार से प्रजातांत्रिक सरकार लाने वाली पद्धति नहीं कहा जा सकता।

प्रजातंत्र और स्वराज्य की राजनीति के संबंध में पश्चिमी विचारकों के ये विचार बहुत से कारणों से त्रुटिपूर्ण हैं। पहली बात तो यह है कि वे निर्विवाद तथ्यों पर नहीं विचार करते कि प्रत्येक देश में ऐतिहासिक परिस्थितियों के बल पर एक शासक वर्ग उत्पन्न होता और बढ़ता है, जिसे शासन करने के लिए नियुक्त किया जाता है, जो शासन करता है, और जिसके लिए वयस्क मताधिकार और संवैधानिक नैतिकता की सीमाएं नहीं होती। वे उसे अपार शक्ति और अधिकार प्राप्त करने से नहीं रोक सकती, क्योंकि इस वास्तविक कारण से शासित वर्ग अपना स्वाभाविक नेता मान कर उन्हें इच्छा से चुन लेते हैं। दूसरी बात यह है कि वे इतना नहीं समझ पाते कि शासक वर्ग प्रजातंत्र और स्वराज्य विरोधी होता है और जहां शासक वर्ग शासन पर कब्जा जमाए रखता है, यह कहना गलत नहीं होगा कि वहां प्रजातंत्र और स्वराज्य विद्यमान है जब तक कि प्रजातंत्र वास्तविक न हो। तीसरी बात यह है कि वे यह नहीं जानते कि केवल वयस्क मताधिकार पर आधारित संविधान के होने से ही वास्तव में स्वराज्य और प्रजातंत्र नहीं होता बल्कि उसमें वास्तविकता तब आती है जब शासक वर्ग से शासन करने की शक्ति भी छीन ली जाये। चौथे, वे उस तथ्य की उपेक्षा करते हुए प्रतीत होते है कि कुछ देशों में शासित वर्ग शासकों को मताधिकार के बल पर सत्ताच्युत करने में सफल हो सकता है, परंतु कुछ अन्य देशों में हुए मताधिकार द्वारा अपने लक्ष्य की प्राप्ति के अतिरिक्त अन्य संरक्षणों की भी आवश्यकता है। अंतिम बात यह है कि वे उस तथ्य की ओर नहीं ध्यान देते कि यदि शासक वर्ग अस्तित्व में है तो प्रजातंत्र और स्वराज्य की किसी योजना पर विचार करते हुए महत्वपूर्ण बात शासक वर्ग के सामाजिक दृष्टिकोण और उसकी सामाजिक विचारधारा है क्योंकि जब तक शासक वर्ग के पास शासन करने की शक्ति अपने पास रखने की क्षमता है तब तक शासक वर्ग की सामाजिक विचारधारा और उसके जीवन–दर्शन पर ही दास वर्ग की स्वतंत्रता और कल्याण निर्भर करता है।

जब शासक वर्ग मौलिक तथा निर्णायक स्थिति में होता है, तो उसका प्रजातंत्र से टकराव होता है। तब स्वराज्य और लोकतंत्र के हामियों को उसकी रक्षा हेतु

स्वंय आगे आना होता है। इस निष्कर्ष पर पहुंचने से पूर्व इस बात की उपेक्षा घातक होगी कि एक स्वतंत्र देश में क्या स्वतंत्रता केवल शासक वर्ग के लिए ही है अथवा सबके लिए। इसलिए मेरे विचार से कांग्रेस का पक्ष लेने वाले विदेशियों से पूछा जा सकता है कि क्या कांग्रेस आजादी के लिए लड़ाई लड़ नहीं रही है? यह प्रश्न पूछने के बजाए उन्हें पूछना चाहिए कि "कांग्रेस किसके लिए आजादी की लड़ाई लड़ रही है? क्या वह शासक वर्ग की लड़ाई लड़ रही है अथवा भारत के लोगों की आज़ादी की लड़ाई लड़ रही है।" यदि इसके देशों को यह ज्ञात हो कि कांग्रेस शासक वर्ग की आजादी के लिए लड़ रही है तो उसे कांग्रेसियों से पूछना चाहिए कि क्या भारत में शासक वर्ग शासन करने योग्य है। यह कम से कम ऐसी बात है जिस पर विचार करने के बाद ही कांग्रेस का पक्ष लेना चाहिए।

क्या इस प्रश्नों का उत्तर कांग्रेस के पास है? मैं नहीं जानता। लेकिन मेरे विचार से मैं उन प्रश्नों का जो उत्तर दे सकता हूं वही सही उत्तर है।

III

आरंभ में, हमें यह जान लेना चाहिए कि भारत में शासक वर्ग कौन है? भारत में शासक वर्ग मुख्यतया ब्राह्मण हैं। यह आश्चर्य की बात है कि आज के ब्राह्मण इस कथन का खंडन करते हैं कि वे शासक वर्ग से संबंधित हैं, यद्यपि वे किसी समय अपने को भूदेव कहते थे। क्या इसका कारण यह है कि वे अब यह महसूस करने लगे हैं कि उन्होंने मानवता के इस पावन नियम द्वारा कि अपने वर्ग के ही नहीं वरन सभी वर्गों के हितों की रक्षा करनी चाहिए प्रत्येक समुदाय के प्रबुद्ध वर्गों में किये गये विश्वास को तोड़ने का अपराध किया हैं और इसलिए वे दुनियां को मुंह दिखाने लायक नहीं हैं अथवा क्या यह उनका विनम्र भाव है? अब यह देखा जाए कि इसमें से सच क्या है?

ब्राह्मण ही शासक वर्ग है, इस पर प्रश्नवाचक चिन्ह नहीं लगाया जा सकता। दो प्रकार से इसकी परीक्षा की जा सकती है। प्रथम परीक्षा लोगों की भावना की और दूसरी प्रशासन पर नियंत्रण रखने की। मुझे विश्वास है इन दो से अच्छा और कोई परीक्षण नहीं हो सकता। जहां तक पहले परीक्षण की बात है, उसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता। जनसाधारण की भावना के अनुसार ब्राह्मण पवित्र हैं। प्राचीन काल में ब्राह्मण चाहे कितना जघन्य अपराध कर दे, उसे मृत्यु दंड नहीं दिया जा सकता था। उसे पवित्र मनुष्य मान कर ही सभी प्रकार की सुविधाएं प्राप्त थीं। दास वर्ग ही सुविधाओं से वंचित रखा गया था। प्रथम फल प्राप्त करने का वही अधिकारी था। मालाबार में जहां पर सम्बंधम विवाह प्रथा प्रचलित थी, वहां शासित वर्ग, जैसे नायर अपनी औरतों को ब्राह्मणों द्वारा रखैल

बनाए जाने में अपनी इज्जत समझते थे।[1] यहां तक कि राजा भी अपनी रानियों का सुहाग रात को कौमार्य भंग कराने के लिए ब्राह्मण को निमंत्रण देते थे। एक समय ऐसा था जब शासित वर्ग का कोई मनुष्य उस पानी को पिए बिना भोजन नहीं कर सकता था, जिस पानी से ब्राह्मण के पैर का अंगूठा धोया गया हो। सर पी.सी. रे ने अपने बचपन की बात लिखी है कि कलकत्ता की सड़कों पर प्रातः काल शासित वर्ग के बच्चे पात्रों में पानी लिए ब्राह्मण के पैर धोने के लिए घंटों प्रतीक्षा किया करते थे। वे पैर धोकर यह पानी अपने माता पिता को

---

1. यात्री श्री लुडोविको डि वरथेमा, जो 16वीं शताब्दी के मध्य में भारत आया था, मालाबार के विषय में लिखता है "यह जान कर अच्छा लगा कि ये ब्राह्मण कैसे हैं। यह आपको ज्ञात होना चाहिए कि हमारे पुजारियों की तरह ब्राह्मण भी धर्म के मुखिया हैं और जब कोई राजा अपनी पत्नी ब्याह कर लाता है, तो वह पहले ब्राह्मणों में से एक सुयोग्य और प्रतिष्ठित ब्राह्मण को अपनी नव–विवाहिता पत्नी के साथ पहली रात में सोने के लिए चुनता है, इसलिए कि ब्राह्मण उस विवाहिता रानी का कौमार्य हरण करे। यह न समझें कि ब्राह्मण ऐसा करने के लिए इच्छापूर्वक जाते है। इसके लिए राजा उस ब्राह्मण को 400–500 स्वर्ण मुद्राएं देता है। कालीकट में राजाओं के अतिरिक्त और किसी में भी ऐसी प्रथा नहीं है। (वोयेजिस ऑ वरेथेमा हक्युयात सोसायटी खंड 1 पृष्ठ 141.)

   दूसरे यात्री हमें बताते हैं कि यह प्रथा काफी व्यापक थी। "हैमिलटन अपनी 'अकान्ट आफ दी ईस्ट इंडीस" में कहते हैं : "जब राजा नवविवाहिता पत्नी लाता है, तो वह अपनी पत्नी के साथ तब तक सहवास नहीं कर सकता, जब तक कि नम्बूदरी अथवा धर्म–प्रमुख ब्राह्मण उसके साथ सहवास न कर ले और यदि वह ब्राह्मण चाहे तो उसके साथ तीन रातों तक सहवास कर सकता है, क्योंकि उस विवाहिता पत्नी के वैवाहिक संस्कार का पहला प्रसाद इस पवित्र देवता (ब्राह्मण) को भेंट किया जाना चाहिए, जिसकी वह पूजा करती है और कुछ सामंत भी ऐसे होते हैं जो पादरी को यह प्रसाद चखाते हैं, परंतु जनसाधारण को यह विशेष अधिकार प्राप्त नहीं है, बल्कि पुरोहित के बजाए स्वयं यह प्रसाद चखते हैं।

   (खंड 1, पृ. 308)

   बुचानन ने अपने यात्रा वृत्त में लिखा है कि तामरी परिवार की पत्नियों को सामान्यतया नम्बूदरी ब्राह्मणों द्वारा गर्भ धारण कराया जाता था। यदि वे चाहें, तो नायर लोगों से भी करा सकती हैं, परंतु नम्बूदरी ब्राह्मण से गर्भित होना पवित्र कार्य समझती हैं।

   (पिपकरटने वायज खंड VIII पृ. 734)

   मि. सी.ए. इन्नेस आई.सी.एस. जो मालाबार और अंजेंगो के गजेटियर के संपादक थे, जो मद्रास सरकार के प्राधिकार के अन्तर्गत निकलता है ने लिखा है –

   मरुक्काटायम प्रथा को पालन करने की प्रथा अधिकारी वर्गों में प्रचलित है, जो मलयाली विवाह पद्धति में प्रचलित अजीगोगरीब प्रथा है। उस प्रथा का सार यह है कि लड़की को उसके गले में रजस्वला होने की आयु से पहले सोने अथवा अन्य धातु की बनी हुई ताली (लाकेट) बाध दी जाती थी। ताली उसकी अथवा उससे ऊची जाति का व्यक्ति बांधता था। वह उससे सम्बन्धम स्थापित कर सकती थी। सामान्यतया यही होता था कि ताली बांधने वाला उसका दूल्हा बनता था और वही उससे सहवास करने का अधिकारी था और यह कृत्य भूदेव करते थे। इससे निचले स्तर के लोगों का ऐसा विवाह सम्पादन क्षत्रिय अथवा शासक वर्ग के लोग करते थे तथा अपने से निम्न जाति की स्त्री का प्रथम फल प्राप्त करते थे।

   (खंड 1, पृ. 101)

दे देते थे, जो भोजन के लिए उसकी प्रतीक्षा करते थे। ब्रिटिश शासन के कारण और कानून के समक्ष समानता के कारण ब्राह्मणों के विशेषाधिकार और दंडित न किए जा सकने की सुविधाएं छिन गई। फिर भी निम्न वर्ग उसे पवित्र मानते हैं। आज भी वे उसे "स्वामी" कह कर पुकारते हैं, जिसका अर्थ है भगवान।

दूसरे परीक्षण से भी ऐसा ही निष्कर्ष निकलता है, उदाहरण के लिए मद्रास प्रेसीडेंसी को लीजिए। अगले पृष्ठ पर तालिका संख्या 17 का अवलोकन कर विचार करें। इससे स्पष्ट है कि वर्ष 1943 में राजपत्रित पद ब्राह्मणों तथा अन्य समुदायों में किस प्रकार बांटे गए थे।

इसी प्रकार के आंकड़े इस कथन की पुष्टि में अन्य प्रांतों से भी प्रमाण के तौर पर दिए जा सकते हैं। परंतु उसके लिए परिश्रम करने की कोई आवश्यकता नहीं। ब्राह्मण अपने आपको शासक वर्ग का सदस्य होने का दावा करता है या नहीं, वास्तविकता यह है कि प्रशासन पर उन्हीं का नियंत्रण है और शासित वर्ग उनके ब्राह्मणपन को स्वीकारता है। यह प्रमाण काफी है।

इतिहास साक्षी है कि ब्राह्मण सदैव उन्हीं अन्य वर्गों को अपने से सम्बद्ध करते थे, जिन्हें वे शासक वर्ग के समान स्तर देने को तैयार होते थे। वह इस शर्त पर कि वे शासक वर्ग में उनके अधीन रहकर उन्हें सहयोग देंगे। प्राचीनकाल तथा मध्यकाल में ब्राह्मणों ने क्षत्रियों अथवा सैनिक वर्ग से ऐसा संबंध जोड़ा था और दोनों ने जनता पर शासन किया। वास्तव में उन्होंने जनता को कुचल डाला था। ब्राह्मणों ने अपनी कलम से और क्षत्रिय ने तलवार से अत्याचार और शोषण किया। इस समय ब्राह्मण ने वणिक वर्ग को भी, जिसे बनिया कहते हैं अपने साथ जोड़ लिया। क्षत्रियों से नाता तोड़कर बनियों से संबंध जोड़ना उनके लिए स्वाभाविक है। आज के व्यापारिक युग में धन महत्वपूर्ण शस्त्र है। इस प्रकार नाता जोड़ने के परिवर्तन का यही मुख्य कारण है। दूसरा कारण यह है कि राजनीतिक मशीनरी को गतिमान रखने के लिए धन की आवश्यकता है। धन केवल बनियों से मिल सकता है। यह केवल बनिया वर्ग ही है, जो श्री गांधी के बनिया होने के कारण, कांग्रेस को धन देता है। उस बनिया वर्ग को यह भी मालूम है कि राजनीतिक क्षेत्र में पैसा लगाने से उन्हें काफी लाभ मिलेगा।

जिन लोगों को इसमें कोई संदेह हो, वे उसे पढ़े, जो 6 जून, 1942 को श्री लुई फिशर से श्री गांधी की वार्ता हुई थी।[1] फिशर ने लिखा :

"मैंने कांग्रेस पार्टी के विषय में श्री गांधी से कई प्रश्न किए। मैंने श्री

1. ए वीक विद गांधी (1943) पृ. 41।

तालिका 17

जातियां	अनुमानित जनसंख्या लाखों में	जनसंख्या का प्रतिशत	सम्पूर्ण राजपत्रित पदों (2200) में प्राप्त पद संख्या	की गई नियुक्तियों का प्रतिशत	अराजपत्रित पद: सौ रुपये से अधिक वाले कुल पद–7500		अराजपत्रित पद: 35 रुपये से अधिक वाले पद 20782	
					नियुक्त पदों की संख्या	नियुक्ति किए गए पदों का%	नियुक्त पदों की संख्या	नियुक्ति किए गए पदों का%
1	2	3	4	5	6	7	8	9
ब्राह्मण	15	3	820	37	3280	43.73	8812	42.4
ईसाई	20	4	190	9	750	10	1655	8.0
मुसलमान	37	7	150	7	497	6.63	1624	7.8
दलित वर्ग गैर ब्राह्मण	70	14	25	1.5	39	0.52	144	0.69
आगे बढ़े गैर ब्राह्मण	113	22	620	27	2543	33.9	8440	40.6
पिछड़ा वर्ग	245	50	50	2				
गैर एशियाई और एग्लोइंडियन	–	–	–	–	372	5.0	83	0.4
अन्य जातियां	–	–	–	–	19	0.5	24	0.11

गांधी से पूछा "उच्च पदाधिकारी अंग्रेजों ने मुझे बतलाया था कि कांग्रेस धनी वर्ग, वैश्यों के हाथ में खेल रही है, और बम्बई के उन करोड़पतियों का समर्थन श्री गांधी को प्राप्त है, जो मनचाहा धन उन्हें देते हैं। मैंने उनसे पूछा : 'यह कहां तक सत्य है?'

"उन्होंने साधारण ढंग से कहा : 'दुर्भाग्यवश वे सही कहते हैं।' कांग्रेस के पास अपना कार्य सुचारु रूप से चलाने के लिए पर्याप्त धन नहीं है। हमने आरंभ में सोचा था और उसे चालू भी किया कि प्रत्येक कांग्रेस सदस्य से चार आना वार्षिक चंदा एकत्रित किया जाये। परंतु उससे काम नहीं चला।"

"मैंने उनसे पूछा : 'कांग्रेस बजट' के धन का कितना अनुपात अमीर भारतीयों द्वारा पूरा किया जाता है?"

"उन्होंने उत्तर दिया – 'संपूर्ण बजट' इस आश्रम में उदाहरणार्थ जितना हम खर्च करते हैं, उससे कम धनराशि में हम गरीबी के साथ गुजर कर सकते थे। परंतु हम ऐसा नहीं करते और खर्च के लिए सारा धन हमारे धनवान मित्रों से मिलता है।"

यही कारण है कि शासक वर्ग की स्थिति से बनिया वर्ग को निकालना ब्राह्मण के लिए असंभव बात है। वास्तव में ब्राह्मणों ने वैश्य वर्ग से केवल कामचलाऊ नहीं, बल्कि हार्दिक संबंध जोड़ रखा है। परिणाम यह है कि आजकल भारत में शासक वर्ग ब्राह्मण–क्षत्रिय गठबंधन के बजाय ब्राह्मण–वैश्य गठबंधन है।

शासक वर्ग का अस्तित्व होना ही सारी कहानी नहीं है। भारत में शासक वर्ग का सदस्य होना ही महत्वपूर्ण बात नहीं है। शासक वर्ग के ये सदस्य इस तथ्य से पूर्णतया अवगत और सचेत हैं कि वे शासक वर्ग से संबंधित हैं, केवल वही शासन के अधिकारी हैं। स्वर्गीय श्री तिलक यह कभी नहीं भूल सके कि वह ब्राह्मण हैं और शासक वर्ग के हैं। ठीक यही बात पंडित जवाहरलाल नेहरू[1]

1. श्री पट्टभिसीतारमैया ने श्री वाई.जी. कृष्णमूर्ति द्वारा लिखित जवाहरलाल नेहरू के जीवन चरित्र की भूमिका में लिखा है कि पंडित नेहरू को इस बात पर गर्व है कि वह ब्राह्मण हैं। यह जान कर उन लोगों को धक्का लगेगा, जो पंडित नेहरू को समाजवादी समझते हैं और जातिपांति में विश्वास नहीं रखते। श्री पट्टभिसीतारमैया को यह पता होना चाहिए कि वह क्या कह रहे हैं? केवल पंडित नेहरू ही इस भावना के नहीं है, वरन् उनकी बहन श्रीमती विजयलक्ष्मी पंडित भी ब्राह्मण होने की भावना से ओतप्रोत हैं। ऐसा कहा जाता है कि दिसंबर 1940 में दिल्ली में आल इंडिया वूमेन्स कांफ्रेंस हुई थी। उसमें जनगणना में जाति घोषणा न करने के विषय में वार्तालाप हुआ था। श्रीमती पंडित ने इस विचार को अस्वीकार कर दिया था और कहा था कि उन्हें कोई ऐसा कारण नजर नहीं आता, जिससे कि वह अपने को ब्राह्मण रक्त होने से गर्व न करें। उन्होंने अपने को ब्राह्मण ही लिखवाया था।

सैंस एंड नानसेंस इन पालिटिक्स श्रृंखला XII, लेखक–जे.ई. संजना, रास्ता रहबर 14 जनवरी, 1945

और उनकी बहन श्रीमती विजय लक्ष्मी पंडित के विषय में कही जाती है।

श्री बल्लभ भाई पटेल कांग्रेस हाई कमान के अग्रिम पंक्ति के सदस्य हैं। वे केवल इसी भावना से ओत–प्रोत नहीं हैं कि वे शासन वर्ग से संबंधित हैं, वरन् उनमें से कुछ लोग इस विचार के हैं कि छोटी जातियों के लोग तिरस्कार करने योग्य हैं और उन्हें दास बने रहना चाहिए और कभी शासन करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए। वास्तव में उन्हें सर्वसाधारण में ऐसे विचार प्रकट करने में किसी प्रकार की लज्जा और पश्चाताप् नहीं प्रतीत हुआ। 1918 में जब गैर–ब्राह्मण लोगों तथा पिछड़े वर्ग के लोगों ने विद्यमान सभाओं में अपने पृथक प्रतिनिधित्व के लिए आंदोलन आरंभ किया, तो श्री तिलक ने शोलापुर में हुई जन सभा में कहा कि "मैं नहीं समझता कि तेल निकालने वाले तेली, तमोली, धोबी इत्यादि गैर–ब्राह्मण और पिछड़े वर्ग के लोग विधान सभाओं में क्यों जाना चाहते हैं?" श्री तिलक के विचार से उस वर्गों का कार्य है, आदेशों और कानूनों को मानना, कानून बनाने की कामना करना नहीं। वर्ष 1942 में लार्ड लिननिथगो ने विभिन्न वर्गों के 52 गणमाण्य भारतीय प्रतिनिधियों को इस बात पर विचार करने के लिए आमंत्रित किया कि उस समय युद्ध के अवसर पर भारत सरकार को सहानुभूतिपूर्वक सहयोग देने के लिए कदम उठाए जाने के संबंध में उनकी क्या राय है? उन आमंत्रित व्यक्तियों में अनुसूचित जातियों के भी सदस्य थे। श्री वल्लभ भाई पटेल को वायसराय का यह विचार पसंद नहीं आया कि छोटी जातियों की ऐसी भीड़ आमंत्रित की जाए। उस घटना के तुरंत बाद श्री वल्लभभाई पटेल ने अहमदाबाद में हुई जनसभा में कहा[1] – वायसराय ने हिंदू महासभा के नेताओं को आमंत्रित किया, मुस्लिम लीग के नेताओं को बुलाया और अन्य लोगों को आमंत्रित किया।"

यद्यपि श्री पटेल ने अपनी ईर्ष्यालु और कटाक्ष भाषा में तेलियों और मोचियों का नाम विशेष तौर पर लिया, परंतु उनका भाषण इस बात का संकेत है कि शासक वर्ग तथा कांग्रेस हाई कमान के सदस्य इस देश के दलित वर्गों के प्रति कैसी भावनाएं रखते थे। कांग्रेस हाई कमान और शासक वर्ग की ऐसी भावनाओं की और भी मिसालें उनके चुनाव प्रचार अभियान में देखी जा सकती है। प्रासंगिक रूप से उन घटनाओं का दिग्दर्शन करना आवश्यक है।

1919 में जब से श्री गांधी ने कांग्रेस पर कब्जा जमाया, ब्रिटिश सरकार से स्वराज्य की मांग मनवाने के लिए कांग्रेसियों ने विधान सभाओं का बहिष्कार करना अपना उद्देश्य बनाया। इस नीति के अंतर्गत न केवल चुनाव प्रचार से हाथ खींच लिया, वरन् चुनावों में कांग्रेस टिकट पर उम्मीदवार लड़ाने के विरोध में प्रचार किया। ऐसी नीति के गुणों पर किसी को झगड़ने की आवश्यकता नहीं। परंतु

1. *संजना, सेंस एंड–नानसेंस इन पालिटिक्स।*

चुनाव में स्वतंत्र टिकटों पर हिंदुओं के खड़े होने से रोकने के लिए कांग्रेस ने कैसे–कैसे ओछे हथकंडे अपनाए। जो हथकंडे अपनाए गए थे, उनका लक्ष्य था कि विधान सभाओं को अपमान करने का निशाना बनाना। तदनुसार कांग्रेस ने विभिन्न प्रांतों में इस बात का प्रचार करना आरंभ कर दिया कि विधान सभाओं में कौन लोग जाएंगे। वे केवल नाई, मोची, कुम्हार और झाडू लगाने वाले भंगी होंगे। जलूस में नारे का प्रश्नवाचक भाग एक आदमी बोलता था कि विधानसभाओं में कौन जाएंगे। भीड़ की ओर से उत्तर दिया जाता था, नाई, मोची, कुम्हार और जमादार। जब कांग्रेसियों ने देखा कि चुनावों में खड़े होने से इस प्रकार डरा कर रोकने का उपाय कारगर नहीं सिद्ध हो रहा है, तो उन्होंने इससे अधिक कठोर कदम उठाए। कांग्रेसियों ने यह वातावरण बनाया कि कोई भी इज्जतदार उम्मीदवार चुनाव में खड़े होने से कतराएगा यदि उन्हें निश्चय हो जाए कि विधानसभाओं में उन्हें नाइयों, कुम्हारों और भंगियों के साथ बैठना पड़ेगा। इसी विश्वास पर कांग्रेसियों ने वैसे ही शूद्र समुदायों से संबंधित उम्मीदवारों को चुनाव में कांग्रेस टिकट देकर खड़ा किया और उन्हें निर्वाचित कराया। कांग्रेस की ऐसी निर्लज्ज करतूतों के कुछ उदाहरण दिए जा सकते हैं। वर्ष 1920 के चुनाव में मध्य प्रांत विधानमंडल के लिए एक मोची (फगुआ रोहितास) को चुना गया। वर्ष 1930 के चुनाव में कांग्रेसियों ने मध्य प्रांत विधानमंडल के लिए दो मोचियों गुरु गोसाई आगमदास और बलराज जैसवार तथा एक ग्वाले चुन्नू को चुना और एक नाई अर्जुन लाल को और पंजाब में एक भंगी बंसीलाल चौधरी को चुना। यह कहा जा सकता है कि यह पुराना इतिहास है। वर्ष 1934 में कांग्रेस ने केंद्रीय विधानमंडल के लिए एक कुम्हार भगत चंदी मल गोला को चुना। मैं वर्ष 1943 में बम्बई की एक बस्ती अंधेरी के लिए नगरपालिका चुनाव का संदर्भ दे रहा हूं। कांग्रेस ने अपमान के तौर पर नगरपालिका के लिए एक नाई को चुना।

क्या घोर अंधेर हुआ? आयरलैंड में सिन्नाफेन ने ब्रिटिश पार्लियामेंट का बहिष्कार किया। परंतु क्या उन्होंने अपने स्वार्थ के लिए अपने ही देश के लोगों का ऐसा वीभत्स रूप अपनाया? 1930 में विधानसभा के बहिष्कार करने का आंदोलन बड़ा दिलचस्प था। 1930 में प्रांतीय विधानमंडलों के लिए हुए चुनावों में जो घटनाएं घटीं वे 1930 में गांधी जी के नमक सत्याग्रह के दौरान घटीं। मैं आशा करता हूं कि कांग्रेसी इतिहासकार डा. पट्टभिसीतारमैया यह बताएंगे कि कैसे उन्होंने वाससराय लार्ड इर्विन को नोटिस देने का निश्चय किया, जिसमें उन्होंने अपनी मांगों की एक सूची एक निश्चित समय तक मान लेने के लिए वायसराय को पेश की थी और वायसराय द्वारा मांगों के न मानने पर श्री गांधी ने किस प्रकार सविनय अवज्ञा आंदोलन खड़ा करने का निश्चित किया। कैसे श्री गांधी ने नोटिस ले जाने के लिए एक अंग्रेज को चुना? कैसे उन्होंने आक्रमण

करने के लक्ष्य के लिए नमक कानून को चुना? उसी यात्रा के लिए दांडी को चुना? कैसे उन्होंने अपने आपको आंदोलन का नायक बनाया? कैसे वे अहमदाबाद में अपने आश्रम से तामझाम लेकर खुशी मनाते संघर्ष के लिए बाहर निकले? कैसे अहमदाबाद की औरतों ने उनकी आरती उतारी और माथे पर विजय तिलक लगाया? कैसे श्री गांधी ने यह कहते हुए विश्वास दिलाया कि अकेले गुजरात ही भारत को स्वराज्य दिलाएगा? कैसे गांधी जी ने घोषणा की कि बिना स्वराज्य प्राप्त किए वह अहमदाबाद वापस नहीं लौटेंगे? इन सबका उल्लेख करने में कांग्रेसी इतिहासकार असफल न होगा कि एक तरफ कांग्रेसी स्वराज्य की लड़ाई लड़ने में व्यस्त थे, जिसके लिए वे कहते थे कि समस्त जनता के नाम से वे उस लड़ाई को जीतना चाहते थे और दूसरी ओर उन्हीं वर्षों में वे छोटी जातियों पर भयानक अत्याचार कर रहे थे और खुले तौर पर उनसे अलगाव पैदा कर रहे थे।

भारत में दलित वर्ग के प्रति शासक वर्ग की ऐसी मनोवृत्ति है।

IV

इस देश में शासक वर्ग के अधीन शोषित वर्ग का क्या हाल होगा?

कांग्रेस स्वराज्य प्राप्त होने पर शोषित वर्ग के लिए आश्चर्यजनक कार्य करने का वायदा करती है। कांग्रेस समस्त जनता के हित में बोलने का दम भरती है और उसे बोलना भी चाहिए, क्योंकि शासक वर्ग ने शोषित वर्ग को बंधक बना रखा है। कांग्रेस का कहना है कि कांग्रेस क्रांतिकारी परिवर्तन लाएगी। परंतु ऐसा स्वराज्य प्राप्त होने पर ही संभव है। यह ऐसा वाग्जाल है, जिससे विदेशी धोखे में पड़ जाएं। बढ़ चढ़ कर इस तरह की बातें करने के इस कथन को दरकिनार कर देने पर भी यह पूछा जा सकता है कि जब भारत पूर्णतया स्वतंत्र हो जाएगा, तब वास्तव में क्या होगा? एक बात निश्चित है। स्वराज्य के पास जादू की ऐसी कोई छड़ी नहीं होगी जिससे शासक वर्ग छूमंतर हो जाएगा। ब्रिटिश साम्राज्य के चंगुल से निकलने पर भी शासक वर्ग ज्यों का त्यों बना रहेगा। यही नहीं उसमें और अधिक शक्ति और प्रबलता आ जाएगी। शासक वर्ग वैसे ही सत्ता पर हावी हो जाएगा जैसा कि अन्य देशों में होता है। संक्षेप में स्वराज्य जनता की सरकार नहीं होगी, वरन् शासक वर्ग की सरकार होगी और जनता की सरकार जनता के लिए सरकार के नारे को शासक वर्ग दफना कर, जो चाहेगा करेगा।

भारत के पूर्णतया स्वतंत्र होने पर शासक वर्ग क्या करेगा? कुछ लोगों को आशा है कि शासक वर्ग कास्तकारी कानूनों में सुधार करेगा। नियम बना कर

कारखानों का विस्तार करेगा। प्राथमिक शिक्षा का प्रसार करेगा, नशाबंदी लागू करेगा, चरखा चलाना सिखाया जाएगा, सड़कें और नहरें बनाई जाएंगी, मुद्राकोष में बढ़ोतरी की जाएगी मापतौल को विनियमित किया जाएगा, अस्पताल खोले जाएंगे और शासित वर्गों की दशा में सुधार लाने के उपाय किए जाएंगे। ऐसी योजना में भी शासित वर्ग में अधिक उत्साह का संचार न होगा। पहली बात तो यह कि इस योजना में कोई बड़ी बात नहीं की गई है। आजकल की दुनियां में कोई भी शासक वर्ग समाज में ये आवश्यक सुधार करने की उपेक्षा नहीं कर सकता, जो किसी देश के सभ्य समाज के लिए आवश्यक समझे जाते हैं। व्यक्तिगत रूप से मैं भारत में शासक वर्ग पर इस बात का संदेह करता हूं कि सामाजिक उत्थान को ऐसी मामूली योजना को चलाने के लिए आगे आएंगे। बहुत से लोग भूल जाते हैं कि कांग्रेस का नेतृत्व आजकल जिसके हाथों में है और जैसी योजनाएं चलाने का प्रचार किया जा रहा है उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश नौकरशाही से कांग्रेस बेहतर है। परंतु नौकरशाही से मुक्त हो जाने से क्या अधिकतर जनता के भाग्य को संवारने के लिए वहीं प्रोत्साहन बना रहेगा। इस बात पर मुझे संदेह है। इसके अतिरिक्त, इसमें क्या स्वराज्य का लक्ष्य समाजोत्थान ही होगा? शासित वर्गों के संबंध में मुझे संदेह है कि स्वतंत्र भारत में वे आशा के अनुरूप ब्राह्मणवाद का, जो समाज का जीवन–दर्शन है, पूर्ण उन्मूलन कर देंगे। मेरे कहने का आशय है कि शासित वर्ग के लोग सामाजिक उत्थान की परवाह नहीं करते। साधनों की कमी और निर्धनता ही जिनका भाग्य है, वह उनके उस अपमान और तिरस्कार की तुलना में कुछ भी नहीं है, जो दूषित सामाजिक व्यवस्था के फलस्वरूप सभी प्रकार के कष्ट सहन कर रहे हैं, वे दौलत नहीं इज्जत चाहते हैं। इसीलिए प्रश्न यह है कि क्या स्वतंत्र भारत में सत्ता में आने के बाद शासक वर्ग सामाजिक व्यवस्था में सुधार करने के लिए कोई योजना चलाएगा।

कांग्रेसियों का यह कहना है कि पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त करने के बाद ही कांग्रेस आश्चर्यजनक कार्य कर सकती है। यदि यह मान लिया जाए कि वह केवल प्रचार के लिए नहीं, वरन् ईमानदारी की बात है, तो हम सोचते हैं कि शासक वर्ग केवल सत्ता प्राप्त करने के लिए ऐसा कहता है। मान लिया जाए यह एक ईमानदारी है और प्रोपेगंडा ही नहीं है, तो अनुमान लगाया जा सकता है कि वह इतना ही कर ले, जो सत्ता हथियाने के लिए जरूरी है। ऐसा विश्वास दयनीय नहीं है, परंतु भयानक छलांग है। वे लोग जो ऐसे भ्रमजाल में फंसना चाहते हैं, वे यह भूल जाते हैं कि प्रभुसत्ता की भी सीमाएं होती हैं, चाहे वह कितनी ही सार्वभौमिक हो। इस विषय में श्री डायसी से बढ़कर किसी ने नहीं कहा। अपनी "ला आफ द कांस्टीट्यूशन" में उन्होंने कहा है –

"कोई भी प्रभुतासंपन्न शासन विशेष रूप से संसदीय, दो सीमाओं में बंधा होता है। एक बाह्य तथा दूसरी आंतरिक। शासक की बाह्य सीमाओं के कारण सहभावना निश्चित होती है कि उसकी प्रजा अथवा उसमें से बहुत सारे लोग उसके आदेशों की अवहेलना कर सकते हैं या प्रतिरोध कर सकते हैं।

"वह बाह्य सीमाएं निरंकुश शासकों की भी होती हैं। 18वीं सदी के मध्य में चाहे रोमन सम्राट रहे हों अथवा फ्रांसीसी सम्राट, कानून की शक्ल में वे बहुत सख्त शासक थे। जैसा कि आजकल रूस के जार सम्राट। प्रभुसत्तासंपन्न शासकों में कानून और कानून बनाने के सारे अधिकार अंतर्निहित थे। उसका बनाया हुआ प्रत्येक कानून आवश्यक रूप से मानना पड़ता था और उसके राज्य में परंतु यह समझना भूल होगी कि वे चाहे जितने स्वेच्छाचारी शासक रहे हों, सदा स्वेच्छा से कानून बनाते थे।

"शासक सम्राट चाहे जितना निरंकुश हो अपनी प्रजा तथा प्रजा के कुछ भाग द्वारा उसके आदेश इसी बात पर निर्भर थे कि उन्हें मानने के लिए प्रजा कहां तक तैयार है और यह भी वास्तविक सीमाओं में होता था। यह बात इतिहास की बदनाम घटनाओं में भी मौजूद है। प्राचीन काल के सीजर्स में से किसी ने भी रोमन साम्राज्य की पूजा करने के मूल संस्थानों को नष्ट नहीं किया। सुलतान इस्लाम को नहीं समाप्त कर सका।

"लुई चौदहवें ने जो सर्वशक्तिसंपन्न था नान्ते के आदेश का खंडन किया, परंतु उसने जान लिया कि प्रोटेस्टेंट की महत्ता को समाप्त करना असंभव है और इसी कारण से जेम्स द्वितीय, रोमन कैथोलिक धर्म की स्थापना करने से रुक गया। निरंकुश शासक की शक्ति अथवा संसद की प्रभुत्ता भी जनता द्वारा नियंत्रित होती है। स्काटलैंड में संसद धर्माध्यक्ष चर्च का शासन स्थापित कर सकती थी, संसद उपनिवेशों पर टैक्स लगा सकती थी, संसद कानून में परिवर्तन अथवा संशोधन किए बिना शासक के उत्तराधिकार को समाप्त कर सकती थी, परंतु जैसा कि सभी लोग जानते हैं, आजकल की दुनियां में ब्रिटिश पार्लियामेंट इनमें से कुछ नहीं कर सकीं। इन सभी विषयों पर कानून बनाना यद्यपि वैध था तब भी पार्लियामेंट की शक्ति के परे था।

× × ×

"प्रभुता के प्रयोग की आंतरिक सीमा प्रभुता की प्रकृति में ही निहित होती है। यहां तक कि निरंकुश शासक भी अपने चरित्र और गुणों के अनुसार अपनी शक्ति का प्रयोग करता है, और उसका चरित्र उन परिस्थितियो से प्रभावित होता है जिनमें वह रहता है। सुल्तान चाहते हुए भी मुस्लिम विश्व के धर्म इस्लाम को नही बदल सकता था। परंतु यदि सुल्तान ऐसा करता भी, तो उस पर आंतरिक

सीमाओं के साथ–साथ बाह्य सीमाएं भी सुदृढ़ थीं। कभी–कभी लोग यह निरर्थक प्रश्न कर बैठते हैं कि पोप कोई सुधार लागू क्यों नहीं करता? इसका उत्तर यही है कि पोप क्रांतिकारी मनुष्य नहीं हो सकता और वह जो पोप हो जाता है उसकी इच्छा क्रांतिकारी बनने की नहीं होती।"

डायसी ने जो कुछ कहा उसकी सच्चाई से कोई इंकार नहीं कर सकता। शासक वर्ग क्या कर सकता है, वह उसकी प्रभुता के पैमाने पर उतना नहीं निर्भर करता, जितना कि प्रभुता की उन बाहरी और भीतरी सीमाओं पर करता है जिनका डायसी ने उल्लेख किया है। इन दोनों में से यदि भला करने में बाहरी सीमाओं के कारण असफलता मिलती है, तो किसी को शासक वर्ग पर दोष मंडन की जरूरत नहीं। उन्नति में बाधक बाहरी सीमाओं से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि शासक वर्ग के आंतरिक प्रतिबंध ऐसे हैं, जो बाह्य प्रतिबंधों से कहीं अधिक शक्तिशाली होते हैं। प्रगति शासक वर्ग के बाह्य प्रतिबंधों की अपेक्षा आन्तरिक प्रतिबंधों पर अधिक निर्भर करती है। वे कौन से निर्णायक तत्व हैं, जो आंतरिक प्रतिबंधों, का निर्धारण करते हैं? आंतरिक प्रतिबंध शासक वर्ग के दृष्टिकोण, प्रथाओं, अंतर्निहित हितों और उनके सामाजिक–दर्शन में उत्पन्न होते हैं। इस विचार–विमर्श का उद्देश्य है कि विदेशियों को इस बात से सावधान करना कि कांग्रेस शासित वर्ग के लिए क्या करना चाहती है उस पर विश्वास करने से पहले उन्हें कांग्रेस से पूछना चाहिए कि शासक वर्ग का वास्तविक दृष्टिकोण क्या है, उसकी क्या परंपराएं हैं, उसका सामाजिक–दर्शन क्या है?

पहले ब्राह्मणों को ही लीजिए, इतिहास के अनुसार वे शासित वर्ग (शूद्रों और अस्पृश्यों) के जो कुल हिंदुओं की आबादी के 80 प्रतिशत हैं, बहुत ही घोर शत्रु रहे हैं और दीन–हीन शासित वर्ग कितना नीचे गिरा हुआ है, अपमानित है, निराश है, कुंठित है, वह केवल ब्राह्मणों के कारण और उनके दर्शन के कारण ही ऐसा है। ब्राह्मणवाद के इस दर्शन के 5 मूलभूत सिद्धान्त हैं – (1) विभिन्न वर्गों में असमानता : (2) शूद्रों और अस्पृश्यों पर शस्त्रादि रखने पर पूरी रोक; (3) शूद्रों और अस्पृश्यों के लिए शिक्षा के द्वार बंद करना; (4) सत्ता और अधिकार से शूद्रों और अस्पृश्यों को दूर रखना; (5) शूद्रों और अस्पृश्यों को संपत्ति अधिग्रहण से वंचित रखना; और (6) स्त्रियों की पूर्ण अधीनता एवं दमन। असमानता ब्राह्मणवाद का अधिकारिक सिद्धांत है और दलितों द्वारा समानता के लिए प्रयास पर उनका दमन करने के असीम अधिकार ब्राह्मणों को प्राप्त हैं। कुछ देश ऐसे हैं, जहां शिक्षा कुछ लोगों तक ही सीमित है। परंतु भारत ही एक ऐसा देश है, जहां प्रबुद्ध वर्ग – जैसे कि ब्राह्मणों ने शिक्षा पर एकाधिकार ही नहीं कर रखा है, बल्कि निम्न वर्गों का शिक्षा ग्रहण करना अपराध मान कर जीभ काट लेने की सजा अथवा अपराधी के कान में पिघला हुआ सीसा डालने की व्यवस्था की है।

कांग्रेसी राजनीतिज्ञ शिकायत करते हैं कि अंग्रेज भारतीय जनता को पूर्णतया शक्तिहीन करके शासन कर रहे हैं। परंतु वे भूल जाते हैं कि शूद्रों और अस्पृश्यों को शक्तिहीन करने का कानून ब्राह्मणों द्वारा लागू किया गया था। वास्तव में शूद्रों और अस्पृश्यों को शक्तिहीन रखने में ब्राह्मण अटल विश्वास रखते हैं। जब ब्राह्मणों को शस्त्र धारण करने की आवश्यकता हुई तो अपनी सुख सुविधाओं की सुरक्षा के लिए उन्होंने शस्त्र धारण कर लिए। उसके लिए उन विधानों का पुनरीक्षण कर डाला और शूद्रों तथा अस्पृश्यों को बिना उनकी मुसीबतों को सुने शस्त्ररहित ही रखा। यदि आज भारत की जनसंख्या में अधिकांश लोग पौरूषहीन हैं, उनका मनोबल नष्ट हो गया है और वे दुर्बल हो गये है तो उसका मुख्य कारण है ब्राह्मणों की पूर्ण निरस्त्रीकरण की नीति, जिसे वे युग युगान्तर से शुद्रों के प्रति अपनाते चले आ रहे हैं। कोई भी ऐसी सामाजिक बुराई तथा सामाजिक कुप्रथा नहीं है, जिस पर ब्राह्मणों की मुहर न लगी हो। मानव का मानव के प्रति अमानुषिक व्यवहार, जैसे कि जातिपांति की भावना, अस्पृश्यता, उच्च पद पर पहुंचने पर रोक, योग्यता की अनदेखी करना ब्राह्मणों का धर्म है। यह मान लेना गलत न होगा कि किसी मनुष्य द्वारा दूसरे के साथ ऐसे पाशविक व्यवहार करना ही ब्राह्मण धर्म है, क्योंकि ब्राह्मणों ने समाज की पतिततम प्रथा को शह दी, जिससे भारत में स्त्रियों को जितने घोर कष्ट उठाने पड़े उनकी संसार के किसी अन्य भाग से तुलना नहीं की जा सकती । विधवाओं को सती होने के नाम पर जीवित आग में झोंक दिया जाता था। ब्राह्मणों ने सती प्रथा को पूर्ण समर्थन दिया। विधवा स्त्रियों को पुनर्विवाह करने पर प्रतिबंध लगा दिया। ब्राह्मणों ने इस आचरण को दृढ़ता से स्थापित किया। बालिकाओं का विवाह आठ वर्ष की अवस्था में पहले कर दिया जाता था और पति को अधिकार था कि विवाह के बाद किसी भी समय वह विवाह संबंध तोड़ सकता था। चाहे वह लड़की पूर्ण यौवन प्राप्त कर रजस्वला आयु की हो अथवा नहीं। ब्राह्मणों ने इस सिद्धांत को पूरा प्रश्रय दिया। शूद्रों, अस्पृश्यों और नारी के लिए ब्राह्मणों ने, जो घृणित विधान रखे संसार के किसी भी भाग में किसी बौद्धिक वर्ग में उनका सानी नहीं, क्योंकि संसार के अन्य भागों में बौद्धिक वर्ग ने अपने ही देश के अशिक्षित लोगों को सदा के लिए अज्ञानता और निर्धनता के गर्त में नहीं धकेला जैसा कि भारत में ब्राह्मणों ने किया है। आज का प्रत्येक ब्राह्मण अपने पूर्वजों द्वारा प्रतिपादित ब्राह्मणवाद के दर्शन में पूरा विश्वास करता है। वह हिंदू समाज में एक निराली ही चीज है। शूद्र और अस्पृश्य ब्राह्मण के लिए विदेशी जैसे हैं, जैसा कि जर्मन के लिए फ्रांसीसी, यहूदी के लिए गैर–यहूदी, गोरों के लिए नीग्रो। उसके और निम्न वर्गीय शूद्रों तथा अस्पृश्यों के बीच यह वास्तविक गहरी और चौड़ी खाई है। ब्राह्मण उनसे केवल परहेज ही नहीं करता, बल्कि उनके प्रति कठोर भी है। उनके आपसी संबंधों में विवेक और न्याय की कोई गुंजाइश नहीं है।

बनिया इतिहास में परजीवी अमरबेल के नाम से जाना जाता है। उसकी संस्कृति और प्रवृत्ति मात्र धन बटोरना है। वह उस पिस्सू के समान हैं, जो किसी भयकर महामारी के समय तेजी से पनपता है। उसमें और बनिए में केवल इतना अंतर है कि पिस्सू स्वंय कोई महामारी नहीं फैलाता, जबकि बनिया महामारी पैदा करता है। वह अपने धन को उत्पादक कार्यों में नहीं लगाता, बल्कि गरीबी और अधिक गरीबी बढ़ाने के लिए अनुत्पादक कार्यों के लिए ऋण के रूप में लगाता है। वह ब्याज पर जीता है और जैसा कि उसे उसका धर्म बताता है कि उसके लिए ब्याज पर ऋण देने का धंधा मनु ने निर्धारित किया है, जिसे वह उचित और न्यायपरक तथा धार्मिक मानता है। ब्राह्मण न्यायाधीश सदैव उस बनिए के पक्ष मे निर्णय देने के लिए तैयार रहता है और बनिया उस ब्राह्मण न्यायाधीश की सहायता से अपना धंधा फैलाता है। ब्याज, चक्रवृद्धि ब्याज सब जोड़ते हुए वह निर्धनों को अपने जाल में फंसा लेता है। कर्जदार जितना भी ऋण अदा करता है, कर्जा बढ़ता ही जाता है। ऐसा करने में बनिये को किसी जमीर की आवश्यकता नहीं, वह इसे छलकपट नहीं समझता और सभी तरह से वाक्छल करता है। राष्ट्र पर उसका पूरा नियंत्रण होता है। सारे निर्धन भूखे नंगे बनिए के बंधक बन कर रह गए हैं।

कुल मिलाकर नतीजा यह निकलता है कि ब्राह्मण मस्तिष्क से गुलाम बनाता है और बनिया शरीर से। ये दोनों मिल कर शासन पर कब्जा कर लेते हैं और उसे चाट जाते हैं। यदि कोई इस देश के आचरण, परंपराओं और दर्शन को समझता है, तो क्या विश्वास कर सकता है कि स्वतंत्र भारत में कांग्रेसी शासन में आज की अपेक्षा स्थिति कुछ भिन्न होगी।

V

यदि कांग्रेस जो शासित वर्गों का संरक्षक बनने का दावा करती है, अपने कार्य व्यवहार में सब तरह से ईमानदार है, तो उसे स्पष्ट करना चाहिए कि वह शासक वर्ग की शक्ति को क्षीण करने के लिए क्या कदम उठाएगी। कांग्रेस बार–बार गला फाड़ कर चिल्ला चिल्ला कर कहती है कि उसने 1937 के चुनावों में प्रचंड विजय प्राप्त की है। अतिशयोक्ति पर कान न देकर उससे प्रश्न किया जाए कि यह सच है कि कांग्रेस की विजय हुई परंतु उसे किस वर्ग ने विजय दिलाई? दुर्भाग्यवश वर्तमान समय की स्थिति का अवलोकन करने वाले किसी भारतीय लेखक ने डोड–संसदीय नियमावली का संकलन नहीं किया।

फलतः कांग्रेस टिकट पर विधान सभाओं के सदस्यों की जाति, उनके पेशे, शिक्षा और उनके सामाजिक स्तर के विषय में सही–सही विवरण प्राप्त करना कठिन है। इस विषय की महत्ता को देखते हुए, मैंने उन मुद्दों पर आवश्यक

सूचना एकत्र करना आवश्यक समझा, जो 1937 के चुनावों में कांग्रेस टिकट पर प्रांतीय विधानमंडलों के लिए चुने गए सदस्यों से संबंधित है। मुझे प्रत्येक सदस्य के संबंध में सही सूचना प्राप्त करने में सफलता नहीं मिली। बहुतों को मैंने बिना वर्गीकृत किए ही छोड़ दिया है। परंतु मैंने जो सूचना एकत्र की है, वह कांग्रेस की विजय पर प्रकाश डालती है और स्पष्ट करती है कि भारतीय अपनी स्वतंत्रता और कल्याण के संदर्भ में कांग्रेस की इस विजय का क्या अर्थ लगाते हैं? तालिका 18 में ब्राह्मणों और गैर–ब्राह्मणों तथा उन अनुसूचित जातियों का अनुपात क्या है जो कांग्रेस टिकट पर प्रांतीय विधान सभाओं के लिए चुने गये थे। हिन्दू जनसंख्या की तुलना में ब्राह्मणों का अनुपात कितना कम है जो यह नहीं जानते वे यह भी नहीं समझ सकेंगे कि कांग्रेस के चुनाव में ब्राह्मणों को कितना प्रतिनिधित्व मिला है। लेकिन जो यह जानते हैं वे समझेंगे कि ब्राह्मणों ने अपनी आबादी के अनुपात से कहीं अधिक प्रतिनिधित्व प्राप्त किया है।

कांग्रेस ने किस हद तक धनवान लोगों को जैसे वैश्यों, व्यापारियों और जमींदारों को टिकट दिए हैं? तालिका से स्पष्ट है कि वैश्य, व्यापारी वर्ग और भूस्वामी वर्ग को कांग्रेस टिकट पर चुना गया है। (तालिका 19 देखें)

वैश्य, व्यापारी और जमींदार बड़ी संख्या में कांग्रेस टिकट पर चुनाव में खड़े हुए थे। क्या इसमें भी कोई संदेह है कि कांग्रेस ने शासक वर्ग के विरुद्ध लड़ाई छेड़ने के बजाए राजसत्ता दिलाने के लिए वास्तव में शासक वर्ग की मदद की? चुनाव में कांग्रेस विजय का एक पहलू और है जिसकी पोल खोलना आवश्यक है। वह पहलू कांग्रेसी मंत्रिमंडलों के गठन से संबंधित है।[1]

तालिका 20 व 21 से स्पष्ट है कि प्रांतीय विधान सभाओं में जहां कांग्रेस को बहुमत मिला उनमें ब्राह्मण मंत्रियों की क्या स्थिति थी।

सभी हिंदू प्रांतों में ब्राह्मण मुख्य मंत्री थे। सभी हिंदू प्रांतों में गैर हिंदू मंत्रियों को छोड़ कर सभी ब्राह्मण मुख्यमंत्री थे। सभी हिंदू प्रांतों में यदि गैर हिंदू मंत्री नहीं थे, तो वहां ब्राह्मण मंत्रियों से ही मंत्रिमंडल गठित किए गए थे। ऐसा खासतौर से संयुक्त प्रांत में किया गया था, जहां के पंडित जवाहरलाल नेहरू हैं।

क्या इस कथन में कोई संदेह बचा है कि इस देश में ब्राह्मण ही शासक वर्ग हैं? क्या इसमें भी संदेह है कि कांग्रेस, जो स्वतंत्रता की लड़ाई लड़ रही है वह केवल शासक वर्ग के लिए लड़ रही है? क्या इसमें कोई संदेह है कि कांग्रेस ही शासक वर्ग है और शासक वर्ग ही कांग्रेस है? क्या इसमें कोई संदेह

1. इंडियन इन्फारमेशन, 15 जुलाई 1939।

है कि 1937 में जब स्वराज्य मिला और कांग्रेस को प्रांतीय स्वायत्तता मिली, तो कांग्रेस ने निर्लज्ज होकर शासक वर्ग को ही शासन के उच्च पदों पर बिठाया।

तालिका 18

प्रांतीय विधानसभाओं में जातियों के आधार पर कांग्रेस सदस्यों का वर्गीकरण

	ब्राह्मण	गैर ब्राह्मण	अनुसूचित जातियां	अवर्णित	योग
असम	6	21	1	5	33
बंगाल	15	27	6	6	54
बिहार	31	39	16	12	98
मध्य प्रांत	28	35	7	–	70
मद्रास	38	90	26	5	159
उड़ीसा	11	20	5	–	36
संयुक्त प्रांत	39	54	16	24	133

यह कथन बिल्कुल सत्य है कि कांग्रेस ने सत्ता के स्थान पर ब्राह्मण शासक वर्ग को ही बिठाया था। कांग्रेस ने इससे भी बढ़ कर और कार्य किया। जब तक कि संपूर्ण तथ्य न सामने आएं कोई आसानी से विश्वास न करेगा कि कांग्रेस ने वास्तव में क्या किया? कांग्रेस हाई कमान ने उम्मीदवारों के चुनावों के लिए, जो नीति निर्धारित की थी और उसके अनुसार उच्चतम श्रेणी की क्षैक्षिक योग्यता प्राप्त ब्राह्मण को प्राथमिकता देना और गैर–ब्राह्मण तथा अनुसूचित जातियों के उन उम्मीदवारों को प्राथमिकता दी जाती थी, जो कम से कम योग्यता प्राप्त हों। जिन्हें इस तथ्य में कोई संदेह हो वे कृपया तालिका 22 देखें।

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि ब्राह्मणों के मामलों में स्नातक तथा गैर स्नातक के अनुपात में, जो असमान अंतर था वह गैर–ब्राह्मण तथा अनुसूचित जातियों के उम्मीदवारों की अपेक्षा कहीं अधिक था। स्नातक होने, न होने के अंतर की बात से सही स्थिति स्पष्ट नहीं होती। वास्तव में ब्राह्मण स्नातक विशेष योग्यता प्राप्त राजनीतिज्ञ होते थे, जबकि गैर–ब्राह्मण स्नातक साधारण श्रेणी के थे और द्वितीय श्रेणी के राजनीतिज्ञ हैं। उन्हीं की उम्मीदवारी के लिए संस्तुति की गई थी।

तालिका 19

प्रांतीय विधानमंडलों में व्यवसाय के अनुसार कांग्रेस सदस्यों का वर्गीकरण

प्रांत	वकील	डाक्टर	जमींदार	व्यापारी	निजी कर्मचारी	ऋणदाता महाजन	शून्य	अवर्णित	योग
असम	16	2	2	1	–	–	3	9	33
बंगाल	9	2	16	5	2	–	16	4	54
बिहार	14	4	56	.6	3	–	1	14	28
मध्य प्रांत	20	2	25	10	–	–	8	5	70
मद्रास	52	2	45	18	2	1	3	36	159
उड़ीसा	8	1	17	4	4	1	1	–	36

तालिका 20

कांग्रेसी प्रांतों में मंत्रिमंडल का गठन*

	मंत्रीमंडल में मंत्रियों की	गैर हिंदू मंत्रियों की	मंत्रिमंडल में हिंदू मंत्रियों की संख्या				
			कुल योग	ब्राह्मण	गैर ब्राह्मण	अनुसूचित जातियां	मुख्य मंत्री
असम	8	3	5	?	?	शून्य	ब्राह्मण
बिहार	4	1	3	?	?	1	ब्राह्मण
बम्बई	7	2	5	3	2	शून्य	ब्राह्मण
मध्य प्रांत	5	1	4	3	1	शून्य	ब्राह्मण
मद्रास	9	2	7	3	3	1	ब्राह्मण
उड़ीसा	3	शून्य	3	?	?	?	?
संयुक्त प्रांत	6	2	4	4	शून्य	शून्य	ब्राह्मण

* यह तालिका मई 1939 की स्थिति दर्शाती है। यह 15 जुलाई, 1939 के इंडियन इनफारमेशन के अंक से ली गई है। जहां पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगे हैं वहां ब्राह्मण और गैर-ब्राह्मण का भेद नहीं पहचाना जा सका।

तालिका 21

*कांग्रेस शासित प्रांतों में संसदीय सचिवों का वर्गीकरण**

प्रांत	सचिवों की संख्या	गैर हिन्दू सचिवों की संख्या	योग	हिंदू संसदीय सचिव		
				ब्राह्मण	गैर ब्राह्मण	अनुसूचित
असम	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य
बिहार	8	शून्य	8	2	5	1
बम्बई	6	शून्य	6	1	5	शून्य
मध्य प्रांत	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य	शून्य
मद्रास	8	1	7	3	4	1
उड़ीसा	3	शून्य	3	?	?	शून्य
संयुक्त प्रांत	12	1	11	2	8	1

कांग्रेस ने चुनाव के लिए उच्च शिक्षा प्राप्त ब्राह्मण उम्मीदवारों को ही क्यों चुना? कांग्रेस के लिए गैर–ब्राह्मणों और अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि न्यूनतम शिक्षा प्राप्त क्यों हैं? इसका एक उत्तर है। इसका उद्देश्य गैर–ब्राह्मणों और अस्पृश्यों को कांग्रेस मंत्रिमंडल में शामिल होने से रोकना था। ऐसा प्रतीत होता है कि कांग्रेस ने जानबूझ कर शिक्षित व्यक्ति के मुकाबले में अशिक्षित गैर–ब्राह्मणों को प्राथमिकता दी थी क्योंकि शासक वर्ग के विचार से शिक्षित गैर–ब्राह्मण की अपेक्षा अशिक्षित गैर–ब्राह्मण को चुनने के दो लाभ थे। एक तो यह कि अशिक्षित गैर–ब्राह्मण, शिक्षित गैर–ब्राह्मण की अपेक्षा कांग्रेस हाई कमान का अधिक वफादर और कृतज्ञ होगा और कांग्रेस में शिक्षित गैर–ब्राह्मणों से मिल कर शासक वर्ग के बने कांग्रेस मंत्रिमंडल के प्रति विद्रोह न कर सकेगा। दूसरे यह कि यदि स्नातक से कम योग्यता प्राप्त साधारण शिक्षित गैर–ब्राह्मण चुने जाते हैं, तो उसका उद्देश्य था कि कहीं कांग्रेस में शासक वर्ग को धता बता कर वे सक्षम और वैकल्पिक मंत्रिमंडल न बना लें। कांग्रेस के गैर–ब्राह्मण यह नहीं समझ पाते कि कांग्रेस ने उन्हें कैसे धोखा दिया है और उन्हें क्यों कांग्रेस में लिया है। कांग्रेस बडी मजबूती के साथ शासक वर्ग की सत्ता और शासन की नींव गहरी जमा रही है।

* 15 जुलाई, 1939 के इंडियन इन्फोरमेशन के अंक से संकलित। ? का चिन्ह ब्राह्मण और गैर–ब्राह्मण का वर्गीकरण न किए जा सकने के कारण दिया गया है।

तालिका 22

शिक्षा की दृष्टि से कांग्रेस में ब्राह्मणों और गैर–ब्राह्मणों की संख्या का वर्गीकरण

प्रांतीय विधान सभा	जातियां	योग	स्नातक	गैर–स्नातक	हाईस्कूल	अशिक्षित	अवर्णित
असम	ब्राह्मण	6	5	1	–	–	–
	गैर–ब्राह्मण	21	15	2	–	1	9
बंगाल	ब्राह्मण	15	14	1	–	–	–
	गैर–ब्राह्मण	27	21	4	–	1	7
	अनुसूचित जाति	6	3	–	1	2	–
बिहार	ब्राह्मण	31	11	5	8	4	3
	गैर–ब्राह्मण	39	23	4	3	8	13
	अनुसूचित जाति	–	1	1	4	10	–
मध्य प्रांत	ब्राह्मण	39	15	–	2	9	2
	गैर–ब्राह्मण	54	15	–	2	17	1
	अनुसूचित जाति	–	1	–	–	6	–
मद्रास	ब्राह्मण	38	16	2	3	4	13
	गैर–ब्राह्मण	90	31	3	1	7	61
	अनुसूचित जाति	26	1	1	1	14	–
	पिछड़ा वर्ग	–	1	–	–	–	–
उड़ीसा	ब्राह्मण	11	6	1	–	3	1
	गैर–ब्राह्मण	20	7	3	2	7	1
	अनुसूचित जाति	5	–	–	–	5	–

VI

अब हम भारत के शासक वर्ग की तुलना अन्य देशों के शासक वर्गों से करना अधिक श्रेयस्कर समझते हैं। फ्रांस में जब क्रांति ने जन्म लिया और जनता ने शासक वर्ग से समानता की मांग की, तो शासक वर्ग ने स्वेच्छा से सत्ता और अधिकार छोड़ कर अपने को जनता में शामिल कर लिया। यह स्टेट्स जनरल की इस घटना से स्पष्ट है कि जन सामान्य के 600 प्रतिनिधि पहुंचे। जबकि पादरी तथा सामंतों में से प्रत्येक के 300–300 प्रतिनिधि पहुंचे। प्रश्न यह उठता

है कि 1200 सदस्य कैसे बैठते, बहस करते और मतदान करते। जनसामान्य के तीनों दलों की यूनियनों को एक चैम्बर में बैठने के लिए और एक व्यक्ति एक मत के आधार पर मतदान करने के लिए जोर दिया। पादरियों तथा सामंतों ने इस स्थिति को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि ऐसा करने का अर्थ होता अपनी अमूल्य परंपराओं और सुविधाओं का परित्याग करना। तब भी उनमें से अधिकांश ने जनसामान्य की मांग स्वीकार कर ली और फ्रांस को स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व पर आधारित संविधान दिया।

जापान के शासक वर्ग ने वर्ष 1855 से 1870 के दौरान जब जापानी सामंतशाही को त्याग कर वर्तमान शासन पद्धति अपनाई तब वहां का शासक वर्ग फ्रांस के शासक वर्ग की अपेक्षा अधिक देशभक्त था। जैसा कि जापान के इतिहास का विद्यार्थी[1] जानता है, जापानी समाज में चार वर्ग थे : 1. दमियों, 2. समुराई, 3. हेमिन अथवा जन सामान्य और 4. ईटा अथवा बहिष्कृत। इन जातियों के सीढ़ी दर सीढ़ी ऊंचे–नीचे वर्ग थे। सबसे नीचे ईटा थे, जो हजारों की संख्या में थे। उनमें से ऊपर हेमिन थे जो ढाई तीन करोड़ थे। हेमिन से ऊपर समुराई थे, जिनकी संख्या 20 लाख थी, जिनके हाथों में हेमिनों का जीवन–मरण बंद था। सबसे ऊपर दमिया अथवा बड़ी जागीर वाले सामंत थे, जिनका नीचे के तीनों वर्गों पर पूर्ण शासन था। उनकी संख्या 300 थी। दमियो और समुराई लोगों ने समझ लिया कि सभी को समानता और समान नागरिकता देना और सामंतवाद को त्याग देना संभव है। तदनुसार दमियो लोग जो राष्ट्रीय भावना से ओत–प्रोत थे और राष्ट्रीय एकता में कोई बाधा नहीं उत्पन्न करना चाहते थे, अपनी सुख–सुविधाओं का परित्याग करने के लिए आगे आए और सर्वसाधारण में शामिल हो गए। 5 मार्च 1869 को उन्होंने सम्राट को जो याचिका दी थी वह इस प्रकार थी –

> "हम जिस भूमि पर रहते हैं वह सम्राट की है। जो अनाज हम लोग खाते हैं, वह सम्राट के आदमियों द्वारा पैदा किया जाता है। तो हम किसी जायदाद को अपनी कैसे कह सकते हैं? अब हम स्वेच्छा से अपनी संपत्ति सादर समर्पित करते हैं और हमारे समुराई तथा जन सामान्य भी आपसे अनुरोध करते है कि सम्राट उन लोगों को संपत्ति देने की कार्रवाई कराएं, जिन्हें वास्तव में यह मिलनी चाहिए और उन्हें दंडित करें, जो उस संपत्ति के रखने के अधिकारी नहीं हैं। सम्राट विभिन्न वंशों व जातियों के भू–भाग में आवश्यक परिवर्तन करने तथा उसे नया रुप देने के लिए आवश्यक आदेश जारी करें। सिविल एवं

1. देखिए रोमेन्स आफ जापान, लेखक जेम्स ए.बी. सेरर।

> दंड संहिता और सैनिक कानून यहां तक कि वर्दी तथा युद्ध–सामग्री के निर्माण संबंधी नियम भी सम्राट द्वारा बनाये जायें। साम्राज्य के सभी छोटे और बड़े मामले निपटाने के लिए सम्राट के पास भेजे जाएं।"[1]

इस संबंध में जापान के शासक वर्ग की तुलना में भारत का शासक वर्ग कैसा है? यह एकदम विपरीत है। भारत में शासक वर्ग ब्राह्मण भारतीय स्वतंत्रता की बलिवेदी पर ऐसा बलिदान करने का संकल्प नहीं कर सकता। राष्ट्रीयता के नाम पर अपनी सुख–सुविधाओं का परित्याग करने के बजाए भारत का शासक वर्ग अपनी सुख–सुविधाओं को पक्का बनाए रखने के लिए राष्ट्रीयता का नारा लगा कर उसका दुरुपयोग करता है। जब कभी शोषित वर्गों के लोग सरकारी सेवाओं में, कार्यपालिका में तथा विधानमंडलों में संरक्षण की मांग करते हैं, तब शासक वर्ग "राष्ट्रीयता खतरे में है" का नारा बुलंद करता है। लोगों से कहा जाता है कि यदि हमें राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करनी है तो हमें राष्ट्रीय एकता बनाए रखनी चाहिए और सरकारी सेवाओं में, कार्यपालिका में तथा विधानमंडलों में संरक्षण आदि राष्ट्रीय एकता के प्रतिकूल हैं, इसलिए जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता में दिलचस्पी रख़ते हैं, उन्हें इस प्रकार के संरक्षण की मांग का डट कर विरोध करना चाहिए। यह है भारत के शासक वर्ग की धारणा। भारत का शासक वर्ग जापान के शासक वर्ग से पूर्णतया विपरीत दृष्टिकोण रखता है। राष्ट्रीयता के लिए अपनी सुख–सुविधाओं का बलिदान करना तो दूर रहा, शासक वर्ग अपने को सुरक्षित रखने के लिए राष्ट्रीयता के नाम का दुरुपयोग करता है।

भारत में शासक वर्ग अपनी सत्ता और शक्ति को त्यागने से इंकार ही नहीं करता वरन् शोषित वर्गों की राजनीतिक मांग की खिल्ली उड़ाने से भी कभी नहीं चूकता। शासक वर्ग के कुछ सदस्य[2] इस हद तक पहुंच गए हैं कि उन्होंने शोषित

1- वही पृ. 233।

2. डा. आर.पी. परांजपे द्वारा लिखित व्यंग मई 1926 में 'गुजराती पंच' नामक पत्रिका में "भविष्य की एक झलक" शीर्षक के अंतर्गत छपा था। शासक वर्ग के सदस्यों के लेखन के नमूने के रूप में यह पठनीय है। यह साम्प्रदायिक आरक्षण के सिद्धान्त के अंतर्गत घटी कुछ काल्पनिक घटनाओं पर आधारित है। चूंकि यह पत्रिका आसानी से उपलब्ध नहीं है, इसलिए मैं इन्हें नीचे उद्धृत करता हूँ –

'भविष्य की एक झलक' – निम्नलिखित उद्धरण आयोगों, पुलिस मामलों के न्यायालयों के आलेखों, न्यायिक मुकदमों, परिषद की कार्यवाइयों, प्रशासन रिपोर्टों आदि से लिए गये हैं जो 1930-50 के वर्षों के दौरान जारी हुए थे और विशिष्ट रूप से 'गुजराती पंच' के पाठकों के लिए प्रकाशित किए जाते हैं।

1. **भारत सरकार पर रॉयल कमीशन की रिपोर्ट,** 1930 - भारत के अनेक सम्प्रदायों की ओर से प्राप्त अभ्यावेदनों पर हमने गम्भीरतापूर्वक विचार किया है। गत जनगणना के आंकड़ों को आधार मानकर, हम अपने सम्मुख किए गये दावों को केवल यथासंभव संतुष्टि ही प्रदान कर सकते हैं क्योंकि सरकारी तंत्र को निर्मित करने की समस्या का कोई विशुद्ध हल तब तक सम्भव नहीं है जब तक कि देश के प्रत्येक व्यक्ति को उसका सदस्य न बनाया जाये क्योंकि कई सम्प्रदायों

वर्ग की मांग को बकवास और हास्यास्पद बताते हुए प्रचार करने के लिए कटाक्षपूर्ण व्यंग्यात्मक पेरोडी लिखी। डा. आर.पी. परांजपे, जो आस्ट्रेलिया में नए

की संख्याओं में सामान्य मान नहीं है। हम 2375 की संख्या संविधान की मूलभूत संख्या निर्धारित करते हैं। भविष्य में, प्रत्येक सम्प्रदाय के दावे उनकी कुल संख्या के आधार पर किए जायेंगे तथा सभी नियुक्तियां, विभिन्न संस्थाओं की सदस्यता, और वास्तव में देश में जहाँ तक संभव होगा, सब कुछ अनुसूची में दिए गये अनुपात के अनुसार होगा। वाइसराय की कार्यकारी परिषद में 475 सदस्य होंगे जो यथासम्भव प्रत्येक सम्प्रदाय की एक–पांचवी संख्या के अनुसार होंगे और ये सदस्य एक वर्ष तक अपने पद रहेंगे ताकि पांच वर्षों में प्रत्येक सम्प्रदाय को अपनी सदस्यता का सही भाग मिल जाये। प्रत्येक उच्च न्यायालय में 125 न्यायाधीश होंगे और प्रत्येक न्यायाधीश एक वर्ष तक पदभार संभालेगा, यद्यपि इस व्यवस्था के अनुसार प्रत्येक वर्ग अपनी वास्तविक भागीदारी 19 वर्ष हो जाने के बाद ही प्राप्त कर सकेगा। अन्य प्रकार की नियुक्तियों की संख्या, सभी दावों के सही समायोजन के प्रयोजन से, उसी आधार पर की जायेगी।

इन आकड़ों वाली सभी संस्थाओ के समुचित कार्यकरण के लिए, जितनी भी विद्यमान सरकारी इमारतों को गिराना आवश्यक हो, गिरा दिया जाये और आवश्यकता के अनुरूप उन्हें उचित आकार में पुनःनिर्मित किया जाये।

2. **भारत सरकार की अधिसूचना, 1932 :** भारत सरकार अधिनियम, 1931, के उपबंधों के अनुसार, महामहिम सम्राट ने गवर्नर–जनरल की कार्यकारी परिषद में निम्नलिखित 475 भद्र पुरुषों को सदस्यों के रूप में नियुक्त किया है –

267. मातादीन रामदीन (जाति नाई), चिकित्या विभाग के शल्य–कक्ष के प्रभारी

372. अल्लाबक्श पीरबक्श (मुसलमान ऊँट चालक), सेना विभाग के ऊँट परिवहन विभाग के प्रभारी

433. रामास्वामी (जाति आन्ध्र मेहतर), सार्वजनिक निर्माण विभाग की सड़क सफाई शाखा के प्रभारी

437. जगन्नाथ भट्टाचार्य (कुलीन ब्राह्मण, पुरोहित), पंजीकरण विभाग के घरेलू अनुभाग के प्रभारी

×× ×× ××

4. **सभी स्थानीय सरकारों को पत्र, 1934 :** विधान सभा द्वारा पास किए गये एक संकल्प, जिससे भारत सरकार पूरी तरह सहमत है, के अनुसरण में मुझे यह कहने का निदेश हुआ है कि भविष्य में सरकार में होने वाली प्रत्येक नियुक्ति, आवेदक की योग्यता की अपेक्षा के बिना प्रत्येक सम्प्रदाय को बारी–बारी से दी जानी चाहिए।

5. **बम्बई सरकार गज़ट में अधिसूचना, 1934 :** बम्बई सरकार दिसम्बर में निम्नलिखित नियुक्तियां करेगी। विभिन्न नियुक्तियों के लिए आवेदक उन जातियों के होने चाहिए जो शासकीय आदेश संख्या............दिनांक 30 नवम्बर, 1934 में प्रत्येक के सामने दिखाई गयी है।

1. मुख्य सिंचाई इंजीनियर (सिंध) : उत्तर कनारा की कुनबी
2. ऐलफिन्सटन कालेज, बम्बई में संस्कृत प्राध्यापक : सिंध का बलूची पठान
3. महामहिम के अंगरक्षक का कमांडेट : उत्तर गुजरात का मारवाड़ी
4. सरकार का परामर्शी वास्तुकार : दक्खिन का वडारी (घुमंतु कंजर)
5. इस्लामी संस्कृति का निदेशक : कड़ादा ब्राह्मण
6. शरीर शास्त्र का प्राध्यापक : (ग्रांट मेडीकल कालेज) : मुसलमान कसाई
7. यर्वदा जेल अधीक्षक : घंटी चोर
8. शराबबंदी के दो आयोजक : धराला (कैरा जिले का भील) (पंच महल)

6. **उच्च न्यायालय के एक मामले की रिपोर्ट, 1935 :** क.ख. (जाति तेली) पर अपने पिता की, जब वह सो रहे थे, निर्मम हत्या करने का आरोप था। न्यायाधीश ने फैसला सुनाते हुए कहा कि जूरी ने आरोपी को दोषी पाया है। सजा निर्धारित करने से पूर्व, न्यायाधीश ने आरोपी

हाई कमिशनर बना कर भेजे गए थे, उन्होंने पेरोडी लिखी थी। यह समझना कठिन है कि डा. परांजपे जैसे गणमान्य व्यक्ति ने कैसे इस प्रकार के विचार लेख में

के वकील के पूछा कि उसे कुछ कहना तो नहीं है। वकील, श्री बोमनजी, ने कहा कि वह फैसले से तो सहमत है, परन्तु कानून के अनुसार आरोपी को सज़ा नहीं दी जा सकती, मृत्यु–दण्ड तो दूर की बात है, क्योंकि चालू वर्ष मे सात तेली पहले ही सज़ा पा चुके हैं, जिनमें से दो को मृत्यु–दण्ड मिला है, और भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत अन्य कई सम्प्रदायों को अपनी सज़ाओं का कोटा नहीं मिला है जब कि तेलियों का कोटा पूरा हो चुका है। न्यायाधीश ने बचाव पक्ष के वकील की दलील स्वीकार कर ली तथा आरोपी को बरी कर दिया।

7. **'इंडियन डेली मेल' से उद्धरण, 1936 :** अन्नाजी रामचन्द्र (चितपावन ब्राह्मण) को पूना की गलियों में एक लम्बे चाकू के साथ घूमते हुए और सामने आने वाले हर व्यक्ति पर हमला करते हुए पाया गया। जब उसे मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया गया तो पुलिस ने बताया कि वह हाल ही में एक मानसिक अस्पताल से छूट कर आया है। अस्पताल के अधीक्षक ने अपने साक्ष्य में कहा कि अन्नाजी तीन वर्ष तक उनके अस्पताल में एक खतरनाक पागल के रूप में रहा था, परन्तु चूंकि चितपावनों के लिए एक कोटा निर्धारित था और अन्य सम्प्रदायों के अस्पताल–वासियों ने अपने वार्षिक कोटे पूरे नहीं किए थे, वह उसे और अधिक समय के लिए अस्पताल में नहीं रख सकते थे क्योंकि ऐसा करना चितपावनों के पक्ष में भेदभाव होता। इसलिए उन्होंने उसे चिकित्सा विभाग के भारत सरकार के आदेश संख्या.........के अनुसरण में छोड़ दिया। मजिस्ट्रेट ने अन्नाजी को रिहा कर दिए जाने का आदेश दिया।

8. **'बम्बई प्रेसीडेंसी में जेल प्रशासन पर रिपोर्ट' से एक उद्धरण, 1937 :** पूरी सावधानी बरतने के बाद भी, जेल के बन्दियों की संख्या प्रत्येक सम्प्रदाय के लिए निर्धारित कोटे के अनुपात में नहीं है। इस विसंगति को दूर करने के लिए जेल अधीक्षक ने भारत सरकार से निर्देश मांगे हैं। सरकार का संकल्प : जेलों के महानिरीक्षक की इस कर्तव्य–उपेक्षा पर सरकार अत्यंत अप्रसन्न है। जेल में विभिन्न सम्प्रदायों का कोटा पूरा करने के प्रयोजन से अधिक से अधिक संख्या में उक्त सम्प्रदायों के लोगों को पकड़ कर जेलों में बन्द करने के लिए तत्काल कदम उठाए जाने चाहिए। यदि अपेक्षित संख्या में लोग नहीं पकड़े जा सकते तो सभी को समान स्तर पर लाने के लिए, पर्याप्त संख्या में बन्दियों को जेल से रिहा कर दिया जाना चाहिए।

9. **विधान परिषद की कार्यवाई, 1940 :** श्री चेन्नप्पा ने पूछा : क्या सरकार का ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित किया गया है कि पाली की एम.ए. की हाल में हुई परीक्षा की कक्षा सूची में मंग–गरूड़ों का समुचित कोटा नहीं दर्शाया गया है?

माननीय श्री दामू श्रौफ (शिक्षा मंत्री) : विश्वविद्यालय के रजिस्ट्रार से प्राप्त सूचना के अनुसार, मंग–गरुड़ों के किसी उम्मीदवार ने परीक्षा नहीं दी।

श्री चेन्नप्पा : जब तक ऐसा उम्मीदवार परीक्षा देने न आये, क्या तब तक के लिए सरकार इस परीक्षा को स्थगित करेगी और विश्वविद्यालय द्वारा सरकार के आदेश की अवहेलना किए जाने पर क्या सरकार उसे अनुदान देना बन्द कर देगी और विश्वविद्यालय अधिनियम का संशोधन करेगी?

माननीय मंत्री : सरकार इस सुझाव पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करेगी (हर्ष ध्वनि)

10. **द टाइम्स आफ इंडिया' से उद्धरण, 1942 :** जे.जे. अस्पताल में एक ऑपरेशन के परिणामस्वरूप हुई रामजी सोनू की मृत्यु की जांच करने के लिए कोरोनर श्री........को एकाएक बुलाया गया। डा. तानु पाण्डव (जाति नाई) ने बयान दिया कि उन्होंने आपरेशन किया था। वह पेट में एक फोड़े पर चीरा लगाना चाहते थे परन्तु उनका चाकू हृदय में घुस गया और मरीज़ की मृत्यु हो गयी। यह पूछे जाने पर कि क्या उन्होंने इस प्रकार का कोई ऑपरेशन पहले कभी किया है, उन्होंने कहा कि केवल एक दिन पूर्व ही उन्हें अस्पताल का मुख्य सर्जन नियुक्त किया गया था क्योंकि तब आरक्षण के फलस्वरूप उनके सम्प्रदाय की बारी आ गयी थी, परन्तु उन्होंने इससे पहले कभी शेव करने के रेज़र के अतिरिक्त शल्य चिकित्सा औजार को हाथ भी नहीं लगाया था। जूरी ने अपने निर्णय में मृत्यु का कारण दुर्भाग्य बतलाया।

शामिल किए। इस प्रकार के मिरासियों जैसे कटाक्ष और पेरोडी (इसे भंडेलापन कह सकते हैं) शैली अपना कर आभास कराया जा सकता है कि शोषित वर्गों के सदस्य यदि ऐसी मांगें करने के लिए निपट मूर्ख भी नहीं तो पथभ्रष्ट अवश्य हैं। शासक वर्गों के लोग शोषितों की उन मांगों का विरोध करते हुए इस बात का उपदेश देते हैं कि भारतीय परंपरागत निपुण नीति बनाए रखने के लिए शासन के प्रत्येक पद पर योग्यतम व्यक्तियों के अतिरिक्त और किसी को अवसर न दिए जाएं।

इस सिद्धांत पर किसी को कोई ऐतराज नहीं कि योग्यतम व्यक्ति की जगह उससे कम योग्य व्यक्ति को और साधारण योग्यता के व्यक्ति की जगह बिल्कुल अयोग्य व्यक्ति को न लगा दिए जाए। परंतु ऐसा तर्क भारतीय इतिहास की घटनाओं पर दृष्टिपात करने से पूर्णतया निरर्थक सिद्ध होता है, क्योंकि भारतीय इतिहास के अनुसार, जो योग्यतम व्यक्ति चुना जाता था, वह शासक वर्ग से ही सबंधित होता था। शासक वर्ग के विचार से यह सिद्धांत बहुत ठीक था। परन्तु क्या वह सिद्धांत शोषित वर्ग के दृष्टिकोंण से ठीक कहा जा सकता है? क्या श्रेष्ठ जर्मन फ्रांसीसियों के लिए श्रेष्ठ हो सकता है? क्या श्रेष्ठ तुर्क यूनानियों के लिए श्रेष्ठ हो सकता है। क्या कोई पोलैंडवासी यहूदी के लिए श्रेष्ठ हो सकता है? इन प्रश्नों का सही उत्तर मिलने में संदेह है। जातीय या देसज योग्यता की उपेक्षा कभी नहीं की जा सकती। मनुष्य यंत्रवत नहीं है। वह मनुष्य है और मनुष्य होने के नाते कुछ के प्रति उसकी सहानुभूति है, तो कुछ के प्रति घृणा द्वेष होता है। यह तर्क सचमुच श्रेष्ठ व्यक्ति पर भी लागू होता है। उस पर जातीय सहानुभूति एवं वर्गीय द्वेषभाव करने का दोषारोपण किया जा सकता है। इन बातों पर ध्यान देने से प्रकट होता है कि शासक वर्ग से संबंधित श्रेष्ठ व्यक्ति शासित वर्गों के दृष्टिकोणों से बहुत निषिद्ध साबित होगा। शासक वर्ग और शासित वर्गों के दृष्टिकोणों में वही अंतर है, जैसा कि दो भिन्न राष्ट्रों में होता है। शासक वर्ग के लोग शासित वर्ग से मिरासीपन दिखा कर द्वेष प्रकट करते समय भूल जाते हैं कि भारत में शासक वर्ग और शासित वर्ग के बीच का अंतर ठीक वैसा ही है जैसा कि फ्रांसीसी और जर्मन का, तुर्की और यूनानियों का अथवा पोलैंड निवासियों और यहूदियों के बीच। इसका कारण वही है कि वे एक दूसरे का शासन बर्दाश्त नहीं कर सकते, चाहे शासन करने वाला व्यक्ति श्रेष्ठतम ही क्यों न हो?

शासक वर्ग शोषितों की मांगों का विरोध करते समय यह भी भूल जाता है कि उसने सत्ता में आने के लिए कौनसे साधन अपनाए थे। उन्हें स्वयं अपनी मनुस्मृति के पन्ने पलटने से पता चलेगा कि जिन हथकंडों से उन्हें सत्ता मिली है, वे ठीक वैसे ही हैं, जैसे कि डा. परांजपै ने अपने व्यंग्य लेख में लिखा है। मनुस्मृति के अध्ययन से पता चलेगा कि ब्राह्मण जो शासक वर्ग का मुख्य तत्व

है, उसने राजनीतिक शक्ति अपने बौद्धिक बल से ही प्राप्त नहीं की। बौद्धिकता किसी की बपौती नहीं। इन्होंने तो जातिवाद के आधार पर अपना प्रभुत्व बनाए रखा। मनुस्मृति के विधान के अनुसार पुरोहित के पद, सम्राट के पुरोहित, पुजारी, लार्ड चांसलर उच्च न्यायालय के न्यायाधिपति और न्यायाधीशों और सम्राट के मंत्रियों के पद ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित थे। यहां तक कि सेना के सेनापति के पद पर ब्राह्मण के होने के आदेश दिए गए थे चाहे वह अनुपयुक्त ही क्यों न हों? वे सभी ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित थे। ब्राह्मण अपने वर्ग के लिए लाभ और सत्ता संरक्षण से ही संतुष्ट नहीं थे। वे जानते थे कि केवल संरक्षण ही पर्याप्त नहीं है। गैर–ब्राह्मण जातियों में, ब्राह्मणों के समान योग्यता वाले लोगों द्वारा मुख्य पदों को प्राप्त करने और ब्राह्मणों के आरक्षण को उखाड़ फेंक देने वाले लोगों के आंदोलन की संभावनाओं को समाप्त करना भी ब्राह्मणों ने आवश्यक समझा। ब्राह्मणों ने समस्त अधिशासी पदों को अपने लिए आरक्षित करने के साथ–साथ शिक्षा पर ब्राह्मणों का एकाधिकार कायम रखने के लिए विधान बनाया। जैसा कि पहले ही संकेत दिया जा चुका है, ब्राह्मणों ने विधान बना कर हिंदू समाज के निम्नतर वर्ग के लिए पढ़ाई–लिखाई अपराध घोषित कर दिया, जिसका उल्लंघन करने वाले को कठोर तथा अमानुषिक दंड, जैसे अपराधी की जीभ कटवा लेना और उसके कान में पिघलता हुआ सीसा डलवा देना, की व्यवस्था की गई। कांग्रेसी यह कह कर छुट्टी नहीं पा सकते कि ऐसे दंड अब नहीं दिए जाते। उन्हें मानना होगा कि वैसे दंड अब नहीं दिए जाते, परंतु उन नियमों के अस्तित्व में रहने का शासक वर्ग अब भी लाभ उठा रहा है। ईमानदारी से कांग्रेसी लोग शासित वर्गों की मांग को सांप्रदायिक नहीं कह सकते क्योंकि वे जानते हैं कि ब्राह्मणों ने सत्ता हथियाने के लिए सबसे बुरी सांप्रदायिकता का सहारा लिया है। यदि आज शासित वर्ग के लोग अपने लिए संरक्षण मांगते हैं, तो उसका कारण यह है कि ब्राह्मण ने अपनी सुख–सुविधाओं को सुरक्षित रखने के लिए पहले ही से कानून बना कर शासित वर्ग द्वारा विद्याध्ययन तथा संपत्ति संचय पर दंड का विधान कर दिया। वास्तव में शोषित वर्गों के लोग जिस संरक्षण की मांग कर रहे हैं, वह उसका आधा भी नहीं है, जितना कि ब्राह्मणों ने अपनी उन्नति और सुख–सुविधाओं को सुरक्षित रखने के लिए लिया है जिसके लिए उन्होंने काले कानून बनाए और दास वर्गों को आज तक पद–दलित बना कर रखा है।

जो कुछ भी ऊपर कहा गया है, उसके संदर्भ में शासक वर्ग के नेतृत्व में, जो आजादी की लड़ाई लड़ी जा रही है, शासित वर्गों के विचार में वह स्वार्थ है। शासक वर्ग भारत की जिस आजादी के नाम पर लड़ाई लड़ रहा है, उसका उद्देश्य विदेशियों से सत्ता छीन कर शासित दास वर्गों पर शासन करना है। शासक वर्ग स्वामियों का सेवकों पर शासन चाहता है, जो नाजीवाद के उस

सिद्धांत की मनमानी के सिवाय कुछ नहीं, जिसके अंतर्गत अपने को श्रेष्ठ बताने वाला ही सर्वशक्तिमान होना चाहिए।

VIII

जो विदेशी भारतीय राजनीति को समझना चाहते हैं और इससे उत्पन्न समस्याओं का निराकरण करने में सहयोग देना चाहते हैं, उन्हें मालूम होना चाहिए कि भारतीय राजनीति किन सिद्धांतों पर आधारित है। यदि विदेशी उन्हें भली भांति समझने में असफल रहते हैं, तो वे ऐसे दल के हाथों की कठपुतली बन कर रह जायेंगे जो उन्हें भ्रम में कैद करके रखना चाहते हैं। भारतीय राजनीति की ये मूलभूत बातें हैं : (1) शासित वर्ग के प्रति शासक वर्ग की मनोवृत्ति, (2) शासक वर्ग के साथ कांग्रेस का संबंध (3) शासित वर्गों के लिए संवैधानिक संरक्षणों की राजनीतिक मांगों का मूल आधार।

उपरोक्त (1) के विषय में पहले ही ऊपर बहुत कुछ कहा जा चुका है, जिस पर विचार कर विदेशी अपनी धारणा बना सकते हैं। मैंने जो पक्ष प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है और उसकी पुष्टि में जिन तथ्यों और तर्कों को प्रस्तुत किया है, वह स्पष्ट है। इससे प्रकट होता है कि सार्वभौमिक स्वतंत्र भारत इस स्थिति से भिन्न स्थिति का देश होगा, जिसमें शासक वर्ग की सेवा करने वाला कोई शासित वर्ग न हो। उचित संरक्षण प्रदान करने से शासक वर्ग द्वारा सरकार का अधिपत्य जमाने की उनकी शक्ति सीमित हो जाएगी और उसकी सत्ता हथियाने के हथियार की धार भोंटी हो जाएगी। यही वह बात है जिसके लिए अस्पृश्य बल देकर कह रहे हैं और कांग्रेस उसका विरोध कर रही है। कांग्रेस और अस्पृश्यों के मध्य जो विवादग्रस्त प्रश्न है, वह संवैधानिक संरक्षणों की व्यवस्था पर ही केंद्रित है। प्रश्न उठता है कि क्या भारतीय संविधान में अस्पृश्यों के लिए संरक्षण होगा? विदेशी न तो इस समस्या को समझते हैं और न यही समझते हैं कि कांग्रेस के कथित प्रतिनिधिक स्वरूप का इस समस्या से कोई संबंध नहीं है। हो सकता है कि कांग्रेस प्रतिनिधि संस्था हो, लेकिन अस्पृश्यों की इस समस्या से उसे कोई सरोकार नहीं। उस समस्या का हल केवल आवश्यकताओं पर आधारित हो सकता है और इस विषय में यह प्रश्न हो सकता है कि क्या अस्पृश्य, जो संरक्षण मांग रहे हैं, वह उनके लिए जरूरी है? विदेशी जो इस आधार पर अस्पृश्यों के विरूद्ध कांग्रेस का समर्थन करते हैं कि कांग्रेस सबका प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था है, सही नहीं है। विदेशियों की वह अपेक्षा न्यायसंगत है कि अस्पृश्यों के संरक्षण की मांग को न्यायोचित प्रमाणित किया जाए। विदेशियों का यह कहना युक्तिसंगत है कि यह कह देना भर काफी नहीं है कि भारत में शासक वर्ग है। अस्पृश्यों को यह भी साबित करना है कि भारत का शासक वर्ग कितना अधर्मी एवं कितना

मक्कार है और वह वयस्क मताधिकार की शक्ति के आगे नहीं झुकेगा। यह ऐसी स्थिति है जिसका सामना अस्पृश्यों को करना है, क्योंकि निस्संदेह भारत में शासक वर्ग की स्थिति अन्य देशों की अपेक्षा भिन्न है। अन्य देशों में शासक वर्ग तथा शासित वर्गों के मध्य अधिक सहनीय और स्वाभाविक दूरी होती है, जो दोनों वर्गों को आपस में मिलने से रोकने की दीवार नहीं होती। उनकी दूरी केवल एक विराम होता है। भारत में उच्च वर्ग एक तिलस्मी किले में सुरक्षित है, जहां शोषित घुस ही नहीं सकता। दोनों वर्गों की संवेदनाएं भी प्रतिकूल हैं। अन्य देशों में शासक वर्ग और शासितों के बीच सत्ता हस्तांतरण की भरपाई होती रहती है, जिससे वे शासक वर्ग की तरह उच्च पदों पर पहुंच जाते हैं। भारत में ऐसी व्यवस्था बन गई है, जिससे शासक बदल जाते हैं, तो दूसरे वर्ग की भरपाई हो जाती है। भारत का शासक वर्ग जन्मगत है। दूसरा वंचित वर्ग सदा वंचित ही रहता है। ऐसा विभेद महत्वपूर्ण विभेद है। जहां पर शासक वर्ग घोंघों की तरह खोज में सुरक्षित बैठे रहते हैं और जो वंश परंपरागत चलते रहते हैं। यहां जन आचरण सामाजिक–दर्शन और सामाजिक मनोवृत्ति अंगद का पांव ही बनी रहती है और जिसमें स्वामी तथा सेवक का संबंध अटूट माना जाता है। सुविधा संपन्न और सुविधाहीन का भेद व जाति कठोर है। रंग में यह काली कमली है। अन्य देशों में ऐसी लक्ष्मण रेखा नहीं है। दोनों के आवरणों में एक बारीक डोर है। मानसिक समरसता है, इसलिए वहां शासक और शासित के रिश्तों में लोच होती है। इस अंतर के पीछे जो सत्य छिपा है, उसे समझ लेने के बाद विदेशियों को यह आभास होगा कि जहां अन्य देशों में तो व्यस्क मताधिकार द्वारा शासक वर्ग पर संतोषजनक नियंत्रण किया जा सकता है, भारत में शासित पक्ष जैसे अछूत संविधान में इसलिए अतिरिक्त संरक्षण प्रदान की मांग करते हैं कि उनकी मांग भारत में कांग्रेस द्वारा लड़ी आजादी की लड़ाई से अधिक जायज है और जो कांग्रेस आजादी मांगती है वह शासितों को सुरक्षा देने के विरूद्ध है। कांग्रेस निर्बाध रूप से सत्ता शासक वर्ग के हाथों में सौंपना चाहती है।

दूसरे पक्ष पर भी कुछ तथ्य जुटाए गए हैं। इन तथ्यों को ध्यान में रखने पर विदेशियों को स्पष्ट हो जाएगा कि कांग्रेस और शासक वर्ग का कितना घनिष्ठ संबंध है। उन तथ्यों से स्पष्ट हो जाएगा कि भारत में शासक वर्ग कांग्रेस की टोली में क्यों घुस गया है और सभी लोगों से कांग्रेस का समर्थन करने के लिए क्यों कहता है? संक्षेप में, शासक वर्ग को भलीभांति मालूम है कि सुविधाहीन लोगों का आंदोलन वर्ग सिद्धांतों, वर्गीय हितों और जातीय संघर्ष पर आधारित है। यह एक दिन सुविधासंपन्न वर्ग की कब्र खोद देगा। वे जानते हैं कि सेवक वर्गों की मांग को पटरी से उतारने के लिए राष्ट्रीयता और एकजुटता का मोह दिखा कर उन्हें बुद्धू बना दिया जाए। वें यह भी समझते हैं कि कांग्रेस ही ऐसा मंच है,

जिसमें शासक वर्ग का हित सुरक्षित हैं, क्योंकि यदि कोई दल ऐसा है, जिसके मंच से अमीर, गरीब, ब्राह्मण, जमीदार और असामी, महाजन और कर्जदार के बीच के मुद्दों पर कुठाराघात करके संघर्ष की ओर से ध्यान बंटाया जा सकता है, तो वह एकमात्र कांग्रेस है। कांग्रेस ही मंच है, जहां से देशभक्ति और राष्ट्रीयता एकता का झंडा फहरा कर उनका हितसाधन कर सकती है।

यदि ये दोनों दृष्टिकोण ठीक से समझ में आ जाएं तो विदेशियों को तीसरा दृष्टिकोण भी समझ में आ जाएगा जो सुविधाहीन दलित वर्गों के राजनीतिक संरक्षण पर आधारित है।

सुविधाहीन शासित वर्गों द्वारा आरक्षण की मांग करना वास्तव में शासक वर्ग की शक्ति को नियंत्रित करना है। यूरोपीय देशों में भी समाज के कुछ वर्गों की शक्ति पर नियंत्रण रखने की मांग की जाती है। वहां उत्पादक, वितरक, सूदखोरों और भूस्वामियों पर नियंत्रण है। भारत के सिवा किसी अन्य देश में एक समान जाति के हितों के संरक्षण के लिए कुछ वर्गों की शक्ति पर प्रतिबंध लगाने की आवश्यकता पड़ी है। आरक्षण देश में शासक वर्गो के हाथों में राजनीतिक शक्ति संग्रह रोकने और देश की सामाजिक संस्थाओं में परस्पर संवैधानिक संबंध कायम करने के अतिरिक्त कुछ नहीं कर सकता। इतने तथ्यों और तर्कों के आधार पर स्पष्टीकरण देने के पश्चात, मैं नहीं समझता कि विदेशियों को वास्तविक स्थिति समझने और विश्वास करने में कठिनाई होगी कि कांग्रेस के प्रचार का दूसरा पहलू भी है। यदि उपरोक्त तथ्यों और आंकड़ों के बावजूद कोई विदेशी वस्तुस्थिति नहीं समझता और उन लोंगों की बात पर शांति तथा धैर्य से विचार नहीं करता, तो यह उसके चरित्र और समझ का दोष है।

IX

भारतीय राजनीति के संबंध में विदेशियों के दृष्टिकोंण का एक दुखद पहलू भी है। इसका जिक्र न करना असंभव है। जो विदेशी भारतीय राजनीति में दिलचस्पी रखते हैं, उन्हें तीन श्रेणियों मे बांटा जा सकता है। पहली श्रेणी वह है, जो उन सामाजिक विभाजकों के नियमों से अवगत है, जिनके कारण भारतीय राजनीति टुकड़ों–टुकड़ों में बंटी है जैसे कि बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक के बीच विभाजन तथा हिंदुओं और अस्पृश्यों के बीच पृथकता है। उनका मुख्य उद्देश्य है कि इस पृथकता के प्रश्न को समुचित संवैधानिक संरक्षणों द्वारा हल करने की जरूरत नहीं, बल्कि इन विभाजक तत्वों के रास्तो का देश की संवैधानिक प्रगति को रोकने के लिए प्रयोग किया जाए। दूसरी श्रेणी उन विदेशियों की है, जो इन विभाजकों पर ध्यान ही नहीं देते, वे अल्पसंख्यकों और अस्पृश्यों पर क्या बीतती है, उस

पर आंख बंद कर लेते हैं। वे संरक्षणों की मांग की परवाह किए बिना कांग्रेस का समर्थन करते हैं। तीसरी श्रेणी उन विदेशियों की है जो भारत भ्रमण के लिए आते हैं, जो रातों–रात यहां की राजनीति समझने का प्रयास करते हैं। ये तीनों ही श्रेणियां खतरनाक हैं। परंतु तीसरी श्रेणी भारतीय लोगों के हितों की दृष्टि से सबसे अधिक खतरनाक है।

जो विदेशी भारत भ्रमण के लिए आते हैं, वे भारतीय राजनीति की बारीकियों को नहीं समझ सकते। यह समझ में नही आता कि ये विदेशी कांग्रेस का समर्थन केवल उसी रास्ते पर चल कर क्यों करते हैं, जैसा कि मि. पिकदिक ने सैमवेलर से कहा था कि ज्यादा से ज्यादा भीड़ इकट्ठी करके गला फाड़ो परंतु सबसे अधिक दुःखदायी वह रवैया है जो ब्रिटिश लेबर पार्टी के नेताओं, यूरोप और अमरीका के क्रांतिकारी एवं वामपंथी वर्ग के प्रमुखों, जिनका प्रतिनिधित्व लास्की, किंग्सले मार्टिन और ब्रेल्सफोर्ड जैसे लोग करते हैं, और अमरीका के "नेशन" और इंगलैंड के "न्यू स्टेटसमेन" जैसी पत्रिकाओं के संपादकों ने अपना रखा है, जो पददलित और पिछड़े लोगों के हिमायती माने जाते हैं। ये बात हमारी समझ में नहीं आती कि वे कैसे कांग्रेस का समर्थन करते हैं। क्या ये नहीं जानते कि भारत में कांग्रेस और शासक वर्ग एक ही थैली के चट्टे बट्टे हैं। क्या वे नहीं जानते कि भारत में ब्राह्मण–बनिया गठबंधन शासन की धुरी है? कांग्रेस में ब्राह्मण और बनियों के अतिरिक्त जो बहुसंख्यक जनता कांग्रेस का झंडा थामती है, उसका कांग्रेस के नीतिनिर्धारण में कोई योगदान नहीं। क्या महान व्यक्तित्व वाले उपरोक्त विदेशी यह नहीं समझते कि जिन कारणों से सुल्तान इस्लाम को और पोप कैथोलिक धर्म को नहीं मिटा सके, शासक वर्ग वैसे ही इस मकड़–जाल को नहीं तोड़ेगा और ब्राह्मण की श्रेष्ठता पर चोट नहीं करेगा। तब तक ब्राह्मण और सहयोगी जातियों की श्रेष्ठता का पाठ पढ़ाया जाता ही रहेगा। भारत की आजादी के बाद भी सरकार की वही पवित्र नीति जारी रहेगी जिससे शूद्रों और अस्पृश्यों का दमन और तिरस्कार होता है। क्या वे नहीं जानते कि भारत का शासक वर्ग देश का लोक मानस नहीं है। वह उनसे न केवल कटा हुआ है, बल्कि खुद भी उनसे ऐसे बच कर चलता है कि कहीं उसे छूत न लग जाए, क्योंकि ब्राह्मणों ने उल्लू की लकड़ी घुमा रखी है। उसका सोच और हित उनसे टकराते हैं, जो उनके समाज से बहिष्कृत हैं और उनकी दलितों के प्रति कोई सहानुभूति नहीं है, उनके मन में दलितों की आकांक्षाओं और दुख–दर्द को समझने की संवेदना नहीं है, उन्हें शिक्षा, उच्च सरकारी रोजगार दिलाने का अहसास नहीं है और वे उनके सम्मान और स्वाभिमान जगाने वाले आंदोलनों का विरोध करते हैं। क्या वे नहीं जानते कि भारत को स्वराज्य मिल जाने के साथ उसमें 6 करोड़ अस्पृश्यों का भाग्य भी अंतर्निहित है? यह कहना असंभव सा प्रतीत होता है कि ब्रिटिश

लेबर पार्टी के नेता, किंग्सले मार्टिन, ब्रेल्सफोर्ड और लास्की जिनके स्वतंत्रता और प्रजातंत्र के विषय में लेख सभी पिछड़े लोगों के लिए प्रेरणा के स्रोत हैं, इन बातों को नहीं जानते। तब भी वे भारत के संदर्भ में जब कुछ कहते हैं तो कांग्रेस का ही समर्थन करते हैं। वे शायद ही कभी अस्पृश्यों की समस्या पर मुंह खोलते हों, जिस पर सभी प्रगतिवादियों और प्रजातंत्रवादियों का ध्यान जाना चाहिए था। इन विचारों द्वारा केवल कांग्रेस कार्यकलापों पर ध्यान जाना, भारत के राष्ट्रीय जीवन के अन्य तत्वों की उपेक्षा करना, इस बात को स्पष्ट करता है कि उन्हें गुमराह किया गया है। यदि कांग्रेस राजनीतिक प्रजातंत्र के लिए लड़ाई लड़ती होती, तो कांग्रेस को समर्थन देने की बात समझ में आ सकती थी परंतु क्या ऐसा है? सब जानते हैं कि कांग्रेस केवल राष्ट्रीय आज़ादी की लड़ाई लड़ रही है और राजनीतिक प्रजातंत्र में उसकी कोई दिलचस्पी नहीं है। वह पार्टी जो भारत में राजनीतिक प्रजातंत्र की लड़ाई लड़ रही है, वह केवल अस्पृश्यों की पार्टी है, जिसे आशंका है कि कांग्रेस की आजादी की यह लड़ाई यदि कामयाब हो जाती है, तो इसका अर्थ होगा कि शक्तिशाली वर्ग को ही स्वतंत्रता मिलेगी और वह अधिक शक्ति के साथ कमजोरों और दलितों को तब तक दबाएगा, जब तक कि उनकी सुरक्षा के लिए संवैधानिक संरक्षण न दे दिया जाए। यह वही दलित वर्ग है, जिसे उन प्रगतिशील नेताओं की सहायता की आवश्यकता है। परंतु उनकी सहानुभूति एवं समर्थन की वर्षों से प्रतीक्षा अस्पृश्यों के लिए व्यर्थ साबित हुई। यूरोप और अमरीका के उन प्रगतिशील एवं वामपंथी नेताओं ने यह जानने की परवाह नहीं की कि कांग्रेस के पीछे कौन शक्ति काम कर रही है। अनभिज्ञ और लापरवाह व्यक्ति भले ही कांग्रेस की भावना को न जानता हो, परंतु वास्तविकता यह है कि वे वामपंथी और प्रगतिशील नेता आंख मूंद कर उस कांग्रेस का समर्थन करते हैं, जो पूंजीपतियों, जमींदारों, सूदखोरों तथा प्रतिक्रियावादियों द्वारा चलाई जा रही है – केवल इसीलिए कि कांग्रेस अपने कार्यकलापों को स्वतंत्रता संग्राम का गौरवपूर्ण नाम देती है। स्वतंत्रता की सभी लड़ाइयां समान नैतिक स्तर की नहीं हुआ करती, क्योंकि स्वतंत्रता की इन लड़ाइयों का सदैव एक सा ध्येय नहीं हुआ करता। इंगलैंड के इतिहास से कुछ उदाहरण लीजिए। जॉन के विरुद्ध बेरन का विद्रोह आजादी की लड़ाई कहा जा सकता है, परंतु क्या कोई लोकतंत्रवादी आज के युग में उसका समर्थन कर सकता है? क्या केवल इसलिए इंगलैंड के किसान विद्रोह का समर्थन किया जा सकता है कि उसे स्वतंत्रता का नाम दे दिया गया था। ऐसा करना स्वतंत्रता के नाम पर उठाई गई झूठी आवाज पर आगे बढ़ने के समान होगा। ऐसा अपरिपक्व व्यवहार क्षम्य होता, यदि वह किसी ऐसे मंद बुद्धि व्यक्ति द्वारा प्रकट किया जाता, जिसे यह निर्णय करना न आता हो कि जीने की स्वतंत्रता और दमन करने की स्वतंत्रता में क्या भेद है? परंतु सर्वश्री लास्की, किंग्सले मार्टिन, बेल्सफोर्ड, लुई फिशर जैसे

लब्धप्रतिष्ठित प्रजातंत्र–संरक्षकों के प्रगतिशील वामपंथी अनुयायियों को इसके लिए क्षमा नहीं किया जा सकता।

जब उनसे यह प्रश्न पूछा जाता है कि वास्तविक प्रजातंत्र के लिए लड़ने वाली पार्टियों का समर्थन क्यों नहीं करते, तो वे पलट कर प्रश्न करते हैं कि क्या भारत में अन्य ऐसी पार्टियां है जो वास्तविक प्रजातंत्र के लिए लड़ रही हैं? यदि ऐसी पार्टियां है तो समाचार पत्र वाले उनके कार्यकलाप क्यों नहीं प्रकाशित करते? जब यह कहा जाता है कि प्रेस कांग्रेस का है, तब पुनः प्रश्न उठता है कि विदेशी अंग्रेजी समाचार पत्रों वाले क्यों नहीं प्रकाशित करते? मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि विदेशी समाचार पत्रों वालों से कोई आशा नहीं की जा सकती। भारत में जो विदेशी समाचार एजेंसियां हैं वे भारतीय समाचार एजेंसियों से अधिक अच्छी नहीं कही जा सकती। वास्तव में वे अधिक अच्छी एजेंसियां हो भी नहीं सकती। भारत में विदेशी पत्रकारों के रूप में जिन भारतीयों का चुनाव किया जाता है, वे अधिकतर कांग्रेस के पिट्ठू होते हैं। वे विदेशी पत्रकार, जो विदेशी ही होते हैं दो प्रकार के होते हैं। यदि वे अमरीकी हैं, तो अंग्रेजों के बिल्कुल विरुद्ध हैं तथा कांग्रेस के पक्ष में है। भारत में जो राजनीतिक पार्टी पागलों की तरह अंग्रेजों का विरोध नहीं करती, उसके प्रति उनको कोई दिलचस्पी नहीं होती। वे लोग जो कांग्रेस में नहीं है, इस बात के गवाह हैं कि वर्ष 1941–42 में भारत आए अमरीकी पत्रकारों को समझाना कितना कठिन था कि कांग्रेस अकेली पार्टी नहीं है, परन्तु उन्होंने दूसरी पार्टियों को घास नहीं डाली। उन्हें बहुत समय के बाद अनुभव हुआ, तब उन्होंने या तो कांग्रेस को गलत सिद्धांतों वाली संस्था कह कर उसकी निंदा की अथवा भारतीय राजनीति में दिलचस्पी लेना ही बंद कर दिया। उन्होंने भारत की अन्य राजनीतिक पार्टियों में कभी दिलचस्पी नहीं दिखाई और न कभी उनके विचारों को समझने की चिंता की। अंग्रेज संवाददाताओं का भी यही हाल है। वे भी केवल इस प्रकार की राजनीति में रुचि लेते हैं, जो घोर ब्रिटेन–विरोधी हैं। वे उन पार्टियों को नहीं पूछते, जो सुरक्षित लोकतंत्र की हामी हैं जिसके परिणामस्वरूप विदेशी पत्रकार भारतीय राजनीति के संबंध में उसी प्रकार के समाचार प्रकाशित करते हैं जिस प्रकार के भारतीय समाचार पत्र करते हैं। चाहे वे पत्रकार हों या न हों, क्या उन प्रगतिशील विचारकों का यह कर्तव्य नहीं हो जाता कि संसार के किसी भी भाग में, जहां कहीं सही प्रजातंत्र के लिए लड़ाई लड़ी जा रही हो, वे अपने विचारों के अनुकूल तत्वों को प्रोत्साहित करें, उनसे संपर्क कायम रखें और देखें कि सब जगह प्रजातंत्र का प्रसार हो। दुर्भाग्य की बात है कि अमरीकी और इंगलैंड के प्रगतिशील विचारक उस वर्ग को भूल गए हैं, जिसकी सहायता करना उनका कर्तव्य है, इसकी अपेक्षा वे उन भारतीय अनुदारवादियों को प्रोत्साहन दे रहे हैं,

जो लोग स्वतंत्रता के नारे का दुरुपयोग करते हैं और वे ऐसा करके अपनी करनी पर पर्दा डालते हैं और संसार को गुमराह करते हैं।

कांग्रेस द्वारा फैलाया गया यह कोहरा छंट जाएगा और विदेशी अनुभव करने लगेंगे कि भारत में प्रजातंत्र और स्वायत्त–शासन तब तक वास्तव में स्थापित नहीं हो सकता, जब तक कि स्वतंत्रता का लाभ सभी को न मिले। परंतु यदि वे कांग्रेस की वास्तविकताओं तथा उसके इरादों की बिना परीक्षा किए खोखले नारों के आधार पर आंख मूंद कर कांग्रेस का समर्थन करते रहे, तो मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं कि वे भारत के मित्र होना तो दूर रहा भारतीय जनता की स्वतंत्रता के लिए निश्चित रूप से खतरा हैं। यह बड़े दुख की बात है कि वे उस उत्पीड़क को पहचानने का प्रयास नहीं करते। कांग्रेसी स्वतंत्रता का तर्क इसलिए देते हैं कि वे अपने उन अधिकारों को पुनः प्राप्त करना चाहते हैं, जिनसे वे उन दलित वर्गों की और पद–दलित कर सकें, जो उनके दमन से छुटकारा पाना चाहते हैं। स्वतंत्रता–प्राप्ति की शीघ्रता में उन्हें यह समझने का अवसर नहीं कि कांग्रेस का पक्ष लेकर वे जो कुछ करना चाहते हैं, उससे भारत प्रजातंत्र के लिए सुरक्षित न रह सकेगा, बल्कि तानाशाह को तानाशाही करने की पूरी छूट मिल जाएगी। क्या उनसे यह कहना आवश्यक है कि कांग्रेस का समर्थन करना तानाशाहों को दूसरों पर शिकंजा कसने की आजादी देना है।

अध्याय : 10

अस्पृश्य क्या कहते हैं?

श्री गांधी से सावधान

I

कांग्रेस वाले अस्पृश्यों को यह पट्टी पढ़ाने में कभी संकोच नहीं करते कि केवल श्री गांधी ही उनके संरक्षक हैं। कांग्रेसी भारत भर में घूम–घूम कर केवल श्री गांधी को ही अस्पृश्यों का संरक्षक होने का दावा करते हैं। यही नहीं इससे भी आगें बढ़ कर वे अस्पृश्यो से यह कहते फिरते है कि वास्तविकता यही है कि श्री गांधी ही उनके संरक्षक हैं। जब वे उन्हें बहकाते हैं, तो उदाहरण देते हैं कि यदि अस्पृश्यों के अधिकारों के लिए कोई प्राणों की बाजी लगा सकता है, तो वह है केवल श्री गांधी; उनके अतिरिक्त और कोई नहीं। वे निस्संकोच और बिना किसी पश्चाताप के उन अस्पृश्यों से कहते हैं कि पूना पैक्ट के अंतर्गत अस्पृश्यों को जो राजनीतिक अधिकार मिले हैं, वे श्री गांधी जी के प्रयत्नों का फल है। उदाहरण के लिए ऐसे प्रचार का एक उदाहरण मैं राय बहादुर मेहर चंद खन्ना का पेश करता हूं,[1] जिन्होंने पेशावर में 12-4-45 को दलित वर्ग संघ के तत्वावधान में हुई अस्पृश्यों की सभा में कहा था :–

> "तुम्हारे सबसे अच्छे मित्र महात्मा गांधी हैं, जिन्होंने तुम्हारे अधिकारों के लिए अनशन किया और पूना पैक्ट के अंतर्गत मताधिकार, स्थानीय निकायों और विधानमंडलों में प्रतिनिधित्व और भोजन का अधिकार दिलाया। आप में से कुछ लोग डा. अम्बेडकर के पीछे दौड़ रहे हैं, जिसे साम्राज्यवादी ब्रिटिश सरकार ने खड़ा किया है और जो आपको ब्रिटिश साम्राज्य के हाथ मजबूत करने के लिए इस्तेमाल करते हैं ताकि अंग्रेज भारत में फूट डाल कर शासन करते रहे। मैं आपके हित में आप लोगों से अपील करता हू कि आप अपने नेता और अपने वास्तविक शुभचिंतक मित्र के अंतर को पहचाने।"

1. फ्री प्रेस जरनल, दिनाक 14-4-1945

यदि मैंने राय बहादुर मेहर चंद खन्ना का बयान उद्धत किया है, तो इसलिए नहीं कि वह ध्यान देने योग्य है, वरन् इसलिए कि भारतीय राजनीति में इतने गुल खिलाने वाला उनके सिवाय और कोई नहीं है। एक ही वर्ष के अंदर वर्ष 1944 में खन्ना ने सफलतापूर्वक तीन भूमिकाएं निभाई। उन्होंने हिंदू महासभा का मंत्री बन कर अपना कार्य आरंभ किया, ब्रिटिश सरकार के दलाल बने, समुद्र पार गए, अंग्रेजों और अमरीकियों के सामने भारत की लड़ाई की स्थिति स्पष्ट करने गए और अब वह पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत में कांग्रेस के गुर्गे के रूप में कार्य कर रहे हैं। राय बहादुर खन्ना के विषय में, जो मैंने उदाहरण दिए हैं, वे केवल यह दिखाने के लिए हैं कि श्री गांधी के मित्र अस्पृश्यों को गुमराह कर बहकाने के लिए किस प्रकार का हथकंडा अपना रहे हैं।[1]

मैं नहीं जानता कि कितने अस्पृश्य इस झूंठ को पचाने के लिए तैयार होंगे। परंतु, जैसा कि नाजियों ने सिद्ध किया है, यदि झूंठ बड़ा झूंठ है, तो उसे तब तक लगातार उगलते रहो, जब तक कि लोग उसे सत्य न मानने लगें। इसलिए मेरे लिए यह आवश्यक हो गया है कि मैं अस्पृश्य के आंदोलन में और अस्पृश्यों को बरगलाने वाले और उन्हें लुभाने वाले प्रचार में श्री गांधी द्वारा खेले गए नाटक का पर्दाफाश करूं।

II

श्री गांधी द्वारा निभाई गई भूमिका की परतें उघाड़ते समय पहले इसी बात पर विचार करना है कि श्री गांधी ने सबसे पहले यह कब अनुभव किया कि अस्पृश्यता पाप है। इस विषय में हमारे पास सीधे श्री गांधी का ही साक्ष्य है। सप्रेस्ड क्लासेज कान्फ्रेंस का, जो अहमदाबाद में 14 व 15 अप्रैल 1921 को हुई थी, सभापतित्व करते हुए श्री गांधी ने कहा था :–

> "जब मैं मुश्किल से 12 वर्ष का था, तभी यह विचार मेरे मन में पैदा हुआ था। एक झाड़ू लगाने वाला जिसका नाम ऊखा था, जो अस्पृश्य था, वह मेरे घर की टट्टी साफ किया करता था। अक्सर मैं अपनी मां से पूछ बैठता था कि उसे छूना क्यों ठीक नहीं है और मुझे उसे छूने से क्यों रोका जाता है। यदि कभी अचानक मैं ऊखा से छू जाता तो मुझे अपने शरीर को शुद्ध करने और प्रायश्चित करने के लिए कहा जाता था और यद्यपि मैं उनकी आज्ञा का पालन करता था, परंतु

---

1. इसी प्रकार का एक प्रोपेगंडा प्रो.ए.आर.वाडिया नामक पारसी सज्जन ने किया था। उसके कथन की श्री ई.जे.संजन्ना ने बखिया उधेड़ी थी जो बम्बई से 29 अक्तूबर 1944 से अप्रैल 1945 तक प्रकाशित होने वाले गुजराती साप्ताहिक में उपलब्ध है। उसका शीर्षक है "सैन्स एंड नानसैन्स इन पालिटिक्स।"

मुस्कराते हुए यह विरोध भी प्रकट कर दिया करता था कि अस्पृश्यता को धर्म की कहीं स्वीकृति नहीं मिली हुई है। मैं बहुत ही कर्तव्यनिष्ठ और आज्ञाकारी लड़का था और माता–पिता की आज्ञा का पालन दृढ़ता से करता था। अक्सर मैं इस विषय पर उनसे वाद–विवाद कर बैठता था। मैंने अपनी मां से कह दिया था कि शरीर से ऊखा के छूने से कोई पाप नहीं लग जाता और ऐसा सोचना बिल्कुल गलत है।

"मैं स्कूल में अक्सर अस्पृश्यों से छू जाता था और मैं उस सच्चाई को अपने माता–पिता से कभी नहीं छिपाता था। मेरी मां मुझे कहा करती थी कि अपवित्र से छू जाने पर अपने को शुद्ध करो और पास से गुजरते हुए मुसलमान को स्पर्श करके अशुद्धता मुक्त हो जाओ और मैं अक्सर अपनी मां का आदर करते हुए उनकी बात मान लेता था, परंतु मैंने उस बात पर कभी विश्वास नहीं किया कि यह धार्मिक रूप से आवश्यक है। कुछ समय के बाद हम लोग पोरबंदर चले गए जहां मैं पहले संस्कृत के संपर्क में आया। उस समय तक मुझे अंग्रेजी स्कूल में नहीं रखा गया था और मुझे तथा मेरे भाई को एक ब्राह्मण के शिष्यत्व में रखा गया, जिसने हमें राम रक्षा और विष्णु पुंजर की शिक्षा दी। "जले विष्णु", "स्थले विष्णु" जो मेरे मुख्य पाठ थे मेरी स्मृति से दूर नहीं हो सके। पास में ही एक गृहस्थ बुढ़िया रहती थी। मैं उस समय बहुत डरपोक था, जहां कहीं अचानक प्रकाश होता और बुझते देखता, तो मुझे भूत–प्रेतों जैसा प्रतीत होता। वृद्धा मां मुझे डरते हुए देख कर ढाढ़स बंधाती और मुझे सलाह देती कि डर जाने पर "राम रक्षा" का पाठ करने लगूं जिससे बुरी आत्माएं भाग जाएं। मैं उसका पाठ करते समय उसका अच्छा प्रभाव समझता था। तब मुझे यह विश्वास नहीं था कि "राम रक्षा" में कहीं कोई ऐसी बात है जिसमें अस्पृश्यों का छू जाना पाप समझा गया हो। तब मैं उसका अर्थ नहीं समझता था अथवा बहुत कम अर्थ जानता था। परंतु मुझे विश्वास था कि "राम रक्षा" से भूत–प्रेतों से उत्पन्न सभी प्रकार के भय नष्ट हो सकते हैं, परंतु इस बात की आशंका नहीं थी कि अस्पृश्यों को छू लेने में कोई भय हो सकता है।

हमारे परिवार में रामायण का पाठ नियमित रुप से किया जाता था। एक ब्राह्मण जिसका नाम लद्धा महाराज था, यह पाठ किया करता था। वह कुष्ठ रोग से पीड़ित था और उसे विश्वास था कि रामायण का लगातार पाठ करते रहने से उसका कुष्ठ दूर हो जाएगा और वास्तव में वह रोगमुक्त हो गया। मैं अपने आप में सोचता था

> कि आज अस्पृश्य कहा जाने वाला रामायण में कैसे अपनी नाव में बिठा कर राम को गंगा पार कराता है। आज यह कल्पना में नही आता कि कोई मानव इसलिए अस्पृश्य माना जाए कि उसकी आत्मा दूषित है। वास्तव में जैसाकि हम ईश्वर को तमाम पापों से शुद्ध करने वाला कहते हैं, इससे स्पष्ट है कि हिंदू धर्म में यह मानना पाप है कि कोई जन्म से दूषित अथवा अस्पृश्य है। इसीलिए मैं हमेशा से इसे पाप कहता रहा हूं। मैं इस बात का ढोंग नहीं करता कि बारह वर्ष की अवस्था में यह बात मेरे दिल में बैठ गई थी। परंतु मैं जोर देकर कहता हूं कि मैंने उस समय भी अस्पृश्यता को पाप समझा था। मैंने वैष्णवों और पाखंडी हिंदुओं को जानकारी के लिए वह कहानी बतलाई है।"

निस्सन्देह यह जानकारी बड़ी दिलचस्प है कि घोर अंधविश्वास के युग में श्री गांधी को यह आभास हुआ कि अस्पृश्यता पाप है और वह भी बारह वर्ष की अवस्था में। कुछ भी हो आज अस्पृश्य यह जानना चाहते हैं कि उस बुराई को श्री गांधी ने दूर करने के लिए क्या किया? मैं इस संबंध में मद्रास के प्रकाशक टैगोर एंड कंपनी द्वारा प्रकाशित श्री गांधी के जीवन संबंधी एक टिप्पण का उद्धरण नीचे प्रस्तुत कर रहा हू, जिसे उन्होंने 1922 में यंग इंडिया नामक अपने खंड में प्रकाशित किया था, जिसमे यह दर्शाया गया है कि जब से श्री गांधी ने सार्वजनिक क्षेत्र में कदम रखा उनके कौन–कौन से मुख्य कार्य रहे है। टिप्पण में कहा गया है :

> "मोहनदास करमचंद गांधी 2 अक्तूबर 1869 को पैदा हुए थे। वह जाति के बनिया थे। वह पोरबंदर राजकोट काठियावाड़ तथा अन्य राज्यों के दीवान करमचंद गांधी के पुत्र थे। उन्हें काठियावाड़ हाई स्कूल में शिक्षा मिली। उसके बाद लंदन और इनर टैम्पुल में शिक्षा मिली। लंदन से वापसी के बाद वह बम्बई हाईकोर्ट में वकालत करने के लिए दाखिल हुए। लीगल मिशन में वह नैटाल और तत्पश्चात् ट्रांसवाल गए। नैटाल सुप्रीम कोर्ट में वकालत करने के लिए प्रवेश लिया और वहीं पर बसने का इरादा किया। वहां 1894 में उन्होंने नैटाल इंडियन कांग्रेस की नींव डाली। वर्ष 1895 में भारत वापस आए। उन्होंने नैटाल और ट्रांसवाल में भारतीयों के पक्ष में भारत में आंदोलन चलाया। डरबन वापस गए। आंग्ल बेयर युद्ध 1899 में इंडियन एंबुलैंस कोर का नेतृत्व किया। वर्ष 1909 में भारत वापस आए और स्वास्थ्य लाभ किया। मिस्टर चेम्बरलेन के समक्ष दक्षिणी अफ्रीका के भारतीयों की कठिनाइयों के विषय में विचार प्रस्तुत करने

के लिए दक्षिण अफ्रीका गए। भारतीय प्रतिनिधिमंडल का प्रतिनिधित्व करने के लिए पुनः दक्षिण अफ्रीका वापस गए। ट्रांसवाल ब्रिटिश इंडियन एसोसिएशन की नींव डाली और उनके आनरेरी सेक्रेटरी और मुख्य कानूनी सलाहकार बने। वर्ष 1903 में इंडियन ओपिनियन की नींव डाली। 1906 में स्ट्रेचर नियरर कोर का नेतृत्व किया। ऐंटी ऐशियाटिक ऐक्ट 1906 के विरोध में आंदोलन किया। अधिनियम वापसी के बारे में प्रतिनिधिमंडल में इंगलैंड गए। एक्ट के विरोध में पेंसिव रेसिस्टेंट मूवमेंट चलाया। जनरल स्मट और गांधी जी के मध्य समझौता हुआ। बाद में स्मट ने समझौते को नामंजूर कर दिया और पैसिव रेसिस्टेंट को पुनः लागू किया। कानून तोड़ने के अपराध में, उन्हें दो बार बंदी बनाया गया। वर्ष 1909 में पुनः इंगलैंड में ब्रिटिश जनता के समक्ष भारतीय पक्ष प्रस्तुत करने गए। गोखले ने 1911 में प्राविजनल सेटेलमेंट के लिए दक्षिणी अफ्रीका की यात्रा की। सरकार द्वारा वर्ष 1911 के समझौता के न मानने पर पैसिव रेसिस्टेंट मूवमेंट को पुनः चालू किया। अंतिम समझौता 1914 में हुआ। इंगलैड गए। 1914 में इंडियन एम्बुलैंस कोर की स्थापना की।"

उनके जीवन संबंधी इस टिप्पण से स्पष्ट हो जाता है कि श्री गांधी ने अपना सार्वजनिक जीवन 1894 से आरम्भ किया जब उन्होंने नैटाल इंडियन कांग्रेस की नींव डाली थी। वर्ष 1894 से 1915 तक वह दक्षिण अफ्रीका में रहे। उस अवधि में उन्होंने अस्पृश्यों के विषय में कभी सोचा तक नहीं और ऊखा की भी कोई खैरखबर नहीं ली।

श्री गांधी 1915 में भारत वापस आए। क्या तब उन्होंने अस्पृश्यों की कोई चिंता की? मैं उपरोक्त जीवन वृत्त से ही निम्नलिखित अंश प्रस्तुत कर रहा हूँ:–

"1915 में भारत वापस आए। अहमदाबाद में सत्याग्रह आश्रम की स्थापना की। 1917 में चंपारण के श्रमिकों की समस्या हल करने के लिए भाग लिया। खेड़ा अकाल और 1919 में अहमदाबाद में मिल हड़ताल में भाग लिया। रोलट एक्ट और 1919 के सत्याग्रह आंदोलन में भाग लिया, जब वह दिल्ली जा रहे थे तो रास्ते में ही कोसी में गिरफ्तार कर लिए गए और बम्बई वापस भेज दिए गए। पंजाब में 1919 में अशांति और अधिकारियों द्वारा अत्याचार हुए। पंजाब में हुए अत्याचारों की जांच करने के लिए कांग्रेस कमेटी के सदस्य बनाए गए, मुखालफत आंदोलन में भाग लिया। 1920 में असहयोग आंदोलन आरंभ किया, मई 1921 में लार्ड रीडिंग से विचार विमर्श किया। 1921 में कांग्रेस अधिवेशन के मुख्य कार्य संचालक बनाए गए। फरवरी 1922

> में चौरी चौरा आंदोलन के कारण सविनय अवज्ञा आंदोलन स्थगित किया, मार्च 10, 1922 को गिरफ्तार हुए और 6 वर्ष की साधारण कैद हुई।"

यह टिप्पण सही प्रतीत नहीं होती। इसमें श्री गांधी के जीवन की प्रमुख घटनाएं छूट गई हैं। इसे पूरा करने के लिए निम्नांकित बातें भी जोड़ी जानी चाहिए :–

> "वर्ष 1919 में ब्रिटिश साम्राज्य से भारत को स्वतंत्र कराने के लिए अफगान आक्रमण का स्वागत करने की तैयारी की घोषणा की, बारदौली कार्यक्रम को रचनात्मक रूप देने के लिए 1920 में देश के समक्ष प्रस्ताव लाए, 1921 में तिलक स्वराज्य फंड आरंभ किया और एक करोड़/25 लाख रुपये देश के लिए स्वराज्य की लड़ाई में उपयोग करने के लिए एकत्र किए।"

इन पांच वर्षों में गांधी जी कांग्रेस को ऐसे सैनिक संगठन अर्थात् एक युद्ध तंत्र का रूप देने में पूर्णतया तल्लीन थे जो साम्राज्यवाद की जड़े हिला दे। मुसलमान काग्रेस में शामिल हो गये क्योंकि उन्होंने खिलाफत आंदोलन का पक्ष लिया और हिंदुओं द्वारा खिलाफत आंदोलन का पूरा समर्थन किए जाने के लिए भरसक प्रयत्न किया।

उस अवधि में श्री गांधी ने अस्पृश्यों के लिए क्या किया? निस्संदेह कांग्रेसी उसके उत्तर में बारदोली आंदोलन का उल्लेख करेंगे। यह सच है कि बारदौली कार्यक्रम में अस्पृश्योत्थान भी एक मद थी। परंतु जिज्ञासा की बात यह है कि उस मद का क्या हुआ? संक्षेप में बात यह है कि बारदौली आंदोलन में अस्पृश्यता निवारण की कोई योजना नहीं थी। वह कार्यक्रम उन्नति और सुधार का कार्यक्रम था, जो डिजरैली के शब्दों में प्राचीन संस्थाओं एवं आधुनिक प्रगति के सम्मिश्रण जैसा कार्यक्रम था। कार्यक्रम में अस्पृश्यता समस्या को मान्यता दी गई और योजना बनाई गई कि अस्पृश्यों के लिए अलग कुएं और अलग स्कूलों का प्रबंध किया जाए। अस्पृश्यों की उन्नति की योजना बनाने के लिए, जो उपसमिति बनाई गई, उसमें वे लोग थे, जिन्हें अस्पृश्यों के हितों में कोई रूचि नहीं थी और उनमें से कुछ तो अस्पृश्यों को देखकर नाक भौं चढ़ाते थे। स्वामी श्रद्धानंद ही उस उप–समिति में ऐसे व्यक्ति थे, जो उनकी पीड़ा से अभिभूत थे। वह वास्तव में मौलिक रूप से अस्पृश्यों के लिए कुछ करना चाहते थे परन्तु उन्हें भी विवश होकर त्यागपत्र देना पड़ा। उस समिति का कार्यक्रम चलाने के लिए मुटठी भर धनराशि दी गई थी। समिति की एक बैठक भी नहीं हुई और वह भंग कर दी गई। अस्पृश्योत्थान का कार्य हिंदू महासभा को सौंपने की घोषणा की गई। श्री गांधी ने बारदौली कार्यक्रम की उस योजना को कार्यान्वित करने में कोई रूचि

नहीं दिखाई, जो अस्पृश्यों से सबंधित थी। स्वामी श्रद्धानंद का पक्ष लेने के बजाए, उन्होंने उन प्रतिक्रियावादी विरोधियों का पक्ष लिया, जो स्वामी श्रद्धानंद के विरूद्ध थे यद्यपि वे जानते थे कि वे विरोधी लोग अस्पृश्यों के हितों में कुछ भी नहीं करने देना चाहते। 1921 में बारदौली कार्यक्रम के संबंध में गांधी जी ने जो किया उसके बारे में यही कुछ कहना है।[1]

श्री गांधी ने 1922 के बाद अस्पृश्यों के लिए क्या किया? गांधीजी का जीवनवृत्त जो पहले उद्धत किया जा चुका है 1922 में छपा था। यह आवश्यक है कि उस विवरण को पूरा करने के लिए निम्नांकित विवरण भी जोड़ दिया जाएः–

> "वर्ष 1924 में वह जेल से रिहा किए गए। उन्होंने कांग्रेस के उन दो गुटों में समझौता कराया जो श्री गांधी की अनुपस्थिति में काउंसिल प्रवेश बनाम रचनात्मक कार्यक्रम का मामला उठा कर आपस में लड़ रहे थे। 1929 में भारतीय राजनीति का लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य घोषित किया गया। 1930 में सविनय अवज्ञा आंदोलन आरंभ किया गया। 1931 में लंदन में होने वाले गोल मेज सम्मेलन में कांग्रेस का प्रतिनिधित्व करने के लिए गए, 1932 में गिरफ्तार हो गए। शासन द्वारा घोषित सांप्रदायिक मतदान के विरूद्ध आमरण अनशन किया। 1933 में पूना पैक्ट हुआ और अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश के लिए योजना बनाई। हरिजन सेवक संघ की स्थापना की। 1934 में कांग्रेस की सदस्यता त्याग दी। 1942 में अंग्रेजो भारत छोड़ो आंदोलन चलाया और गिरफ्तार हुए। 1943 में अनशन किया और छोड़ दिए गए। 1944 में लार्ड वावेल से पत्र व्यवहार किया और 8 अगस्त, 1942 के प्रस्ताव की व्याख्या की। 1945 में कस्तूरबा फंड चलाया।"

1924 में श्री गांधी अस्पृश्यता मिटाने के लिए बहुत कुछ कर सकते थे और अपने आदोलन को प्रभावकारी बना सकते थे। परतु श्री गांधी ने क्या किया?

कांग्रेस के राजनीतिक इतिहास में वर्ष 1922 से 1924 के बीच का समय काफी महत्वपूर्ण रहा है। कांग्रेस द्वारा असहयोग आंदोलन की योजना सितम्बर 1920 में कलकत्ता में विशेष अधिवेशन में स्वीकार की गई थी। असहयोग आंदोलन की योजना के अनुसार पाच प्रकार से बहिष्कार करना था, जैसे विधायिका का बहिष्कार और विदेशी कपड़ों का बहिष्कार आदि। बुद्धिजीवी वर्ग ने असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव का विरोध किया था, जैसे बिपिन चंद्र पाल, चितरंजन दास, लाला लाजपत राय परतु उनके विरोध करने पर भी प्रस्ताव पास हो गया। कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन दिसंबर 1920 में नागपुर में हुआ।

1. विवरण के लिए देखिये अध्याय 7

असहयोग आंदोलन के प्रस्ताव पर वहां भी विवाद हुआ। वहां भी वही अजीब स्थिति उत्पन्न हुई। प्रस्ताव चितरजन दास द्वारा लाया गया और उसका समर्थन लाला लाजपत राय ने किया।[1] 1921 में असहयोग आंदोलन का सूत्रपात हुआ। 19 मार्च 1922 को श्री गांधी पर राजद्रोह का मुकदमा चलाया गया और उन्हें 6 वर्ष की सजा हुई। श्री गांधी को तुरंत जेल के अंदर कर दिया गया। चितरंजन दास ने विधायिका के बहिष्कार का आंदोलन छेड़ा। वल्लभ भाई पटेल, पंडित मोती लाल नेहरू और पंडित मालवीय ने उनका साथ दिया। श्री गांधी के उन अनुयाइयों द्वारा इसका विरोध किया गया जो कलकत्ता और नागपुर में असहयोग आंदोलन के विषय में पास किए गए प्रस्ताव में किसी प्रकार की कटौती करने के लिए तैयार नहीं थे। इसमें कांग्रेस में फूट पड़ गई। वर्ष 1924 में अस्वस्थता के कारण श्री गांधी समय से पहले ही जेल से छोड़ दिए गए।

श्री गांधी ने जेल से आकर देखा कि विधायिका के बहिष्कार के प्रश्न को लेकर कांग्रेस दो धड़ों में बंट गई है। झगड़ा इतना बढ़ गया था कि दोनों दल एक दूसरे पर कीचड़ उछाल रहे थे। श्री गांधी ने अनुभव किया कि यदि यों ही खींचतान चलती रही, तो कांग्रेस कमजोर हो जाएगी, इसलिए वह इस मतभेद की खाई को पाटना चाहते थे। कोई भी दल हार मानने को तैयार नहीं था। एक दूसरे के विरोध में बयान जारी होते थे। अंततः श्री गांधी ने दोनों पक्षों के मध्य सुलह के लिए कुछ ऐसे प्रस्ताव रखे, जिन्हें दोनों पक्षों ने स्वीकार कर लिया। वे प्रस्ताव इस प्रकार के थे, जिन्हें दोनों पक्षों ने प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर लियां। जो कांउसिल प्रवेश के पक्षधर थे, उन्हें प्रसन्न करने के लिए श्री गांधी ने प्रस्ताव किया कि कांग्रेस कार्य प्रणाली की सीमा के अंदर ही विधायिका प्रवेश करने वालों को अपने को सीमित करना चाहिए और जो प्रवेश के विरूद्ध थे, उनसे कहा कि वे विधायिका प्रवेश के विरूद्ध किए जा रहे अपने प्रचार को बंद करें। प्रवेश के विरोधियों के लिए श्री गांधी ने प्रस्ताव किया कि कांग्रेस का इसके लिए नए मताधिकार का आधार बनाना चाहिए। – (1) कांग्रेसी सदस्य चार आना चंदा देने के बजाए दो हजार गज सूत हाथ से कातें और हाथ से बुने वस्त्रों का प्रयोग करें। इसका उल्लंघन करने वाले अपने आप कांग्रेस की सदस्यता के अयोग्य हो जाएंगे। (2) पांच प्रकार के बहिष्कारों को कार्यान्वित करना, अर्थात विदेशी कपड़ों का बहिष्कार, सरकारी न्यायालयों का बहिष्कार, स्कूलों एवं कालेजों का बहिष्कार और अपराधियों का बहिष्कार।

1. कांग्रेस के इतिहासकार श्री पट्टाभि सीताराम्मैया ने कांग्रेस के इतिहास के पृष्ठ 347 पर लिखा है कि चितरंजन दास पूर्वी बंगाल और असम से अपने खर्चे से 250 प्रतिनिधि लाए थे और जो कुछ कलकत्ता अधिवेशन में हुआ था उस पर पानी फेरने के लिए ही उन्होंने अपनी जेब से 36000 रुपये खर्च किए थे। उस समय चितरंजन दास के पक्षधर तथा उनके विरोधी जितेन्द्र लाल बनर्जी ने पक्षधरों में झड़पें भी हुई थीं।

इस कार्यक्रम का पालन करने वाले कांग्रेस के पदाधिकारी होने के योग्य होंगे और जो लोग उस बहिष्कार के सिद्धांत में विश्वास नही करते और उन बहिष्कारों का पालन नहीं करते, वे स्वतः ही अपनी उम्मीदवारी खों बैठेंगे।

उस समय भी गांधी जी अस्पृश्यता के विरूद्ध आंदोलन छेड़ सकते थे। वह ऐसा प्रस्ताव ला सकते थे कि यदि हिंदू अपने को कांग्रेस का सदस्य बनवाना चाहते हैं, तो पहले उन्हें प्रमाण देना होगा कि वे छुआछूत नही मानते और अपने प्रमाण की पुष्टि में अपने घरेलू काम काज के लिए अस्पृश्य को नौकर रखे हुए है। इसके सिवाय और कोई प्रमाण नहीं माना जाएगा। ऐसा प्रस्ताव बहुधा सभी हिंदुओं पर लागू करना दुष्कर नहीं हो सकता था। वास्तव में वे सवर्ण हिंदू कहे जाते हैं, और उनमें से अधिकतर ऐसे हैं जो एक से अधिक घरेलू नौकर रख सकते हैं। यदि श्री गांधी हिंदुओं को इस बात के लिए राजी कर सकते थे कि कांग्रेस का सदस्य होने के लिए सूत कताई आवश्यक है, तो श्री गांधी हिंदुओं को इस बात के लिए भी तैयार कर सकते थे कि कांग्रेस की सदस्यता ग्रहण करने के लिए हिंदू अपने घरों में काम करने के लिए अस्पृश्य नौकर रखते। परंतु श्री गाधी ने ऐसा नहीं किया।

1924 से 1930 तक कोई काम नहीं हुआ। श्री गांधी ने उस अवधि में अस्पृश्यता निवारण के लिए कोई ठोस कदम नहीं उठाया और न कोई ऐसा कार्य किया जिससे अस्पृश्यों का उपकार हो। उस अवधि में श्री गांधी को अस्पृश्यों के हित में निष्क्रिय देख कर अस्पृश्यों ने एक आंदोलन चालू किया, जिसे सत्याग्रह कहते हैं। उस आंदोलन का उद्देश्य था सार्वजनिक कुओं से पानी लेने का अधिकार और सार्वजनिक मंदिरों में प्रवेश का अधिकार प्राप्त करना। महाद में चावदार तालाब सत्याग्रह, सार्वजनिक स्थानों से अस्पृश्यों को पानी भरने देने के अधिकार की मांग से शुरू हुआ। बम्बई प्रेसीडेंसी के नासिक जिले में स्थित कालाराम मंदिर पर किए गए सत्याग्रह का उद्देश्य हिंदू मंदिरों में अस्पृश्यों के प्रवेश करने के अधिकार को प्राप्त करना था। इसके अतिरिक्त अन्य और छोटे मोटे सत्याग्रह हुए। वे दोनों सत्याग्रह इस विचार से मुख्य सत्याग्रह थे कि उनसे अस्पृश्यों और उनके विरोधी सवर्ण हिंदुओं का ध्यान इस पर केंद्रित हुआ। सत्याग्रहों से सारे भारत में कोलाहल मच गया। उन अस्पृश्य नर–नारियों को हिंदुओं ने अपमानित किया और उन्हें मारा–पिटा। बहुत से अस्पृश्य घायल हुए और बहुतों को सरकार ने इस आधार पर गिरफ्तार किया कि उन्होंने शांति भंग की। वह सत्याग्रह आंदोलन पूरे 6 वर्ष तक चलता रहा और 1935 में उस समय रूका, जब नासिक जिले में येवला में हुई सभा में अस्पृश्यों ने हिंदुओं द्वारा समान सामाजिक अधिकार देने से इंकार करने के परिणामस्वरूप हिंदू धर्म त्यागने का निश्चय किया। निस्संदेह वह सत्याग्रह आंदोलन कांग्रेस से अलग किया गया था।

उन सत्याग्रहों की स्थापना अस्पृश्यों ने की थीं। अस्पृश्यों के सत्याग्रह का संचालन अस्पृश्यों के धन से होता था और अस्पृश्यों द्वारा ही उनका नेतृत्व किया जाता था। परंतु तब भी अस्पृश्यों को श्री गांधी का नैतिक समर्थन नहीं मिल सका। वास्तव में समर्थन देने का श्री गांधी को बहुत अच्छा अवसर मिला था, क्योंकि सत्याग्रह का हथियार – जिसका ध्येय स्वयं कष्ट उठा कर विरोधियों के दिल पिघलाना था – ऐसा हथियार था, जिसका अनुसरण श्री गांधी ने किया था और उन्होंने स्वराज्य प्राप्ति के लिए अंग्रेजी सरकार के विरूद्ध कांग्रेस का नेतृत्व करते समय उस हथियार का प्रयोग किया था। स्वभावतः अस्पृश्यों ने सार्वजनिक कुओं और हिंदू मंदिरों में समान अधिकार पाने के लिए हिंदुओं के विरूद्ध जो सत्याग्रह छेड़ा था, उसमें उन्हें श्री गांधी के समर्थन की बड़ी आशा थी। परंतु श्री गांधी ने सत्याग्रह को कोई समर्थन नहीं दिया। उन्होंने केवल समर्थन देने से इंकार ही नहीं किया वरन् उल्टे बड़े शब्दों में उस सत्याग्रह की निंदा की।

इस संबंध में दो उनके अनोखे उपायों का उल्लेख करना ठीक होगा जिनसे मानवीय गलतियों को सुधारा जा सकता है। ऐसे उपायों का आविष्कार और उनकी सफलता का श्रेय श्री गांधी को है। पहला उपाय है, सत्याग्रह। श्री गांधी ने ब्रिटिश सरकार की राजनीतिक विसंगतियों को दूर करने के विरूद्ध कई बार सत्याग्रह किया। परंतु श्री गांधी ने अस्पृश्यों के लिए सार्वजनिक कुएं और मंदिर खोलने के लिए हिंदुओं के विरूद्ध सत्याग्रह का अस्त्र नहीं छोड़ा। आमरण अनशन श्री गांधी का दूसरा हथियार है। ऐसा कहा जाता है कि श्री गांधी ने कुल मिला कर 21 अनशन किए थे। कुछ हिंदू मुस्लिम एकता के लिए और अधिकांश अपने आश्रम में रहने वालों द्वारा किए गए अनैतिक आचरण पर प्रायश्चित करने के संबंध में थे। एक सत्याग्रह बम्बई की सरकार के उस आदेश के विरोध में था, जिसमें बम्बई सरकार ने जेल के कैदी श्री पटवर्धन द्वारा मांग करने पर भी उसे झाड़ू लगाने का काम देने से इंकार कर दिया गया था। इन 21 अनशनों में एक भी अनशन अस्पृश्यता निवारण के लिए नहीं किया गया। यह महत्वपूर्ण तथ्य है।

1930 में गोलमेज सम्मेलन हुआ। गांधी जी सम्मेलन की कार्यवाही में 1931 में शामिल हुए। सम्मेलन भारत के स्वायत्त शासन के लिए संविधान का निर्माण करने के मूल प्रश्न पर विचार के लिए बुलाया गया था।[1] यह सर्वसम्मति से निश्चय किया गया था कि यदि भारत को स्वायत्तशासी सरकार बनानी है, तो यह सरकार जनता की हो, जनता द्वारा शासित हो और जनता के लिए हो। सभी लोग इस बात से सहमत थे कि वास्तविक रूप से सरकार वहीं ठीक होगी जो सरकार जनता द्वारा चलाई जाए, जनता की हो और जनता के लिए हो। समस्या यह

1. विवरण के लिए देखिये अध्याय 3।

थी कि ऐसे देश में जनता द्वारा संचालित सरकार कैसे बनाई जाए। जिस देश में समुदायों में भिन्नता हो, बहुसंख्यक हों, अल्पसंख्यक हों, जहां के लोगों में सामाजिक विषमता नहीं, बल्कि सामाजिक बैर भाव भी हो, ऐसी परिस्थितियों में यह आम सहमति थी कि भारत में जनता द्वारा संचालित सरकार की संभावना तब तक नही हो सकती, जब तक विधायिका और कार्यपालिका में संप्रदायों के आधार पर प्रतिनिधित्व न हो।

उस सम्मेलन में अस्पृश्यों की समस्या जटिल समस्या बन गई। इसे नई दिशा का रूप दिया गया। प्रश्न यह था कि क्या अस्पृश्यों को पहले की भांति हिंदुओं की दया पर छोड़ दिया जाए अथवा उन्हें सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के सिद्धांत पर अपनी सुरक्षा स्वयं करने के लिए साधन उपलब्ध कराए जाएं। हिंदुओं की मर्जी पर छोड़ देने के तर्क का अस्पृश्यों ने पूरी ताकत से विरोघ किया और वैसे ही संरक्षण देने की मांग की जैसे अन्य अल्पसंख्यकों को दिए गए थे। अस्पृश्यों की वह मांग सभी को स्वीकार्य थी, क्योंकि यह न्यायोचित और तर्कसंगत थी। उनका तर्क था कि आचरण का जो भेदभाव हिंदू और मुसलमानों में है, हिंदू और सिक्खों में है, हिंदू और ईसाइयों में है, वही हिंदूओं और अस्पृश्यों के बीच भी है। वह भेदभाव बहुत विस्तृत और गहन है। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच का मतभेद धार्मिक एवं सामाजिक दोनों है। हिंदुओं और मुसलमानों के मतभेद से मुसलमानों की तबाही नहीं हो सकती, क्योंकि हिंदुओं और मुसलमानों का संबंध स्वामी और सेवक का नहीं है, केवल विदेशी समझने की पृथकतावादी भावना है। जबकि हिंदुओं और अस्पृश्यों के बीच का मतभेद अस्पृश्यों की राजनीतिक तबाही का कारण बन सकता है, क्योंकि उन दोनों का संबंध स्वामी और सेवक का है। अस्पृश्यों का तर्क है कि अस्पृश्यों और हिंदूओं के बीच भेदभाव को समाप्त करने के लिए सदियों से प्रयत्न किए जा रहे हैं, परंतु कोई सफलता हाथ नहीं लगी और आगे भी कोई सफलता मिलने की आशा नहीं है। जब बहुसंख्यक हिंदुओं को सत्ता का हस्तांरण किया जा रहा है, इसलिए अस्पृश्यों को भी वही राजनीतिक संरक्षण मिलने चाहिए, जो मुसलमानों तथा अन्य अल्पसंख्यकों को दिए गए हैं।

उस समय श्री गांधी को अस्पृश्यों के प्रति सहानुभूति दिखाने का अवसर मिला था। वह अस्पृश्यों की मांगों का समर्थन करके उन्हें हिंदुओं के अत्याचारों और दमन का सामना करने के लिए सक्षम बनाते। परंतु श्री गांधी ने उनके प्रति सहानुभूति तो क्या दिखाई, उल्टे पूरी ताकत से उनकी मांगों का विरोध करने के लिए अच्छे बुरे सभी हथकंडे अपनाए। उन्होंनं अस्पृश्यों की मांगों का विरोध करने के लिए मुसलमानों से हाथ मिलाया, परंतु मुसलमान को फोड़ने में असफल होते देख कर, उन्होंने ब्रिटिश सरकार को वह निर्णय वापस लेने के लिए विवश करने के लिए आमरण अनशन किया, जिसमें मुसलमानों और अन्य अल्पसंख्यकों

के समान अस्पृश्यों को राजनीतिक अधिकार दिए गए थे। जब श्री गांधी अनशन में असफल रहे, तो उन्होंने अस्पृश्यों के साथ एक समझौता किया जिसे पूना पैक्ट कहते हैं, जिसमें अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकारों पर पानी फेर दिया गया।

वर्ष 1933 में गांधी जी ने दो आंदोलन चलाये। पहला आंदोलन मंदिर प्रवेश का था।[1] उन्होंने उस आंदोलन को दो तरीकों से चलाने की व्यक्तिगत जिम्मेदारी ली। पहला था अस्पृश्यों के लिए गुरूवयूर मंदिर खोलना। दूसरा था केंद्रीय विधानमंडल में श्री रंगा अय्यर द्वारा मंदिर प्रवेश विधेयक पास कराना। श्री गांधी ने कहा था कि यदि निश्चित तारीख तक गुरूवयूर मंदिर अस्पृश्यों के लिए नहीं खोला गया, तो वह आमरण अनशन करेंगे। परंतु गुरूवयूर मंदिर अब तक अस्पृश्यों के लिए बंद है। श्री गांधी का आमरण अनशन का वचन धरा रह गया। आश्चर्य की बात है कि आज तेरह वर्ष बीत गए, परंतु श्री गांधी ने अस्पृश्यों के लिए उस मंदिर को खुलवाने के लिए कुछ भी नहीं किया। वास्तव में श्री गांधी ने गवर्नर जनरल को मंदिर प्रवेश विधेयक को पेश करने की स्वीकृति देने से रोकने के लिए भरसक प्रयत्न किए। केंद्रीय सभा में कांग्रेस पार्टी को जिस विधेयक का समर्थन करना चाहिए था, प्रवर समिति को भेजते समय इस आधार पर उसका समर्थन करने से इंकार कर दिया कि इस विधेयक से हिंदुओं की भावनाओं को ठेस पहुंचेगी और अगले चुनाव में हिंदू कांग्रेस को इसका मजा चखाने के लिए चुनाव में हरा देंगे। उस विधेयक को कांग्रेस द्वारा विफल कर देने पर श्री रंगा अय्यर को बड़ी निराशा हुई। श्री गांधी ने इसकी कोई परवाह नहीं की, बल्कि उन्होंने इसके लिए कांग्रेस की खुल कर तारीफ की।

दूसरा आंदोलन जो श्री गांधी ने 1933 में शुरू किया, वह था हरिजन सेवक संघ[2] की स्थापना का। सारे भारत में उस संस्था की शाखाओं का जाल बिछाया गया। उस संघ की स्थापना करने के तीन उद्देश्य थे। पहला उद्देश्य था यह बताना कि हिंदू अस्पृश्यों के प्रति बहुत उदार हैं और उनके उत्थान के लिए धन दे सकते हैं। दूसरा उद्देश्य था दैनिक जीवन में अस्पृश्यों की सेवा करना। तीसरा उद्देश्य था अस्पृश्यों के मस्तिष्क में उन हिंदुओं के प्रति विश्वास जमाना जो राजनीतिक मामलों में उनसे दुराव की नीति अपनाते थे। उन तीनों में से भी कोई भी उद्देश्य पूरा नहीं हो सका। पहले झटके में ही हिंदुओं ने संघ के लिए आठ लाख रुपयों का चंदा एकत्र किया, जो उसकी तुलना में नही के बराबर था जो उन्होंने राजनीतिक उद्देश्य के लिए करोड़ों रुपये के रूप में इकट्ठा किया था। इसके बाद हिंदुओं ने अपना हाथ खींच लिया। अब संघ सरकारी अनुदान पर निर्भर करता है अथवा श्री गांधी हस्ताक्षरों को बेच कर

1. विवरण के लिए देखिये अध्याय 4
2. विवरण के लिए देखिये अध्याय 5

धनोपार्जन कर अथवा कुछ धनवानों और उन वणिकों की दानशीलता पर निर्भर कर रहा है, जो अस्पृश्यों से प्रेम होने के कारण नहीं, वरन् वे यह सोच कर कि ऐसा करके श्री गांधी को प्रसन्न रखना उनके लिए लाभदायक है। संघ की शाखाएं साल दर साल बंद कर दी जाती रहीं। संघ इतनी तेजी से सिकुड़ रहा है कि शीघ्र ही वह शाखारहित केंद्र रह जाएगा। संघ के प्रति हिंदुओं की दिलचस्पी नहीं रह गई है, वरन् इससे श्री गांधी के अफसोसनाक कार्यकलाप की झलक मिलती है। संघ उन अस्पृश्यों के बीच पैर जमाने और उनका सहयोग प्राप्त करने में असफल रहा, जिनके हितों की उससे आशा थी। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। संघ का कार्य बहुत उद्देश्यहीन है। संघ से कोई प्रभावित न हुआ। संघ उन सभी आवश्यक उद्देश्यों की उपेक्षा करता है जो अस्पृश्यों की उन्नति में सहायक होते हैं और आवश्यक हैं। संघ अस्पृश्यों को अपने प्रबंध में कठोरता से अलग रखता है। अस्पृश्य उनके लिए भिखारी से अधिक कुछ नहीं हैं और वे उनकी खैरात ही पा सकते हैं। जिसका परिणाम यह है कि अस्पृश्य संघ को पराया समझते हैं और उससे उनका कोई रिश्ता नाता नहीं है, जिसे हिंदुओं ने निपट स्वार्थ भावना से स्थापित किया है। यहां श्री गांधी को पुनः अवसर मिला था कि वह हिंदुओं और अस्पृश्यों के बीच सेतु बना पाते। वह संघ गतिविधियों में अस्पृश्यों को शामिल करके उस संस्था को उसके कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए अधिक मजबूत और शक्तिशाली संस्था बना सकते थे। परंतु श्री गांधी ने कुछ नहीं किया। उन्होने संघ को क्षीण होने दिया। संघ अपनी अंतिम सांसें गिन रहा है और श्री गांधी के जीवन काल में ही इसको निर्वाण प्राप्त हो जाएगा।

यदि श्री गांधी के अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन तथा उनकी कथनी और करनी का यह सर्वेक्षण पाठक को भ्रमित कर दे और पाठक अपना भ्रम दूर करने के लिए निम्नांकित मुद्दों पर प्रश्न करें तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं :–

(1) 1921 में श्री गांधी ने तिलक स्वराज्य फंड के लिए एक करोड़ पैंतीस लाख रुपये एकत्र किए थे। श्री गांधी ने जोर देकर कहा कि जब तक अस्पृश्यता का निवारण नही हो जाता, स्वराज्य प्राप्त करना संभव नहीं है। तब श्री गांधी ने अस्पृश्यों के हित में 43,000 रुपये की मुटठी भर धनराशि देने पर कोई आपत्ति क्यों नहीं की?

(2) 1922 में रचनात्मक कार्य की बारदोली योजना की रूपरेखा तैयार की गई। उसकी विस्तृत जानकारी के लिए एक समिति नियुक्त की गई थी। समिति ने कोई कार्य नहीं किया और भंग कर दी गई और बारदोली कार्यक्रम में अस्पृश्योत्थान की योजना निकाल दी गई। समिति के खर्चों को पूरा करने के लिए केवल 500 रुपये दिए गए थे। तब गांधी जी ने कांग्रेस कार्य समिति की इस कंजूसी और सौतेले व्यवहार के विरूद्ध आवाज क्यों नहीं उठाई? गांधी जी

ने स्वामी श्रद्धानंद का समर्थन क्यों नहीं किया, जो समिति को निश्चित की गई धनराशि के संबंध में कांग्रेस कार्यसमिति से लड़ रहे थे। श्री गांधी ने समिति भंग होने का विरोध क्यों नहीं किया? श्री गांधी ने दूसरी समिति क्यों गठित नहीं की? उन्होंने अस्पृश्यों के लिए कार्यक्रम को महत्वहीन कामों की तरह तिलांजलि देने दी।

(3) गांधी जी ने स्वराज्य प्राप्ति के आंदोलन की पांच शर्तें प्रमाणस्वरूप आवश्यक बताई थीं : (एक) हिंदू मुस्लिम एकता; (दो) अस्पृश्यता निवारण; (तीन) सार्वभौमिक रूप से सूत कातना और खादी का ही प्रयोग करना; (चार) पूर्ण अहिंसा; और (पांच) पूर्ण असहयोग। श्री गांधी ने केवल इन शर्तों का निर्धारण ही नहीं किया था, वरन् उन्होंने देशवासियों से कहा था कि इन शर्तों को पूरा किए बिना स्वराज्य नहीं मिल सकता। 1922 में श्री गांधी ने हिंदू मुस्लिम एकता के लिए अनशन किया था। 1924 में उन्होंने कांग्रेस सदस्यता प्राप्त करने के लिए सूत कातना और खादी का इस्तेमाल आवश्यक कर दिया था। तब श्री गांधी ने कांग्रेस की सदस्यता प्राप्त करने के लिए 1924 में अथवा उसके बाद किसी भी समय उन्होंने अस्पृश्यता न मानने की शर्त को इसमें शामिल क्यों नही किया?

(4) श्री गांधी ने अपने हित के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए अनेक बार अनशन किया। गांधी ने अस्पृश्यता के लिए एक बार भी अनशन क्यों नहीं किया?

(5) श्री गांधी ने शासन में हो रही गलतियों को सुधारने के लिए और स्वराज्य प्राप्ति के लिए सत्याग्रह की खोज की और ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध उसका प्रयोग किया। तब श्री गांधी ने अस्पृश्यता के लिए कुओं से पानी भर देने, मंदिर प्रवेश और अन्य सार्वजनिक स्थानों पर उनके जाने के अधिकार के लिए हिंदुओं के विरूद्ध एक बार भी सत्याग्रह या अनशन क्यों नहीं किया?

(6) श्री गांधी के सिद्धांत का अनुकरण करते हुए अस्पृश्यों ने 1929 में कुओं से पानी लेने और प्रवेश के संबंध में हिंदुओं के विरूद्ध सत्याग्रह किया तब श्री गांधी ने अस्पृश्यों के सत्याग्रह की निंदा क्यों की?

(7) गांधी जी ने घोषणा की थी कि यदि जमोरिन द्वारा गुरूवयूर मंदिर अस्पृश्यों के लिए नहीं खोला जाएगा तो वह अनशन करेंगे। परंतु जब मंदिर अस्पृश्यों के लिए नहीं खोला गया तो गांधी जी ने अनशन क्यों नहीं किया?

(8) गांधी जी ने 1932 में ब्रिटिश सरकार को धमकी दी थी कि यदि गवर्नर जनरल ने कांग्रेस की ओर से श्री रंगा अय्यर को मंदिर प्रवेश विधेयक केन्द्रीय विधानमंडल में पुरःस्थापित करने की अनुमति नहीं दी गई तो इसके परिणाम बहुत बुरे होंगे। चूंकि केंद्रीय सभा के लिए नए चुनाव कराने की घोषणा की गई, कांग्रेस ने श्री रंगा अय्यर के विधेयक का समर्थन वापस ले लिया और श्री रंगा

अय्यर को इसे यों ही छोड़ना पड़ा। यदि श्री गांधी वास्तव में मंदिर–प्रवेश के पक्ष में थे तो उन्होंने कांग्रेस का समर्थन क्यों किया? अस्पृश्यों के लिए मंदिर प्रवेश अथवा चुनावों में कांग्रेस की विजय इन दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण था?

(9) श्री गांधी जानते हैं कि अस्पृश्यों के सामने कठिनाई यह नहीं है कि उनको नागरिक अधिकार प्राप्त नहीं हैं। अस्पृश्यों की कठिनाई हिंदुओं के इस षड्यंत्र में निहित है कि उन्हें धमकी दी जाती है कि यदि अस्पृश्यों ने अपने अधिकारों का उपयोग किया, तो उन्हें इसके भयंकर परिणाम भुगतने पड़ेगे। अस्पृश्यों की सही मायनों में मदद करने का मार्ग यही है कि उनके नागरिक अधिकारों की सुरक्षा के लिए कोई संस्था हो, जिसका दायित्व उन हिंदुओं के विरूद्ध अभियोग चलाना हो जो अस्पृश्यों पर अत्याचार करने, उनका सामाजिक एवं आर्थिक बहिष्कार करने और उन्हें नागरिक अधिकारों का उपयोग करने से रोकने के दोषी पाए जाएं। श्री गांधी ने इसे हरिजन सेंवक संघ के एक उद्देश्य के रुप मे क्यों नहीं शामिल किया?

(10) श्री गांधी के राजनीतिक मंच पर आने से पहले अस्पृश्यों का उत्थान करने के लिए कुछ सवर्ण हिंदुओं ने डिप्रेस्ड क्लासेस मिशन सोसायटी बनाई थी। उस संस्था को चलाने के लिए हिंदुओं ने चंदा इकटठा किया था। उस सोसायटी का कार्य–संचालन संयुक्त बोर्डों, जिनमें हिंदू और अस्पृश्य दोनों होते थे, द्वारा किया जाता था। तब श्री गांधी ने हरिजन सेवक संघ के प्रबंध से अस्पृश्यों को क्यों अलग रखा?

(11) यदि श्री गांधी अस्पृश्यों के सच्चे मित्र हैं, तो वे अस्पृश्यों को अपनी सुरक्षा के लिए सर्वोत्तम साधन जुटाने के लिए राजनीतिक संरक्षण के विषय में तय करने का प्रश्न उन्हीं पर क्यों नहीं छोड़ देते? गांधी जी इस हद तक क्यों चले गए कि उन्होंने अस्पृश्यों को मझधार में छोड़ देने के लिए मुसलमानों से समझौता कर लिया। श्री गांधी ने अस्पृश्यों को सांप्रदायिक फैसले के लाभों से वंचित करने के लिए आमरण अनशन की घोषणा क्यों की?

(12) पूना पैक्ट स्वीकार हो जाने के बाद श्री गांधी ने कांग्रेस से यह कह कर अस्पृश्यों को विश्वास में क्यों नही लिया कि कांग्रेस अस्पृश्यों के लिए सुरक्षित सीटों पर हिंदुओं के कठपुतली अस्पृश्यो को चुनाव मैदान में न उतारे, वरन अस्पृश्यो को स्वय अपने हितचिंतक उम्मीदवारों को खड़ा करने दें?

(13) पूना पैक्ट पर स्वीकृति के पश्चात गांधी जी भलेमानुष की तरह समझौते पर क्यों नहीं कायम रहे और कांग्रेस मंत्रिमडल में अस्पृश्यों के प्रतिनिधियों को शामिल करने के लिए कांग्रेस हाई कमान को क्यों निर्देश नही दिए?

(14) मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री डा. खरे के मंत्रिमंडल में अनुसूचित जाति के सदस्य, श्री अग्निभोज के शामिल करने को श्री गांधी ने क्यों नहीं अपनी स्वीकृति प्रदान की, जबकि श्री अग्निभोज मंत्री होने की सारी योग्यताओं को पूरा करते थे? क्या श्री गांधी कह सकते हैं कि वह अस्पृश्यों में उत्कट महत्वाकांक्षाएं पैदा करने के विरूद्ध हैं?

III

इन सब प्रश्नों के संबंध में श्री गांधी के पास क्या उत्तर है? श्री गांधी के मित्रों के पास इसका क्या स्पष्टीकरण है? श्री गांधी के अस्पृश्यता निवारण आंदोलन में बहुत सी पेचीदगियां हैं, विरोधाभास और अस्थिरता है। कहीं आक्रामक भावना है तो, कहीं समर्पण की भावना पाई जाती है। आगे बढ़ना, पीछे हटना, जैसी रहस्यमय बातें हैं। वह इस आंदोलन की क्षमता में विश्वास करते हैं और अधिकांश संख्या में लोगों का कहना है कि इसके पीछे कोई ईमानदारी और निष्ठा नहीं है। इसलिए इसका कुछ स्पष्टीकरण प्रस्तुत करना आवश्यक है। यह श्री गांधी की ईमानदारी और निष्ठा की कीर्ति फैलाने वाला प्रयत्न है, न कि उनके उद्देश्य और तौर–तरीकों को समझाने का। पाठक श्री गांधी और उनके अनुयायियों से यह जानने के लिए इन प्रश्नों के उत्तर की अपेक्षा करते हैं।

निस्संदेह पाठकों को यह जानने की उत्कंठा होगी कि श्री गांधी और उनके मित्र इन प्रश्नों के उत्तर में क्या कहना चाहते हैं? जो इन प्रश्नों का उत्तर जानना चाहता है, उसके लिए यह स्वाभाविक है कि उत्तर सुनने की उसकी कितनी उत्कंठा होगी। वे चाहे जिस ढंग से और जब चाहें उत्तर दें, हम उन पर छोड़ते हैं। फिलहाल यह हमसे पूछा जा सकता है कि श्री गांधी तथा उनके अस्पृश्यता विराधी आंदोलन के विरूद्ध अस्पृश्य क्या कहना चाहते हैं। श्री गांधी के आंदोलन के संबंध में अस्पृश्यों का दृष्टिकोण स्पष्ट करना कठिन नहीं है।

क्या अस्पृश्य श्री गांधी को अपनी मांगों के प्रति निष्ठावान व्यक्ति के रूप में देखते हैं? उत्तर नकारात्मक है। वे श्री गांधी में निष्ठा की कोई झलक नहीं पाते। यह कैसे हो सकता है? वे उस मनुष्य को अपनी मांगों के प्रति कैसे गंभीर मान सकते है जो 1921 में जो बारदोली कार्यक्रम के कार्यान्वयन में अस्पृश्यता निवारण के विरूद्ध रहा हो? वे उस मनुष्य को कब और कैसे अपनी मांगों के प्रति ईमानदार मान सकते हैं जिसने स्वराज्य फंड के लिए एकत्र किए गए एक करोड़ 25 लाख रुपयों में से चिर–उपेक्षित अस्पृश्यों के हित में कंजूसी से केवल 43 हजार रुपये स्वीकार किए जाने पर कोई आपत्ति नहीं की? वे उस व्यक्ति से क्या आशा रख सकते हैं जिसने 1924 में अस्पृश्यता निवारण के लिए हिंदुओं

को विवश करने का अवसर मिलने पर भी, कुछ नहीं किया यद्यपि उसे उस समय शक्ति और अवसर दोनों प्राप्त थे? ऐसा करने से तीन उद्देशों की प्राप्ति होती। इससे कांग्रेस के राष्ट्रवाद की परीक्षा हो जाती। इससे अस्पृश्यता निवारण में सहायता मिलती और इससे यह भी सिद्ध हो जाता कि क्या श्री गांधी अस्पृश्यता की बुराई के बारे में जो कहते हैं वह ह्रदय से कहते हैं और इसे एक पाप तथा हिंदू धर्म पर कलंक मानते हैं। परंतु श्री गांधी ने ऐसा क्यों नहीं किया? क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि गांधी जी को अस्पृश्यता निवारण की अपेक्षा चरखा कातने में अधिक रूचि थी? क्या इससे यह नहीं प्रतीत होता कि अस्पृश्यता निवारण का श्री गांधी के कार्यक्रम में कोई विशेष स्थान नहीं है? क्या इससे यह स्पष्ट नहीं हो जाता कि श्री गांधी अपने बयानों में जो कहा करते थे कि अस्पृश्यता हिंदू धर्म पर धब्बा है और अस्पृश्यता निवारण के बिना स्वराज्य नहीं होगा – यह केवल लारालप्पा एवं धोखा था। इसके प्रति उनकी कोई ईमानदारी नहीं थी? वे श्री गांधी पर कैसे विश्वास कर सकते हैं जिन्होंने गुरूवयूर मंदिर को अस्पृश्यों के लिए न खोलने पर अनशन करने का वचन दिया, मंदिर न खुलने पर उन्होंने अनशन पर चुप्पी साध ली। मंदिर उनके लिए हमेशा के लिए बंद हो गया? पहले तो श्री गांधी ने मंदिर प्रवेश विधेयक को पेश कराने का प्रयत्न किया परंतु बाद में उस तरफ से हाथ खींच लेने के लिए वह भी सहमत हो गए। इस स्थिति में उन पर कैसे विश्वास किया जाए? श्री गांधी की निष्ठा में कैसे विश्वास किया जाए, जो यह कहते रहे हैं कि मैं उस मंदिर में नहीं जाऊंगा, जो अस्पृश्यों के लिए न खोला गया हो। तब तो उन्हें अस्पृश्यों के लिए मंदिर खुलवाने के लिए सभी प्रकार के प्रयत्न करने चाहिए थे, परंतु उन्होंने क्या किया? श्री गांधी में कैसे विश्वास किया जाए, जो छोटी–छोटी बातों पर अनशन कर बैठते थे, परंतु अस्पृश्यों के पक्ष में कभी अनशन नहीं किया? श्री गांधी में अस्पृश्य कैसे विश्वास करें जो अपने प्रत्येक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए तो सत्याग्रह करते हैं, परतु अस्पृश्यों के लिए हिंदुओं के विरूद्ध कोई सत्याग्रह नहीं करते? वे अस्पृश्य श्री गांधी में कैसे विश्वास करें, जो केवल अस्पृश्यता के दोषों पर उपदेश देने में कुशल हैं, पर अस्पृश्यों के लिए कुछ करने के नाम पर शून्य?

क्या अस्पृश्य श्री गांधी को उनके ऐसे कर्मों के कारण ईमानदारी और निष्कपटता का दर्जा दे सकते थे? वे कहते हैं कि श्री गांधी ईमानदार नहीं हैं। स्वराज्य आंदोलन के समय श्री गांधी ने अस्पृश्यों से ब्रिटिश सरकार का पक्ष लेने का अनुरोध किया था। उन्होंने उनसे ईसाइयत अथवा अन्य कोई धर्म न ग्रहण करने का अनुरोध किया। उन्होंने उनसे कहा था कि इसका हल हिंदू धर्म में ही निकल आएगा। श्री गांधी ने हिंदुओं से अस्पृश्यता निवारण को स्वराज्य प्राप्ति

की एक शर्त बतलाया था। तब भी 1921 में तिलक स्वराज्य फंड से अस्पृश्यों के लिए अत्यन्त कम धनराशि 43 हजार रुपये स्वीकार की गई थी। जब समिति ने अस्पृश्योत्थान की योजना को निष्प्राण कर दिया तब श्री गांधी विरोध में एक शब्द भी नहीं बोले।

श्री गाधी के पास तिलक स्वराज्य फड का एक करोड़ 25 लाख रुपया था। श्री गांधी ने उस धनराशि में से अस्पृश्योत्थान के लिए पर्याप्त धन क्यों नहीं निश्चित किया? यह निस्संदेह सच है। श्री गाधी अस्पृश्यों के हितों के संबध में पूर्णतया अनमनापन रखते थे। उस मनोवृत्ति के लिए श्री गांधी का स्पष्टीकरण बहुत विचित्र है। उन्होंने कहा कि वह स्वराज्य प्राप्ति के आंदोलन की योजना तैयार करने में व्यस्त थें और उसी कारण उन्हें अस्पृश्यों की ओर ध्यान देने का समय नहीं मिला। उन्होंने अपनी सफाई में केवल अपना टालमटोल का रवैया ही नहीं स्पष्ट किया, बल्कि अस्पृश्यों के प्रति अनमनेपन का नैतिक औचित्य प्रस्तुत किया था। उन्होंने इस तर्क का सहारा लिया कि उन्होंने देश के राजनीतिक उद्देश्यो के लिए अपने को समर्पित किया हुआ माना है और अस्पृश्यों के हित को अलग रख कर कोई गलती नहीं की है, क्योंकि उनके विचार से हाथी के पाव में सबका पाव होता है और यह कि हिंदू स्वयं अंग्रेजों के गुलाम हैं, ऐसी दशा में एक गुलाम दूसरे गुलामों का उद्धार कैसे कर सकता है। दासानुदास और हाथी के पाव मे सबका पाव अच्छे मुहावरे हैं। परंतु वे इससे बढ़कर कोई सच नहीं बता सकते कि यदि देश की दौलत बढती है, तो समझा जाता है कि देश के प्रत्येक नागरिक की दौलत बढ़ती है। परंतु हम गांधी जी को एक तत्त्वदर्शी नहीं मानते। हम उनकी गंभीरता का विवेचन कर रहे हैं। क्या हम उस मनुष्य की ईमानदारी को सही मान लें जो अपनी जिम्मेदारियों से हाथ झाड़ कर पल्ला छुडा ले और कोई बहाना गढ़ ले? क्या अस्पृश्य विश्वास कर लें कि श्री गांधी उनके हितैषी हैं?

तब अस्पृश्य श्री गांधी को ईमानदार और निष्ठावान कैसे कह सकते है जब वे उनके प्रति तथा मुसलमानों और सिखों के प्रति संवैधानिक सरक्षणों के मामले में दोगली नीति अपनाते हों?

श्री गाधी अस्पृश्यों और अन्य अल्पसंख्यकों को संवैधानिक संरक्षण देने पर अपने दोगलेपन का औचित्य समझाने के लिए एक और दलील देते हैं। उनका तर्क है कि मुसलमानों और सिखों की पहचान करने के लिए वे ऐतिहासिक कारणों से विवश हैं। उन्होंने कभी स्पष्ट नहीं किया कि वे कौन से कारण हैं? इसके सिवा वे कुछ नही कह सकते कि मुसलमान और सिख शासक जातियां रही हैं। श्री गाधी के ऐसे बचकाना और गैर–प्रजातान्त्रिक तर्कों के आगे झुक जाने का

कौन बुरा नहीं मानेगा। तब भी वह सीना ठोक कर कह सकते थे कि वह सभी अल्पसंख्यकों के साथ समान व्यवहार करेंगे तथा ऐसे बेतुके और बेकार तर्कों को कोई महत्व नहीं देंगे। प्रश्न यह है कि ऐसे तर्क श्री गांधी को अस्पृश्यों की मांगों का विरोध करने से कैसे रोक सकते थे? श्री गांधी ने अपने तर्क में ऐतिहासिक कारणों के अतिरिक्त किन्ही अन्य कारणों से न बंधे होने का दावा क्यों किया? श्री गांधी ने यह क्यों नहीं सोचा कि यदि मुसलमानों ओर सिक्खों के बारे में ऐतिहासिक कारण हैं, तो क्या अस्पृश्यों के संदर्भ में नैतिक कारण नहीं हैं? वास्तविकता तो यह है कि ऐतिहासिक कारण का तर्क केवल खोखला तर्क है, जिसे तर्क की संज्ञा नहीं दी जा सकती। यह अस्पृश्यों की मांगें न मानने का एक बहाना मात्र है।

जब श्री गांधी को बहुसंख्यक बनाम अल्पसंख्यक के प्रश्न का सामना करना पड़ता है, तब वह सकते में पड़ जाते हैं। तब वे भूल जाने और आंख मूंद लेने में ही गनीमत समझते है। परतु परिस्थितियां उनका पीछा नहीं छोड़ती और उन्हें उन समस्याओं पर विचार करना ही पड़ता है। पिछली बार 21 अक्तूबर 1939 के हरिजन के संपादकीय में "फिक्शन आफ मेजोरिटी" विषय पर लिखा गया लेख बचकानापन ही है। उस लेख में श्री गांधी ने उन लोगों की खिल्ली उड़ाने मैं कोई कसर नहीं की, जो लगातार उस प्रश्न को उठाते रहे हैं। उस लेख में श्री गांधी ने मुसलमानों को अल्पसंख्यक मानने से इंकार कर दिया। उन्होंने सिक्खों और भारतीय ईसाइयों को भी अल्पसंख्यक मानने से इंकार कर दिया। उनका तर्क है कि तकनीकी दृष्टि से वे इसलिए अल्पसंख्यक नहीं हैं कि उन्हें सताया गया है। वे मात्र संख्या बल में अल्पसंख्यक हैं। इसलिए असल में वे अल्पसंख्यक बिल्कुल नहीं। तब अनुसूचित जातियों के बारे में श्री गांधी का क्या विचार है? क्या वे इंकार कर सकते हैं कि वे अल्पसंख्यक हैं? मैं श्री गांधी के ही शब्दों का हवाला देता हूं :–

> "मैंने यह स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है कि भारत में वास्तव में ऐसे अल्पसंख्यक हैं ही नहीं जिनके अधिकार स्वाधीनता के बाद खतरे में पड़ जाएंगे। परंतु दलिल वर्ग अपवाद है, जो स्वयं अपना हितसाधन नहीं कर सकते।"

श्री गांधी के इस कथन को मान लेने से कि सही अर्थों में केवल अनुसूचित जातियां ही भारत में अल्पसंख्यक हैं, जो भारत के स्वतंत्र न होने देने पर सांप्रदायिक हिंदू बहुमत के शासन में अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो सकती। अपनी अंतरात्मा की इस आवाज के बावजूद श्री गांधी इस बात पर अड़े रहे कि वे अस्पृश्यों के लिए संवैधानिक संरक्षणों की बात नहीं मानेंगे। ऐसे व्यक्ति को अस्पृश्य गंभीर और ईमानदार कैसे मान सकते हैं?

श्री गांधी ने गोलमेज सम्मेलन में अस्पृश्यों के राजनीतिक संरक्षण के अधिकारों का डटकर विरोध किया था। उन्होंने अस्पृश्यों की आकांक्षाओं पर पानी फेरने में कोई कसर नहीं छोड़ी। उनकी मांगों पर मिट्टी डालने के लिए और उन्हें अकेला बियाबान में छोड़ देने के लिए मुसलमानों की चौदह मांगें मान कर सौदेबाजी का कुचक्र चलाया। श्री गांधी ने अल्पसंख्यक समिति की बैठक में कहा था – "यदि वह अस्पृश्यों की मांगों पर स्वीकृति प्रदान कर देती है, तो विरोध करने वाला मैं कौन होता हूं?" यह श्री गांधी की बड़ी गलती थी कि उन्होंने समिति के निर्णय का उल्लंघन करने का प्रयत्न किया और अस्पृश्यों की मांग का विरोध करने के लिए श्री जिन्ना द्वारा मुसलमानों के लिए पेश की हुई चौदह सूत्री मांग को ज्यों का त्यों मानते हुए मुसलमानों को अपने पक्ष में फोड़ने का प्रयास किया। यह उनकी रणनीति का एक अंग था। उन्होंने मुसलमानों को अपने पक्ष में किया। मुसलमानों की 14 सूत्री मांग के विषय में उन्होंने अस्पृश्यों की मांग का समर्थन वापस ले लेने के टेढ़े प्रश्न को उनके सामने रख दिया कि या तो वे अस्पृश्यों की मांग नामंजूर करें अथवा अस्पृश्यों का पक्ष लेकर अपनी 14 सूत्री मांग से हाथ धोएं। अंत में श्री गांधी की रणनीति मात खा गई। मुसलमानों ने 14 सूत्री मांगें भी मनवा ली और अस्पृश्यों के मामले में पाला बदला। परंतु यह कांड श्री गांधी के विश्वासघात का प्रमाण बन कर रहा गय। उस मनुष्य के चरित्र का दर्पण और क्या हो सकता है, जो दूसरे लोगों के साथ आपराधिक दुरभिसंधि के और अपने वायदे से मुकर जाए। कौन उसे अपना मित्र कहेगा? ऐसा मित्र जिसके मुंह में राम बगल में छूरी हो। ऐसे मनुष्य को अछूत कैसे ईमानदार और निष्कपट मान सकते हैं?

श्री गांधी ने सांप्रदायिक प्रश्न का निपटारा करने के लिए पंचफैसले के तौर पर मामला ब्रिटिश प्रधानमंत्री पर छोड़ दिया। अस्पृश्यों की मांगों का श्री गांधी द्वारा विरोध करने पर भी ब्रिटिश सरकार ने अस्पृश्यों के राजनीतिक संरक्षण की मांग मान ली। उस पंचाट में एक पक्ष होने के कारण श्री गांधी फैसला मानने के लिए बाध्य थे। परंतु फिर भी श्री गांधी ने उस फैसले को पलीता लगाने की ठान ली और आमरण अनशन की घोषणा से दुनिया और देश को हिला दिया। उस अनशन का मुख्य उद्देश्य था, अस्पृश्यों को दिए गए संवैधानिक संरक्षण की स्वीकृति वापस लेने के लिए ब्रिटिश सरकार पर दबाव डालना। श्री गांधी के पिछलग्गुओं में से एक ने उसे युगांतकारी अनशन कहा है। पता नहीं यह युगांतकारी कैसे था? यह कोई वीरता का काम नहीं था, बल्कि वीरता के विपरीत प्रयास था। उस आंदोलन का आरंभ गांधी जी ने इसलिए किया था कि उन्हें विश्वास था कि अस्पृश्य और ब्रिटिश सरकार दोनों उस आमरण अनशन की धमकी के सामने कांप उठेंगे और उनकी जिद के सामने हथियार डाल देंगे।

अस्पृश्य और ब्रिटिश सरकार उनकी भभकी में आकर पीछे हटने को तैयार हो गए और हट भी गए। जब श्री गांधी को समझ में आया कि उन्होंने कोई गलत चाल चल दी है, तो उनकी सारी बहादुरी छूमंतर हो गई। श्री गांधी ने यह कह कर आमरण अनशन आरंभ किया था कि जब तक अस्पृश्यों को दिया गया संरक्षण पूर्णतया वापस नहीं लिया जाता और बिना अधिकारों के तथा बिना मान्यता दिए उन्हें पूर्णतया निस्सहाय अवस्था में नहीं छोड़ दिया जाता, तब तक मैं आमरण अनशन पर रहूंगा। वही श्री गांधी कातर स्वर में कह रहे थे: "मेरा जीवन तुम्हारे हाथों में है, क्या तुम मुझे नहीं बचाओगे?" श्री गांधी ने पूना पैक्ट पर झटपट हस्ताक्षर कर दिए, यद्यपि उस समझौते में प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए निर्णय को रद्द नहीं किया गया था, जैसा कि श्री गांधी ने मांग की थी, वरन् कुछ और तथा भिन्न प्रकार के संवैधानिक संरक्षण दे दिए गए थे। वह समझौता इस बात का पक्का प्रमाण है कि एक रणबांकुरा रणछोड़दास बन गया। उसे अपने प्राणों और सम्मान को बचाने की व्याकुलता ने घेर लिया।

श्री गांधी के उस आमरण अनशन में कोई शूरवीरता नहीं थी। यह उनका बहुत ही अनुचित और छछोरा कार्य था। यह कृत्य अस्पृश्यों के विरूद्ध था और निस्सहाय लोगों के विरूद्ध बहुत ही खराब धींगामुश्ती थी जिसका उद्देश्य उन्हें ऐसे संवैधानिक संरक्षणो से वंचित करना था, जो उन्हें प्रधानमंत्री द्वारा दिए गए फैसले से मिले थे और उन्हें हिंदुओं की दया पर छोड़ देना था। श्री गांधी का यह कृत्य घृणित और दुष्टता से भरा हुआ था, फिर अस्पृश्य ऐसे मनुष्य को ईमानदार और निष्कपट कैसे कह सकते हैं?

श्री गांधी ने आमरण अनशन के बार पूना पैक्ट पर हस्ताक्षर किए। लोग कहते हैं कि श्री गांधी गभीरता से विश्वास करते थे कि अस्पृश्यों के लिए राजनीतिक संरक्षण हनिकारक है। परंतु वह व्यक्ति कैसे ईमानदार और निष्कपट हो सकता है, जिसने अस्पृश्यों की राजनीतिक मांग का विरोध किया हो, जो अस्पृश्यों को किनारे करने के लिए मुसलमानों को साथ लेने के लिए तैयार हो जाए, जिसने आमरण अनशन किया और अंत में उन्हीं मांगों को मान लिया – क्योंकि पूना पैक्ट और सांप्रदायिक फैसले में कोई अधिक अंतर नही है – जब उसे ज्ञात हो जाए कि विरोध करने से कोई लाभ नहीं होगा और विरोध भी सफल नहीं होगा – तो ऐसे मनुष्य को ईमानदार और निष्कपट कैसे कहा जा सकता है? एक ईमानदार और निष्कपट मनुष्य अस्पृश्यों की मांगों को, जिन्हें किसी समय वह हानिकारक मानता था वही उन्हे हानिरहित कैसे मान सकता है?

क्या अस्पृश्य श्री गांधी को अपना मित्र तथा सहयोगी मान सकते हैं? उत्तर नकारात्मक है। वे उन्हें अपना मित्र बिल्कुल नहीं मानते। और मान भी कैसे सकते

हैं? ऐसा हो सकता है कि श्री गांधी ईमानदारी से विश्वास करते हों कि अस्पृश्यों की समस्या सामाजिक समस्या है। लेकिन अस्पृश्य श्री गांधी को कैसे अपना मित्र मान सकते हैं, जो जातियों को कायम रखना चाहते हैं और अस्पृश्यता समाप्त करना चाहते हैं, क्योंकि यह बात साफ है कि अस्पृश्यता केवल जातियों का फलितार्थ है और इसीलिए जातियों को समाप्त किए बिना अस्पृश्यता समाप्त करने की कैसे आशा की जा सकती है? ऐसा हो सकता है कि श्री गांधी ईमानदारी से सोचते हों कि छूतछात की समस्या सामाजिक प्रक्रियाओं से हल की जा सकती है। परंतु अस्पृश्य उस मनुष्य को अपना मित्र कैसे मान सकते हैं, जो हठधर्मी हो और जी जान से उस राजनीतिक प्रक्रिया के विरोध में जुटा हो, जिसके बारे में और सभी लोग सहमत हैं कि राजनीतिक प्रक्रिया से सामाजिक प्रक्रिया पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ओर इससे उस समस्या को हल करने में सहायता ही मिलेगी? उस मनुष्य को अस्पृश्यों का मित्र कैसे माना जा सकता है, जो देश में अस्पृश्यों को राजसत्ता के ऊंचे पदों पर पहुंचने देने में विश्वास नहीं रखता? राजनीतिक संरक्षणों के इस विवाद पर श्री गांधी को निम्नलिखित मांगों में से कोई एक मांग को चुनना चाहिए था। वह अस्पृश्यों के हितैषी बन सकते थे। ऐसा होने पर वह केवल अस्पृश्यों की मांगों का समर्थन ही न करते, वरन् अस्पृश्यों की ओर से मांग उठाने से पहले ही अपने आप उन मांगों का प्रस्ताव लाते और उनके लिए संघर्ष करते। क्योंकि अस्पृश्यों के लिए लड़ने वाला व्यक्ति, उन्हें इस खुशी से बढ़कर क्या दे सकता था कि अस्पृश्यों के लिए ऐसे प्रावधान करा दिए जाते, जिससे उनके सदस्य विधानमंडल में पहुंचते, मंत्रिमंडल में मंत्री होते और ऊचे–ऊंचे पदों पर होते? निश्चय ही यदि श्री गांधी अस्पृश्यों के लिए लड़ने वाले योद्धा होते, तो इन सुविधाओं के लिए अवश्य लड़ते। दूसरे यह कि यदि वह अस्पृश्यों के नेता नहीं होना चाहते, तो कम से कम उनकी मांगों का समर्थन करने वाले सहयोगी तो हो ही सकते थे, उनको नैतिक और आर्थिक मदद तो दे ही सकते थे। तीसरा यह कि यदि श्री गांधी अस्पृश्यों के अगुआ और संगी साथी भी न बनते, तो दूसरी बात, जो वह कर सकते थे, वह यह थी कि अस्पृश्यों के प्रति अति प्रचारित सहानुभूति में अपनी घोषणाओं पर ही टिके रहते, तो भी अस्पृश्यों के मित्र माने जा सकते थे। फिर एक मित्र के नाते, उन्हें शुभचिंतक और निष्पक्षता का रूख अपनाना चाहिए था। अस्पृश्यों की संरक्षण की मांगों को मनवाने में बाधक न बन कर, उन्हें पूरी सहायता करनी चाहिए थी। यदि वह शुभचिंतक एवं निष्पक्ष रूख नही अपना सकते थे, तो शुद्ध निष्पक्षता का रूख अपनाते और अस्पृश्यों से कहते कि यदि गोलमेज सम्मेलन अस्पृश्यों को राजनीतिक संरक्षण प्रदान करने के लिए तैयार हो, तो उन्हें वे मिल जाए। श्री गांधी इस कार्य में न उनकी सहायता करते और न ही रोड़ा ही अटकाते। इन मर्यादायुक्त विचारों को ताक पर रख कर श्री गांधी अस्पृश्यों के दुश्मन बन कर

उतर आए तब ऐसी दशा में अस्पृश्य श्री गांधी को अपना मित्र एवं सहयोगी कैसे मान सकते हैं?

IV

श्री गांधी का वह अस्पृश्यता विरोधी आंदोलन असफल रहा। यहां तक कि कांग्रेसी अभिलेखों में भी यही बात स्वीकार की गई है। उनमें से मैं कुछ का उद्धरण दे रहा हूं :– 17 अगस्त 1939 को बम्बई विधान सभा में अनूसूचित जाति के सदस्य, श्री बी.के. गायकवाड़ ने प्रश्न किया कि बम्बई प्रेसीडेंसी में 1932 से जब से श्री गांधी ने मंदिर प्रवेश आदोलन चलाया है अब तक अस्पृश्यों के लिए मंदिर खोले गए हैं। कांग्रेसी मंत्री द्वारा दिए गए आंकडों के अनुसार खोले गए मंदिरों की संख्या 142 थी। उनमें से बिना स्वामित्व के 121 मंदिर थे, जो रास्ते में बने थे, जिनकी देखभाल कोई नहीं करता था और जिनमें कभी कोई भी आदमी पूजा करने के लिए नहीं जाता था। दूसरा तथ्य सामने आया कि गुजरात में श्री गांधी के अपने जिले में केवल एक मंदिर अस्पृश्यों के लिए खोला गया था।

गांधी जी के 10 मार्च 1940 के गुजराती समाचार पत्र "हरिजन बंधु" में कहा गया :–

> "अस्पृश्यों के पाठशालाओं में प्रवेश पाने क संबंध में अभी भी अस्पृश्यता जितनी बाधक गुजरात में है उतनी और कहीं नहीं है।"[1]

बम्बई क्रानिकल ने 27 अगस्त 1940 के अपने अंक में हरिजन सेवक संघ के मासिक पत्र से एक अंश उद्धत किया था जो इस प्रकार है :–

> "अहमदाबाद जिले में गोधावी के हरिजनों को और उनके बच्चों को स्थानीय बोर्ड के स्कूल मे पढ़ने के लिए भेजने पर, उन्हें सवर्ण हिंदुओं द्वारा इतना सताया गया था कि 42 हरिजन परिवारों ने अन्ततः उस स्थान को ही छोड़ दिया और वे सानन्द के तालुक में चले गए।"

27 अगस्त 1943 को बम्बई प्रेसीडेंसी में थाना में रहने वाले अस्पृश्य नेता श्री एम.एम. नंदगावकर, जो थाना नगरपालिका के उपाध्यक्ष रह चुके थे, को एक हिंदू होटल में चाय नहीं पिलाई गई। बम्बे क्रानिकल ने इस घटना पर टिप्पणी करते हुए अपने दिनांक 28 अगस्त 1943 के अंक में लिखा :–

> "श्री गांधी ने 1932 में जब अनशन किया था, उस समय अस्पृश्यों के लिए मंदिर और होटल खोलने के लिए ताबड़तोड़ प्रयत्न होते थे। अब मंदिर प्रवेश और होटल प्रवेश के संबंध में हालत पहले जैसी

1. संजना के *'सेंस एंड नानसेंस इन पालिटिक्स'* से उद्धरत।

> हो गई है। सब तरह से स्वच्छ हरिजन भी मंदिर तथा होटल में प्रवेश नहीं पा सकता। तब भी बहुत से अस्पृश्यता विरोधी कार्यकर्ताओं ने इन बुराइयों के विषय में कड़ा रूख न अपनाते हुए कहा है कि उन्हें ऊंचा उठाया जाए, हरिजनों को साफ रहना सिखाया जाए, तब उनकी सार्वजनिक कठिनाइयां स्वतः समाप्त हो जाएंगी।"

जनवरी 1944 में कानपुर में अखिल भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्यवाही पर बाम्बे क्रानिकल ने 4 फरवरी 1944 को अपने अंक में लिखाः–

> "हिंदू समाज इतना बेजान है कि अस्पृश्यता और सवर्ण दोनों आज भी एक साथ फलफूल रहे हैं। कुछ अंग्रेजों का मिथ्या प्रचार है कि जात–पांत में जरूर कोई जादूमंतर है कि हिंदू संस्कृति आज भी जीती जागती है। कुछ अन्य तर्क देते हैं कि सदियों से तमाम झकझोरों के बावजूद जातियों का अस्तित्व न बचता जान कर दुख होता है कि श्री गांधी तथा अन्य सुधारकों ने काफी काम किया है, परंतु अस्पृश्यता टस से मस नहीं हुई। गांवों की कौन कहे बम्बई जैसे शहरों में झाड़ू लगाने वाले भंगी चाहे जितने साफ वस्त्र पहन कर निकलें सवर्ण हिंदू होटलों में तो कौन कहे ईरानी होटलों में चाय तक नहीं पी सकते।"

अस्पृश्यों ने सदैव यह बात कही है कि श्री गांधी का अस्पृश्यता–विरोधी अभियान असफल हो गया है। पच्चीस वर्षों की मेहनत के बाद भी अस्पृश्यों के लिए होटल बंद हैं, कुएं बंद हैं, मंदिर बंद हैं और देश के अधिकांश भागों में मुख्यतया गुजरात में – उनके लिए स्कूल भी बंद हैं। समाचारपत्रों से जो उद्धरण दिए गए हैं वे स्वागत योग्य सबूत हैं, विशेष रूप से उन समाचार पत्रों से जो कांग्रेस द्वारा संचालित किए जाते हैं। क्योंकि समाचार पत्र उन्हीं बातों की पुष्टि कर रहे हैं, जो अस्पृश्य इस विषय में कहते आ रहे हैं। आगे ओर कुछ कहने की आवश्यकता नहीं केवल एक प्रश्न पूछना है।

श्री गांधी उस अभियान में क्यों असफल रहे? मेरे विचार में उनकी असफलता के तीन कारण हैं।

पहला कारण तो यह है कि वे हिंदू जिन्हें श्री गांधी अस्पृश्यता निवारण की अपील करते हैं उनकी अपीलों को अनसुनी कर देते हैं। ऐसा क्यों होता है? यह शाश्वत सत्य है कि मनुष्य की कथनी और करनी में अंतर होता हैं। ऐसे कथन के फलस्वरूप जो प्रभाव पड़ता है, दोनों समान नहीं होते। ऐसी बातों का क्षणिक प्रभांव होता है, फिर वह घटते–घटते लुप्त हो जाता है। श्रोता उसे किसी भाव से भी क्यों न सुन रहा हो वह वक्ता के विषय में तदनुसार अपनी धारणा

बनाता है, उससे यह बात समझने में मार्ग प्रशस्त हो जाता है कि श्री गांधी के अस्पृश्यों के प्रति दिए गए उपदेश हिंदुओं को प्रभावित क्यों नहीं कर सके? लोग कुछ देर उनकी प्रार्थना सभा में उपदेश सुनने के बाद मनोविनोद स्थल पा क्यों चले जाते हैं और उनके उपदेशों पर गंभीरता से विचार क्यों नहीं करते? यह सारा दोष हिंदू जनता का नहीं है। दोष अपने आप में श्री गांधी का है। श्री गांधी ने अपने आपको राजनीतिक स्वतंत्रता दिलाने वाला महात्मा बता कर ख्याति अर्जित की है, न कि आध्यात्मिक धर्मगुरू की। इसके पीछे उनके जो भी इरादे हों लेकिन श्री गांधी स्वराज्य के प्रचारक के रूप में देखे जाते हैं। यही कारण है कि हिंदू श्री गांधी के राजनीतिक उपदेश को भलीभांति हृदयंगम करते हैं, परंतु उनके सामाजिक अथवा धार्मिक उपदेशों को नहीं। इसलिए उनके अस्पृश्यता विरोधी अभियान के संबंध में दिए गए उपदेश व्यर्थ जाते हैं। श्री गांधी केवल गांधीवादी राजनीतिक कारीगर हैं। इसीलिए उन्हें अपने राजनीतिक उद्देश्य तक ही चिपके रहना चाहिए। उन्होंने सोचा था कि वह सामाजिक प्रश्नों का हल निकाल सकते हैं। यह उनकी भूल थी। एक राजनीतिज्ञ उस काम को नहीं कर पाएगा। इसलिए अस्पृश्य श्री गांधी से क्यों आशा करते हैं कि गांधी जी के उपदेशों से उन्हें कोई लाभ होगा?

दूसरा कारण है कि गांधी हिंदूओं से विरोध नहीं लेना चाहते, चाहे वह विरोध अस्पृश्यता विरोधी अभियान चलाने के लिए नितांत आवश्यक क्यों न हो। कुछ दृष्टांतों से श्री गांधी की मनोवृत्ति स्पष्ट हो जाती है।

श्री गांधी के बहुत से मित्र श्री गांधी को अस्पृश्यों के हितों के प्रति उनकी ईमानदारी और गंभीरता के लिए श्रेय देते हैं और आशा करते हैं कि अस्पृश्य उनमें केवल इस आधार पर विश्वास करें कि श्री गांधी ऐसे मनुष्य हैं, जो अस्पृश्यता निवारण की आवश्यकता पर हिंदुओं को धर्मोपदेश दिया करते हैं। वे कबीर के दोहे की अनदेखी कर देते हैं कि "पोथी पढ़–पढ़ जग मुआ पंडित भया न कोय, ढ़ाई आखर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय।" और उन्होंने श्री गांधी से कभी भी यह नहीं कहा कि वे अस्पृश्यता निवारण की आवश्यकता पर हिंदुओं को धर्मोपदेश देना बंद करें और अस्पृश्यता निवारण के लिए सत्याग्रह अभियान चलाएं ओर अनशन करें। यदि वे श्री गांधी से इस विषय में स्पष्टीकरण मांगें, तो उन्हें मालूम होगा कि श्री गांधी केवल अस्पृश्यता पर धर्मोपदेश देकर आत्म–संतुष्टि क्यों कर लेते हैं।

श्री गांधी धर्मोपदेश के अतिरिक्त कुछ नहीं करेंगे, इसके सही कारण अस्पृश्यों की जानकारी में सबसे पहले 1929 में उस समय आए[1], जब 1929 में अस्पृश्यों ने बम्बई प्रेसीडेंसी में अपने नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए मंदिर प्रवेश एवं सार्वजनिक कुओं से पानी लेने के लिए हिंदुओं के विरूद्ध सत्याग्रह आरंभ

किया, तो उन्हें आशा थी कि उस सत्याग्रह में श्री गांधी का आशीर्वाद उन्हें मिलेगा, क्योंकि गलतियों को सुधारने का हथियार सत्याग्रह श्री गांधी का ही हथियार था। जब सत्याग्रह के लिए श्री गांधी से समर्थन करने की अपील की गई तो श्री गांधी ने हिंदुओं के विरूद्ध छेड़े गए सत्याग्रह अभियान की निंदा का बयान जारी करके अस्पृश्यों को आश्चर्य में डाल दिया। उस विषय में श्री गांधी द्वारा दिया गया तर्क बहुत अजीब था। श्री गांधी ने अपने बयान में कहा था कि सत्याग्रह हथियार का प्रयोग केवल विदेशियों के विरूद्ध किया जाए। अपने ही भाइयों अथवा देशवासियों के विरूद्ध नहीं। क्योंकि हिंदू अस्पृश्यों के भाई हैं और अस्पृश्यों के साथ ही इसी देश के वासी हैं वे सत्याग्रह अधिकार से वंचित कर दिए गए। एक धर्मात्मा के ऐसे हास्यास्पद कथन को श्री गांधी ने अपने ही हथियार सत्याग्रह को बकवास साबित कर दिया। श्री गांधी ने ऐसा क्यों किया? केवल इसलिए कि वह हिंदुओं को नाराज करना और उत्तेजित करना नहीं चाहते थे।

दूसरे प्रमाण के तौर पर मैं कविता की घटना का उल्लेख करना चाहूंगा। कविता अहमदाबाद में एक गांव है। वर्ष 1935 में अस्पृश्यों ने उस गांव के हिंदुओं से मांग की कि अन्य हिंदू बच्चों के साथ–साथ अस्पृश्यों के बच्चों को भी गांव के स्कूल में भरती किया जाए। इस पर चिढ़ कर हिंदुओं ने बदले में अस्पृश्यों का पूर्ण सामाजिक बहिष्कार कर दिया। इस बहिष्कार से संबंधित घटनाएं श्री ए. वी.ठक्कर द्वारा रिपोर्ट में वर्णित की गई थीं, जो अस्पृश्यों की ओर से मध्यस्थता करने के लिए कविता गए थे। उन्होने जो कहानी सुनाई वह इस प्रकार थी:–

> "एसोसियेटेड प्रेस ने 10 तारीख को घोषित किया कि कविता के सवर्ण हिंदू हरिजन बच्चों को कविता गांव के स्कूल में भरती करने के विषय में सहमत हो गए हैं। अहमदाबाद के हरिजन सेवक संघ के मंत्री द्वारा 13 तारीख को इसका प्रतिवाद किया गया। मंत्री ने अपने बयान में कहा था कि हरिजनों ने उस स्कूल में अपने बच्चे न भेजने का निर्णय लिया है। ऐसा निर्णय उन्होंने अपनी इच्छा से नहीं लिया था, वरन् सवर्ण हिंदुओं द्वारा ऐसा बयान देने के लिए उन्हें विवश किया गया था। इस मामले में गांव के मरासियाओं ने, जिन्होंने गांव के गरीब हरिजनों के विरूद्ध सामाजिक बहिष्कार की घोषणा की थी – गरीब हरिजन, जुलाहा, चमार, और दूसरे लोग थे, जिनकी संख्या 100 परिवारों से अधिक की थी। वे खेतों में मेहनत करने से वंचित कर

1. जब 1924 में वैकोम में एक सत्याग्रह हुआ था जिसका उद्देश्य था ट्रावनकोर में अस्पृश्यों के प्रयोग के लिए सार्वजनिक मार्ग का खुलवाना, श्री गांधी ने उन सत्याग्रहियों के लिए सिक्खों द्वारा खोले गए लंगर का विरोध किया। श्री गांधी द्वारा इसका बताया गया कारण स्पष्ट रूप से वर्णित नहीं किया गया।

दिए गए थे। चरागाहों में उनके जानवर घास चरनें नहीं जा सकते थे और उनके बच्चे दूध के लिए तरसते थे। यही नहीं, एक हरिजन नेता को महादेव की कसम खाने के लिए विवश किया गया कि वह और उसके दूसरे साथी अपने बच्चों को स्कूल भेजने के कोई प्रयत्न नहीं करेंगे। इस प्रकार मामला तय हुआ।

"परंतु 10 तारीख को उस जाली समझौते की खबर के बाद भी और गरीब हरिजनों के पूर्णतया आत्मसमर्पण करने पर 19 तारीख तक सामाजिक बहिष्कार वापस नहीं लिया गया था और आंशिक रूप से जुलाहों पर 22 तारीख तक लागू रहा। वह बहिष्कार चमारों पर से थोड़ा पहले उठा लिया गया क्योंकि गरासिया अपने मुर्दा जानवरों को स्वयं नहीं हटा सकते थे और इसलिए उन्होंने चमारों से पहले समझौता कर लिया। इतने ही अत्याचारों से इति नहीं हो गई, वरन् हरिजनों के कुओं में 15 तारीख को और फिर 19 तारीख को मिट्टी का तेल उढेल दिया गया। कोई भी कल्पना कर सकता है कि बेचारे हरिजनों पर कैसे भयानक अत्याचार किए गए, क्योंकि उन्होंने गरासिया शहजादों के साथ अपने बच्चों को उस स्कूल में पढ़ाने की हिम्मत की थी। मैं 22 तारीख को प्रातः गरासियाओं से मिला। उन्होंने कहा कि वें उस बात को कभी नही बर्दाश्त कर सकते कि स्कूल में ढ़ेड़ों और चमारो के बच्चे उनके बच्चों के साथ बैठें। मैं 23 तारीख को अहमदाबाद के जिलाधीश से इस आशय से मिला कि ऐसी स्थिति समाप्त करने के लिए कोई रास्ता निकल आए, परंतु कोई परिणाम नहीं निकला।

"हरिजन बच्चे इस प्रकार गांव के स्कूल में पढ़ने से वंचित कर दिए गए, परंतु किसी ने उनकी सहायता नहीं की। इस निराशा में हरिजनों को इतना विवश कर दिया कि वे सबके सब दूसरे गांव छोड़ देने की सोच रहे हैं।"

यह खबर श्री गांधी को दी गई थी। श्री गांधी ने क्या किया? श्री गांधी ने कविता गांव के अस्पृश्यों को निम्नलिखित सलाह दी[1] :–

"आत्म–सहायता के बराबर कोई सहायता नहीं। ईश्वर उन्हीं की सहायता करता है जा स्वयं अपनी सहायता करते हैं। यदि सम्बन्धित हरिजन कविता की भूमि त्यागने के अपने कथित संकल्प को पूरा करेगें तो वे न केवल स्वयं प्रसन्न होंगे बल्कि उनका भी मार्ग प्रशस्त करेगें जिन्हें इस प्रकार का व्यवहार सहना पड़ा है। यदि लोग रोजगार की

1. हरिजन, 5 अक्तूबर, 1935

> तलाश में दूसरे स्थान पर चले जाते हैं तो आत्म-सम्मान की तलाश में लोगों को यह अवश्य ही कर देना चाहिए। मैं आशा करता हूं कि हरिजनों के हितैषी कविता को छोडने में, जहां उनका आदर नहीं होता उन गरीब परिवारों की मदद करेगें।"

श्री गांधी ने कविता के अस्पृश्यों को अपनी जन्मभूमि त्यागने की सलाह दी। परंतु श्री गांधी ने श्री ठक्कर को यह सलाह क्यों नहीं दी कि वह कविता के हिंदुओं पर मुकदमा चलवाएं और अस्पृश्यों को अपने अधिकार प्राप्त करने में पूरी सहायता करें? अस्पृश्यों के उत्थान के लिए यह कुछ कर सकते करते, परंतु हिंदुओं को नाराज करके नहीं। अस्पृश्यों के उत्थान के लिए श्री गांधी जैसा मनुष्य क्या भलाई का कार्य कर सकता है? इस सबसे स्पष्ट है कि श्री गांधी हिंदुओं के भले बन कर ही रहना चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने हिंदुओं के विरूद्ध छेड़े गए सत्याग्रह का विरोध किया। यही कारण है कि श्री गांधी ने अस्पृश्यों की मांगों का पूरी शक्ति के साथ विरोध किया, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि अस्पृश्यों की मांगें उनके उद्देश्यों के विरूद्ध हैं। श्री गांधी हिंदुओं के भले बने रहने के इतने इच्छुक हैं कि उन्हें अस्पृश्यों की भलाई की कोई चिंता नहीं है। यही कारण है कि श्री गांधी का अस्पृश्यता निवारण का कार्यक्रम केवल जबानी जमा खर्च है। उसका कोई सार्थक फल नहीं है।

तीसरा कारण यह है कि श्री गांधी यह नहीं देखना चाहते कि अस्पृश्य संगठित हों और शक्तिशाली बनें। उन्हें डर है कि अस्पृश्य संगठित होकर शक्तिशाली बन कर हिंदुओं की दासता से मुक्त हो जाएंगे और हिंदुओं की ऊंच-नीच की व्यवस्था को कमजोर कर देंगे। हरिजन सेवक संघ के कार्यकलाप इस बात के ज्वलंत उदाहरण हैं। हरिजन सेवक संघ का पूरा उद्देश्य अस्पृश्यों में अपने हिंदू स्वामियों के प्रति दास मनोवृत्ति तथा परावलंबन का भाव पैदा करना था। चाहे जिस दृष्टिकोण से संघ की परीक्षा की जाए उसका मुख्य उद्देश्य अस्पृश्यों में मानसिक दासता पैदा करने के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

हरिजन सेवक संघ का कार्य अस्पृश्यों को लालच देकर हिंदुओं की गुलामी के जाल में फंसाए रहना है जैसे कि पौराणिक कथा की पिशाचिनी पूतना का वर्णन भागवत में किया गया है। मथुरा का राजा कंस कृष्ण को मारना चाहता था, क्योंकि ज्योतिषियों ने उसे बतलाया था कि वह कृष्ण के हाथों मारा जाएगा। यह जान कर कि कृष्ण का जन्म हो गया है कंस ने पूतना से कृष्ण को उसके शैशव काल में ही मार डालने की तरकीब करने को कहा। पूतना ने एक सुंदरी का रूप धारण किया और यशोदा के पास गई। उसने अपने स्तनों में जहर लगा दिया था और धाय की तरह कृष्ण को दूध पिला कर उन्हें मारने का मौका तलाश करने लगी। शेष कथानक को कहने की यहां कोई आवश्यकता नहीं। इतना

कथानक कहने का उद्‌देश्य केवल इतना है कि वास्तविक लक्ष्य सदैव एक सा नहीं होता, जैसा कि प्रत्यक्ष उद्‌देश्य होता है और एक धाय भी हत्यारिन हो सकती है। संघ अस्पृश्यों के लिए वहीं है, जो पूतना कृष्ण के लिए बनी थी। संघ अस्पृश्यों को सेवा के बहाने अस्पृश्यों के दिमाग से स्वतंत्रता की भावना को समाप्त कर देना चाहता है। अस्पृश्यों ने अपने आंदोलन के आरंभ में कुछ उदार हिंदू नेताओं का मार्गदर्शन प्राप्त किया था। गोलमेज सम्मेलन के समय से अस्पृश्य पूर्णतया आत्म–विश्वासी होकर स्वतंत्र रूप से संगठित होने लगे। उन्होंने हिंदुओं की उदारता पर निर्भर न रह कर अपनी जो मांगें पेश की थी वे उनके अधिकार थे। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्री गाधी द्वारा हरिजन सेवक संघ की स्थापना का उद्देश्य अस्पृश्यों की स्वतंत्रता की भावना को समाप्त कर देना था। हरिजन सेवक संघ ने छोटी–मोटी सेवांए करके ऐसे कृतज्ञ अस्पृश्यों का झुंड इकट्ठा कर लिया था जिनसे यही प्रचार करने का काम लिया जाता था कि श्री गांधी और हिंदू ही अस्पृश्यों के संरक्षक है। आइरिश लीडर डेनियल ओकोनेल ने एक बार कहा था कि कोई भी स्त्री अपने सतीत्व की कीमत पर कृतज्ञ नहीं हो सकती। अस्पृश्य समझते हैं कि श्री गांधी द्वारा हरिजन सेवक संघ की स्थापना अस्पृश्यों की स्वतंत्रता चेतना को समाप्त करने के लिए की गई है जो कुछ श्री गांधी चाहते थे, वही संघ ने किया।

हरिजन सेवक संघ ने सबसे बडी हानि अस्पृश्य विद्यार्थियों को ऐसे छात्रावासों में रख कर पहुंचाई, जो संघ द्वारा संचालित थे। उन अस्पृश्य विद्यार्थियों पर विचार करते समय हमें महाभारत के दो महत्वपूर्ण पुरूषों की याद आ जाती है। भीष्म ने बड़े जोर शोर के साथ घोषणा कर दी कि पांडवों का पक्ष सही है और कौरवों का पक्ष गलत। परंतु जब दोनों दलों में युद्ध का समय आया तब भीष्म पांडवों के विरूद्ध कौरवों की ओर से लड़े। जब उनसे इस प्रकार कौरवों का पक्ष लेने का कारण उचित सिद्ध करने के लिए कहा गया, तो उन्होंने निर्लज्जता से कह दिया कि उन्होंने कौरवों का नमक खाया है। देवासुर संग्राम में कच देवताओं का पक्षधर था। राक्षसों को संजीवनी मंत्र मालूम था, जिससे वे अपने मृत राक्षसों को जीवित कर लेते थे। देवताओं को यह मंत्र मालूम नहीं था। इसलिए वे देवताओं को जीवित न कर सकने के कारण युद्ध में पराजित हो रहे थे। देवों ने कच को राक्षसों के गुरू के पास इस निर्देश के साथ भेजा कि वह उनसे किसी प्रकार उस मंत्र को सीख कर शीघ्र वापस आ जाए। आरंभ में कच असफल रहा। अंत में वह राक्षसों के आध्यात्मिक पुरोहित गुरू शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी को अपने प्रेम जाल में फंसा कर उससे विवाह करने के लिए इस शर्त पर सहमत हो गया कि देवयानी उस मंत्र को सीखने में कच की सहायता करे। देवयानी ने अपनी शर्त पूरी कर दी। परंतु कच के मंत्र प्राप्ति के पश्चात देवयानी से

विवाह करने की शर्त तोड़ दी और वह यह कह कर कि विवाह की शर्त से बढ़कर उसकी जाति का हित है, रफूचक्कर हो गया।

मेरे विचार में भीष्म और कच दोनों अजीब नैतिक दुश्चरित्रता के शिकार थे जो कुछ समय के लिए स्वार्थ साधन करने के अतिरिक्त कुछ नहीं जानते थे। इसी प्रकार हरिजन सेवक संघ द्वारा सचालित छात्रावासों में रहने वाले छात्र भीष्म और कच की भूमिका निभा कर श्री गांधी और कांग्रेस की प्रशंसा के गीत गा रहे हैं। जब वे छात्रावासों से बाहर आते हैं, तब वे कच की भूमिका निभाते हैं और श्री गांधी तथा कांग्रेस के विरूद्ध प्रचार करते हैं। यह देख कर मुझे बहुत दुख होता हैं कि अस्पृश्य नवयुवकों के लिए इस प्रकार के चारित्रिक पतन से अधिक बुरा और क्या हो सकता है। यह श्री गांधी के हरिजन सेवक संघ द्वारा अस्पृश्यों के साथ किया गया सबसे बड़ा अपराध है। इससे उन अस्पृश्यों के चरित्र का पतन किया गया है। इससे उनकी स्वतंत्र भावना को नष्ट किया गया है। यह यही हुआ जो श्री गांधी चाहते थे।

चौथा उदाहरण लीजिए। हरिजन सेवक संघ सवर्ण हिंदुओं द्वारा संचालित किया जाता है। कुछ अस्पृश्यों ने यह मांग की कि संघ अस्पृश्यों को सौंप दिया जाए और उसका सचालन अस्पृश्य स्वयं करें। कुछ अन्य अस्पृश्यों ने मांग की, कि संघ के मुख्य संचालक बोर्ड में अस्पृश्यों को प्रतिनिधित्व दिया जाए। श्री गांधी ने उन दोनो मांगों पर टका सा जवाब दे दिया, जो बड़े से बड़ा धूर्त व्यक्ति भी नहीं कर सकता। श्री गांधी का पहला तर्क यह था कि हरिजन सेवक संघ हिंदुओं द्वारा अस्पृश्यता बरतने के पाप का प्रायश्चित करने का माध्यम है। हिंदुओं को अपने किए पर अवश्य प्रायश्चित करना है। इसीलिए अस्पृश्यों को संघ के संचालन में कोई स्थान नहीं मिल सकता। दूसरा तर्क यह है कि एकत्र किया गया धन हिंदुओं से प्राप्त हुआ है, अस्पृश्यों से नहीं और क्योंकि वह धन अस्पृश्यों से प्राप्त नहीं हुआ है, इसलिए अस्पृश्य संघ के संचालन बोर्ड के प्रतिनिधि नहीं बन सकते। श्री गाधी की अस्वीकृति बरदाश्त की जा सकती है, परंतु उनके द्वारा दिए गए तर्क इतने अपमानजनक हैं कि कोई भी स्वाभिमानी इस संघ से वास्ता रखने से इंकार कर देगा। इससे कोई इंकार नहीं कर सकता कि हरिजन सेवक संघ एक न्यास के समान है और अस्पृश्य उस संस्था से लाभ प्राप्त करता है। इस संबंध में कानून और प्राकृतिक न्याय को जानने वाला कोई भी व्यक्ति यह जानता है कि सभी लाभप्राप्तकर्ताओं को उस न्यास के उद्देश्य और लक्ष्य जानने का पूरा अधिकार है और उन्हे यह भी जानने का अधिकार है कि धन के उपयोग के विषय में कोई अनियमितताएं तो नहीं बरती जा रही हैं। लाभार्थियों को यह भी अधिकार है कि विश्वास खो जाने पर न्यासी को हटा सकते हैं। उस आधार पर सघ की प्रबंधकारिणी समिति में अस्पृश्यों के प्रतिनिधित्व के अधिकार को

अस्वीकार करना असंभव हो जाएगा। श्री गांधी इस स्थिति में भी कोई बात मानने का तैयार नहीं थे। एक आत्म–स्वाभिमानी अस्पृश्य इसमें स्थान पाने के लिए गिड़गिड़ाना पसंद नहीं करेगा ओर जो श्री गांधी की दान–दक्षिणा पर अस्पृश्यों के भविष्य को न छोड़ने पर विश्वास रखता है उसे श्री गांधी से झगड़ने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। वह स्वाभिमानी अस्पृश्य यह कहने के लिए बिल्कुल तैयार है कि यदि नीचता आभूषण है, तब श्री गांधी का तर्क लाजवाब है। यह आभूषण श्री गांधी को मुबारक हो। तब यदि अस्पृश्य संघ का बहिष्कार करते हैं, तो श्री गांधी को पतंगे नहीं लगने चाहिए।

हरिजन सेवक संघ को संचालित करने में अस्पृश्यों को भाग न लेने देने के यही वास्तविक कारण नहीं है। वास्तविक कारण तो इससे भिन्न हैं। पहला तो यह कि यदि संघ अस्पृश्यों को सौंप दिया जाए, तो श्री गांधी ओर कांग्रेस के पास अस्पृश्यों पर उल्लू की लकड़ी फिराने का और कोई साधन नहीं रह जाएगा। अस्पृश्य हिंदुओं की कृपा पर निर्भर रहना बंद कर देंगे। दूसरी बात यह कि अस्पृश्य स्वतंत्र हो जाने पर अपने कल्याण के लिए हिंदुओं पर कृतज्ञता जताना बंद कर देंगे। ये ऐसे कारण हैं, जो श्री गांधी द्वारा हरिजन सेवक संघ की स्थापना के उनके सर्वोच्च उद्देश्य के बिल्कुल विपरीत हैं। श्री गांधी ईसाइयों जैसी मिशन कंपाउड की भावना अस्पृश्यों में पैदा करना चाहते हैं। सही कारण है कि श्री गांधी हरिजन सेवक संघ के नियंत्रण ओर प्रबंध में अस्पृश्यों को सम्मिलित नहीं होने देना चाहते। क्या यह अस्पृश्यों के उत्थान की इच्छा के अनुकूल है? क्या श्री गांधी अस्पृश्यों को स्वतंत्रता दिलाने वाले कहे जा सकते हैं? क्या श्री गांधी अस्पृश्यों के मुक्तिदाता कहे जा सकते हैं? क्या श्री गांधी की इस करतूत से स्पष्ट नहीं है कि अस्पृश्यों को हिंदुओं की दासता से मुक्त करने के बजाए, उन्हें अधिक बड़े शिकंजे में कसना चाहते हैं। यही कारण है कि श्री गांधी का अस्पृश्यता निवारण अभियान असफल रहा।

V

अंत में सब मिला कर, क्या यह कहा जा सकता है कि क्या श्री गांधी अस्पृश्यों के छीने हुए मानव अधिकार उन्हें पुनः वापस दिला सकते हैं? उत्तर स्पष्ट है कि नहीं। वे सभी अधिकार हिंदुओं के पास हैं। श्री गांधी ने उन अधिकारों को अस्पृश्यों को दिलाने के लिए कुछ भी नही किया और न उन अधिकारों की प्राप्ति करने में उन्होंने अस्पृश्यों की कोई सहायता की। उल्टे श्री गांधी ने अस्पृश्यों के मार्ग में सदैव रोड़ा अटकाया। अस्पृश्य अनुभव करते हैं कि हिंदुओं की दासता से मुक्ति पाने के उनके मानवता के अधिकार राजनीतिक सत्ता के अतिरिक्त और किसी प्रकार प्राप्त नहीं हो सकते। दूसरी ओर, श्री गांधी का कहना है कि उनके उपदेश और उनकी उदारता तथा हिंदुओं का उत्साह ही अस्पृश्यों की सभी

कठिनाइयों को दूर करने का सबसे बड़ा उपाय है। क्या अस्पृश्य हिंदुओं की अनुकंपा और उनके उत्साह पर विश्वास कर सकते है? उनकी अनुकंपा पर विचार करना चाहिए, जो एक उन्माद है और प्रतिशोध का संगम है। परंतु अस्पृश्यों का कौन मित्र है, जो उनसे कह सकता है कि हिंदूओं की उस दयनीय अनुकंपा और उत्साह में वे विश्वास कर उन पर निर्भर करें? जब से पिछले दो हजार वर्षों से अस्पृश्यता अस्तित्व में आई है, सवर्ण हिंदुओं ने दिन प्रति दिन अस्पृश्यों का खून चूसा है। तरह–तरह से उनको विखंडित किया है ओर पददलित किया है। उन दो हजार वर्षो में हिंदुओं ने अस्पृश्यों पर कब दया दिखाई और उदारता बरती है? केवल आठ लाख हिंदुओं ने वह भी, जब कि श्री गांधी ने व्यक्तिगत रूप से सारे देश का भ्रमण करते हुए दया की भीख मांगी। अपनी योजना को कसौटी पर कसते हुए श्री गांधी यह इच्छा व्यक्त कर सकते थे कि अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकार ही उनकी मुक्ति का एकमात्र उपाय हैं। वास्तव में इस मांग का औचित्य स्पष्ट है कि साधारण सूझबूझ का मनुष्य भी समझ सकता है कि अस्पृश्यों के हाथ में कार्यपालिका की शक्ति आ जाने पर उनके कल्याण का जो काम एक साल में हो सकता है, संन्यासियों के सौ वर्ष के उपदेश भी उसके सामने कुछ नहीं। परंतु अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकारों के विषय में श्री गांधी को वितृष्णा है। तब अस्पृश्य क्यों न कहें "गांधी से सावधान रहो" जब वे यह भली भांति जानते हैं कि श्री गांधी अस्पृश्योद्धार के लिए राजनीतिक प्रक्रिया को चलने नहीं देंगे, जबकि वह इस वास्तविकता से अवगत हैं कि अस्पृश्यों को सामाजिक प्रक्रिया द्वारा सहायता पहुचा कर उनका उद्धार करना पूर्णतया निष्फल रहा है।

इस संबंध में अमरीका गृहयुद्ध में संघ और दासता के संबंध में दो प्रश्नों पर राष्ट्रपति लिंकन का आचरण याद आता है। उस आचरण का परिचय श्री होरेस ग्रीले और राष्ट्रपति लिंकन के बीच वर्ष 1862 में जो पत्रव्यवहार हुआ था उससे मिलता है[1]। श्री ग्रीले ने राष्ट्रपति को संबोधित अपने पत्र "द प्रेयर आफ टवंटी मिलियन्स" में कहा था :–

> "राष्ट्रपति जी। उस विस्तृत धरती पर अनिच्छुक प्रतिबद्ध बुद्धिवादी व्यक्ति नहीं है, जो संघ का हितैषी हो और यह न अनुभव करता हो कि विद्रोह को दबाने के लिए सभी प्रयत्न किए जाएं। साथ–साथ यह भी विचार उठते हैं कि उत्तेजित करने वाली दासता की बातें अनर्गल और व्यर्थ हैं।"

इसके उत्तर में लिंकन ले कहा :–

> "यदि कुल लोग ऐसे हैं, जो तभी संघ की सुरक्षा करेंगे, जब वे भी

1. इब्राहिम लिंकन वांङमय, खंड XI पृ. Xii - Xiii

दासता से सुरक्षित रख सकें तो मैं उनसे सहमत नहीं हूं।"

"यदि कुछ लोग ऐसे हैं, जो संघ का बचाव तब तक नहीं करेंगे, जब तक कि दासता भी समाप्त न की जाए, तो मैं उनसे सहमत नहीं हूं।"

"मेरा सर्वश्रेष्ठ उद्‌देश्य संघ को बचाना है, दासता को बचाना या उसे समाप्त करना नहीं।"

यदि मैं किसी गुलाम को स्वतंत्र किए बिना संघ की सुरक्षा कर सकता हूं, तो मैं करूंगा। यदि सभी गुलामों को स्वतंत्र करके ही संघ की सुरक्षा हो सकती है, तो मैं करूंगा और यदि कुछ गुलामों को स्वतंत्र कर और कुछ को नहीं, तो मैं उसे भी करूंगा।"

नीग्रो दासता और संघ के प्रश्न के संबंध में राष्ट्रपति लिंकन के ये विचार थे। उन विचारों से उस व्यक्ति का दूसरा ही चरित्र उभरता है, जिसे निग्रो लोगों के मुक्तिदाता के रूप में जाना जाता है। वास्तव में यह स्पष्ट रूप मे नीग्रो जनता के उद्धार में विश्वास नहीं करते थे। स्पष्ट रूप में जनता की सरकार, जनता द्वारा सरकार और जनता के लिए सरकार के सिद्धांत के रचयिता प्रेसीडेंट लिंकन के लिए यह एतराज करने की बात नहीं होनी चाहिए थी कि काले (नीग्रो) लोगों की सरकार श्वेत (अमरीकंस) लोग़ों द्वारा और श्वेतों के लिए हो। श्री गांधी की भावना स्वराज्य और अस्पृश्यों के विषय में ठीक वैसी ही है जैसा कि राष्ट्रपति लिंकन की भावना नीग्रो लोगों की स्वतंत्रता के प्रश्न पर और संघ के संबंध में थी। श्री गांधी उसी प्रकार स्वराज्य चाहते थे, जिस प्रकार लिंकन अमरीकीसंघ चाहते थे। परंतु श्री गांधी अस्पृश्यों को राजनीतिक अधिकार देकर हिंदू धर्म के ढांचे में किसी प्रकार की दरार उत्पन्न कर हानि पहुंचाने के बदले में स्वराज्य नहीं चाहते थे, जैसा कि राष्ट्रपति लिंकन तब तक नीग्रो को स्वतंत्र नहीं करना चाहते थे, जब तक कि अमरीकी संघ के लिए वैसा करना अनिवार्य न हो। निस्संदेह श्री गांधी और राष्ट्रपति लिंकन के विचारों में यही अंतर था। राष्ट्रपति लिंकन नीग्रो लोगों का उद्धार करने के लिए तैयार हो जाते यदि ऐसा करना संघ को सुरक्षित रखने के लिए वह आवश्यक समझते। श्री गांधी की सोच उससे भिन्न है। श्री गांधी अस्पृश्यों को राजनीतिक विस्तार देने के लिए तैयार नहीं है, चाहे वह स्वराज्य के लिए जरूरी भी हो। श्री गांधी का रूख ऐसा है कि अस्पृश्यों को राजनैतिक अधिकार नहीं मिलने चाहिए बेशक स्वराज्य खतरे में ही क्यों न पड़ जाए।

कुछ अस्पृश्य संभवतः इस विचार से प्रभावित है कि सारी बातें बीती हुई बातें

1. हरिजन दिनांक 13 अक्तूबर, 1940

हैं और श्री गांधी पूना पैक्ट स्वीकार कर लेने के बाद अब अस्पृश्यों की राजनीतिक मांगों का विरोध नहीं कर सकते, क्योंकि पूना पैक्ट में वह भी एक पक्ष है। इस नाते गांधी जी से आशा की जाती है कि वह अस्पृश्यों को भारत के राष्ट्रीय जीवन में एक पृथक तत्व मानेंगे। यह पूरा भ्रम है, क्योंकि इस बात पर विश्वास करने के बहुत से कारण हैं कि पूना पैक्ट के बाद भी श्री गांधी के विचारों में कोई अंतर नहीं आया है और अस्पृश्यों के प्रति उनका वही पुराना ढर्रा है, जैसा कि अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकारों के विषय में पूना पैक्ट से पहले गोलमेज सम्मेलन में था।[1] इसका प्रमाण है कि 1940 में ब्रिटिश सरकार ने भारत के राष्ट्रीय जीवन में अस्पृश्यों को पृथक अस्तित्व के रूप में घोषित किया और कहा कि भावी संविधान में उनकी भी राय लेना आवश्यक है। इस पर गांधी विरोध करने के लिए मैदान में उतर आए। जब वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने अस्पृश्यों का पृथक अस्तित्व घोषित किया और कहा कि संविधान में उनकी सम्मति आवश्यक है तो श्री गांधी ने कहा :–

> "मैंने अनुभव किया कि कांग्रेस द्वारा राजाओं, मुस्लिम लीग और अनुसूचित जातियों के साथ भी समझौता न किए जाने को वायसराय द्वारा और बाद में भारत सचिव द्वारा भारत की स्वतंत्रता के अधिकार को अंग्रेजों द्वारा मान्यता दिये जाने के मार्ग में रूकावट के रूप में पेश किया जाना कांग्रेस और जनता के प्रति अन्याय था।"
>
> × × ×
>
> "इस विवाद में अस्पृश्यों को सम्मिलित करके ब्रिटिश सरकार के अयथार्थ प्रस्ताव को और भी अव्यावहारिक बना दिया गया है। वे जानते हैं कि अस्पृश्यों का कांग्रेस विशेष ध्यान रखती है और कांग्रेस ब्रिटिश सरकार की अपेक्षा उनके हितों की रक्षा अच्छे ढंग से कर सकती है। इसके अतिरिक्त अस्पृश्य वर्ग हिंदू समाज की तरह अनेक जातियों में बंटा है और अस्पृश्य वर्गों की किसी जाति का एक सदस्य सभी अस्पृश्यों का सच्चा प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता।"

श्री गांधी द्वारा दिया गया तर्क कितना बचकाना है। यह कहा जा सकता है कि श्री गांधी ने वायसराय द्वारा अस्पृश्यों को दिए गए राजनीतिक अधिकारों के विरोध में अपनी हड़बड़ी में अपना बयान देते हुए यह कहना भूल गए कि यदि वर्ग अनेक जातियों में बंटे हुए हैं और किसी एक जाति का सदस्य उन सब जातियों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता, तो मुसलमानों तथा भारतीय

1. हरिजन दिनांक 13 अक्तूबर, 1940

ईसाइयों के विषय में भी स्थिति इससे भिन्न नहीं है। मुसलमान तीन वर्गों में विभाजित हैं – (1) सुन्नी, (2) शिया और (3) मोमिन। इसमें प्रत्येक में अनेक जातियां होती हैं, जो आपस में खानपान तो कर सकते हैं, परंतु शादी–विवाह नहीं। भारतीय ईसाई भी (1) कैथोलिक और (2) प्रोटेस्टेंट में विभाजित हैं। कैथोलिक पुनः छोटे वर्गों (1) सवर्ण ईसाई और (2) अवर्ण ईसाई में विभाजित हैं। दोनों कैथोलिक और प्रोटेस्टेंट में जातियां होती हैं, जिनमें आपस में विवाह संबंध नहीं होते और सवर्ण ईसाई तथा गैर–सवर्ण ईसाइयों में आपस में खानपान नहीं होता और न वे एक ही गिरजे में हो सकते हैं। इससे स्पष्ट है कि श्री गांधी पूना पैक्ट का एक पक्ष होते हुए भी पक्का इरादा किए हुए हैं कि अस्पृश्यों को पृथक अस्तित्व का दर्जा नहीं किया जा सकता और वह कोई भी तर्क प्रस्तुत करने के लिए तैयार हैं, चाहे वह उनके विरोध को न्यायोचित भी न सिद्ध कर सके।

संक्षेप में जहां तक अस्पृश्यों का प्रश्न है, श्री गांधी संघर्ष के पथ पर आरूढ़ हैं। वह फिर मुसीबत पैदा कर सकते हैं। उन पर विश्वास करने का समय अभी नहीं आया है। अस्पृश्यों की सुरक्षा के लिए सबसे अच्छा मार्ग यही है कि वे श्री गांधी से सावधान रहें!

अध्याय : 11

गांधीवाद

अस्पृश्यों की तबाही

I

भारतीय लोग इधर जबकि भारत के सामाजिक और आर्थिक जीवन के पुनर्निर्माण की बात करने लगे हैं, वे व्यष्टिवाद बनाम समष्टिवाद, पूंजीवाद बनाम समाजवाद, रूढ़िवाद बनाम प्रगतिवाद, जैसे वादों पर बात करते हैं परंतु हाल में भारतीय क्षितिज पर एक नए वाद का अभ्युदय हुआ है। इसे गांधीवाद कहते हैं। यह सच है, कि श्री गांधी ने निकट भविष्य में गांधीवाद, जैसे किसी प्रकार के वाद के अस्तित्व में आने से इंकार किया है। श्री गांधी का यह इंकार उनकी विनम्रता से अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। परन्तु इससे गांधीवाद का अस्तित्व झुठलाया नहीं जा सकता। गांधीवाद पर बहुत सी पुस्तकें लिखी गई हैं, जिनका प्रतिवाद श्री गांधी ने कभी नहीं किया। उस गांधीवाद की ओर भारत के तथा उसके विदेशों के लोगों का ध्यान आकर्षित हुआ है। कुछ लोगों को इसमें इतना विश्वास है कि वे गांधीवाद को मार्क्सवाद का विकल्प मानने तक से नहीं हिचकते।

गांधीवाद के अनुयायी, जिन्होंने पिछले पृष्ठों का अध्ययन किया हो, यह तर्क प्रस्तुत कर सकते हैं कि संभव है कि श्री गांधी ने अस्पृश्यों के लिए उतना काम नहीं किया हो, जितना कि अस्पृश्य उनसे अपेक्षा करते रहे हों, परंतु क्या गांधीवाद से अस्पृश्यों को कोई आशा नहीं करनी चाहिए? गांधीवाद के अनुयायी मुझ पर आरोप लगा सकते हैं कि अस्पृश्यों के विषय में केवल गड़े मुर्दे उखाड़ कर मैं श्री गांधी के यदा कदा उठाए उनके द्वारा निर्धारित सिद्धांतों की अनदेखी करता हूं। मैं यह मानने के लिए तैयार हूं कि कभी कभी ऐसा होता है कि जो मनुष्य किसी लम्बे सिद्धांत का प्रतिपादन करता है, वह कोई छोटा कदम उठाता है, तो उसे उसके लिए क्षमा किया जा सकता है इस आशा से कि किसी दिन उस सिद्धांत में गतिशीलता आएगी, जिससे उन लोगों की ओर भी ध्यान जाएगा जिनकी उपेक्षा की गई है। गांधीवाद अध्ययन की दृष्टि से अपने आप में काफी रोचक

है। परंतु गांधीवाद के विषय में चर्चा करने के बाद श्री गांधी के बारे में विचार करना काफी कठिन काम होगा, इसलिए मैं गांधीवाद और अस्पृश्यों के विषय पर पहले विचार नहीं करूंगा। साथ ही मैं यह भी जानता हूं कि यदि मैं इसकी उपेक्षा करता हूं तो वह दुर्भाग्यपूर्ण होगा, क्योंकि गांधीवादी लोग श्री गांधी पर मेरी व्याख्या को जानते हुए भी यह प्रचार करने से नहीं चूकेंगे कि यदि श्री गांधी अस्पृश्यों की समस्या को हल करने में असफल हो भी गए होंगे तो गांधीवाद में उन समस्याओं का हल मिल जाएगा। यही कारण है कि मैं ऐसी कोई गुंजाइश नहीं छोड़ना चाहता और मैं गांधीवाद पर ही पहले चर्चा करूंगा।

II

गांधीवाद क्या है? इसका अभिप्राय क्या है? आर्थिक समस्या और समाजवाद के संबंध में उसके क्या सिद्धांत हैं?

आरंभ में यह बतलाना आवश्यक है कि कुछ गांधीवादी लोग गांधीवादी अवधारणा जो पूर्णतया काल्पनिक है के वशीभूत हो गए हैं। इस अवधारणा के अनुसार गांधीवाद का अर्थ है पुनः गांव की ओर लौटना और गांवों को आत्म-निर्भर बनाना। इस अवधारणा से गांधीवाद केवल क्षेत्रवाद बन कर रह जाता है। मुझे विश्वास है कि गांधीवाद न तो बहुत सहज है और न क्षेत्रवाद की तरह सरल ही। गांधीवाद का दायरा क्षेत्रवाद की अपेक्षा कहीं अधिक विस्तृत है। क्षेत्रवाद गांधीवाद का बहुत छोटा और महत्वहीन भाग है। इसका सामाजिक-दर्शन है और इसका आर्थिक दर्शनशास्त्र है। गांधीवाद के आर्थिक और सामाजिक-दर्शन की बात को छोड़ देने का अर्थ है, गांधीवाद का झूठा चित्र पेश करना। हम पहले इसकी सही तस्वीर पेश करते हैं।

हम श्री गांधी की सामाजिक समस्या के संबंध में दी गई शिक्षाओं से आरंभ करते हैं। जाति प्रथा पर गांधी जी के विचार, 1921-22 के गुजराती पत्र "नवजीवन" में उन्हीं के द्वारा पुनर्मुद्रित भाग-दो के संपादकीय लेख[1] गुजराती में प्रकट होते हैं।

उनके विचारों का अनुवाद उन्हीं के शब्दों में नीचे दिया गया है। श्री गांधी कहते हैं –

> (1) मुझे विश्वास है कि हिंदू समाज आज तक इसी कारण जीवित रह सका है कि वह वर्ण-व्यवस्था पर आधारित है।

1. उसका पुनर्मुद्रण "गांधी शिक्षा" नामक श्रृंखला के खंड 2 में संख्या 18 के रूप में हुआ था।

(2) स्वराज्य के बीज वर्ण व्यवस्था में उपलब्ध हैं। विभिन्न जातियां सैनिक डिवीजन की भांति इसके विभिन्न वर्ण हैं। प्रत्येक वर्ण सैनिक डिवीजन की भांति पूरे समाज के हित में काम करता है।

(3) जो समाज वर्ण–व्यवस्था का सृजन कर सकता है, उसे निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि उनमें अनोखी संगठन क्षमता है।

(4) वर्ण–व्यवस्था में प्राथमिक शिक्षा के प्रसार के लिए सदाबहार साधन मौजूद हैं। प्रत्येक जाति अपने बच्चों को अपनी जाति में शिक्षित करने की जिम्मेदारी लेती है। जातियों का राजनीतिक उद्देश्य है। कोई भी जाति अपनी अपनी प्रतिनिधि सभा में अपने प्रतिनिधि चुन कर भेज सकती है। जाति अपने पारस्परिक जातीय झगड़ों को तय करने के लिए पंच चुन कर न्यायिक प्रक्रिया को पूरा कर सकती है। प्रत्येक जाति को सैनिक टुकड़ी का दर्जा देकर सुरक्षा के लिए जबरदस्त सेना तैयार करना जातियों के लिए सरल है।

(5) मुझे विश्वास है कि राष्ट्रीय एकता सुदृढ़ करने के लिए अंतर्जातीय विवाह अथवा भोज आवश्यक नहीं है। यह कहना कि अंतर्जातीय सहभोज से मित्रता बढ़ेगी अनुभव के ठीक विपरीत है। यदि इसमें सच्चाई होती, तो यूरोप में युद्ध न होते। सहभोज उसी प्रकार गंदा है, जैसे कि मल–मूत्र विसर्जन करना। अंतर इतना है कि मल–मूत्र त्यागने के बाद हमें चैन मिलता है और खाने के बाद परेशानी अनुभव करते हैं। अतः जिस प्रकार हम शौच से एकांत में निवृत्त होते हैं, उसी प्रकार भोजन भी एकांत में ही करना चाहिए।

(6) भारतवर्ष में भाइयों के बच्चों में पारस्परिक विवाह नहीं होते, क्या पारस्परिक विवाह न करने से उनके प्रेम में कमी आती है? वैष्णवों में बहुत सी महिलाएं इतनी कट्टरपंथी है कि वे अपने परिवार के लोगों के साथ भोजन नहीं करती और न एक ही बर्तन से पानी पीना पसंद करती हैं क्या उनमें पारस्परिक प्रेम नहीं है? जाति–प्रथा को इस कारण बुरा नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें विभिन्न जातियों में पारस्परिक भोज एवं पारस्परिक वाह की आज्ञा का निषेध है।

(7) जाति–प्रथा संयम का ही दूसरा नाम है। जाति मनोरंजन पर सीमा निर्धारित करनी है। वह जातीयता की सीमा का उल्लंघन नहीं कर सकती। भिन्न जातियां रोटी–बेटी के व्यवहार पर पहले से ही जाति बंधन मुक्त हैं।

> (8) जाति व्यवस्था को नष्ट करके पश्चिमी यूरोपाय सामाजिक व्यवस्था अपनाने का अर्थ होगा हिंदू उन पैतृक पेशों को त्याग दें, जो जाति–प्रथा की आत्मा है। इसे तोड़ने से अव्यवस्था उत्पन्न होगी। यदि मैं अपने जीवन भर किसी को ब्राह्मण कह कर नहीं पुकारता, तो ब्राह्मण होने में क्या लाभ। यदि ब्राह्मणों को शूद्रो मे और शूद्रों को ब्राह्मणों में परिवर्तित होने का दैनिक क्रम शुरू हो जाएगा, तो समाज में अव्यवस्था उत्पन्न हो जाएगी।
>
> (9) जाति–प्रथा एक प्राकृतिक विधान है। भारतवर्ष में उसे धार्मिक रूप दिया गया है। अन्य देशों में जहां जाति व्यवस्था की उपयोगिता नहीं समझी गई, वहां की सामाजिक व्यवस्था बिखरी अवस्था में है और इसी कमी के फलस्वरूप वे जाति व्यवस्था से होने वाले लाभ प्राप्त नहीं कर सकते, जबकि भारत में वह मौजूद है।
>
> मेरे यही विचार हैं और मैं उनके विरुद्ध हूं जो वर्ण–व्यवस्था को तोड़ना चाहते हैं।"

वर्ष 1922 में श्री गांधी वर्ण–व्यवस्था के पक्षधर थे। इसकी जांच करने पर स्पष्ट हो जाता है कि 1925 में वर्ण–व्यवस्था के संबंध में श्री गांधी द्वारा व्यक्त किए गए विचार तीन वर्ष पहले प्रकट किए गए विचारों से कैसे भिन्न हो गए। 3 फरवरी 1925 को श्री गांधी ने कहा था –

> "जाति–प्रथा का समर्थन मैंने इस आधार पर किया था कि वह संयम सिखाती है, परंतु आजकल जाति–प्रथा का अर्थ संयम नहीं, वरन् अब वे सीमाबद्ध हो गई हैं। संयम अच्छा होता है और स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए सहायक सिद्ध होता है। परंतु सीमाबद्ध होना बेड़ियों के समान है। जातियां जिस रूप में आज हैं, उस रूप में उनकी तारीफ नहीं की जा सकती। आजकल जातियां शास्त्र विरोधी हो गई हैं। जातियों की संख्या असीम है, जिनमें पारस्परिक विवाह संबंध के प्रतिबंध लगे हैं। यह उत्थान का लक्षण नहीं, वरन् पतन का मार्ग है।"

इस प्रश्न के उत्तर में कि इसका क्या समाधान है, श्री गांधी ने कहा –

> "सर्वोत्तम उपाय यह है कि छोटी–छोटी जातियां अपना अलग अस्तित्व समाप्त कर बड़ी जाति बन जाएं। ऐसी बड़ी जातियों की संख्या 4 हो जिससे प्राचीन वर्ण व्यवस्था की पुनर्स्थापना हो सके।"

संक्षेप में कहा जा सकता है कि वर्ष 1925 में श्री गांधी वर्ण–व्यवस्था के पक्षधर हो गए।

प्राचीन भारत में जो वर्ण व्यवस्था प्रचलित थी, उसने समाज को चार भागों में विभक्त कर रखा था (1) ब्राह्मण, जिसका व्यवसाय था विद्याध्ययन करना, (2) क्षत्रिय, जिसका कार्य था युद्ध करना, (3) वैश्य, जिसका व्यवसाय था व्यापार करना, (4) शूद्र, जिसका व्यवसाय था प्रथम तीन वर्णों की सेवा करना। क्या श्री गांधी की वर्ण व्यवस्था ठीक वैसी ही है, जैसी वर्ण व्यवस्था हठधर्मी हिंदू मानते हैं? श्री गांधी ने अपनी वर्ण व्यवस्था की निम्नलिखित ढंग से व्याख्या की[1] –

> "(1) मैं विश्वास करता हू कि वर्णों का विभाजन जन्म पर आधारित है।
>
> (2) वर्ण व्यवस्था में कोई ऐसी बात नहीं है, जो शूद्रों को विद्या अध्ययन अथवा सैनिक युद्ध कला सीखने से वंचित करती हो। इसके विपरीत क्षत्रिय के सेवा अथवा नौकरी करने पर कोई रोक नहीं है। वर्ण व्यवस्था इस बात की अनुज्ञा देती है कि शूद्र धनोपार्जन के लिए अध्ययन नहीं करेगा, न क्षत्रिय ही धनोपार्जन के लिए सेवा कार्य अपनाएगा। इसी प्रकार ब्राह्मण युद्ध कला सीख सकते हैं, परंतु उसे अपनी जीविका का साधन नहीं बनाएगा। वैश्य विद्या प्राप्त कर सकता है अथवा युद्ध कला सीख सकता है, परंतु उन्हें धनोपार्जन का साधन नही बना सकता।
>
> (3) वर्ण व्यवस्था जीविकोपार्जन से सम्बद्ध है। इसमें कोई हानि नहीं, यदि किसी एक वर्ण का आदमी दूसरे वर्ण की कला और व्यवसाय के विषय में ज्ञान प्राप्त कर उसमें पारंगत हो जाता है। परंतु जहां तक धनोपार्जन का संबंध है, उसके लिए अपने ही वर्ण का व्यवसाय अपनाना ठीक होगा। जिसका अर्थ यह होगा कि पीढ़ी दर पीढ़ी से चले आए अपने पैतृक व्यवसाय को ही अपनाया जाय।
>
> (4) वर्ण व्यवस्था का उद्देश्य है, प्रतियोगिता और बराबरी करने की प्रवृत्ति को रोकना तथा वर्ग संघर्ष से बचना। मैं वर्ण व्यवस्था में विश्वास करता हूं, क्योंकि इससे लोगों के कर्तव्यों और व्यवसायों का निर्धारण होता है।
>
> (5) वर्ण का अर्थ है, मनुष्य के जन्म लेने से पहले उसके व्यवसाय का निर्धारण।
>
> (6) वर्ण व्यवस्था में किसी मनुष्य को अपनी पसंद का व्यवसाय

1. ये अंश श्री गांधी के ऐक लेख से लिये गये हैं, जो 'वर्ण व्यवस्था' नामक पुस्तक में पुनर्मुद्रित किया गया था। उस पुस्तक में श्री गांधी के मूल गुजराती में लिखे लेख समाविष्ट किए गए हैं।

> करने की स्वतंत्रता नहीं होती। उसका पैतृक व्यवसाय जन्म से ही निर्धारित रहता है।

अब उनके अर्थव्यवस्था संबंधी पक्ष पर विचार प्रस्तुत हैं। आर्थिक जीवन के संबंध में उनके दो आदर्श थे –

पहला आदर्श था मशीनों तथा मशीनीकरण का विरोध करना। बहुत पहले ही वर्ष 1921 में श्री गांधी ने मशीनीकरण का विरोध करने का संकेत दिया था। 19 जनवरी 1931 के "यंग इंडिया" में श्री गांधी ने लिखा –

> "क्या मैं उन्नति के पथ पर आरूढ़ घड़ी की सुई को पीछे घुमा देना चाहता हूं? क्या मैं मिलों के स्थान पर अब चर्खा और करघा लाना चाहता हूं? क्या मैं रेलवे के स्थान पर बैलगाड़ी चलाना चाहता हूं? क्या मैं मशीनों को पूर्णतया नष्ट कर देना चाहता हूं? इस प्रकार के प्रश्न पत्रकार एवं जनता के लोग मुझसे पूछते हैं। मेरा उत्तर है कि यदि मशीनें पूर्णतया नष्ट कर दी जाती हैं, तो मैं इसे कोई परेशानी नहीं समझूंगा और न इसे कोई संकट मानूंगा।"

मशीनों के प्रति श्री गांधी का विरोध इससे प्रकट होता है कि वे मशीनों के स्थान पर चरखा लाना चाहते हैं और हाथ से सूत कात कर स्वयं वस्त्र बना कर पहनने के समर्थक हैं। उनका मशीनों से इस प्रकार का विरोध और चरखे के प्रति प्रेम का कारण कोई घटना नहीं है। श्री गांधी ने 8 जनवरी 1925 को काठियावाड़ की राजनीतिक सभा की अध्यक्षता करते हुए इस दर्शन को अपनाने की प्रतिज्ञा की थी। इस विषय में उन्होंने कहा था –

> "असीम बढ़ती हुई निर्जीव मशीनों की पूजा करते–करते राष्ट्र थक गए हैं। हम बेजोड़ मशीन अर्थात अपने शरीर को निर्जीव मशीनों पर आश्रित बना कर बरबाद कर रहे है। यह प्राकृतिक नियम है कि पूरा काम शरीर से लिया जाए और इसका सदुपयोग किया जाए। हम इसकी उपेक्षा नहीं कर सकते। चरखा शरीर यज्ञ का शुभ संकेत है। यदि कोई मनुष्य बिना श्रम किए भोजन करता है, तो वह चोरी करता है। श्रम के इस बलिदान को छोड़ देने से हम इस प्रकार के देश–द्रोही बन जाते हैं और भाग्यवादी बन जाते हैं।"

जिस किसी ने श्री गांधी की पुस्तक "हिन्द स्वराज्य" का अध्ययन किया है उसे मालूम होगा कि उस पुस्तक के अनुसार श्री गांधी वर्तमान सभ्यता के विरुद्ध हैं। यह पुस्तक सर्वप्रथम 1908 में प्रकाशित हुई थी। परंतु उनकी विचारधारा

में कोई परिवर्तन नहीं आया। श्री गाधी ने 1921 मे कहा[1] –

> "वह पुस्तक आधुनिक सभ्यता की कटु निंदा करती है। यह पुस्तक 1908 में लिखी गई थी। मेरी निष्ठा आज पहले से भी अधिक दृढ़ है। मैं अनुभव करता हूं कि यदि भारत आधुनिक सभ्यता का परित्याग कर दे, तो उसे अधिक लाभ मिलेगा।"

गांधी जी के विचारों में पाश्चात्य सभ्यता शैतान की रचना है।[2]

श्री गांधी का दूसरा आदर्श था मालिकों और नौकरों तथा भूस्वामी और असामी के संबंध में वर्ग संघर्ष को समाप्त करना। मालिकों और नौकरों के संबंधों के विषय में श्री गांधी के जो विचार थे, वे 8 जून 1921 के "नवजीवन" में प्रकाशित हुए थे। उसका एक अंश नीचे उद्धरत किया जा रहा है –

> "भारत के सामने दो रास्ते हैं। एक रास्ता पाश्चात्य सभ्यता का, जिसकी लाठी उसकी भैंस का और दूसरा पूर्वी सभ्यता 'सत्यमेव जयते' का है, जिसमें शक्तिशाली और कमजोर दोनों को समान रूप से न्याय पाने का अधिकार है। आप जिस मार्ग को चाहे उसे पसंद करें। इस न्याय की प्रतिष्ठा हम श्रमिक वर्ग की समस्या से आरंभ करके कर सकते हैं। प्रश्न यह है कि क्या हिंसात्मक तरीकों से उनकी मजदूरी बढ़वाई जानी चाहिए? यदि वह संभव भी हो, तब भी श्रमिक हिंसा जैसे मार्ग का सहारा नहीं ले सकते, उसके अधिकार चाहे कितने भी न्यायोचित क्यों न हों। अधिकार प्राप्त करने के लिए और उनकी सुरक्षा के लिए हिंसा का मार्ग भले ही सरल लगता हो, परंतु अंत में यह काटों भरा मार्ग है जो तलवार के बलबूते पर जीते हैं, उनका अंत भी तलवार की धार से ही होता है। तैराक प्रायः डूब कर मरता है। यूरोप को ही देखिए, वहां कोई प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ता, क्योंकि वह संतुष्ट नहीं है। श्रमिक पूंजीपति पर विश्वास नहीं करता और पूंजीपति श्रमिकों पर भरोसा नहीं रखता। दोनों शक्तिमान हैं, परंतु तब भी दोनों सुखी व संतुष्ट नहीं हैं। उनमें जबरदस्त संघर्ष होता है। हर प्रकार की प्रगति को उन्नति नहीं कहा जा सकता। हमारे पास यह विश्वास करने का कोई कारण नहीं है कि यूरोप के लोग उन्नति कर रहे हैं। उनके पास अतुल संपत्ति का होने का यह अर्थ नहीं कि उनमें नैतिक अथवा आध्यात्मिक गुण भी हों।"

× ×   × ×   × ×

1. **यंग इंडिया**, 26 जनवरी 1921
2. **धर्म मंथन**, पृष्ठ 65

"तब हम क्या करें? बम्बई में श्रमिकों ने अच्छी नीति अपनाई है। मैं उनके विषय में सभी तथ्यों को जानने की स्थिति में नही था। परंतु मैं इतना देख सका कि वे अच्छे ढंग से लड़ सकते हैं। करोड़पति पूर्णतया गलती पर हो सकता है। पूंजीपति और श्रमिकों के संघर्ष मे यह प्रायः कहा जाता है कि पूंजीपति और श्रमिकों के संघर्ष में पूंजीपतियों का पक्ष गलत होता है। परंतु जब श्रमिक को अपनी शक्ति का पूरा आभास हो जाता है, तो मैं समझता हूं कि पूंजीपति की अपेक्षा श्रमिक वर्ग अधिक निर्दयी हो जाता है। यदि मजदूरों में करोड़पतियों से अधिक बुद्धि का विकास होता है, तो करोड़पतियों को मजदूरों द्वारा निर्धारित शर्तों के अनुसार काम करना पड़ता है यद्यपि स्पष्ट है कि मजदूर वर्ग पूंजीपतियों की उस बुद्धि को कभी नहीं प्राप्त कर पाता। यदि पूंजीपतियों की बुद्धि उसे प्राप्त हो जाए, तो वह श्रम करना बंद कर देगा और स्वयं मालिक बन जाएगा, पूंजीपति केवल धन के बल पर ही नहीं लड़ते। उनके पास बुद्धि और हिकमत भी होती है।

हमारे सामने प्रश्न यह है कि मजदूर जस के तस रह जाते हैं और जब उनमें चेतना जगती है, तब वे क्या करें? यदि मजदूर अपने भाषण और संख्या बल पर हिंसा का सहारा लेते हैं, तो यह उनके लिए आत्मघाती सिद्ध होगा। ऐसा करके, वे देश के उद्योगों को हानि पहुंचाएंगे। इसके विपरीत यदि वे न्याय पथ पर दृढ़ता से रह कर और कठिनाइयों को सहन कर अधिकार प्राप्त करना चाहते हैं, तो उन्हें केवल सफलता ही नहीं मिलेगी, वरन् वे अपने मालिकों को भी सुधार सकेंगे। अपने उद्योगों की प्रगति करेंगे और तब मजदूर और मालिक दोनों एक ही परिवार के सदस्य के रूप में काम करेंगे।"

इसी विषय पर श्री गांधी ने किसी दूसरे अवसर[1] पर कहा –

"भारत में पहले कभी भी पूंजी और श्रम के संबंधों में तनाव नहीं रहा।"

अपनी आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए मजदूरों के हाथ में हड़ताल का, जो हथियार है इस पर श्री गांधी के विचार ध्यान देने योग्य हैं।[2] श्री गांधी का कहना है – "एक ऐसे व्यक्ति के रूप में बोलते हुए जिसने बड़ी सफलता के साथ हड़तालों का संचालन किया है, मैं हड़ताल कराने वाले नेताओं के मार्गदर्शन के लिए निम्नलिखित सिद्धांतों को दुहराता हूं –

1. यंग इंडिया, 23 फरवरी 1922
2. यंग इंडिया, दिनांक 11 अगस्त 1921

(1) जब तक कोई वास्तविक शिकायत न हो, हड़तालें नहीं की जानी चाहिएं।

(2) यदि हड़तालियों में अपनी बचत के बल पर अथवा अन्य अस्थाई साधनों पर जैसे कि दफ्ती बनाने का काम, सूत कातना, कपड़ा बुनना आदि साधनों पर निर्भर रहने की क्षमता न हो, हड़ताल नहीं करनी चाहिए। हड़तालियों को जनता के चंदे और दान पर कभी निर्भर नहीं रहना चाहिए।

(3) हड़तालियों को अपनी अपरिवर्तनीय न्यूनतम निश्चित मांग निर्धारित करनी चाहिए और हड़ताल पर जाने से पहले उसे घोषित करना चाहिए।

"यदि पुराने कर्मचारियों के बदले नए कर्मचारी भर्ती कर लिए जाते हैं, तो मजदूरों की मांगें वाजिब होते हुए भी और हड़तालियों में अनिश्चित काल तक हड़ताल चलाते रहने की क्षमता के बावजूद हड़ताल असफल हो सकती है। अतः बुद्धिमान लोगों को अपना वेतन अथवा सुविधाएं बढ़ाने के लिए उस समय हड़ताल नहीं करनी चाहिए, जब इस बात का आभास मिल जाए कि उनके स्थान पर दूसरे लोगों को काम पर लगाया जा सकता है। परंतु लोक कल्याण अथवा स्वदेश प्रेम की भावना वाला व्यक्ति मांग से अधिक आपूर्ति होते हुए भी अपने पड़ोसी की मुसीबतों से परेशान लोगों की सहानुभूति में हड़ताल कर सकेगा। मैंने जिस प्रकार की आम हड़ताल का उल्लेख किया है उसमें डराने, धमकाने और आग लगाने जैसी हिंसा की कोई गुंजाइश नहीं है। मेरे सुझाव को कसौटी पर कसने से स्पष्ट हो जाता है कि हड़तालियों के सच्चे मित्रों ने कभी कांग्रेस–कोष से सहायता अथवा समर्थन प्राप्त करने की राय नहीं दी है। आर्थिक सहायता प्राप्त करने पर हड़तालियों के प्रति सहानुभूति की भावना क्षीण हो जाती है। सहानुभूति में की गई हड़ताल से असुविधाएं होती हैं और हमदर्दों को हानि उठानी पड़ती है।"

संयुक्त–प्रांत ने जमींदारों के विरोध में किसान आंदोलन पर उन्हें समझाते हुए 18 मई 1921 के **यंग इंडिया** के अंक में किसानों तथा जमींदारों के संबंधों की व्याख्या करते हुए श्री गांधी ने कहा –

"जब संयुक्त प्रांत सरकार औचित्य और सदव्यवहार की सीमा का उल्लंघन कर रही है और लोगों को धमकियां दे रही हैं, तो यह कहने में कोई संदेह नही कि किसान भी अपनी नवगठित शक्ति का बुद्धिमानी से प्रयोग नहीं कर रहे हैं। कई जमींदार ज्यादती करने की हद से

आगे बढ़ गए बताए जाते हैं। उन्होंने कानून अपने हाथों में ले लिया है और इतना अधीर हो उठे हैं कि जिससे जो चाहते हैं वही कराते हैं। वे सामाजिक बहिष्कार का दुरुपयोग कर रहे हैं और हिंसा का रास्ता अपना रहे हैं। ऐसी सूचना मिली है कि जमींदारों को पानी भरने देना बंद कर दिया है। बाल काटना और बाकी पैसा देकर प्राप्त सेवाएं भी बंद कर दी हैं। यहां तक कि उन पर जमींदारों का लगान बाकी था, उसका भी भुगतान करना बंद कर दिया। किसान आंदोलन ने असहयोग आंदोलन से प्रेरणा ली है, परंतु उनका आंदोलन उससे भिन्न है। जब किसान आंदोलन चल पड़ा है, तो हमें उन्हें यह सलाह देने में कोई हिचक नहीं कि वे सरकार को कर देना बंद कर दें। यह नहीं कहा जा सकता कि असहयोग के किसी भी चरण पर जमींदारों को लगान देना बंद कर दिया जाए। किसान आंदोलन किसानों का स्तर ऊंचा उठाने तथा उनके और जमींदारों के बीच मधुर संबंध बनाए रखने तक सीमित रखना चाहिए। किसानों को स्पष्ट सलाह दी जाती है कि वे जमींदारों के साथ किए गए समझौते का पालन करें चाहे वह समझौता लिखित हो या परंपरागत। जहां लिखित अथवा परंपरागत समझौते गलत तथा बुरे हों उन्हें बिना जमींदारों की पूर्व सहमति के हिंसात्मक ढंग से तोड़ नहीं देना चाहिए। प्रत्येक परिवर्तन के लिए उन्हें जमींदारों से सौहार्दपूर्ण ढंग से बातचीत कर मामले सुलझाने का प्रयत्न करना चाहिए।"

श्री गांधी धनपतियों को हानि नहीं पहुंचाना चाहते। यहां तक कि वह उनके विरुद्ध आंदोलन का भी विरोध करते हैं। आर्थिक समानता के लिए उनमें कोई भावना नहीं है। धनी वर्ग का उल्लेख करते हुए श्री गांधी ने एक बार कहा था कि सोने का अंडा देने वाली मुर्गी का हनन नहीं करना चाहिए। मालिक, मजदूरों, धनी और निर्धन जमींदारों और किसानों तथा मालिकों और नौकरों के मध्य उठते आर्थिक झगड़ों को सुलझाने के लिए श्री गांधी का सरल नुस्खा है कि संपत्तिवान अपने को संपत्ति का न्यासी घोषित कर दें। मालिकों को उनकी संपत्ति के अधिकार से वंचित न किया जाए। धनवान जो कुछ करते हैं गरीबों के न्यासी के रूप में करते हैं। निस्संदेह न्यास स्वेच्छा से काम करने का आध्यात्मिक और नैतिक दायित्व है।

III

क्या आर्थिक समस्याओं पर गांधीवादी विश्लेषण में कोई नई बात है? क्या गांधीवादी अर्थव्यवस्था दोषरहित है? गांधीवाद साधारण मनुष्यों तथा निचले स्तर के लोगों

में किस आशा का संचार करता है? क्या गांधीवाद साधारण मनुष्य को बेहतर जीवन, सुखी–जीवन और संस्कृति तथा स्वतंत्रता के जीवन – स्वतंत्रता दरिद्रता से ही नहीं बल्कि क्षमतानुसार उत्थान और विकास की स्वतंत्रता का वचन देता है?

आर्थिक समस्याओं पर गांधीवादी विश्लेषण का सार, इसका उत्तरदायित्व मशीनों के सिर मढ़ देने और मशीनी संस्कृति को कोसने तक सीमित है। उनका तर्क है कि मशीनी और आधुनिक सभ्यता संपत्ति की व्यवस्था और नियंत्रण थोड़े से व्यक्तियों तक केंद्रित करने में सहायक है और लाखों मजदूरों वाली फैक्ट्रियों का माल इससे भी कम हाथों में महाजनी तथा बैंकों के नियंत्रण में सिमटा होने पर बड़े–बड़े कारखानों तथा मिलों के लाखों करोड़ों आदमी अपनी झोंपड़ियों के हजारों मील दूर उन बड़े कारखानों में अपना खून पसीना बहाते हैं अथवा उन मशीनों और आधुनिक सभ्यता के कारण काल के गाल में चले जाते हैं, अपाहिज और अयोग्य हो जाते हैं, जितने शायद युद्धों में घायल होने के कारण भी नहीं होते होंगे। बड़े–बड़े शहरों के विकास से और वहां बड़े कारखानों की चिमनियों से निकले धुएं, गंदगी, मशीनों की आवाजें, गंदी हवा, सूरज की धूप की कमी, बांहय जीवन, मैली–कुचैली बस्तियां, अनाचार एवं अस्वाभाविक कारणों से परोक्ष अथवा अपरोक्ष रूप में उत्पन्न रोगों और शारीरिक अक्षमता के हौवे खड़ा करने वाले गांधीवाद के सभी तर्क घिसे–पिटे और पुराने तर्क हैं उनमें कोई नई बात नहीं है। मशीनों के विरुद्ध गांधीवाद के इन तर्कों में पाश्चात्य विद्वानों – रूसो, रस्किन, टाल्सटाय आदि के ही विचारों और शैलियों को केवल अपने शब्दों में दुहराया गया है।

गांधीवाद में जिन विचारों को समाहित किया गया है, वे विचार हमें आदिम युग की ओर ले जाते हैं। उनसे प्रकृति की ओर तथा वन्य जीवन की ओर वापस होने की प्रेरणा मिलती है। यदि उन विचारों में कोई अच्छी बात है, तो वह सादगी है। ऐसे साधारण विचार शाश्वत रहते हैं और ऐसे सीधी सादे साधारण लोगों का बाहुल्य होता है, जो उपदेश सुनने को मिल जाते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि मनुष्यों की मूल प्रवृत्ति में व्यावहारिक ज्ञान भी होता है, जो कभी अंधा नहीं होता, इसलिए प्रगतिशील समाज ऐसे विचारों को भला क्यों शिरोधार्य करेगा?

गांधीवाद का आर्थिक दर्शन व्यर्थ का दिवास्वप्न है। माना जा सकता है कि मशीनरी और आधुनिक सभ्यता से बहुत दोष उत्पन्न हो गए हैं, परंतु ये दोष होना कोई तर्क नहीं है, क्योंकि बुराइयां मशीनों और आधुनिक सभ्यता के कारण नही हैं, बल्कि ऐसे गलत सामाजिक संगठन के कारण हैं, जिससे व्यक्तिक संपत्ति और लाभवृत्ति हावी हो गई है। यदि मशीनरी और आधुनिक सभ्यता से सभी लोगों को लाभ नही पहुंचा है, तो मशीनों तथा आधुनिक सभ्यता को दोषी ठहराना उचित

तरीका नही है। सही उपाय है, सामाजिक ढांचे में उचित परिवर्तन करना, ताकि मशीनों से हुआ लाभ मुट्ठी भर व्यक्तियों के हाथों में ही सीमित न रह कर सर्वसाधारण तक पहुंच सके।

गांधीवाद में साधारण मनुष्य को कोई आशा नहीं। इनमें साधारण मनुष्य की पशुओं से तुलना की जाती है। यह सच है कि पशुओं से मनुष्य का गहरा संबंध है। कुछ आवश्यकताएं उनमें समान हैं, जैसे "आहार, निद्रा, भय, मैथुनम च" परंतु यह मानव के विशेष आचरण नहीं हैं। मानव के विशेष गुण हैं बौद्धिकता, जिसके कारण उसमें चिंतन–मनन और जिज्ञासा के भाव उत्पन्न होते हैं। वह ब्रह्मांड में सौंदर्य खोजता है, अपने जीवन का विकास करता है और जीवन के पशुतत्व पर नियंत्रण करता है। इस प्रकार चेतन जगत में मनुष्य का सर्वोच्च स्थान है। यदि यह सही है, तो उसका निष्कर्ष क्या है? निष्कर्ष यह है कि पाशविक जीवन का लक्ष्य होता है शारीरिक आवश्यकताओं को प्राप्त करके ही संतुष्ट होना, परंतु मानव–जीवन का लक्ष्य इतने से ही न संतुष्ट होकर निरंतर बढ़ते रहना, जब तक कि वह आपके मानस–मंथन से मानवता के चरम लक्ष्य को न प्राप्त कर ले और उसका मानसिक उत्कर्ष न हो जाए। संक्षेप में यही कि पशु और मानव के बीच अंतर संस्कृति की परिणति है। पशु जगत के लिए सभ्यता संभव नहीं, परंतु मानव के लिए नितांत आवश्यक है। इसीलिए प्रत्येक मनुष्य संस्कृति की छाया में जीए। जिसका अर्थ है भौतिक आवश्यकताओं की संतुष्टि से ऊपर उठ कर मानव का मानसिक विकास, ऐसा कैसे हो सकता है?

समाज और व्यक्ति दोनों के लिए सदा जीवित रहने और उत्तम रीति से जीने में अंतर बना रहता है। उत्तम जीवन के लिए भी जीवित रहना पड़ता है। मात्र जीने की अनिवार्य सुविधाएं जुटाने पर उसका जो समय और शक्ति लग जाती है, उससे वह उन गतिविधियों से वंचित रह जाता है, जिन्हें वह विशिष्ट रूप से मानव प्रकृति के लिए संभव कर सकता है, जो जीवन को सुसंस्कृत बनाती हैं। तब सुसंस्कृत जीवन कैसे संभव है? यह तब तक संभव नहीं, जब तक निश्चिंतता प्राप्त न हो, क्योंकि जब निश्चिंतता होगी, तभी वह सुसंस्कृत जीवन जी सकता है। सभी समस्याओं से बड़ी समस्या यही है कि प्रत्येक व्यक्ति कैसे निश्चिंत रहे। निश्चिंतता का क्या अर्थ है? निश्चिंतता इसी में है कि जीवन के भौतिक मूल्यों की प्राप्ति में उसे कम श्रम करना पड़े। निश्चिंतता कैसे संभव है? निश्चिंतता उस समय तक असंभव है, जब श्रम के क्षेत्र में कुछ साधन उपलब्ध न हों, ताकि मानव जीवन के लिए अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए श्रम की मात्रा घटाई जा सके। ऐसा श्रम कैसे कम हो सकता है? केवल तभी जब मानव के स्थान पर मशीन काम करे। निश्चिंतता के लिए कोई और साधन नहीं। इस तरह मशीनें और आधुनिक सभ्यता ही मानव को पाशविक जीवन से मुक्ति

दिलाने के लिए अनिवार्य तत्व है और इसी से उसे निश्चिंतता मिलेगी और सुसंस्कृत जीवन संभव होगा, जो व्यक्ति मशीनों और आधुनिक सभ्यता का तिरस्कार करता है, वह उनका तात्पर्य ही नहीं समझता न उसे यह पता है कि मानव का परम लक्ष्य क्या है?

गांधीवाद उस समाज के लिए सर्वाधिक अनुकूल पड़ता है, जो प्रजातंत्र को अपना आदर्श नहीं मानता। जो समाज प्रजातंत्र में विश्वास नहीं रखता, वही मशीनों तथा उस पर आधारित सभ्यता की अनदेखी करेगा, परंतु प्रजातांत्रिक समाज मशीनों और आधुनिक सभ्यता का विरोध नहीं कर सकता। जो समाज मशीनों और आधुनिक सभ्यता के प्रति उदासीन है, कुछ थोड़े से लोगों के जीवन को निश्चिंत और सुसंस्कृत बना कर ही संतुष्ट हो जाता है तथा शेष बहुसंख्यक जनता के लिए कठिन परिश्रम के जीवन का रास्ता बनता है, वह उचित नहीं है। परंतु प्रजातांत्रिक समाज अपने प्रत्येक नागरिक के जीवन को निश्चिंत करने का अवसर प्रदान करने की गारंटी देता है। यदि उपरोक्त विश्लेषण सही है, तब प्रजातांत्रिक समाज का नारा मशीनीकरण होना चाहिए और अधिक से अधिक मशीनरी तथा आधुनिक सभ्यता का विकास होना चाहिए। गांधीवाद के अंतर्गत साधारण मनुष्य को थोड़ी सी मजदूरी के लिए लगातार परिश्रम करते रहना और पशुवत बने रहना चाहिए। संक्षेप में, गांधीवाद की प्रकृति की ओर वापसी की पुकार का अर्थ है बहुसंख्यक जनता को नग्नावस्था, मलिनता, निर्धनता और अज्ञान की ओर वापस लान्रा।

मानव–जीवन के विभिनन कार्यों के लिए अलग–अलग वर्गों का अस्तित्व नहीं मिटाया जा सकता। अनेक सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तनों से और वैधानिक रूप से दास–प्रथा समाप्त कर देने और लोकतांत्रिक राष्ट्र की अवधारणा से भी विज्ञान के प्रसार में, पुस्तकों के माध्यम से सर्वसाधारण में शिक्षा के प्रसार से भी समाज में प्रबुद्ध वर्ग तथा अज्ञान वर्ग तथा श्रमिक वर्ग का जो अंतर है और रहेगा वह अंतर कभी न मिट सकेगा।

परंतु गांधीवाद केवल वर्ग बोध से ही संतुष्ट नहीं हो जाता, वरन् वर्ग भेद की संरचना पर जोर डालता है। गांधीवाद सामाजिक वर्गीकरण के ढांचे तथा आर्थिक ढांचे को अंग मानता है जिसके फलस्वरूप अमीर और गरीब, ऊंच–नींच, मालिक और मजदूर का जो अंतर मौजूद है, वर्ण, वर्ग तथा आय के आधार पर समाज में भेद मानने से बढ़कर और क्या हानिकारक हो सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से समाज में वर्ग भेद, साधनसंम्पन्न तथा साधनविहीन दोनों वर्गों के लिए हानिकारक होता है। ऐसा कोई स्थान नहीं, जहां सर्वसंपन्न वर्ग तथा निर्धन वर्ग आपस में मिल सकें। उनके कोई अंतरस्रोत नहीं हैं, न ही जीवन की आशाओं

और आकांक्षाओं के आदान–प्रदान की कोई गुंजाइश है। निस्संदेह जनसामान्य में इस अलगाव के कारण सामाजिक एवं नैतिक बुराइयां स्वाभाविक हैं। उन्हें दासता की शिक्षा मिलती है और हीनभावना उत्पन्न होती है, जो दास–भाव की जननी है। दूसरी ओर साधनसंपन्न वर्गों की भी अपनी सामाजिक तथा नैतिक समस्याएं होती हैं, हालाकि उनका प्रभाव न्यून होता है। अपने आर्थिक स्तर के कारण बहुसंख्यक समाज से अलग–थलग तथा कटे रहने के कारण उनमें विशिष्ट अधिकारप्राप्त गिरोह जैसी असामाजिक मनोवृत्ति पनप जाती है। वह निपट स्वार्थी हो जाते हैं। वे सभी से सशंकित हो जाते हैं। यहां तक कि सरकार के हितों के प्रति भी। समाज की ऐसी संवर्ग रचना से, उनकी संस्कृति निर्जीव होती है। उनकी कला दिखावटी हो जाती है। उनका धन चकाचौंध कर देने वाला होता है और व्यवहार फूलकुमारी जैसा। वास्तविकता यह है कि ऐसी वर्ग–संरचना में एक ओर उत्पीड़न, दम्भ, दर्प, मोह, स्वार्थ की बू हिंलोरें मारती है, तो दूसरी ओर असुरक्षा, गरीबी, अपमान, पराधीनता के कारण साथ ही स्वावलंबन, स्वाधीनता, महत्ता और आत्म–सम्मान का अभाव देखने को मिलता है। कोई भी लोकतांत्रिक समाज इन प्रवृत्तियों वाली समाज रचना के प्रति आंखें मूंद कर नहीं रह सकता। परंतु गांधीवाद को इन दूषित प्रकृतियों की कोई चिंता नहीं। यह कहना पर्याप्त न होगा कि गांधीवाद केवल वर्गभेद से संतुष्ट हो जाता है। यह भी कहना पर्याप्त नहीं है कि गांधीवाद वर्ग संरचना में विश्वास करता है, वरन् गांधीवाद इससे भी बहुत आगे है। वर्ग संरचना जो जर्जर, निस्तेज, जीर्ण–शीर्ण हो गई है, गांधीवाद उसी कंकाल को लादे चलना चाहता है। गांधीवाद वर्ग में विश्वास के साथ काम करने की प्रेरणा देता है। गांधीवाद में वर्गभेद संयोगवश नहीं आ घुसा है, बल्कि उसका आधिकारिक सिद्धांत है।

ट्रस्टीशिप का सिद्धांत हास्यास्पद है, जिसे गांधीवाद सभी विकारों को दूर करने का रामबाण नुस्खा होने की बात करता है और जिसके द्वारा धनी वर्गों के लोग अपनी संपत्ति को न्यास के रूप में रख कर, उसे गरीबों का न्यास और स्वयं को उसका न्यासी बनाकर मालिक ही बने रहेंगे। इस विषय में यही कहा जा सकता है कि यदि किसी अन्य ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया होता तो लेखक उसकी मूर्खता को बेहूदगी समझ कर हंस देता कि उस सिद्धांतकार को वास्तविक कठिनाइयों का अता पता ही नहीं है और दास वर्गों को यह कह कर धोखा दे रहा है कि नैतिकता एवं सदाचार के उपदेश मात्र से संपत्ति के मालिक, जो अपनी असीम तृष्णा की तृप्ति के लिए सदा से गरीबों की दुनिया को आंसुओं की सौगात देते रहे हैं उपदेश द्वारा स्वेच्छा से अपनी तृष्णा कम करके परोपकारी और त्यागी बन जाएंगे और वर्ग संरचना के कारण प्राप्त अधिकारों का दास वर्गों के विरुद्ध प्रयोग न करेंगे उनका दुरुपयोग करना बंद कर देंगे।

गांधीवाद का सामाजिक आदर्श जाति और वर्ग व्यवस्था पर आधारित है। इसमें संदेह नहीं कि इन दोनों के रहते गांधीवाद का सामाजिक आदर्श लोकतांत्रिक नहीं है। चाहे जाति से अथवा वर्ण से दोनों मे से किसी की भी तुलना की जाए, वे दोनों ही मूल रूप से लोकतांत्रिक नहीं हैं। यह तो कुछ ठीक भी होता यदि गांधीवाद जाति व्यवस्था की पुष्टि दृढ़ता और ईमानदारी से करता। परंतु जाति व्यवस्था के पक्ष में उनकी वाकपटुता बेहूदा तर्क है। जाति व्यवस्था के पक्ष में गांधी जी द्वारा दिए गए तर्कों को कसौटी पर कसने पर हम इसी नतीजे पर पहुंचेंगे कि प्रत्येक तर्क यदि बचकाना नहीं, तो बनावटी अवश्य है, जिन्हें इसी अध्याय के द्वितीय खंड में दिया गया है।

प्रथम तीन तर्कों पर तो तरस आता है। पहला तर्क यह है कि हिंदू समाज आज तक जीवित है जबकि दूसरे समाज मिट गए। यह कोई तारीफ की बात नहीं है। इसके जीवित बचे रहने का कारण जाति व्यवस्था नहीं, वरन् कारण ये थे कि विदेशी जिन्होंने हिंदुओं पर आक्रमण किया उन्होंने इनका सफाया कर देना आवश्यक नहीं समझा। केवल जीवित बच जाना ही शान की बात नहीं है। जीवित रहने से क्या तात्पर्य है? कुछ लोग बिना शर्त के आत्म–समर्पण करके जीवित बच जाते हैं। कोई–कोई कायरता–पूर्वक पीछे हट कर पराजय मान कर जीवित रह जाते हैं और कुछ लोग शत्रु से लोहा लेकर अपनी जीवन रक्षा करते हैं। कैसे हिंदू जीवित रहें? यदि उन हिंदुओं के लिए कहा जाए कि वे शत्रुओं से लड़कर और उन्हें पराजित करके जीवित रहें, तो श्री गांधी द्वारा जाति व्यवस्था के पक्ष में दिया गया तर्क उचित है। हिंदुओं का इतिहास सदैव आत्म–समर्पण एवं अधम समर्पण का इतिहास रहा है। यह सच है कि दूसरे लोगों ने आक्रमणकारियों के समक्ष आत्म–समर्पण किया है। परंतु उन्होंने आत्म–समर्पण के बाद विदेशी शासकों के विरुद्ध विद्रोह किया। हिंदुओं ने विदेशी आक्रमणकारी की मार–काट का विरोध करने के बजाय पराधीनता स्वीकार कर ली और विदेशी शासन के जुए को उतार फेंकने के लिए एक–जुट होकर कभी विद्रोह नहीं किया। दूसरे यह कि हिंदुओं ने दासता में सुविधाधर्मी बनने का प्रयत्न किया, जबकि विश्व की अन्य जातियों ने हार जाने पर भी पराजय को कभी हृदय से स्वीकार नहीं किया और लगातार विद्रोह करती रहीं। ऐसी स्थिति को देखते हुए यही कहा जा सकता है कि हिंदुओं की यह निस्सहाय स्थिति पूर्णतया जाति व्यवस्था के कारण रही है।

चौथे पैरा में दिया गया श्री गांधी का तर्क कुछ हद तक स्वीकार्य लगता है, जिसमें कहा गया है कि जातियों के माध्यम से शिक्षा के प्रसार तथा न्याय करने में सहायता मिल सकती है। परंतु यह नहीं कहा जा सकता कि प्राथमिक शिक्षा प्रसार अथवा लड़ाई झगड़ों का फैसला करने का कार्य निपटाने के लिए जाति

व्यवस्था ही एकमात्र साधन है। संभवतः ऐसे कार्य करने के लिए जाति व्यवस्था से घटिया साधन और कोई हो ही नहीं सकता, क्योंकि इस से जातियों को बड़ी आसानी से प्रभावित तथा भ्रष्ट किया जा सकता है। इस प्रकार के कार्य अन्य देशों में भारत की अपेक्षा बेहतर ढंग से हुए हैं, यद्यपि वहां जाति प्रथा नहीं है। अच्छी सैनिक टुकड़ियां बनाने की बात हवाई किला है। व्यावसायिक सिद्धांत की पृष्ठभूमि में जाति व्यवस्था से लड़ाकू व्यक्तित्व निकालना संभव नहीं है। श्री गांधी मानते हैं कि उनके ही प्रांत गुजरात में किसी भी जाति ने सैनिक टुकड़ी नहीं खड़ी की। वर्तमान विश्व युद्ध में भी, यहां के लोगों ने कोई रुचि नहीं ली। पिछले विश्व युद्ध में ब्रिटिश सरकार के एजेंट के रूप में सैनिक भर्ती के लिए श्री गांधी द्वारा गुजरात में भ्रमण करने पर भी जाति-प्रथा उन्हें एक सैनिक टुकड़ी नहीं दे सकी। वास्तव में जाति व्यवस्था के अंतर्गत साधारणतया लोगों को सेना के लिए तैयार करने का काम उस समय तक असंभव है, जब तक कि जाति व्यवस्था का व्यावसायिक सिद्धांत समाप्त नहीं कर दिया जाता।

जातियों के समर्थन में गांधी जी द्वारा पैरा 5 व 6 में दिए गए तर्क नीरस हैं और स्वीकार करने योग्य नहीं हैं। पैरा 5 में दिया गया तर्क जिसमें अंतर्जातीय सहभोज और विवाहों का खंडन किया गया है सही तर्क नहीं कहा जा सकता। यह सही है कि परिवार एक आदर्श इकाई है, जिसमें सभी सदस्यों में पारस्परिक प्रेम व्यवहार होता है यद्यपि उनमें पारस्परिक विवाह नहीं होते। यह माना जा सकता है कि वैष्णव परिवार के सदस्य सहभोज नहीं करते, परंतु तब भी उनमें पारस्परिक प्रेम और स्नेह बना रहता है। इससे क्या साबित होता है? इससे यह साबित नहीं होता कि सहभोज और पारस्परिक वैवाहिक संबंध बंधुत्व स्थापित करने के लिए आवश्यक नहीं है। इससे यह साबित होता है कि जहां बंधुत्व स्थापित करने के और भी साधन हैं – जैसे कि पारिवारिक बंधन की चेतना, वहां सहभोज और पारस्परिक विवाह संबंध आवश्यक नहीं हैं। परंतु जाति और परिवार में कोई संगति नहीं है। इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि अंतर्जातीय खान-पान और शादी व्यवहार वर्जित नहीं है। इसलिए अंतर्जातीय खान-पान और विवाह संबंध आवश्यक है, क्योंकि जातियों के बीच संपर्क सूत्र नहीं है। जबकि परिवार के विषय में अन्य संपर्क सूत्र मौजूद हैं। वे जिन्होंने अंतर्जातीय सहभोज और विवाह के विरुद्ध प्रतिबंध लगाने पर जोर दिया है, उन्होंने इसे सापेक्ष मूल्यों का प्रश्न बना लिया है। उन्होंने इन मूल्यों का स्तर बढ़ा कर सकल मूल्यों तक लाने के प्रयास नहीं किए। श्री गांधी इसे करने वाले पहले व्यक्ति हैं। अंतर्जातीय सहभोज अच्छा नहीं है चाहे उससे अच्छा परिणाम क्यों न निकले? क्योंकि किसी के सामने भोजन करना उतना ही गंदा काम है जितना शौच करना। जाति व्यवस्था का बचाव अन्य लोगों ने भी किया है। परंतु यह पहला अवसर है जिसमें मैंने देखा कि श्री गांधी

का तर्क इतना लाजवाब है। इसे सुनकर कट्टर से कट्टर सनातनी हिंदू कहना चाहेगा कि "ऐसी बुद्धि वाले श्री गांधी से भगवान बचाए।" इससे स्पष्ट है कि श्री गांधी कितने पक्के रंग में रंगे रूढ़िवादी हिंदू हैं। वह कट्टर से कट्टर हिंदू को भी मात कर गए। इतना ही कहना पर्याप्त न होगा कि श्री गांधी अपने तर्क में आदिम गुफा सभ्यता से भी पीछे चले गए। यह तो वास्तव में किसी पागल व्यक्ति के तर्क जैसा है।

श्री गांधी ने पैरा 7 में जाति व्यवस्था के पक्ष में जो तर्क दिया है, नैतिक बल के निर्माण में उसका कोई महत्व नहीं है। निस्संदेह जाति व्यवस्था मनुष्य को उस स्त्री के साथ सहवास करने से रोकती है, जो उसकी जाति की नहीं है। जाति व्यवस्था मनुष्य को किसी अन्य मनुष्य के घर, जो उसकी जाति का नहीं है, बना भोजन कर अपनी भूख मिटाने से भी रोकती है। यदि नैतिक मूल्यों का उद्देश्य इन बिना सोचे–समझे प्रतिबंधों से पूरा होता है तब जाति व्यवस्था को नैतिक व्यवस्था स्वीकार किया जा सकता है। परंतु श्री गांधी यह नहीं देखते कि हिंदू जाति व्यवस्था में साधारण प्रतिबंधों के रहते, एक मनुष्य को अपनी ही जाति में सैकड़ों स्त्रियों से विवाह करने और सैकड़ों स्त्रियों के साथ सहवास करने की पूरी छूट है। हिंदू धर्म किसी मनुष्य को अपनी ही जाति के लोगों के साथ क्षुधा मिटाने की असीमित छूट देता है।

आठवां तर्क पूरे प्रश्न की जान है। पैतृक प्रणाली अच्छी या बुरी हो सकती है। कुछ लोग इससे सहमत होंगे, तो दूसरे असहमत भी होंगे। प्रश्न यह है कि पैतृक व्यवस्था को वैधानिक सिद्धांत का रूप क्यों दिया जाए? इसे अनिवार्य क्यों बनाया जाए? यूरोप में इसे वैधानिक सिद्धांत का रूप नहीं दिया गया है और न अनिवार्य ही किया गया। यूरोप में लोगों को पूरी स्वतंत्रता है कि वे चाहे पैतृक व्यवसाय को अपनाएं अथवा छोड़ें। यह कौन कह सकता है कि अनिवार्य व्यवस्था, स्वैच्छिक व्यवस्था की अपेक्षा अधिक कारगर सिद्ध हुई है। यदि भारत के लोगों की आर्थिक स्थिति की तुलना यूरोप के लोगों की आर्थिक स्थिति से की जाती है, तो शायद ही कोई समझदार व्यक्ति इस आधार पर जाति–प्रथा को माने, क्योंकि बार–बार व्यवसाय बदलने पर नए–नए नामकरण हो जाएंगे। यह मुश्किल है। यह आवश्यकता तभी पड़ती है जब किसी व्यक्ति को उसके व्यवसाय के नाम से जाना जाए। ऐसे वर्ग का ठप्पा लगाना व्यर्थ है और वे बिना कठिनाई के समाप्त किए जा सकते हैं। इसी के साथ आज के भारत में क्या हो रहा है? लोगों के व्यवसाय और उनके जाति सूचक ठप्पे मेल नहीं खाते। ब्राह्मण जूता बेचते हैं। कोई इस बात की आवश्यकता नहीं समझता कि उसका जाति नाम बदल कर उसे चमार कहा जाए। इसी प्रकार जब चमार कोई अधिकारी हो जाता है, तो कोई परवाह नहीं करता कि उसे ब्राह्मण कहा जाए। इस प्रकार श्री गांधी का यह तर्क पूर्णतया

निरर्थक है। समाज में जाति के ठप्पे से ही लोग जाने जाते हैं। उनकी कोई आवश्यकता नहीं, वरन् आवश्यक यह देखना है कि उसने क्या सेवा की है।

जाति व्यवस्था के पक्ष में श्री गांधी द्वारा दिया गया अंतिम और नौवां तर्क बहुत ही आश्चर्यजनक और ऐतिहासिक रूप में असत्य है। जिसने मनुस्मृति पढ़ी है, वह यह नहीं कह सकता है कि जाति–प्रथा प्राकृतिक है। मनुस्मृति क्या कहती है? परंतु जिसे मनुस्मृति के विषय में तनिक भी जानकारी है, जाति व्यवस्था को वह प्राकृतिक व्यवस्था नहीं मान सकता। मनुस्मृति में प्रकट होता है कि जाति विधान हिंदुओं का कानूनी विधान है जिसे बलपूर्वक चलाया जाता रहा है। आज तक यह जिन कारणों से बचा हुआ है वे हैं : (1) जनसाधारण को शस्त्र ग्रहण करने से वंचित रखना, (2) जनसाधारण को शिक्षा के अधिकार से वंचित रखना, और (3) जनसाधारण को संपत्ति के अधिकार से वंचित करना। जाति–प्रथा प्राकृतिक नहीं है। इसे शासकों ने शासितों पर थोपा है।

श्री गांधी का जाति–प्रथा के समर्थन को छोड़ कर वर्ण व्यवस्था की वकालत करने से इस आरोप पर कोई अंतर नहीं पड़ता कि गांधीवाद लोकतंत्र के विरुद्ध है। पहली बात तो यह है कि वर्ण व्यवस्था जाति–व्यवस्था की जननी है। यदि जातिवाद का विचार हानिकारक है, तो इसका मुख्य कारण वर्ण व्यवस्था द्वारा घोला गया जहर है। दोनों ही पैशाचिक हैं चाहे कोई वर्ण में विश्वास करे अथवा जाति में। बौद्धों ने वर्ण व्यवस्था पर निर्दयता से प्रहार किया था। पाखंडी और वैदिक सनातनी हिंदू उन्हें विवेकपूर्ण उत्तर न दे सके। उनके पास केवल एक उत्तर था कि वर्ण व्यवस्था वेदों का आदेश है और जैसा कि वेद संशय से परे हैं, इसलिए वर्ण व्यवस्था वेद भगवान की वाणी होने के कारण मान्य है। बौद्धों के बुद्धिवादी तर्क के सामने वर्ण व्यवस्था की मूर्खतापूर्ण तर्कें कहीं नहीं टिकतीं। यदि वर्ण व्यवस्था टिक सकी, तो केवल भगवद् गीता के कारण, जिसने वर्ण व्यवस्था का दार्शनिक आधार यह तर्क देकर सुदृढ़ किया कि वर्ण मनुष्य के स्वाभाविक गुणों पर आधारित हैं। भगवद् गीता ने सांख्यदर्शन की वैशाखी लगा कर वर्ण के आधार को पुख्ता और मजबूत कर दिया। भगवद् गीता ने वर्ण व्यवस्था को नया जीवन प्रदान करने के लिए स्वाभाविक गुणों का नाम देकर बहुत बड़ी धूर्तता की।

भगवद् गीता की वर्ण व्यवस्था में कम से कम दो गुण अवश्य हैं। गीता का यह कहना नहीं है कि वर्ण जन्म पर आधारित है। वास्तव में उनका मुख्य कथन यह है कि वर्ण मनुष्य के स्वाभाविक गुणों के अनुसार निश्चित है। गीता का यह कथन नहीं है कि बेटा वही व्यवसाय करेगा जो उसका बाप करता था। गीता का कहना है कि किसी मनुष्य का पेशा उसके स्वाभाविक गुणों के अनुसार होगा,

पिता का व्यवसाय पिता के स्वाभाविक गुणों के अनुसार होगा और बेटे का व्यवसाय बेटे के स्वाभाविक गुणों के अनुसार होगा। परंतु श्री गांधी ने वर्ण व्यवस्था को नई व्याख्या दी है। उन्होंने पुरानी मान्यता का रूप ही बदल दिया है। श्री गांधी के पूर्व सनातनी हिंदू जाति के आधार पर पीढ़ी दर पीढ़ी व्यवसाय अपनाने के सिद्धांत को मानते थे, वर्ण के आधार पर नहीं। परंतु श्री गांधी ने अपने मन से वर्ण की नई व्याख्या कर डाली। श्री गांधी के शब्दों में वर्ण का निर्धारण जन्म से होता है और वर्ण का व्यवसाय पीढ़ी दर पीढ़ी के सिद्धांत से निश्चित किया जाता है। मनुष्य वर्ण उसके जन्म के पूर्व ही निर्धारित रहता है। इसलिए वर्ण ही जाति का दूसरा नाम है। इस प्रकार श्री गांधी द्वारा की गई व्याख्या में जाति को वर्ण में बदल देने से यह संकेत नहीं मिलता कि उससे किसी नई क्रांतिकारी विचारधारा को बढ़ावा मिला है। श्री गांधी का यह करिश्मा आरंभ से अंत तक शरारत से भरा हुआ है। श्री गांधी के पेट में दाढ़ी है। वे वामन अवतार के समान हैं, जो जातिवाद का धोखा न करते तो बित्ते भर के ही रह जाते।

कभी–कभी श्री गांधी सामाजिक और आर्थिक विषयों पर ऐसे बातें करते हैं, जैसे वे छद्म साम्यवादी हों। वे लोग जो गांधीवाद का अध्ययन करेंगे, वे प्रजातंत्र के पक्ष में और पूंजीवाद के विरोध में समय–समय पर श्री गांधी के स्मृति–लोप से धोखा नहीं खाएंगे, क्योंकि गांधीवाद किसी भी अर्थ में क्रांतिकारी मत की श्रेणी में नहीं आता है। गांधीवाद टकसाली अनुदारवाद है। जहां तक भारत का संबंध है, गांधीवाद प्रतिक्रियावादी हवा है और आदिमयुग के आदर्शों की ध्वजा है। गांधीवाद का लक्ष्य है, भारत के समाधिस्थ अतीत को पुनर्जीवित करना।

गांधीवाद स्वयं में एक विरोधाभास है। गांधीवाद विदेशी शासन से देश को स्वतंत्र कराने का राग अलापता है, जिसका अर्थ है देश के वर्तमान राजनीतिक ढांचे को तहसनहस करना साथ ही गांधीवाद उस सामाजिक ढांचे को मजबूत करना चाहता है, जो पीढ़ी–दर–पीढ़ी एक वर्ग से दूसरे वर्ग को दासता की कठोर बेड़ियों में जकड़ता चला आया है। क्या यह स्वयं में गांधीवाद के विरोधाभास का प्रमाण नहीं है? क्या स्वराज्य आंदोलन रूढ़िवादी और गैर–रूढ़िवादी सभी हिंदुओं का हार्दिक समर्थन प्राप्त करने के लिए श्री गांधी की कुशल रणनीति का भाग नहीं है? ऐसा ही है तो क्या गांधीवाद को ईमानदार और सही कहा जा सकता है? गांधीवाद के दो लक्षण हैं, जो प्रचारित किए गए हैं, परंतु दुर्भाग्यवश किसी का ध्यान उस ओर नहीं गया। दूसरा प्रश्न है कि क्या गांधीवाद मार्क्सवाद की अपेक्षा अधिक स्वीकार्य होगा? परंतु गांधीवाद को मार्क्सवाद से अलग करने वाली कुछ बातों का उल्लेख करना ठीक ही है।

गांधीवाद का प्रथम मुख्य दर्शन है, साधन–संपन्न लोगों की सहायता करना,

जो कुछ उनके पास है, उसकी रक्षा करना और जिनके पास कुछ नहीं है, उन्हें प्राप्त करने के अधिकार से रोकना। जो मनुष्य हड़तालों के प्रति श्री गांधी के विचार, जाति–प्रथा के पक्ष में गांधीवाद का श्रद्धाभाव और गरीबों को लाभ पहुंचाने के नाम पर अमीरों द्वारा चलाए जाने वाले गांधीवादी ट्रस्टीशिप के सिद्धांतों का परीक्षण करेगा, वहीं गांधीवाद के असली लक्ष्य को समझ सकेगा। इसके संबंध में कई प्रकार के तर्क दिए जा सकते हैं। परंतु तथ्य यही है कि गांधीवाद संपन्न और समृद्ध लोगों का दर्शन है।

गांधीवाद का दूसरा मुख्य सिद्धांत है अपने शब्दों के जाल में समाज की बुराइयों को अच्छाइयों के आकर्षक रूप में प्रस्तुत कर लोगों को भ्रमित करना। इसे सिद्ध करने के लिए कुछ उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

पहला उदाहरण यह है कि हिंदुओं के तथा–कथित पवित्र कानून द्वारा शूद्रों (हिंदुओं का चतुर्थ वर्ण) को संपत्ति अर्जित करने से रोकना। यह बलपूर्वक निर्धनता थोपने वाला कानून दुनिया के किसी कोने में नहीं पाया जाता। इस कानून के प्रति गांधीवाद का क्या दृष्टिकोण है? क्या वह इस प्रतिबंध को हटाता है। नैतिक बल कह कर वह शूद्रों को इस बात के लिए प्रेरित करता है कि वे संपत्ति का परित्याग करें। श्री गांधी के शब्दों में[1] –

> "शूद्र, जो केवल सवर्णों की सेवा करना अपना परम धर्म समझते हैं और जिनकी अपनी कोई संपत्ति कभी नहीं होती, जो वास्तव में किसी वस्तु को अपनाने की इच्छा भी नहीं करते अभिनन्दनीय हैं, देवतागण भी ऐसे पुरुषों पर पुष्प वर्षा किए बिना नहीं रह सकते।"

गांधीवादी विचार के समर्थन में जो दूसरा उदाहरण है, वह झाड़ू लगाने वालों के संबंध में है। हिंदुओं का तथाकथित पवित्र कानून इस बात का आदेश देता है कि भंगी की संतान के लिए भंगी का ही काम करना अनिवार्य है। हिंदू धर्म में भंगी का काम पसंद पर निर्भर नहीं करता, वरन् जबरदस्ती से कराया जाता है। इस संबंध में गांधीवाद शास्त्रीय मर्यादा को चिरस्थाई बनाने के लिए भंगी के कार्य को समाज की महानतम सेवा बतला कर उसे उसी गंदे काम में लगाए रखना चाहता है। अस्पृश्यों की एक सभा का सभापतित्व करते हुए श्री गांधी ने कहा था[2] –

> "न मैं मोक्ष पाने की इच्छा करता हूं और न पुनर्जन्म की कामना करता हूं। परंतु यदि मेरा पुनर्जन्म होवे ही तो मैं चाहूंगा कि मैं अस्पृश्य के

1. *वर्ण व्यवस्था* से उद्धृत पृष्ठ 51
2. *यंग इंडिया* 27 अप्रैल 1921

घर में पैदा होऊं, ताकि मैं उनके कष्टों, मुसीबतों और तिरस्कार का अनुभव कर, उनका साझीदार बन सकूं, और उन्हें उस दयनीय दशा से उबारने का प्रयत्न कर सकूं। इसलिए मैं प्रार्थना करता हूं कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो, तो मेरा जन्म ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य अथवा शूद्र के घर में न होकर अति शूद्र के घर में हो।

"मुझे भंगी के कार्य से प्रेम है। मेरे आश्रम में एक 18 वर्ष का ब्राह्मण लड़का झाड़ू लगाने का काम कर रहा है, ताकि आश्रम का भंगी उससे सीखे कि आश्रम में झाड़ू कैसे लगानी चाहिए। वह लड़का कोई सुधारक नहीं है। वह रूढ़िवादी हिंदू परिवार में पैदा हुआ है और पला है। परंतु उसने अनुभव किया कि उसकी सिद्धियां उस समय तक अधूरी रहेंगी, जब कि कि वह पूर्ण रूपेण भंगी नहीं बन जाता और इसलिए कि आश्रम का भंगी ठीक से सफाई करे, तो स्वयं सफाई कार्य करके उसके सामने उदाहरण प्रस्तुत करना आवश्यक है।

"तुम्हें यह समझना चाहिए कि तुम लोग हिंदू समाज की सफाई कर रहे हो।"

क्या एक वर्ग द्वारा दूसरे वर्ग पर जबरदस्ती थोपी गई इन परंपरागत बुराइयों को गांधीवाद द्वारा पुनर्जीवित करने के प्रयत्न से बढ़कर झूठा प्रचार करने का बदतर उदाहरण कहीं और मिल सकता है? यदि गांधीवाद संपत्ति का मोह त्यागने का उपदेश केवल शूद्रों को नहीं पूरे समाज के सभी वर्गों को देता, तो यही कहा जा सकता था कि यह भूल से ऐसा गलत विचार प्रकट कर दिया गया है। परंतु केवल एक ही वर्ग के लिए इसे क्यों अच्छा कहा गया है? मानव की बदतर मनोवृत्तियों दर्प और दंभ को सिर झुका कर स्वीकार करने की वह सीख एक वर्ग विशेष को क्यों दी जाती है, जिसे बौद्धिक आधार पर निर्मम विषमता मान कर वह उस पर क्षोभ व्यक्त करता? केवल भंगी को ही यह कहने से क्या लाभ कि ब्राह्मण भी झाड़ू लगाने को तैयार है, जबकि यह स्पष्ट है कि हिंदू शास्त्रों के अनुसार कोई ब्राह्मण झाड़ू लगाने का काम करने पर भी जन्मजात भंगी के समान भंगी नहीं हो जाएगा? क्योंकि भारत में कोई मनुष्य झाड़ू लगाने के काम के कारण ही भंगी नहीं होता। यह जाति और जन्म से भगी होता है। इस बात का प्रश्न नहीं कि वह भंगी का काम करता है अथवा नहीं। यदि श्री गांधी इस आशंका से कि कहीं लोग इस काम को छोड़ न दें और यदि गांधीवादी पट्टी पढ़ाते हैं कि झाड़ू लगाना एक गौरवपूर्ण कार्य है, तो इसे समझा जाना चाहिए। परंतु श्री गांधी भंगियों को ही सफाई कार्य करते रहने में ही गर्व करने की अपील यह कहते हुए क्यों करते हैं कि यह सर्वोत्तम कार्य है और उसे करते रहने में

किसी प्रकार की लज्जा का अनुभव नहीं करना चाहिए? इस प्रकार गांधीवाद द्वारा यह उपदेश कि संपत्ति का मोह त्याग और गरीबी केवल शूद्रों के लिए उत्तम है और किसी के लिए नहीं तथा सफाई कार्य केवल अस्पृश्यों के लिए अच्छी बात है अन्य लोगों के लिए नहीं। यह उनके जीवन का स्वयंसेवी कार्य बतला कर ऐसा अपमानजनक कार्य उन पर थोपना उन निस्सहाय वर्गों के साथ दुष्टता का तांडव है और इस प्रकार का तांडव श्री गांधी जैसा व्यक्ति ही कर सकता है। इस संबंध में वाल्टेयर के शब्द आज भी याद आते हैं जिन्होंने गांधीवाद के समान प्रचलित वाद का विरोध करते हुए कहा था : "यह कहना भौंडा मजाक है कि कुछ लोगों की पीड़ा से दूसरों को सुख मिलता है और संसार भर का इसमें कल्याण है। एक मरणासन्न व्यक्ति को इससे क्या सुकून मिल सकता है कि उसके रोगग्रस्त शरीर से हजारों कृमियों व कीड़ों का जन्म होता है।"

चलिए और आलोचनाएं तो हैं ही पर गांधीवाद में यह कारीगरी है कि किसी को सताया जाए और उसी पीड़ित से कहा जाए यह तुम्हारा विशेषाधिकार है। यदि कोई ऐसा वाद है, जो धर्म रूपी अफीम खिलाकर किसी को झूठे विश्वास से अचेतन कर दे, तो वह गांधीवाद है। शेक्सपीयर के कथन को यदि इस संदर्भ में लिया जाए, तो कहना पड़ेगा कि मक्कारी और धोखाधड़ी का नाम है – गांधीवाद।

IV

ऐसा है गांधीवाद। गांधीवाद को समझ लेने के बाद इस प्रश्न का क्या उत्तर है कि गांधीवाद के अनुसार इस देश का संविधान बन जाए, तो उसमें अस्पृश्यों की क्या स्थिति होगी? इसका उत्तर तलाश करने में अधिक माथापच्ची की जरूरत न होगी। उसकी हिंदुओं के निम्नतम वर्ग से क्या तुलना होगी? काफी प्रकाश डाला जा चुका है कि गांधीवादी समाज–व्यवस्था में अस्पृश्यों की क्या स्थिति होगी? उस गांधीवादी व्यवस्था में निम्नतम वर्ग का हिंदू और अस्पृश्य यद्यपि दोनों ही पैतृक संपत्ति से वंचित वर्ग के होते हुए भी उनकी स्थिति बेहतर नहीं हो सकती, बल्कि अस्पृश्यों की स्थिति बदतर ही रहेगी, क्योंकि भारतवर्ष में सवर्ण हिंदुओं के निम्नस्तर का मनुष्य भी अर्थात जंगली असभ्य और पहाड़ी कबीले का व्यक्ति भी, चाहे शैक्षिक और आर्थिक दृष्टि से अस्पृश्यों से बहुत बेहतर भी न हो, तो भी वह अस्पृश्यों के मुकाबले अधिक सम्मान का पात्र समझा जाता है। यह बात नहीं है कि वह स्वयं को अस्पृश्यों से श्रेष्ठ समझता है, परंतु हिंदू समाज उनको अस्पृश्यों से श्रेष्ठ

---

1. भारत के कुछ प्रांतों ने ऐसे कानून बनाए हैं जिनके अनुसार सफाई कार्य करने से इंकार करना जुर्म करार दिया गया है और वैसा जुर्म करने वाले अपराधी को फौजदारी मुकदमा चलाकर दंडित किया जा सकता है।

मानता है। प्राप्त करने वालों की कतार में उसका स्थान सबसे पीछे और पिटने वालों में सबसे आगे होता है।

इस दुर्भाग्य से अस्पृश्यों को मुक्ति दिलाने के लिए गांधीवाद क्या करना चाहता है? गांधीवाद अस्पृश्यता मिटाने का राग अलापता है और गांधीवाद की यह सबसे बड़ी विशेषता बताई जाती है। परंतु वास्तविक जीवन में यह विशेषता क्या गुल खिलाती है? ऐसी अस्पृश्यता निवारण को कसौटी पर कसने के लिए, जो गांधीवाद का मुख्य तत्व माना जाता है, श्री गांधी की योजना की सम्भावनाओं को भलीभांति समझ लेना नितांत आवश्यक है। क्या गांधीवाद की इस भावना का अर्थ इससे भी कुछ अधिक है कि अस्पृश्यों का स्पर्श करने में हिंदू हिचकिचाएंगे नहीं? क्या इसका अर्थ यह है कि अस्पृश्यों की शिक्षा पर लगे प्रतिबंध को हटा दिया जाएगा। यह अधिक अच्छा होगा कि दोनों प्रश्नों पर अलग–अलग विचार करें।

पहले अस्पृश्यता के प्रश्न के तराजू पर श्री गांधी का विचार तौला जाए। श्री गांधी यह नहीं कहते कि अस्पृश्यों का स्पर्श हो जाने से नहाना अनिवार्य नहीं है। यदि श्री गांधी मानते हैं कि इसमें कोई एतराज नहीं कि अस्पृश्य होने पर शुद्ध होना ठीक है, तो यह कहना मुश्किल है कि ऐसे किस प्रकार अस्पृश्यता निवारण होगा? अस्पृश्यता तो यही है कि अस्पृश्य होने पर शुद्धि के लिए नहाया जाए। क्या इससे उनकी हिंदुओं के साथ समानता संभव है? श्री गांधी ने बहुत ही स्पष्ट कहा है कि इसका अर्थ यही है कि अंतर्जातीय सहभोज अंतर्जातीय अस्पृश्यता निवारण है। श्री गांधी का अस्पृश्यता निवारण, अस्पृश्य "अतिशूद्र" की श्रेणी से उभरकर शूद्र वर्ग में आ जाएं।[1]

इससे अधिक और कुछ नहीं। श्री गांधी ने इस प्रश्न पर विचार नहीं किया लगता कि क्या पुराने शूद्र नए शूद्रों को अपने समाज में शामिल करेंगे। यदि शूद्र अस्पृश्यों को अपने में मिलाने के लिए तैयार नहीं होते, तो ऐसी अस्पृश्यता निवारण निरर्थक है, क्योंकि इससे अस्पृश्य फिर भी अलग श्रेणी में ही रह जाएंगे। संभवतः श्री गांधी जानते हैं कि केवल अस्पृश्यता निवारण से शूद्र अति शूद्रों (अस्पृश्यों) को अपने में नहीं मिलाएंगे। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि श्री गांधी ने अस्पृश्यों का दूसरा नाम "हरिजन" क्यों रखा? अस्पृश्यों को "हरिजन" कह कर श्री गांधी ने एक तीर से दो शिकार किए हैं। उन्होंने दिखा दिया कि शूद्रों द्वारा अस्पृश्यों को अपने में मिलाना संभव नहीं है। श्री गांधी ने अस्पृश्यों को नया नाम "हरिजन" देकर उन्हें सामाजिक धारा में मिलाने को भी असंभव बना दिया है।

जहां तक शिक्षा प्राप्त करने के अधिकार का संबंध है जो कि दूसरा प्रश्न है, यह सच है कि गांधीवाद शिक्षा प्राप्त करने के अस्पृश्यों के अधिकार पर हिंदू

1. देखिए *यंग इंडिया 5* फरवरी 1925

शास्त्रों द्वारा लगाए गए प्रतिबंध को हटाने के लिए तैयार है और वे कानून के क्षेत्र मे, डाक्टरी के क्षेत्र में, इजीनियरिंग के क्षेत्र में और अन्य क्षेत्रों में शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। चलिए जो है, सो ठीक है। परंतु क्या अस्पृश्य ज्ञान से कुछ लाभ उठा सकते हैं? क्या उन्हें अपना व्यवसाय चुनने की स्वतंत्रता होगी? क्या डिग्रियां लेकर भी वे डाक्टर, इंजीनियर और वकालत का व्यवसाय कर सकेंगे? इन प्रश्नों का उत्तर गांधीवाद में स्पष्ट रूप से नकारात्मक है।[1] गांधीवाद के अनुसार अस्पृश्यों को निश्चित तौर पर अपना पैतृक व्यवसाय ही अपनाना होगा। इस बात का कोई जवाब नहीं है कि वे व्यवसाय तो गंदे हैं। जिस समय उन गंदे व्यवसायों को पैतृक घोषित किया गया था, तो वह बलपूर्वक कराया गया था। उसमें पसंद न पसंद का कोई सवाल न था। गांधीवाद का तर्क है कि जो एक बार निश्चित कर दिया गया वह अटल है चाहे वह गलत ही क्यों न हो। गांधीवाद के अनुसार अस्पृश्य आद्योपांत भंगी हैं। इसमें कोई संदेह नहीं कि अस्पृश्य इससे तो अस्पृश्यता की रूढ़िगत व्यवस्था को पसंद करेंगे। हिंदू शास्त्रों ने अस्पृश्यों पर अज्ञानता को आवश्यक रूप से लाद दिया था। हिंदू शास्त्रों में भंगी का काम करना उन अस्पृश्यों के लिए सह्य था। परंतु गांधीवाद तो शिक्षित अस्पृश्य को भी भंगी का काम करने के लिए विवश करता है। यह बेरहमी के सिवा कुछ नहीं है। गांधीवाद की कुटिल अनुकंपा अभिशाप से बढ़कर है। गांधीवाद का अस्पृश्यता निवारण झांसा है। गांधीवाद में कोई सार नहीं है।

V

गांधीवाद में और क्या है जिसे अस्पृश्य अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए स्वीकार कर सकें। अस्पृश्यता निवारण अभियान के झांसे के सिवाय यह सीधे तौर पर सनातन धर्म का दूसरा नाम है, जो कट्टर रूढ़िवादी हिंदू धर्म का ही पुराना नाम है। गांधीवाद में कौन सी ऐसी बातें हैं, जो रूढ़िवादी हिंदू धर्म में न पाई जाती हों। हिंदू धर्म में जातियां हैं, गांधीवाद में भी जातियां हैं। हिंदू धर्म पैतृक व्यवसाय ग्रहण करने के कानून में विश्वास करता है और गांधीवाद भी। हिंदू धर्म गौपूजा का आदेश देता है और गांधीवाद भी। हिंदू धर्म, कर्म फल को और जन्म के पूर्व ही मनुष्य का भाग्य निर्धारित हो जाना मानता है, गांधीवाद भी। हिंदू धर्म शास्त्रों को प्रमाण मानता है और गांधीवाद भी। हिंदू धर्म अवतारवाद में विश्वास करता है और गांधीवाद भी। हिंदू धर्म मूर्ति पूजा में विश्वास करता है और गांधीवाद भी। गांधीवाद ने जो कुछ किया वह अब हिंदू धर्म का शास्त्रीय और सैद्धांतिक औचित्य सिद्ध करने के लिए किया। हिंदू धर्म का नवीन संस्करण प्रस्तुत करके

1. इस विषय पर गांधी जी कि विचारों के लिए देखिए अध्याय 11
2. देखें यंग इंडिया 6 अक्तूबर 1921

गांधीवाद ने हिंदू धर्म की बड़ी सेवा की है। हिंदू धर्म अपने पुराने रूप में अनगढ़ धर्म था, जिसमें कठोर और निर्दयी विधानों के कोंण बने थे। गांधीवाद ने हिंदू धर्म की नग्नता को दार्शनिकता देकर ढक दिया। इस दार्शनिकता को उसका सार, एक सुंदर परिधान कहा जा सकता है। यह वह दर्शन है, जिसका कहना है कि "हिंदू धर्म" में जो कुछ है, वही श्रेष्ठ है और जन कल्याण के लिए जो कुछ आवश्यक है, यह सब हिंदू धर्म में है। वे लोग जो वाल्टेयर से परिचित हैं, वाल्टेयर की पुस्तक 'केन्डीड' से स्पष्ट हो जाएगा कि गांधीवाद मास्टर पैंगीलोस के दर्शन जैसा है, जिसे वाल्टेयर ने भौंडा मजाक कहा है। निस्संदेह हिंदू लोग गांधीवादी दर्शन से बहुत खुश हैं। निस्संदेह यह उनके अनुकूल है और उनका हित साधक है। प्रोफेसर राधाकृष्णन ने तो पता नहीं मन से या चाटुकारितावश यहां तक कहा है कि श्री गांधी इस लोक के देवता हैं। अस्पृश्य इस कथन का क्या अर्थ लगाएं? क्या यह गांधी नामक देवता एक दीन दु:खिया जाति के आंसू पौंछने आया है? उन्होंने भारत को देखा और उसे बदल डाला, यह कहे बिना कि सब ठीक है और ठीक रहेगा बशर्ते कि वह जात पांत के विधान का पालन करते रहें। उसने पीड़ित जनता से कहा कि "मैं जात पांत के विधान का पालन कराने आया हूं, इसमें न माशा परिवर्तन होगा न रत्ती।"

गांधीवाद अस्पृश्यों को कैसे धीरज बंधाता? हिंदूवाद अस्पृश्यों के लिए यातना गृह है। वेदों, स्मृति शास्त्रों की संशयहीनता का फौलादी कानून, निर्दयी कर्मवाद और जन्मगत अवस्था का विधान अस्पृश्यों को नीचे से ऊपर तक सताने वाला तपता खम्बा है जिसे हिंदुओं ने अस्पृश्यों के लिए खड़ा किया है। इन कुचक्रों ने अस्पृश्यों के जीवन को क्षत–विक्षत कर दिया। अस्पृश्य कैसे कह दें कि गांधीवाद हिंदुओं का परंपरागत यातना कुंड न होकर स्वर्ग द्वार है। उनकी एकमात्र प्रतिक्रिया और स्वाभाविक प्रक्रिया यही है कि वे गांधीवाद को दूर से ही प्रणाम करके भाग खड़े हों।

गांधीवादी कह सकते हैं कि मैंने जो कहा है, वह पुराने वाले गांधीवाद पर लागू होता है। नए गांधीवाद में जात पांत नहीं है। अभी हाल ही में श्री गांधी के एक वर्णन के अनुसार जातिवाद अराजकता है। सुधारवादियों के चेहरे इस बयान से खिल उठे और यह जानकर किसे प्रसन्नता न होगी कि श्री गांधी जैसा मनुष्य, जिसका हिंदुओं में जादुई प्रभाव है, जिसने सामाजिक प्रतिक्रियावाद का शरारती खेल खेला है, जो जाति–प्रथा का धुरधर समर्थक रहा है, जिसने अविवेकी हिंदुओं को अब तक उल्लू बनाया है, जिसके तर्कों में भले बुरे का भेद नहीं रहा। वह ऐसी पल्टी खा रहा है, तो क्या सचमुच प्रसन्नता की ही बात है?

क्या इसे गांधीवाद की प्रकृति में कोई परिवर्तन कहा जा सकता है? क्या यह

पहले के गांधीवाद की अपेक्षा नया और उससे अच्छा गांधीवाद है? वे लोग, जो श्री गांधी की इस कलाबाजी की भूलभुलैया में बहक जाते हैं, वे ऐसा करते समय दो बातें भूल जाते हैं। पहली बात तो यह कि श्री गांधी ने जाति–प्रथा की निंदा न कर उसे अराजकता मात्र कहा, इसे पैशाचिकता नहीं कहा। श्री गांधी जाति–प्रथा को अभिशाप नहीं कहते। अब श्री गांधी जाति के पक्ष में नहीं हैं। परंतु श्री गांधी वर्ण व्यवस्था के विरुद्ध एक शब्द भी नहीं बोलते। तब श्री गांधी की वर्ण व्यवस्था का क्या होगा? श्री गांधी की वर्ण व्यवस्था जाति व्यवस्था का ही नया नाम है जिसमें जाति व्यवस्था के सभी अशुभ लक्षण विद्यमान हैं।

इस प्रकार श्री गांधी की नवीन घोषणा का अर्थ गांधीवाद में कोई मूल परिवर्तन नहीं माना जा सकता। नवीन घोषणा अस्पृश्यों को स्वीकार नहीं हैं। अभी भी अस्पृश्यों को यही कहना पड़ेगा "भगवान तेरा भला हो, क्या यही गांधी हमारे संरक्षक हैं?"

परिशिष्ट 1

अस्पृश्यों के लिए बारदोली कार्यक्रम पर स्वामी श्रद्धानंद के विचार

अस्पृश्यों के उत्थान की योजना बनाने के लिए 1922 में कांग्रेस उप–समिति के संबंध में स्वामी श्रद्धानंद तथा कांग्रेस के महामंत्री पंडित मोतीलाल नेहरू के मध्य पत्र व्यवहार –

1. स्वामी जी का पत्र

महामंत्री
अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी
शिविर, दिल्ली।

मैं सधन्यवाद आपके पत्र संख्या 331 और 332 की पावती भेज रहा हूँ जिसमें अस्पृश्यता के विषय में कार्यसमिति और अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के संकल्पों का मसौदा दिया हुआ है। मुझे यह जान कर दुख हुआ कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के संकल्प में, जिस रूप में वह है, समिति द्वारा पारित सभी बातें सम्मिलित नहीं की गई हैं।

तथ्य ये हैं – मैंने श्री विट्ठल भाई पटेल (तत्कालीन महामंत्री) को दिनांक 23 मई 1992 को निम्नलिखित पत्र भेजा था, जो देश के प्रमुख समाचारपत्रों में भी छपा था :–

'प्रिय श्री पटेल,

एक समय ऐसा था, (यंग इंडिया दिनांक 25 मई 1921 देखें) जब महात्मा जी ने अस्पृश्यता के प्रश्न को कांग्रेस कार्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया था। अब मुझे मालूम हो रहा है कि दलित वर्गों के उत्थान का प्रश्न रद्दी की टोकरी में फेंक दिया गया है। जबकि खादी की ओर हमारे कार्यकर्ताओं का ध्यान आकर्षित किया गया है और उसके लिए यथोचित धनराशि भी निश्चित की गई है, राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा के प्रबंध के लिए एक उप–समिति गठित की गई है और उसके लिए धन एकत्र करने के लिए विशेष अपील की गई है अस्पृश्यता निवारण के प्रश्न को अहमदाबाद, अहमदनगर ओर मद्रास को थोड़ा सा धन देकर ताक पर रख दिया गया है। मेरा विचार है कि नौकरशाही द्वारा हमारे ही भाइयों में से छह करोड़ को हमारे विरुद्ध कर देने से खादी कार्यक्रम भी पूर्णतया सफल नहीं हो सकता। कार्यसमिति के सदस्य शायद यह नहीं जानते कि हमारे दबे कुचले

भाई खादी को छोड़ कर सस्ते विदेशी कपड़े खरीद रहे हैं। मैं सात जून को लखनऊ में अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की होने वाली बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव रखना चाहता हूं कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के तीन सदस्यों की एक उप समिति नियुक्त की जाए, जो दलित वर्गों से संबंधित संकल्प को कार्यान्वित कराए और पांच लाख रुपये की धनराशि प्रचार के लिए उनके नाम उपरोक्त उप समिति को भेजी जाएं।" मेरे प्रस्ताव को उप समिति ने इस प्रकार संशोधित कर दिया :-

"यह समिति एक ऐसी समिति का गठन करती है, जिसमें स्वामी श्रद्धानंद, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री जी.वी. देशपांडे और आई.के. याज्ञनिक होंगे, जो एक ऐसी योजना तैयार करेंगे, जिसमें सारे देश में अस्पृश्यों की दशा को बेहतर बनाने के उपाय सुझाएं जायेंगे और कांग्रेस कार्य समिति की अगली बैठक के सामने विचारार्थ प्रस्तुत किए जाऐंगे और फिलहाल इस योजना के लिए दो लाख रुपये निश्चित किए जाते है।"

श्री पटेल ने मुझ से कार्य समिति के संकल्प को पूर्णरूपेण स्वीकार करने के लिए कहा। मैंने संकल्प को अस्वीकार कर दिया और कांग्रेस महासमिति की पहली बैठक में ही दो लाख के स्थान पर पांच लाख रुपये इस शर्त पर रखवाए कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी एक लाख रुपया जो समिति के पास जमा है, उसमें से स्वीकार करे और शेष के लिए अपील जारी करे।

कार्य समिति की ओर से श्री राजगोपालाचारी ने प्रस्ताव किया कि कांग्रेस कोष से धनराशि निश्चित करने के बजाए यह प्रबंध कर दिया जाना चाहिए कि जब कार्य समिति योजना स्वीकार कर लेगी, तो यह समिति जितना धन दे सकेगी, स्वीकार करेगी। मुझे ठीक शब्द तो याद नहीं हैं, परंतु मेरी जानकारी के अनुसार उपरोक्त संशोधन का अभिप्राय सचमुच यही था।

इस पर चारों ओर से होहल्ला मचा और यह मांग की जाने लगी कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पास जमा धनराशि घोषित की जाए। अध्यक्ष ने मुझे अलग बुला कर विश्वास में लेकर कहा कि कांग्रेस के पास बहुत कम धनराशि बची है और यदि सही स्थिति बता दी जाती है, तो इससे आंदोलन को ठेस पहुंचेगी, क्योंकि वहां बाहरी लोग और गुप्तचर भी मौजूद हैं। इस पर मैंने अपने समर्थकों के विरोध करने पर भी श्री राजगोपालाचारी के प्रस्ताव को मान लिया। परंतु मुझे तब बड़ा आश्चर्य हुआ जब मुझे समाचारपत्रों से ज्ञात हुआ कि राजगोपालाचारी का संशोधन भी नामंजूर कर दिया गया।

उपरोक्त संकल्प पारित होने के बाद कुछ सदस्यों ने राय दी कि उप-समिति का एक संयोजक नियुक्त किया जाना है तो कई सदस्यों ने मुझे ही संयोजक

बनाने का प्रस्ताव किया। इस पर तत्कालीन महामंत्री श्री विट्ठल भाई पटेल उठे और कहा "जैसा कि स्वामी श्रद्धानंद का नाम पहले आया है, वहीं संयोजक बनेंगे और इसलिए अन्य और किसी के नाम का प्रस्ताव लाने की कोई आवश्यकता नहीं है।"

देश के सभी भागों से अस्पृश्यता के विषय में सदस्य अपने प्रांतों से सूचनाएं देने लगे और वहां जाने के लिए मुझ पर दबाव डालने लगे। इस पर मैंने कुछ वायदे भी किए। तब मैंने सोचा कि ऐसे प्राथमिक खर्चों के लिए बिना धन का प्रबंध किए काम नहीं चलेगा। धन के अभाव में क्षेत्र में जाकर जांच नहीं की जा सकेगी, जिससे इस कार्यक्रम हेतु कोई योजना बनाई जा सके। मुझे यह भी ज्ञात हुआ कि कार्य समिति द्वारा इलाहाबाद के "दि इनडिपेंडेंट" के लिए 25,000 रुपये और हकीम अजमल खां की अर्जी पर दिल्ली के उर्दू दैनिक अखबार "कांग्रेस" के लिए 10,000 रुपये स्वीकार किए जाने थे। इसीलिए मैंने कांग्रेस अध्यक्ष को अस्पृश्यता उप समिति के लिए 10,000 रुपये स्वीकार करने के लिए पत्र लिखा।

इस सब के बाद आपके पत्र संख्या 331 के साथ भेजा गया कार्य समिति का निम्नलिखित प्रस्ताव बड़ा दिलचस्प है :–

"स्वामी श्रद्धानंद का पत्र दिनांक 8 जून 1922 जो दलित वर्ग के कार्य के लिए धनराशि के विषय में है। यह संकल्प किया जाता है कि श्री गंगाधर राव बी. देशपांडे को इस प्रयाजनार्थ नियुक्त उप समिति का संयोजक नियुक्त किए जाएं, और उनसे अनुरोध किया जाये कि वह स्वामी श्रद्धानंद के पत्र पर विचार करने के लिए उप समिति की बैठक शीघ्र बुलाएं।"

एक और बात है जो स्पष्ट नहीं की जा सकती। मेरे प्रथम पत्र की प्राप्ति के बाद मैंने दूसरा पत्र हरिद्वार से दिनांक 3 जून, 1922 को लिखा :–

"प्रिय श्री पटेल,

मैं परसों हरिद्वार से चल कर 6 जून को लखनऊ पहुंचूंगा। आप जानते हैं कि मैं दलित वर्गों के लिए क्या भावना रखता हूं। यहां तक कि पंजाब में मैंने देखा कि उनके लिए कोई रचनात्मक कार्यक्रम नहीं बनाया गया है। संयुक्त प्रांत में यह कार्य निस्संदेह बड़ा दुष्कर कार्य होगा। परंतु दूसरी सबसे बड़ी कठिनाई और है।

बारदौली योजना की मंद संख्या (4) में प्रावधान है कि जहां अब भी जबरदस्त भेदभाव है वहां कांग्रेस कोष से अलग कुएं और अलग स्कूल खोले जाने चाहिए। इसमें कांग्रेस कार्यकर्ता जो या तो दलित वर्ग से ईर्ष्या करते हैं अथवा अपने को अंस्पृश्यों को सामान्य कुओं से पानी दिलाने में कमजोर पाते हैं, इसलिए कुछ

भी नहीं करते। मैंने देखा कि बिजनौर जिले में अस्पृश्य सामान्य कुओं से बेहिचक पानी भरते हैं। परंतु कुछ स्थानों पर भेदभाव किया जाता है। मैंने अपनी अम्बाला छावनी, लुधियाना, बटाला, लाहौर, अमृतसर और जंडियाला यात्रा में अनुभव किया कि अस्पृश्यों की कठिनाइयों के निवारण में कितनी उपेक्षाएं की जाती हैं। दिल्ली में और उसके आसपास दलितोंद्धार सभा, जिसका मैं प्रेसीडेंट हूं, कांग्रेस की अपेक्षा अधिक प्रशंसनीय कार्य कर रही है। मैं समझता हूं कि बारदौली योजना की मद संख्या (4) में जब तक रचनात्मक और यथोचित संशोधन नहीं किया जाएगा, तब तक कांग्रेस का कार्यक्रम जिसे मैं महत्वपूर्ण समझता हूं, सफल नहीं होगा।

कृपया निम्नलिखित संकल्प कांग्रेस अध्यक्ष के समक्ष प्रस्तुत करें और यदि वह अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की अपनी बैठक में उसे प्रस्तुत करने की अनुमति दें, तो मैं उसे वहां पेश करूंगा। बारदौली योजना की मद संख्या (4) के अन्तर्गत टिप्पणी के स्थान पर निम्नलिखित टिप्पणी प्रतिस्थापित की जाए :–

"दलित वर्ग की निम्नलिखित मांगे तुरंत मानी जाएं : (अ) अन्य वर्गों के समान वे भी एक ही मंच पर साथ–साथ बैठें; (ब) उन्हें सामान्य कुओं से पानी भरने का अधिकार मिलना चाहिए; और (स) उनके बच्चों को राष्ट्रीय स्कूलों और कालेजों में सामान्य रूप से भरती किया जाए और उच्च जातियों के बच्चों के साथ बिठाया जाए।"

मैं अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के समक्ष इस टिप्पणी के महत्व को रखना चाहता हूं। मैं उन मामलों को जानता हूं, जहां दलित वर्ग के लोग उच्च जाति के हिंदुओं के मनमाने अत्याचारों के विरोध में खुली क्रांति के लिए उठ खड़े हुए हैं और जब तक उनकी उपरोक्त मांगें नहीं मानी जाती, वे नौकरशाही के सामने झुकते रहेंगे।

लखनऊ मे अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी की 7 जून की बैठक में मेरे प्रस्ताव के पास हो जाने के बाद मैंने श्री पटेल से बारदौली कार्यक्रम की मद संख्या 4 के संशोधन के संबध में अपना प्रस्तावित संशोधन रखने का अनुरोध किया। श्री पटेल ने मुझसे कहा कि कार्य समिति उस प्रस्ताव को उप समिति को भेज देगी। वहां आप इस पर जोर दीजिएगा। मै सहमत हो गया, परंतु मुझे कार्य समिति से अपने उस प्रस्ताव की प्रतिलिपि नहीं मिली, जिसमें अस्पृश्यता उप समिति को मेरा प्रस्ताव भेजा गया था।

दिल्ली में और उसके आसपास अस्पृश्यता का प्रश्न बड़ी नाजुक स्थिति में है और मैं उसे तुरंत काबू में करना चाहता हूं। परंतु उपसमिति स्वतंत्रता से कार्य नहीं करती, क्योंकि कार्य समिति के सामने देश की ओर बहुत सी राजनीतिक परिस्थितियां विचारार्थ हैं और कांग्रेस की ओर से अस्पृश्यता निवारण

का कार्य करने के लिए सारी योजना निश्चित करने के लिए कार्य समिति के पास समय नहीं है। ऐसी परिस्थितियों में उप समिति को मुझसे कोई लाभ होने वाला नहीं है, इसलिए मैं सदस्यता से त्यागपत्र देना चाहता हूं।

दिल्ली जनवरी 30, 1922

आपका विश्वासपात्र

श्रद्धानंद सन्यासी

(2) महामंत्री का उत्तर

प्रिय स्वामी जी,

आपका दिनांक जून 1922 का पत्र, जो मेरे कार्यालय में 30 जून को प्राप्त हुआ, बम्बई में कार्यसमिति द्वारा में इस महीने की 18 तारीख को पारित संकल्प द्वारा मेरे पास इन अनुदेशों के साथ भेजा गया है कि मैं तथ्यों को स्पष्ट करुं और आपसे दलित वर्ग उप समिति से अपने त्यागपत्र पर पुनः विचार करने का अनुरोध करूं।

जैसा कि आपको मालूम है, मेरे जेल से छूटने के पहले जो घटनाएं हुईं उसके बारे में मुझे मालूम नहीं है। परंतु मैं कार्य समिति की 10 जून 1922 की उस बैठक में था, जिसमें श्री देशपांडे को उप समिति का संयोजक नियुक्त किया गया था। तब ऐसी कोई बात स्पष्ट नहीं हुई थी कि उपसमिति के संयोजक के विषय उनके बारे में में किसी व्यक्ति विशेष के बारे में कोई बात तय की गई थी और आवश्यक औपचारिकताओं के बाद धन भुगतान के संबंध में संकल्प पारित कर दिया था। यह अनुभव किया गया था कि खर्च के लिए धन स्वीकृति से पहले उप समिति की ओर से प्रस्ताव आना आवश्यक है। तदनुसार श्री देशपांडे को संयोजक नियुक्त किया गया और आरंभिक कार्यो पर खर्च के लिए 500 रुपये की स्वीकृति प्रदान की गई थी। भूल से प्रस्ताव में 500 रुपये का उल्लेख छूट गया। इस प्रकार आप देखेंगे कि अस्पृश्यता के लिए 10,000 रुपये की स्वीकृति कार्य समिति की अनिच्छा के कारण नहीं रह गई थी, बल्कि जैसा कि मैने ऊपर स्पष्ट किया है, प्रस्ताव बनाते समय भूल से रह गई थी। आपकी उप समिति के कार्य की महत्ता को नजरंदाज करके ऐसा नहीं किया गया और आपके सुझाव की उपेक्षा नहीं की गई है। कार्य समिति की पिछली बैठक में आपका पत्र प्रस्तुत करने पर 500 रुपये की स्वीकृति जो छूट गई थी दे दी गई और तदनुसार मुझे आपको सूचित करने का आदेश दिया गया था। अस्पृश्यता की संपूर्ण समस्या के संबंध में आपकी विशेष जानकारी और अनुभव से यदि उप समिति वंचित रह जाएगी, तो यह बड़े दुख की बात होगी। इसीलिए मैं जनहित में आपसे अनुरोध

करूंगा कि उप समिति से अपना त्यागपत्र वापस लेने के निर्णय की सूचना कृपया मेरे कार्यालय इलाहाबाद को तार द्वारा भेजें। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि आपकी उप समिति जो संकल्प लाएगी, कार्य समिति उस पर विचार करेगी।

अलग कुओं और स्कूलों के संबंध में कार्य समिति के संकल्प में परिवर्तन के लिए आपकी उप समिति, जो सुझाव देगी कार्य समिति उस पर विचार करेगी।

इलाहाबाद के "दि इंडिपेंडेंट" और दिल्ली के "कांग्रेस" समाचारपत्रों के अनुदान के संबंध में आपको भ्रम है। "दि इंडिपेंडेंट" के संबंध में संयुक्त प्रांत प्रदेश कांग्रेस की प्रार्थना पर 25,000 रुपये का ऋण दिया गया था और "दि कांग्रेस" के लिए ऋण पूर्णतया अस्वीकार कर दिया गया था।

बम्बई, जुलाई, 23, 1922

आपका विश्वासपात्र
मोतीलाल नेहरू
महामंत्री

(3) स्वामी जी का प्रत्युत्तर

प्रिय पंडित मोतीलाल जी,

आपका 23 जुलाई, 1922 का बम्बई से भेजा हुआ पत्र जो अस्पृश्यता उप समिति से मेरे त्यागपत्र के संबंध में है मुझे प्राप्त हुआ। अफसोस कि मैं त्यागपत्र पर पुनः विचार करने के लिए तैयार नहीं हूं, क्योंकि मैंने अपने प्रथम पत्र में जिन तथ्यों का उल्लेख किया है उनकी उपेक्षा की गई है। (1) कृपया श्री राजगोपालचारी से जांच कर मालूम करें कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के पास जमा धनराशि में से मैंने कम से कम एक लाख रुपये देने का प्रस्ताव रखा था, जिसमें उन्होंने कोई संशोधन पेश नहीं किया। अभिप्राय यही था कि उप समिति द्वारा वांछित धनराशि कार्य समिति स्वीकार कर लेगी और समिति का भी यही विचार था कि अस्पृश्यता मद पर जितना भी संभव हो उतना धन दिया जाए। अध्यक्ष ने मुझे अलग बुला कर समिति की आर्थिक स्थिति स्पष्ट की। यदि यह सही है, तो संशोधन का प्रस्ताव क्यों नहीं लाया गया?

(2) क्या आपने श्री विट्ठल भाई जे. पटेल से पूछा कि क्या अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी के सदस्यों ने मुझे उप समिति का संयोजक नियत करने का प्रस्ताव नहीं रखा था और उन्होंने कहा था कि स्वामी ही का नाम पहले आया है, इसलिए उन्हें ही संयोजक चुना जाता है। नया प्रस्ताव लाने की कोई आवश्यकता नहीं? इसके संबंध में पत्र लिख कर डा. अंसारी ने दिनांक 17 जून 1922 से यह पूछा कि क्या मुझे ही संयोजक नियुक्त किया गया है? डा. अंसारी आपके साथ हैं और आप उनसे इसकी पुष्टि कर सकते हैं। मुझे आशा है श्री पटेल इसे भूले नहीं होंगे।

(3) तब जबकि अस्पृश्यों के मध्य शीघ्रता से कार्य करना है, मैं किसी भी कारण से इसमें और विलम्ब नहीं करना चाहता। कृपया कार्य समिति की अगली बैठक में मेरा त्यागपत्र स्वीकार कर लें, ताकि अस्पृश्यता निवारण के संबंध में, मैं स्वतंत्रतापूर्वक स्वेच्छा से कार्य कर सकूं। पिछली जुलाई के अंत में मेरी यह स्थिति थी। अमृतसर ओर मियांवाली जेलों में प्राप्त सूचनाओं से मैंने अनुभव किया और मुझे पक्का विश्वास हो गया कि जब तक प्राचीन आर्यों के स्तर का ब्रह्मचर्य पुनर्जीवित नहीं किया जाता और भारतीय समाज से अस्पृश्यता का अभिशाप नहीं मिटा दिया जाता तब तक कांग्रेस अथवा कोई भी देशभक्ति की भावना से प्रेरित दल स्वराज प्राप्ति के लिए ठोस प्रयत्न नहीं कर पाएगा और राष्ट्रीय स्वावलम्बन तथा स्वराज के बिना कोई भी तेजस्विता असंभव है। अतः मैं जीवन का शेष भाग ब्रह्मचर्य और राष्ट्रीय एकता जैसे पवित्र कार्यों में लगाना चाहता हूं।

दिल्ली, जुलाई 23, 1922

आपका विश्वासपात्र

श्रद्धानंद सन्यासी

परिशिष्ट 2

दलित वर्गों के लिए राजनीतिक संरक्षण प्रदान करना

दलित वर्गों के विशेष प्रतिनिधित्व के लिए दावों के संबंध में अनुपूरक ज्ञापन जो गोलमेज सम्मेलन में डा. बी. आर. अम्बेडकर तथा राव बहादुर आर.श्रीनिवासन द्वारा प्रस्तुत किया गया था।

पिछले वर्ष स्वशासी भारत के लिए बनने वाले संविधान में दलित वर्गों के राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा हेतु हमारे द्वारा ज्ञापन प्रस्तुत किया गया था, जो अल्पसंख्यक समिति के कार्यवृत्त में मुद्रित खंड में तीसरे परिशिष्ट में दिया हुआ है। उसमें हमने मांग की थी कि दलित वर्ग के विशेष प्रतिनिधित्व को, जिसे हम उन वर्गों के लिए आवश्यक मानते हैं, विस्तृत रूप से परिभाषित नहीं किया था। कारण यह था कि प्रश्न के पहुंचने से पहले अल्पसंख्यक उप–समिति की कार्यवाही समाप्त हो चुकी थी। हमारा प्रस्ताव है कि अब हम उस छूटे हुए प्रश्न को अनुपूरक ज्ञापन के रूप में तैयार कर इस वर्ष की अल्पसंख्यक उप–समिति की बैठक में उनके सामने प्रस्तुत करें।

1. विशेष प्रतिनिधित्व की सीमा

(अ) प्रांतीय विधानमंडलों में विशेष प्रतिनिधित्व

(1) बंगाल, मध्य प्रांत, असम, बिहार, उड़ीसा, पंजाब और संयुक्त प्रांत में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व साइमन कमीशन और इंडियन सेंट्रल कमेटी द्वारा अनुमानित जनसख्या के अनुपात में होगा।

(2) मद्रास में दलित वर्ग के लिए 22 प्रतिशत प्रतिनिधित्व होगा।

(3) बम्बई में :–

(अ) यदि सिंध बम्बई प्रेसीडेंसी का भाग बना रहता है, तो दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व 16 प्रतिशत होगा।

(ब) बम्बई प्रेसीडेंसी से सिंध को अलग हो जाने पर सिंध में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व मुसलमानों के प्रतिनिधित्व के बराबर होगा, क्योंकि दोनों की जनसंख्या समान है।

(ब) संघीय विधानमंडल में विशेष प्रतिनिधित्व

संघीय विधानमंडल के दोनों सदनों में भारत की संपूर्ण जनसंख्या के अनुपात में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व होगा।

- प्रतिनिधित्व -

हमने निम्नांकित अनुमान के आधार पर विधानमंडलों में विशेष प्रतिनिधित्व का अनुपात निश्चित किया है। :–

(1) हमारा अनुमान है कि दलित वर्गों की जनसंख्या के जो आंकड़े साइमन कमीशन (खंड 1, पृ. 40) तथा इंडियन सेंट्रल कमेटी (रिपोर्ट पृ. 44) द्वारा दिए गए हैं वे सही और सीटों का बंटवारा करने में सभी को स्वीकार्य होंगे।

(2) हमारा अनुमान है संघीय विधानमंडल में संपूर्ण भारत समाहित होगा जिसमें भारतीय रजवाड़ों तथा केंद्र प्रशासित क्षेत्रों, गवर्नरों द्वारा शासित प्रांतों में दलित वर्गों की जनसंख्या संघीय विधानमंडल में उनका प्रतिनिधित्व निर्धारित करने में उपयोगी होगी।

(3) हमारा अनुमान है कि ब्रिटिश भारत के प्रांतों के प्रशासनिक क्षेत्र यथावत रहेंगे।

परंतु यदि जनसंख्या के संबंध में हमारे अनुमानित आधार को चुनौती दी जाती है, जैसा कि कुछ पार्टियों ने ऐसा करने की धमकी दी है और यदि नई जनगणना में दलित वर्गों की जनसंख्या कम दिखाई जाती है अथवा यदि प्रांतों के प्रशासनिक क्षेत्रों में परिवर्तन किया जाता है, जिसके फलस्वरूप जनसंख्या की स्थिति गड़बडाती है, तो दलित वर्गों को अधिकार होगा कि अपने प्रतिनिधित्व के अनुपात को बनाए रखने के लिए उसका पुनरीक्षण करें और उसमें यथोचित हिस्सा मांगे। इसी प्रकार यदि अखिल भारतीय संघ नहीं बनता, तो वे अपने प्रतिनिधित्व के अनुपात को फिर से समायोजित कर संघीय विधानमंडल के लिए उसकी गणना करें।

2 - प्रतिनिधित्व का तरीका

(1) प्रांतीय एवं केंद्रीय विधानमंडलों में दलित वर्गों को अपने प्रतिनिधियों को अपने मतदाताओं की पृथक निर्वाचन पद्धति के माध्यम से चुनने का अधिकार होगा।

संघीय या केंद्रीय विधानमंडलों के उच्च सदन में अपने प्रतिनिधित्व के लिए यदि प्रांतीय विधानमंडलों को अपने प्रतिनिधि अप्रत्यक्ष निर्वाचन से भेजना निश्चित हो जाता है, तो दलित वर्ग के लोग उच्च सदन में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली का परित्याग करने के लिए सहमत हो सकते हैं परंतु इस शर्त के साथ कि समानुपातिक व्यवस्था के अनुसार उच्च सदन में उनकी सीटों के हिस्से की गांरटी दी जाए।

(2) दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली के स्थान पर संयुक्त निर्वाचन

प्रणाली नहीं लागू की जाएगी और सुरक्षित सीटों पर कोई आंच नहीं आएगी। बशर्ते कि निम्नलिखित स्थिति हो :–

(क) उन सभी विधानमंडलों के सदस्यों की बहुमत की मांग पर मतदाताओं का जनमतसंग्रह होगा, जिसमें दलित वर्गों के मतदाताओं ने स्पष्ट बहुमत से मतदान किया हो।

(ख) ऐसे जनमतसंग्रह पर दुबारा बीस वर्ष तक कोई संशोधन नहीं किया जाएगा और न उस समय तक जब कि पूर्ण वयस्क मताधिकार की व्यवस्था नहीं हो जाएगी।

3 - दलित वर्गों को परिभाषित करने की आवश्यकता

दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व का पहले भी बुरी तरह दुरूपयोग हुआ है और प्रांतीय विधानमंडलों में दलितों का प्रतिनिधित्व करने के लिए गैर–दलितों को नामांकित किया गया। ऐसे मामलों की कमी नहीं है, जिनमें दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व करने के लिए दलितों के स्थान पर अन्य लोगों को उनका प्रतिनिधि नामांकित किया गया है। वास्तव में ऐसी गड़बड़ी का कारण यह है कि दलित वर्गों को प्रतिनिधित्व देने के लिए गवर्नर को जो उम्मीदवार नामांकित करने का अधिकार है उसमें यह नहीं कहा गया कि दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिए, उन्हीं व्यक्तियों को ही मनोनीत किया जा सकता है, जो वास्तव में दलित हों, क्योंकि भावी संविधान में चुनावों द्वारा उनके प्रतिनिधियों का नामांकन होता है, तो ऐसी गड़बड़ी होने की गुंजाइश अब नही रखी जाएगी। इसीलिए कि ऐसे दुरूपयोग का अवसर न मिले हम विशेष प्रतिनिधित्व के लिए निम्नलिखित सुझाव पेश करते हैं :–

(1) यह कि दलित वर्गों को केवल पृथक निर्वाचन का अधिकार ही न होगा, वरन् यह अधिकार भी होगा कि उन्हीं वर्गों के उम्मीदवारों द्वारा उनका प्रतिनिधित्व किया जाए।

(2) यह कि प्रत्येक प्रांत में दलित वर्गों की परिभाषा यह हो कि वही दलित कहलाएगा, जिसके समुदाय के साथ अस्पृश्यता बरती जाती है, जैसा कि चुनाव के उद्देश्य से तैयार सूची में उल्लेख किया गया है।

4 - नामकरण

दलित वर्गों के नामकरण पर उन्होंने तथा उनसे बाहर के लोगों ने एतराज किया है। वह शब्द अपमानजनक और तिरस्कारसूचक लगता है और अब अवसर

आ गया है कि सरकारी कागजात में प्रयोग होने के लिए उस नाम को बदल कर नए संविधान में कोई नया नाम रखा जाए। हम समझते हैं कि उन्हें गैर–सवर्ण हिंदू "प्रोटेस्टेंट हिंदू" अथवा 'नान–कंफम्र्ड हिंदू' और दलित वर्ग के अतिरिक्त अन्य किसी नाम से पुकारा जाए। हमें किसी विशेष नाम के लिए दबाव डालने का कोई अधिकार नहीं। हम केवल राय दे सकते हैं और हमें विश्वास है कि जिस नाम को ठीक से स्पष्ट किया जाएगा और उनके लिए अनुकूल होगा, दलित वर्ग के लोग उसे अपनाएंगे।

हमारे इस मांग पत्र में जो कुछ ऊपर कहा गया है, इसके समर्थन में भारत के कोने–कोने से दलित वर्ग के लोगों से असंख्य तार प्राप्त हुए हैं।

नवंबर 4, 1931

परिशिष्ट 3

अल्पसंख्यक समझौता

सांप्रदायिक समस्या का हल करने के लिए मुसलमानों, दलित वर्गों, भारतीय ईसाइयों, एंग्लो–इंडियन तथा यूरोपियन लोगों द्वारा सामूहिक रूप से प्रस्तुत समझौते के प्रावधान।

अल्पसंख्यक समुदायों के दावे

1. किसी भी मनुष्य को उसके जन्म, धर्म, जाति अथवा पंथ के भेद के कारण सार्वजनिक नौकरी, राजनीतिक अधिकार अथवा सरकार अथवा उसके नागरिक अधिकारों का उपयोग करने से और किसी प्रकार का व्यापार करने के अधिकार से वंचित नहीं किया जाएगा।

2. संविधान में कानूनसम्मत संरक्षणों का समावेश किया जाएगा ताकि व्यवस्थापिका में समुदाय के विरूद्ध भेदभाव मूलक कानून न बनाया जा सके।

3. सभी समुदायों को गारंटी दी जाए कि शांति व्यवस्था की शर्त पर उन्हें पूर्ण धार्मिक स्वतंत्रता अर्थात विश्वास, पूजा पद्धति, प्रचार करने, संगठन बनाने और शिक्षा प्राप्त करने की स्वतंत्रता होगी।

कोई भी व्यक्ति मात्र धर्म बदल देने अथवा विश्वास बदल देने के कारण नागरिक अधिकारों से वंचित नहीं किया जाएगा, कोई सुविधाएं नहीं छीनी जाएंगी और दंड का भागी नहीं होगा।

4. उन्हें अपने खर्च से खैराती, धार्मिक और सामाजिक संस्थाएं, स्कूल और अन्य शैक्षिक संस्थाएं स्थापित करने, उनका प्रबंध करने और उन पर नियंत्रण रखने का अधिकार होगा और वहां उन्हें अपने धर्म के अनुसार पूजा, अनुष्ठान आदि करने का अधिकार होगा।

5. अल्पसंख्यक समुदायों के धर्म, संस्कृति, वैयक्तिक कानूनो के संरक्षणों तथा शिक्षा, भाषा, खैराती संस्थाओं के विस्तार करने के लिए संविधान में यथोचित व्यवस्था की जाएगी और उनके हिस्से के अनुसार अन्यों की भांति उन्हें भी स्वायत्तशासी संस्थाओं द्वारा अनुदान के रूप में सहायता दी जाएगी।

6. कानून बना कर सभी नागरिकों को सभी प्रकार के नागरिक अधिकारों का उपयोग करने देने की गारंटी दी जाएगी और उनमें जानबूझ कर अवरोध डालना अपराध और कानून द्वारा दंडनीय माना जाएगा।

7. केंद्र तथा प्रांतीय सरकारों में मंत्रिमंडल का गठन करते समय मुस्लिम सदस्यों तथा अल्पसंख्यक समुदाय के सदस्यों को परम्परा के अनुरूप यथोचित संख्या में मंत्रिमंडल में स्थान दिए जाएंगे।

8. केंद्र तथा प्रांतीय सरकारों के अधीन अधिकारसंपन्न स्थाई विभाग होंगे, जो अल्प–संख्यकों के हितों की रक्षा करेंगे तथा उनकी उन्नति एवं कल्याण का ध्यान रखेंगे।

9. उन सभी समुदायों को जिन्हें विधानमंडलों में नामांकन अथवा चुनाव के माध्यम से प्रतिनिधित्व प्राप्त है, सभी विधानमंडलों में पृथक निर्वाचन व्यवस्था के माध्यम से कम से कम उतने अनुपात में प्रतिनिधित्व मिलेगा जो कि अनुसूची में दिया हुआ है। परंतु बहुसंख्यक को अल्पसंख्यक के स्तर पर लाने अथवा समसंख्या बना देने का अधिकार न होगा। परंतु शर्त यह है कि समुदाय से दस वर्ष बीत जाने के बाद मुसलमानों को पंजाब और बंगाल में और अन्य अल्पसंख्यक समुदाय को अन्य प्रांतों में संयुक्त निर्वाचन प्रणाली स्वीकार करने की अथवा संयुक्त निर्वाचन में चुनाव द्वारा सीटों के आरक्षण प्राप्त करने की छूट रहेगी। इसी प्रकार दस वर्ष बीत जाने के बाद किसी भी अल्पसंख्यक समुदाय को समुदाय की सम्मति पर केंद्रीय विधानमंडलों में चुनाव द्वारा सीटों के आरक्षण अथवा अनारक्षण के विषय में संयुक्त निर्वाचन प्रणाली स्वीकार करने की छूट रहेगी।

दलित वर्ग के पृथक निर्वाचन व्यवस्था को 20 वर्ष के अनुभव या तब तक, जब तक कि दलित वर्ग को वयस्क मताधिकार प्राप्त नहीं हो जाता, संयुक्त निर्वाचन में नहीं बदला जाएगा।

10. केंद्र तथा प्रत्येक प्रांत में लोक सेवा आयोग की स्थापना की जाएगी, जो सरकारी सेवाओं में केवल उन पदों को छोड़कर नियुक्ति करेगा, जो गवर्नर जनरल अथवा प्रांतीय गवर्नरों द्वारा नामांकन द्वारा भरे जाएंगे। सभी संप्रदायों को समुचित प्रतिनिधित्व दिलाने के लिए उम्मीदवारों की योग्यता और क्षमता ध्यान में रखी जाएगी। भर्ती के विषय में गवर्नर जनरल तथा प्रांतों के गवर्नर संबंधित लोक सेवा आयोग को आवश्यक निर्देश जारी करेंगे और समय–समय पर उनकी कार्य–प्रणाली की समीक्षा करेंगे।

11. यदि विधानमंडल में किसी समुदाय के दो तिहाई बहुमत से कोई ऐसा विधेयक पास कर दिया जाता है, जो शेष एक तिहाई प्रतिनिधियों के धार्मिक और सामाजिक हितों तथा उनके मौलिक अधिकारों के विरूद्ध है और उन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है, तो एक तिहाई सदस्यों को अधिकार होगा कि सदन द्वारा पारित विधेयक के एक माह के अंदर अपना एतराज लिख कर सदन के अध्यक्ष को दें, जिसे अध्यक्ष गवर्नर जनरल अथवा सम्बद्ध गवर्नर उस विधेयक का कार्यान्वयन

तालिका

अनुलग्नक - विधानमंडलों मे प्रतिनिधित्व

कोष्टकों के आंकड़े 1931 की जनसंख्या के अनुसार है और दलितों का प्रतिशत साइमन रिपोर्ट के अनुसार है

केन्द्र	सदन में सदस्यो की संख्या	हिन्दू			मुसलमान	क्रिश्चियन	सिक्ख	एंग्लो इंडियन	जनजाति	यूरोपियन	अन्य विवरण
		सवर्ण	दलित	योग							
समस्त भारत (1931)		(47.5)	(19)*	(66.5)	(21.5)	-	-	-	-	-	ब्रिटिश इंडिया के गवर्नर प्रांतों के प्रतिनिधित्व का प्रतिशत
उच्च सदन	200	101	20	121	67	1	6	1	-	4	
निचला सदन	300	123	45	168	100	7	10	3	-	12	
		(48.9)	13.4	(62.3)	(34.8)						
असम	100*	38	13	51	35	3	-	1	-	10	* जनजाति क्षेत्र के जनसंख्या आंकड़ों को निकालकर
		(18.3)	(24.7)	(43)	(54.9)						
बंगाल	200	38	35	73	102	2	-	3	-	20	
		(67.8)	(14.5)	(82.3)	(11.3)						
बिहार और उड़ीसा	100	51	14	65	25	1	-	1	3	5	
		(68)	(8)	(76)	(20)						
बम्बई	200	88	28	116	66	2	-	3	-	13	सिंध प्रांत अलग कर देने पर बम्बई में मुसलमानों का वही प्रभाव रहेगा जो सीमा प्रान्त में हिंदुओं का।
		(63.1)	(23.7)	(86.8)	(44)						
मध्य प्रांत	100	58	20	78	15	1	-	2	2	2	
		(71.3)	(15.4)	(86.7)	(7.1)	(3.7)					
मद्रास	200	102	40	142	30	14	-	4	2	8	
		(15.1)	(13.5)	(28.6)	(56.5)		(13)				
पंजाब	100	14	10	24	51	1.5	20	1.5	-	2	
		(58.1)	(26.4)	(84.5)	(14.8)						
सं. प्रा.	100	44	20	64	30	1	-	2		3	

जिन प्रांतों में मुसलमान अल्पसंख्या में हैं उसी के समान प्रभाव हिंदू अल्पसंख्यकों का सिंध में और हिंदू और सिख अल्पसंख्यकों का पश्चिमोत्तर प्रांत में रहेगा।

एक वर्ष के लिए स्थगित कर देगा। एक वर्ष की अवधि के पश्चात गवर्नर जनरल अथवा सम्बद्ध गवर्नर उस विधेयक पर पुनः विचार हेतु विधानमंडल को वापस भेजेगा। विधानमंडल द्वारा विधेयक पर आगे विचार किए जाने के बाद और विधेयक पर की गई आपत्तियां दूर करने के लिए संशोधन करने से इन्कार किए जाने पर गवर्नर जनरल अथवा गवर्नर अपने अधिकारों का प्रयोग करते हुए उस पर अपनी सहमति प्रदान करेगा अथवा रोक देगा, परंतु शर्त यह रहेगी कि उस विधेयक की वैधता को प्रभावित संप्रदाय के दो सदस्यों द्वारा उच्चतम न्यायालय में इस आधार पर चुनौती दी जा सकेगी कि वह विधेयक उस विशेष समुदाय के मौलिक अधिकारों पर विपरीत प्रभाव डालता है।

मुसलमानों के विशेष दावे

(क) पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत का गवर्नर शासित प्रांत के रूप में उन्हीं आधारों पर गठन किया जाएगा, जैसा कि अन्य प्रांत बनाए गए है, परंतु सीमा की सुरक्षा को ध्यान में रखते हुए प्रांत का गठन किया जाएगा।

प्रांतीय विधानमंडल का गठन करने में पूरी संख्या के दस प्रतिशत से अधिक नामजद सदस्य नहीं होंगे।

(ख) सिंध को बम्बई प्रेसीडेंसी से अलग कर दिया जाएगा और ब्रिटिश इंडिया के अन्य गवर्नर शासित प्रांतों के समान प्रांत बना दिया जाएगा।

(ग) केंद्रीय विधानमंडल के कुल सदस्यों की संख्या के एक तिहाई सदस्य मुसलमान होंगे और केंद्रीय सभा में उनका प्रतिनिधित्व पिछले पृष्ठ पर दी गई तालिका में दी गई संख्या से कम न होगा।

दलित वर्गों के विशेष दावे

(क) संविधान उन सभी परंपराओं, रीति रिवाजों को अवैध घोषित करेगा, जिनके कारण देश के किसी नागरिक को उसके साथ बरते गए भेदभाव या लगाए गए प्रतिबंधों के फलस्वरूप दंडित किया जाता है और उनके नागरिक अधिकारों का हनन किया जाता है।

(ख) सरकारी नौकरियों में भर्ती करते समय उनके साथ रियायत बरती जाएगी और पुलिस तथा सैनिक सेवाओं के लिए उनकी भर्ती खोली जाएगी।

(ग) पंजाब में पंजाब के हस्तांतरण अधिनियम में दलितों को भी लाभान्वित किया जाएगा।

(घ) किसी अधिकारी द्वारा दलित वर्गो के साथ दुव्यर्वहार करने अथवा उनके हितों की उपेक्षा करने पर उन्हें गवर्नर अथवा गव्रर्नर जनरल के यहां अपील करने का अधिकार होगा।

(ड.) दलित वर्गो को अनुलग्नक में निर्दिष्ट किए गए प्रतिनिधित्व से कम प्रतिनिधित्व नही दिया जाएगा।

एंग्लो-इंडियन समुदाय के विशेष दावे

(अ) उप–समिति संख्या 8 (सेवाएं) द्वारा दावों की उदारतापूर्वक व्याख्या किए जाने पर पर दी गई स्वीकृति और उस संप्रदाय की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए सरकारी सेवाओं में उनका विशेष ध्यान रखा जाएगा ताकि उनके जीवनयापन का स्तर कायम रह सके।

(ब) उन्हें अपनी शिक्षा व संस्थाओं अर्थात यूरोपियन शिक्षा को चलाने और नियंत्रण रखने का पूरा अधिकार होगा, बशर्ते संस्थाओं पर मंत्री का नियंत्रण हो।

(स) अन्य समुदायो की तरह जूरी अधिकार होंगे। वैधता के प्रमाण जारी रहेंगे और उस वर्ग के अभियुक्तों के मुकदमों की सुनवाई यूरोपियन या भारतीय जूरी करेगी।

यूरोपियन समुदायों के लिए विशेष दावे

(अ) देश में जन्में लोगों के समान उपयोग की जाने वाली समस्त सुविधाएं समान रूप से उन्हें भी उपलब्ध होंगी।

(ब) फौजदारी मुकदमा चलाने की वर्तमान प्रक्रिया के संबंध में किसी प्रकार का संशोधन अथवा परिवर्तन करने का विधेयक उस समय तक नहीं लाया जा सकेगा, जब तक कि उससे पहले गवर्नर जनरल से उस विधेयक के पेश करने की स्वीकृति न ले ली जाए।

समर्थक –

सर आगा खां (मुसलमानों की ओर से)

डाक्टर अम्बेडकर (डिप्रेस्ड क्लासेज की ओर से)

राव बहादुर पन्निर सेलवम (इंडियन क्रिश्चियन की ओर से)

सर हेनरी गिडने (एंग्लो–इंडियन की ओर से)

सर हुबट कार्र (यूरोपियन की ओर से)

परिशिष्ट 4

श्री गांधी के आमरण अनशन पर बी.आर.अम्बेडकर द्वारा जारी किया गया बयान।

गोलमेज सम्मेलन में अस्पृश्यों तथा उनकी संवैधानिक संरक्षण की मांग के प्रति श्री गांधी के रवैये के संबंध में बयान, दिनांक 19 सितंबर, 1932

समाचारपत्रों में छपे श्री गांधी तथा सर सेमुएल होर और प्रधानमंत्री के मध्य हुए पत्रव्यवहार पर मुझे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं। दलित वर्ग के लिए सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व की योजना को अंग्रेज सरकार अपनी इच्छा से अथवा जनमत के दबाव से संशोधित नहीं करती है अथवा योजना को वापस नहीं लेती। उस पर श्री गांधी ने आमरण अनशन करने का संकल्प व्यक्त किया है, उसे पढ़कर मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। श्री गांधी ने इस प्रकार की घोषणा कर मुझे जिस नाजुक परिस्थिति में डाल दिया, उसकी सहज में ही कल्पना की जा सकती है।

मैं सोचता हूं कि श्री गांधी जिन्होंने गोलमेज सम्मेलन में सांप्रदायिक प्रश्न से उत्पन्न इस मुद्दे को व्यापक विषय की छोटी सी बात कहा था, जान की बाजी कैसे लगा बैठे। वास्तव में, यदि श्री गांधी के दृष्टिकोण को शब्दबद्ध किया जाए तो सांप्रदायिक प्रश्न भारतीय संविधान का मुख्य अध्याय न होकर परिशिष्ट मात्र है। यदि श्री गांधी इतना बड़ा कदम देश की स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए उठाते, तो इसका औचित्य होता, जिसके लिए वह गोलमेज सम्मेलन में बराबर बल देते रहे। यह भी दुखद आश्चर्य है कि सामूहिक निर्णय में दलित वर्गों के लिए दिए गए विशेष प्रतिनिधित्व को ही अलग करके आत्म–बलिदान का बहाना ले रहे हैं। पृथक निर्वाचन केवल दलित वर्गों के लिए ही नहीं स्वीकार किया गया है, बल्कि भारतीय ईसाइयों, एंग्लो – इंडियनों यूरोपियनों, मुसलमानों और सिखों के लिए भी स्वीकार किया गया है। जमींदारों, मजदूरों और व्यापारियों के लिए भी पृथक निर्वाचन स्वीकार किया गया है। श्री गांधी ने मुसलमानों और सिखों के अतिरिक्त अन्य सभी वर्गों और धर्मावलंबियों के विशेष प्रतिनिधित्व का विरोध किया था। अब श्री गांधी ने सबको छोड़ कर केवल दलित वर्गों को स्वीकृत विशेष पृथक निर्वाचन को समाप्त करने का अपना मुख्य मुद्दा बनाया।

मेरे विचार में, श्री गांधी ने दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था के परिणामों के विषय में, जो आशंका प्रकट की है, वह शुद्ध काल्पनिक है। यदि मुसलमानों और सिखों को पृथक निर्वाचन मिल जाने से राष्ट्र को खंडित होने का खतरा नहीं है, तो दलित वर्गो को पृथक निर्वाचन दे देना हिंदू समाज का खंडित होना

नहीं कहा जा सकता। श्री गांधी के सोच से अन्य संप्रदायों के लिए विशेष निर्वाचन की व्यवस्था कर दी जाए, तो शायद राष्ट्र खंडित न होगा।

मुझे पूरा विश्वास है कि बहुतों का यह मत है कि स्वराज संविधान के अंतर्गत बहुसंख्यक दल के अत्याचारों को देखते हुए, यदि किसी वर्ग को अपने राजनीतिक अधिकारों की सुरक्षा की आवश्यकता है तो वह वर्ग है दलित वर्ग। यह एक वर्ग है, जो निस्संदेह अपने अस्तित्व के संघर्ष को जीवित रखने की स्थिति में नहीं है। जिस धर्म से वे बंधे हुए हैं, वह उन्हें सम्मानित स्थान देने के बजाए कुष्ठ रोगी कहता है जो व्यवहार बर्ताव के योग्य नहीं। आर्थिक स्थिति ऐसी है कि दलित वर्ग दो जून की रोटी जुटाने के लिए सवर्ण हिंदुओं पर निर्भर करता है। न केवल उनके जीवन के सभी मार्ग हिंदुओं के पूर्वाग्रह के कारण बंद हैं, बल्कि हिंदू समाज द्वारा सदा प्रयत्न किया जाता है कि सारे दरवाजे बंद कर दिए जाएं, ताकि दलित वर्ग को अवसर न मिल पाए कि वे ढंग से जी सकें। वास्तव में यह कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं कि प्रत्येक गांव में सवर्ण हिंदू आपस में विभाजित हैं परन्तु उन दलित वर्गों को जो वहां कम संख्या में हैं और बिखरे हुए हैं निर्दयता से दबाने के लिए सदा षड़्यंत्र रचते हैं।

ऐसी परिस्थितियों में सभी समझदार और निष्पक्ष व्यक्ति यह स्वीकार करेगे कि ऐसी जाति के लिए संगठित अत्याचारों के विरूद्ध संघर्ष करके सफलता प्राप्त करने के लिए एकमात्र रास्ता है कि उनको राजनीतिक अधिकार देना परम आवश्यक बनाया जाए।

मुझे यह सोचना चाहिए था कि दलित वर्गों के हितचिंतक को एड़ी चोटी का जोर लगा कर उन्हें नए संविधान में अधिक से अधिक राजनीतिक अधिकार दिलाएं। परंतु श्री गांधी के सोचने के ढंग ही निराले हैं जो मेरी समझ से परे हैं। दलित वर्गों को सांप्रदायिक फैसले के अंतर्गत, जो अधूरे राजनीतिक अधिकार दिए गए हैं, वह न केवल उन्हें बढ़ाए जाने का प्रयत्न कर रहे हैं, बल्कि अपनी जान की बाजी लगा कर, जो कुछ अधिकार उन्हें मिले हैं, उनसे भी वंचित करने पर तुले हैं। दलित वर्गों के राजनीतिक अस्तित्व को पूरी तरह तबाह करने का यह श्री गांधी का पहला प्रयत्न नहीं है। बहुत पहले अल्पसंख्यक समझौता हुआ था। श्री गांधी ने मुसलमानों और कांग्रेस के मध्य समझौता कराने का प्रयत्न किया। मुसलमानों ने जो चौदह मांगें प्रस्तुत की थी, उनको श्री गांधी ने इस बात पर समर्थन देने की पेशकश की थी कि उनके बदले में दलित वर्गों के लिए उन्होंने सामाजिक प्रतिनिधित्व के जो दावे रखे हैं, उनका विरोध करने के लिए मुसलमान श्री गांधी का साथ दें।

मुस्लिम प्रतिनिधियों को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने ऐसी काली करतूत में

श्री गांधी का हाथ बंटाने से इंकार कर दिया और दलितों को मुसलमानों और श्री गांधी द्वारा उत्पन्न संभावित स्थिति से बचा लिया।

सांप्रदायिक पंचाट के प्रति श्री गांधी का विद्रोह मेरी समझ में नहीं आता। वह कहते हैं कि इसके द्वारा दलित वर्ग सवर्ण हिंदू समाज से अलग कर दिए गए हैं। दूसरी ओर डाक्टर मुंजे, जो हिंदुओं के बहुत जबर्दस्त समर्थक हैं और उनकी वकालत करने वाले प्रमुख व्यक्ति हैं, के विचार इस विषय में बिल्कुल भिन्न हैं। लंदन से वापस आने के बाद डा. मुंजे ने जितने भाषण दिए हैं, उनमें उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि सांप्रदायिक निर्णय दलित वर्गों को हिंदुओं से पृथक नहीं करता। वास्तव में वह इस बात की शेखी बघारते हैं कि उन्होंने मुझे हिंदुओं से दलित वर्ग को राजनीतिक ढंग से अलग करने के प्रयत्नों में पराजित कर दिया। मुझे यकीन है कि डा. मुंजे सांप्रदायिकता की सही व्याख्या करते हैं। यद्यपि मैं इस बात में यकीन नही करता हूं कि इसका श्रेय डा. मुंजे को जाता है, इसलिए यह बड़े आश्चर्य की बात है कि श्री गांधी सांप्रदायिक व्यक्ति नहीं, वरन् राष्ट्रीय व्यक्ति कहे जाते हैं। दलित वर्गों से संबंधित सांप्रदायिक निर्णय का वह अर्थ लेते हैं, जो डा. मुंजे जैसे सांप्रदायिक व्यक्ति के ढंग से बिल्कुल विपरीत है। यदि डा.मुंजे की दृष्टि में सांप्रदायिक निर्णय से दलित वर्गों के लोग हिंदुओं से अलग नहीं हो जाएंगे तो श्री गांधी को भी उस व्याख्या से संतोष कर लेना चाहिए था।

मेरे विचार में, सांप्रदायिक निर्वाचन में केवल हिंदुओं को ही नहीं संतुष्ट हो जाना चाहिए, वरन् दलित वर्गों के उन लोगों को भी संतुष्ट हो जाना चाहिए, जैसे–राव बहादुर राजा, श्री बालू और गवई, जो संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में हैं। विधान सभा में श्री राजा के गर्जन–तर्जन ने मुझे बहुत आश्चर्यचकित कर दिया। पृथक निर्वाचन के कट्टर समर्थक और सवर्ण हिंदुओं के अत्याचारों के कटुतम आलोचक होते हुए भी अब वह संयुक्त निर्वाचन के पक्षधर और हिंदुओं के प्रेमी हो गए हैं। इसमें कितना हाथ उन्हें गोलमेज सम्मेलन में शामिल न किए जाने का है और कितना ईमानदारी से विश्वास बदल लेने का, मैं इस पर बहस नहीं करना चाहता।

श्री राजा सांप्रदायिक पंचाट की जिस ढंग से आलोचना कर रहे है, उसके दो बिंदु हैं, एक तो यह कि दलित वर्गों को जनसंख्या के अनुपात में, जितनी सीटें मिलनी चाहिएं, सांप्रदायिक पंचाट में उससे कम सीटें हैं और दूसरे यह कि सांप्रदायिक पंचाट से दलित वर्ग के लोग हिंदुओं से अलग हो जाएंगे।

मैं उनकी पहली चिंता से सहमत हूं, परंतु गोलमेज सम्मेलन में दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व जिन लोगों ने किया है, उन पर दलित वर्ग के अधिकार बेचने

का राव बहादुर द्वारा दोषारोपण करने पर मुझे कहना पड़ता है कि जब वह इंडियन सेंट्रल कमेटी के सदस्य थे, तब उन्होंने क्या किया था? उस कमेटी की रिपोर्ट में दलित वर्गों को मद्रास में 150 सीटों में से दस सीटें, बम्बई में 14 में से 8 सीटें, बंगाल में 200 में से 8 सीटें, संयुक्त प्रांत में 182 में से 8, पंजाब में 166 में से 6 सीटें, बिहार और उड़ीसा में 150 में से 6 सीटें, मध्य प्रांत में 125 में से 8 सीटें और असम में दलित वर्गों और आदिमजातियों को 75 में से 9 सीटें मिली थीं। मैं इस बयान पर और कुछ नहीं कहना चाहता कि सीटों का उपरोक्त बंटवारा कहां तक जनसंख्या के अनुपात से मेल खाता है। परंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि यह बंटवारा दलित वर्गों के यथोचित प्रतिनिधित्व बहुत कम है। स्वयं राजा जी सीटों के उस बंटवारें में एक पक्ष थे। सांप्रदायिक पंचाट की आलोचना करने से पहले राजा साहब को अपनी स्मृति को झंझोड़ कर देखना चाहिए कि उन्होंने इंडियन सेंट्रल कमेटी में बिना कोई विरोध किए सीटों के उस बंटवारे को दलितों की ओर से कैसे स्वीकार कर लिया? राजा साहेब के अनुसार यदि जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व का सिद्धांत दलित वर्गों का प्राकृतिक अधिकार था, तो उस अधिकार की सुरक्षा करना नितांत आवश्यक था। परंतु प्रश्न यह है कि राजा साहब ने सेंट्रल कमेटी में उस पर क्यों नहीं जोर दिया जब कि ऐसा करने के लिए उन्हें अवसर भी मिला था?

उनके कथन से कि सांप्रदायिक पंचाट में दलित वर्गों को सवर्ण हिंदुओं से अलग कर दिया गया हैं, मैं सहमत नहीं हूं। यदि राजा साहेब को वास्तव में पृथक निर्वाचन पर कोई आपत्ति है, तो पृथक निर्वाचन में उम्मीदवार के रूप में खड़े होने के लिए उन पर कोई दबाव नहीं डालेगा। राजा साहेब पूरे जोरों से दलित वर्गो को विश्वास दिलाते हैं कि अब दलित वर्गों के प्रति सवर्ण हिंदुओं का ह्रदय परिवर्तन हो गया है। उन्हें यह प्रमाणित करने का अवसर मिलेगा, सामान्य निर्वाचनक्षेत्र से निर्वाचित होने पर भी दलित वर्गों के लोगों को अभी उनकी जबानी जमाखर्ची पर विश्वास नहीं है। हिंदू दलित वर्गों के प्रति जो प्रेम और सहानुभूति जता रहे हैं उन्हें भी राजा साहेब को सामान्य निर्वाचनक्षेत्र से विधानमंडल में भेजने का अवसर मिलेगा। वे तब अपनी ईमानदारी का परिचय दें।

इसीलिए मेरे विचार से जो लोग पृथक निर्वाचन के पक्ष में हैं तथा जो संयुक्त निर्वाचन के पक्ष में हैं, दोनों को सांप्रदायिक पंचाट ने से संतुष्ट कर दिया है। इस अर्थ में यह एक समझौता है। इसे ज्यों का त्यों सबको मान लेना चाहिए। जहां तक श्री गांधी की बात है, मैं नहीं जानता कि वह क्या चाहते हैं? ऐसा समझा जाता है कि यद्यपि श्री गांधी पृथक निर्वाचन प्रणाली के विरूद्ध हैं तथापि वह संयुक्त निर्वाचन और सीटों के संरक्षण के विरोध में नहीं हैं। यह बहुत बड़ी

भूल है। आज उनके विचार कुछ भी हों, जब वह लंदन में थे, तब किसी ऐसी व्यवस्था के पूर्णतया विरूद्ध थे, चाहे वह संयुक्त निर्वाचन अथवा पृथक निर्वाचन के संबंध में हो। वयस्क मताधिकार पर आधारित सामान्य निर्वाचन में मत देने के अधिकार के अतिरिक्त श्री गांधी विधान सभाओं में प्रतिनिधित्व देने की अस्पृश्यों की मांग को मानने के लिए तैयार नहीं थे। यह वह स्थिति थी, जो श्री गांधी ने पहले अपनाई थी। गोलमेज सम्मेलन की समाप्ति पर श्री गांधी ने मुझे एक योजना सुझाई थी, जिसके लिए उन्होंने कहा था कि वह उस योजना पर विचार करने के लिए तैयार हैं। वह योजना पूर्णतया परंपरागत थी, जिसकी कोई संवैधानिक मान्यता नहीं थी। उस योजना के अंतर्गत निर्वाचन कानून के अनुसार एक भी सीट दलित वर्गों के लिए सुरक्षित नहीं रखी गई थी। वह योजना इस प्रकार थी :–

दलित वर्ग के उम्मीदवार सामान्य निर्वाचन में, अन्य सवर्ण हिंदू उम्मीदवारों के मुकाबले में खड़े हो सकते है। यदि दलित उम्मीदवार सामान्य निर्वाचन क्षेत्र में चुनाव हार जाए, तो वह इस आधार पर चुनाव याचिका दायर कर सकता है कि उसे अस्पृश्य होने के कारण पराजित कर दिया गया है। यदि इस आधार पर अस्पृश्य उम्मीदवार के पक्ष में फैसला हो जाता है, तो श्री गांधी ने कहा कि वह कुछ हिंदू सदस्यों को सीट दिलाने के लिए त्यागपत्र देने के लिए कहेंगे। तब दुबारा चुनाव होगा। उस चुनाव में सवर्ण हिंदू उम्मीदवार के विरूद्ध वह अथवा अन्य अस्पृश्य उम्मीदवार खड़ा होकर अपना भाग्य आजमाएगा। यदि वह दुबारा चुनाव हार जाता है, तो वह पुनः उसी आधार पर चुनाव याचिका दायर करेगा कि उसे अस्पृश्य होने के कारण हरा दिया गया है और यह सिलसिला बेरोकटोक चलता रहेगा। मैं इन तथ्यों को इसलिए उजागर कर रहा हूं कि कुछ लोगों को अब भी भुलावा है कि संयुक्त निर्वाचन तथा आरक्षित सीटों से ही श्री गांधी की आत्मा को शांति मिल जाएगी। मैं इसीलिए इस बात पर जोर दे रहा हूं कि जब तक श्री गाधी की ओर से कोई वास्ततिक प्रस्ताव सामने नहीं आते, इस प्रश्न पर विचार करना व्यर्थ है।

कुछ भी हो मैं यह बता देना चाहता हूं कि मैं श्री गांधी तथा उनकी कांग्रेस के आश्वासनों पर विश्वास नहीं कर सकता कि वे आवश्यक कदम उठाएंगे। मैं अपने लोगों के संरक्षण जैसे महत्वपूर्ण प्रश्न को परंपराओं और आश्वासनों के भरोसे नहीं छोड़ सकता। श्री गांधी अमर व्यक्ति नहीं है और कांग्रेस पर कोई ऐसा नैतिक दबाव नहीं है, जो उनकी बात सदैव ब्रह्म वाक्य मान कर चले ही। भारत में बहुत से महात्मा आए, जिनका एकमात्र उद्देश्य अस्पृश्यता मिटाना और अस्पृश्यों का उद्धार करना था। सभी महात्माओं को असफलता हाथ लगी। महात्मा लोग आए और चले गए, लेकिन अस्पृश्य सदैव अस्पृश्य ही बने रहे।

मुझे हिंदू सुधारकों तथा उनके द्वारा किए जाने वाले सुधारों के बारे में महाद और नासिक के आंदोलनों से काफी अनुभव हुआ है, जिनसे मैं कह सकता हूं कि दलित वर्गों का कोई ऐसा हितचिंतक नहीं है, जो उन्हें उनके ऊपर किए जाने वाले बर्बर अत्याचारों से छुटकारा दिला कर उन्नति के पथ पर अग्रसर कर सके। ऐसे समाज–सुधारक जो मुसीबत के क्षणों में अपने भाई–बंधुओं की भावना को ठेस पहुंचाने की अपेक्षा समाज सुधार के अपने सिद्धांतों को ही तिलांजलि दे देते हैं, दलित वर्गों के लिए बेकार हैं।

इसलिए मैं अपने लोगों की सुरक्षा के लिए वैधानिक गारंटी चाहता हूं। यदि श्री गांधी सांप्रदायिक पंचाट में परिवर्तन कराना चाहते हैं, तो उन्हें चाहिए कि वह अपने ऐसे प्रस्ताव सामने लाएं और सिद्ध करें कि उनके प्रस्ताव सांप्रदायिक पंचाट द्वारा दी गई गारंटी की अपेक्षा बेहतर गारंटी देते हैं।

मुझे आशा है कि श्री गांधी ने जो अतिवादी कदम उठाने की ठानी है, वह उसका विचार छोड़ देंगे। जब हम पृथक निर्वाचन की मांग करते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि हम हिंदू समाज को हानि पहुंचाना चाहते हैं। यदि हम पृथक निर्वाचन की मांग कर रहे हैं, तो हम ऐसा इसलिए करना चाहते हैं कि हमारी असहाय जनता सवर्ण हिंदुओं की दया पर ही निर्भर रहने के लिए न छोड़ दी जाए। श्री गांधी की तरह हमें भी गलती करने का अधिकार है और हमें आशा है कि वह हमें अपने उस अधिकार से वंचित नहीं करेंगे। उनका आमरण अनशन का इरादा किसी और अच्छे कार्य के लिए हो, तो बड़ी अच्छी बात होगी। आमरण अनशन जैसे अतिवादी कार्य यदि वह हिंदू–मुसलमान दंगों के विरोध में करते अथवा अन्य किसी राष्ट्र हित में करते, तो उसका कुछ अर्थ समझ में आता। श्री गांधी का यह अनशन निश्चित रूप से दलित वर्गों की दशा में कोई सुधार नही ला सकता। श्री गांधी चाहे यह जानते हों अथवा नहीं, उनके इस अनशन का परिणाम होगा, सारे देश में उनके अनुयायियों द्वारा दलित वर्गों के प्रति आतंकवाद।

इस तरह का दबाव दलित वर्गों को हिंदू समाज से नहीं जोड़ सकता, अलग होने से नहीं रोक सकता, यदि वे उस समाज से बाहर जाने का संकल्प कर लें। यदि श्री गांधी दलित वर्गों से हिंदू–धर्म तथा राजनीतिक अधिकार प्राप्त करने – दो में से किसी एक का चुनाव करने के लिए कहें, तो मेरा पूरा विश्वास है कि श्री गांधी को अनशन से बचाने हेतु दलित वर्ग के लोग राजनीतिक अधिकार प्राप्त करना ही पसद करेंगे। यदि श्री गांधी अपने इस कदम के परिणामों के विषय में ठंडे दिमाग से विचार करें, तो मुझे संदेह है कि उन्हें उल्लेखनीय विजय प्राप्त होगी। यह अब भी ध्यान देने योग्य महत्वपूर्ण बात है कि ऐसे प्रतिक्रियावादी और अनियंत्रित शक्तियों को श्री गांधी छूट देकर हिंदू जाति और दलित वर्गों

के मध्य नफरत की भावना को और उत्तेजित करेंगे और दोनों वर्गों के बीच की खाई को और चौड़ा करेंगे। गोलमेज सम्मेलन में जब मैंने श्री गांधी का विरोध किया था, तब देश में मेरे विरुद्ध काफी हुल्लड़ मचा था और अपने को राष्ट्रीय समाचार पत्र कहने वाले अखबारों ने मुझे राष्ट्रीय हित में अड़ंगा डालने वाला देशद्रोही करार देने का षडयंत्र रचा था और मेरी पार्टी के विरुद्ध होने वाली सभाओं के समाचारों को बढ़ा–चढ़ा कर छापते थे, हालांकि कुछ सभाएं होती ही नहीं थी। दलित वर्गों में पारस्परिक विभेद करने के लिए रिश्वत का खुल कर लालच दिया गया। कुछ हिंसक वारदातें भी की गई।

यदि श्री गांधी उपरोक्त सभी प्रकार की बातों की बड़े पैमाने पर पुनरावृत्ति नहीं चाहते, तो भगवान के लिए अपने निर्णय पर फिर से विचार करें और विनाशकारी परिणामों से बचाएं। मुझे विश्वास है कि श्री गांधी ऐसा नहीं चाहते हैं। परंतु यदि वह अपना आमरण अनशन नहीं छोड़ते, तो उनके न चाहते हुए भी इसके दुष्परिणाम उसी प्रकार निश्चित हैं, जिस प्रकार दिन के बाद रात का आना निश्चित होता है।

यह बयान समाप्त करने से पहले मैं जनता को विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि यद्यपि मैं समझता हूं कि बात अब समाप्त हो चुकी है, परंतु तब भी मैं श्री गांधी द्वारा लाए गए प्रस्तावों पर विचार करने के लिए तैयार हूं। मैं समझता हूं कि श्री गांधी मुझे इस बात के लिए बाध्य नहीं करेंगे कि मैं उनके जीवन तथा अपने निस्सहाय लोगों के अधिकारों में से किसी एक को चुनूं, क्योंकि भविष्य में अपने लोगों की आने वाली पीढ़ियों को हथकड़ी और बेड़ी में जकड़ कर पड़े रहने के लिए मैं कभी नहीं कहूंगा।

— बी.आर अम्बेडकर

परिशिष्ट - पांच

ट्रावनकोर में मंदिर प्रवेश

ट्रावनकोर के महाराजा ने दिनांक 12 नवंबर 1936 को अपने राज्य में अस्पृश्यों के लिए मंदिर खोलने की घोषणा की। घोषणा इस प्रकार थी :–

"अपने धर्म में सत्य और उसकी व्यापकता पर हमें गहरा विश्वास हो गया है कि हमारा धर्म पवित्र निर्देशों पर आधारित है, इसमें व्यापक सहनशीलता है, और यह जानते हुए कि शताब्दियों से यह धर्म समय की आवश्यकता के अनुसार अपने को बदलता चला आया है। अब हमारी इच्छा है कि हमारी हिंदू प्रजा में किसी को जन्म के कारण, जाति अथवा संप्रदाय के कारण हिंदू धर्म से प्राप्त होने वाली सुख शांति से इंकार नहीं किया जा सकता। हमने निश्चय किया है और घोषणा करते हैं और आदेश देते हैं कि लागू नियमों और शर्तों के अंतर्गत अब भविष्य में किसी भी हिंदू को जन्म अथवा धर्म के आधार पर हमारे राज्य द्वारा संचालित एवं नियंत्रित मंदिरों में प्रवेश करने पर कोई प्रतिबंध नहीं होगा।"

कांग्रेसियों और श्री गांधी द्वारा इस घोषणा पर बहुत कुछ कहा गया है। उस घोषणा को हिंदू जगत में नई चेतना का जन्म बतलाया गया है। मुझे इस बात पर पूरा विश्वास नहीं है। कुछ भी हो इसका दूसरा पक्ष कुछ और भी है जिस पर ध्यान देना श्रेयस्कर है।

उपरोक्त घोषणा ट्रावनकोर के महाराजा ने अपने नाम से प्रसारित की थी। परंतु वास्तव में इसके पीछे उनके प्रधानमंत्री श्री सी.पी.रामास्वामी अय्यर का हाथ था। उसके ध्येय को समझना होगा। श्री सी.पी. रामास्वामी अय्यर 1932 में भी उन्हीं महाराजा के प्रधानमंत्री थे। 1932 में जब श्री गांधी ने गुरूवयूर मंदिर में अस्पृश्यों के मंदिर प्रवेश के बारे में विवाद खड़ा किया था तब श्री अय्यर जो व्यक्तिगत रूप से कट्टर हिंदू हैं, उस विवाद में उनका पक्ष ले रहे थे, जो मंदिर प्रवेश के विरूद्ध थे। उन्होंने इस विषय पर निम्नलिखित बयान[1] समाचारपत्रों में छपवाया था :–

"व्यक्तिगत रूप से मैं जाति–पाति के नियमों को नहीं मानता। मैं समझता हूं कि अभी तक लोगों में अंध विश्वास है, हालांकि यह स्पष्ट नही है कि मंदिरों में पूजा–पद्धति दैवी आदेशों पर आधारित है। इस समस्या का स्थाई समाधान पारस्परिक समायोजन और हिंदू समाज के धार्मिक तथा सामाजिक नेताओं की जागृति और वर्तमान स्थिति को पहचान कर चलने से ही संभव है। ऐसा सामंजस्य

1. टाइम्स आफ इंडिया, 10 नवंबर, 1932

स्थापित करने की आवश्यकता है, जिससे हिंदू जाति की एकता मजबूती से कायम रह सके।

इस संबंध में दबाव इसका जवाब नहीं है तथा राजनीतिक के बजाय सीधी कार्यवाहियों से यह समस्या और अधिक घातक हो सकती है। दुर्भाग्य से मै श्री गांधी के इस विचार से सहमत नहीं हूँ कि मुद्दे को अंतर्जातीय सहभोज से अलग रखा जाए। इस संबंध में मैं डा. अम्बेडकर के इन विचारों से सहमत हूं कि दलित वर्गों का तत्काल सामाजिक एवं आर्थिक उत्थान हमारा कार्यक्रम होना चाहिए।"

इस बयान से स्पष्ट है कि 1933 में श्री सी.पी.रामास्वामी अय्यर को आध्यात्मिक विचारों ने प्रभावित नहीं किया था। 1933 के बाद आध्यात्मिक विचार जमने लगे। श्री अय्यर के विचार 1936 में कैसे बदल गए? ट्रावनकोर में 1936 में ऐसी क्या बात हुई, जिससे श्री अय्यर को विचार बदलने के लिए विवश होना पड़ा? यह स्मरणीय है कि 1936 में ट्रावनकोर में इजवा जाति का एक सम्मेलन हुआ। इजवा मालाबार में अस्पृश्य जाति से संबंधित हैं और मालाबार में और भी क्षेत्रों में फैले हुए हैं। वह पढ़ा लिखा समाज है और इसकी आर्थिक स्थिति मजबूत है। यह जागृत जाति भी है, जो राज्य में सामाजिक एवं धार्मिक बुराइयों के विरोध में आंदोलन किया करती है। सम्मेलन इस बात पर विचार करने के लिए बुलाया गया था कि इजवा लोग हिंदू धर्म को कोई अन्य धर्म अपनाते हेतु त्याग दें अथवा नहीं।[1] इजवा लोग बहुत बड़ी संख्या में हैं। इतनी बड़ी जाति का हिंदू धर्म से नाता तोड़ना हिंदुओं की कब्र खोदने के समान था और उस सभा ने खतरे को साकार रूप दे दिया।

यह कहना गलत न होगा कि यह घोषणा खतरे को टालने के लिए की गई थी। यदि वह सही है, तो घोषणा के पीछे आध्यात्मिक तत्व नहीं था। यह नहीं भूलना चाहिए कि सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर का भौतिक कार्य को आध्यात्मिक रंग देने का अपना ढंग है। हिंदू विधान के अनुसार ब्राह्मण उस प्राणदंड से मुक्त हैं, जो सभी गैर–ब्राह्मणों पर लागू होता है। यह भेदभाव का ज्वलंत उदाहरण है। सर सी.पी. रामास्वामी अय्यर ने अभी हाल ही में ट्रावनकोर राज्य में प्राणदंड को समाप्त करने की घोषणा करके बहुत बड़े मानवीय सुधार करने का श्रेय प्राप्त किया। वास्तव में इस घोषणा का उद्देश्य था, कानून के सामने समानता के सिद्धांत के आदेश को मान कर ब्राह्मणों को उस शिरोच्छेदन से मुक्ति दिलाना।

इस घोषणा से वास्तव में क्या परिवर्तन हुए और कहां तक यह सुप्तावस्था

---

1. यह सभा 1935 में येवला में मेरी अध्यक्षता में हुई सभा में लिए गए फैसले पर विचार करने के लिए की गई थी।

में रही? ट्रावनकोर के तथ्यों को समझना संभव नहीं है। मद्रास विधान सभा में मालाबार मंदिर प्रवेश विधेयक पर विवाद के दौरान सर पन्नीरसेल्वम ने कुछ तथ्य प्रस्तुत किए थे, यदि वे सच हैं, तो घोषणा का सारा खोखलापन स्पष्ट हो जाता है।

सर पन्नीरसेल्वम ने कहा था :–

"प्रधानमंत्री ने जो तर्क दिए हैं, उनमें से एक था ट्रावनकोर में अस्पृश्यों के लिए मंदिर खोल देना। महाराजा को जिसे निरंकुश शक्तियां प्राप्त हैं, उनके अनुसार उन्होंने आदेश दिए हैं। परंतु यह सब कैसे हो रहा है? इस संबंध में जो आपत्तियां प्राप्त हुई हैं, उनसे विश्वास होता है कि उत्साह की पहली लहर के बाद जब से हरिजनों को मंदिर में जाने की अनुमति मिली है, तब से उन्होंने उन मंदिरों में पूजा–पाठ करना बंद कर दिया है, जो पहले वहां जाया करते थे। मैं सरकार से पूछना चाहता हूं कि वह बताए कि क्या इस कदम से कोई सफलता मिली है?"

विधेयक के तृतीय वाचन पर सर टी. पन्नीरसेल्वम ने जो बयान दिया था, उससे बहुत से लोगों को आश्चर्य हुआ। उन्होंने कहा –

"महाराजा जानना चाहते थे कि क्या यही सत्य है कि पटरानी के निजी मंदिर को घोषणा से मुक्त रखा गया है? इसका क्या कारण था? फिर पटरानी की पुत्री के विवाह के उत्सव के दौरान यह आवश्यक प्रतीत हुआ कि मंदिर की शुद्धि कराई जाए और उनसे शुद्धिकरण के लिए कहा गया। यदि मंदिरों की इस प्रकार शुद्धि की जाने लगी, तो उस घोषणा का क्या महत्व हुआ?"

इन तथ्यों को चुनौती देने का साहस सर सी.पी.रामास्वामी अय्यर अथवा सी. राजगोपालाचारी किसी को नहीं हुआ। जाहिर है उन तथ्यों को चुनौती दी ही नहीं जा सकती थी।

ट्रावनकोर में समाज सुधार के लिए मंदिर प्रवेश ही गिनाया जा सकता है। क्या धार्मिक स्तर पर समानता लाने के लिए इस प्रकार से मंदिर प्रवेश से ही सब कुछ हो सकता है? उदाहरणार्थ क्या देवस्थान विभाग अछूतों और शूद्रों के हाथों में सौंप दिया जाएगा? घोषणा को नौ वर्ष हो गए हैं परंतु ट्रावनकोर में धर्म के लोकतंत्रीकरण की दिशा में कुछ भी नहीं किया गया।

क्या ट्रावनकोर के अस्पृश्य मंदिर प्रवेश की कुछ कीमत चुकाएंगे? मैं कुछ नहीं कह सकता। परतु मैं यहां पर आल ट्रावनकोर पुलयार चर्मार आयकिआ महासंघम का पत्र जो मुझे संबोधित है, नीचे उद्धृत करना चाहूंगा। यह पत्र 24 नवंबर, 1938 का है।

कैम्प मय्यानाड
क्विलोन – 24–11–1938

सेवा में,

डा. अम्बेडकर,
बम्बई।

आदरणीय महोदय,

मैं निम्नलिखित तथ्यों की ओर सादर आपका ध्यान आकर्षित करते हुए आप की अमूल्य सलाह जानना चाहता हूं। ट्रावनकोर की हरिजन जाति का नेता होते हुए मेरा यह परम कर्तव्य है कि इस राज्य के हरिजनों को जिन मुसीबतों का सामना करना पड़ रहा है, उनकी ओर आपका ध्यान दिलाऊं।

1 ट्रावनकोर राज्य के महाराजा ने मंदिर प्रवेश की जो घोषणा की है वह हरिजनों के लिए वास्तव में एक वरदान है। परंतु हरिजन मंदिर प्रवेश के अतिरिक्त अन्य सामाजिक कष्टों को भुगत रहे हैं। सरकार हरिजनों के उत्थान के लिए कोई कदम नहीं उठाती।

2. पन्द्रह लाख हरिजनों में कुछ ग्रेजुएट हैं, आधा दर्जन ग्रेजुएट से नीचे और 50 स्कूल फाइनल तथ 200 से अधिक वर्नाक्यूलर सर्टिफिकेट वाले हैं। यद्यपि सरकार ने लोक सेवा आयोग बनाया है, परंतु हरिजनों की बहुत ही कम नियुक्ति की जाती है। सभी नियुक्तियां सवर्णों की होती हैं। यदि किसी हरिजन की नियुक्ति हो जाती है, तो केवल एक दो सप्ताह के लिए। सार्वजनिक सेवाओं में भरती के नियमों के अनुसार प्रार्थी को एक साल बाद ही पुनः प्रार्थनापत्र देने की अनुमति है जबकि सवर्ण हिंदू को एक साल अथवा उससे अधिक समय के लिए नियुक्त किया जाता है। जब सभा के सामने नियुक्तियों की सूची लाई जाती है, तो सांप्रदायिक प्रतिनिधित्व के अनुसार नियुक्तियां दिखाई जाती है। परंतु कुल सेवा काल एक सवर्ण के बराबर होगा। इस प्रकार सार्वजनिक सेवा सवर्णों की जागीर बनी हुई है। हरिजनों को इससे कोई लाभ नहीं।

3. कुछ वर्ष पहले महाराजा ने घोषणा की थी कि प्रत्येक हरिजन को रहने के लिए तीन एकड़ जगह दी जानी चाहिए, परंतु कार्यकर्ता लोग जो सवर्ण हिंदू हैं, घोषणा को लागू ही नहीं करते, यद्यपि सरकार कस्बों के पास चरागाह की जमीन उन्हें देना चाहती है। परंतु हरिजन को कोई जमीन नहीं दी जाती है। हरिजन सवर्ण के घेरे में ही रहते हैं और अनेक मुसीबतों से होकर गुजर रहे हैं। यद्यपि बहुत सारी भूमि "सुरक्षित" पड़ी हुई है, परंतु हरिजनों के प्रार्थना–पत्र पहुंचने पर भी उन्हें जमीन नहीं दी जाती और न कोई सुनवाई होती है। अधिकतर भूमि पर सवर्ण हिंदू काबिज हैं।

4. सरकार हरिजन जाति के प्रत्येक सदस्य को प्रत्येक वर्ष विधान सभा में नामजद करती है। यद्यपि वे हरिजनों की मुसीबतों को सभा में प्रस्तुत करने के लिए चुने जाते हैं। वे केवल सरकार की मशीन समझे जाते हैं। अर्थात सवर्ण हिंदुओं के खिलौने, जिनसे सवर्ण हिंदू लाभान्वित होते हैं। इस तरह हरिजनों की मुसीबतें दूर नहीं की जा सकती।

5. ट्रावनकोर के सभी हरिजन खेतिहर मजदूर हैं। वे सवर्ण हिंदुओं के नौकर हैं, जिनके साथ वे बर्बरता का व्यवहार करते हैं और कोई उनकी रक्षा नहीं करता। राज्य में प्रत्येक हरिजन को दैनिक मजदूरी एक आना दी जाती है। मंदिर प्रवेश के बाद भी सामाजिक कठिनाइयां ज्यों की त्यों बनी हुई हैं। ट्रावनकोर राज्य के विभिन्न क्षेत्रों में फैले कारखानों में काम करने वाले तथा राज्य के अधिकारी सभी सवर्ण हिंदू हैं और वे उत्तरदायी सरकार के लिए आंदोलन कर रहे हैं। हरिजन और कारखानों में नौकरियों की मांग कर रहे हैं, परंतु ट्रावनकोर का आंदोलन सवर्ण हिंदुओं का आंदोलन है, जिसके द्वारा वे सरकारी नौकरियों और कारखानों में हरिजनों को निकालने का प्रबंध कर रहे हैं। वे अधिक ऊंचे वेतन और सुविधाओं की मांग कर रहे हैं। वे हरिजन मजदूरों की ओर कोई ध्यान नहीं देते, जबकि ट्रावनकोर के लोग कारखानों के मजदूरों के आंदोलन से पागल हो उठे हैं। हरिजन कर्मचारियों का वेतनमान बहुत कम है जबकि अन्य मिल मजदूरों का वेतन उनसे तीन गुना अधिक है।

6. भूख और जीवनयापन के पर्याप्त साधन न होने के कारण हरिजनों के बच्चे क्षुब्ध हो जाते हैं, जिनसे उनके बच्चे स्कूलों में अनुत्तीर्ण हो सकते हैं। घोषणा से पहले हाई स्कूलों की परीक्षा में बैठने के लिए 6 वर्षो की छूट हुआ करती थी, जो अब घटा कर तीन वर्ष कर दी गई है जिससे असफल होने पर बड़ी तादाद में विद्यार्थियों ने पढ़ाई छोड़ दी है।

7. दलित वर्गों के लिए एक विभाग है, जिसके अध्यक्ष सी.ओ. दामोदरन (पिछड़ी जातियों के संरक्षक) हैं। यद्यपि खर्च के लिए बड़ी धनराशि स्वीकार की जाती है और वर्ष के अंत में उसकी करामात से लगभग दो तिहाई धनराशि खर्च नहीं हो पाती। वह सरकार को रिपोर्ट दे दिया करते हैं कि धन और खर्च करने का कोई रास्ता नहीं है। दलित वर्गों के लिए नियत राशि में से 95 प्रतिशत धनराशि कर्मचारियों के वेतन भुगतान पर खर्च होती है, जो सवर्ण होते हैं और केवल पांच प्रतिशत से ही दलित लाभान्वित हो पाते हैं। अब ट्रावनकोर के तीन क्षेत्रों में सरकार कुछ कालोनियां बनवाने जा रही है। अधिकारी सवर्ण हिंदू हैं। मेरे विचार से योजना सफल न होगी, क्योंकि सरकार उस पर कोई ध्यान नहीं देती है। मुझे अफसोस है कि ट्रावनकोर सरकार हरिजनों के हित में एक आना खर्च करती है, जबकि कोचीन राज्य उसी मद पर एक रुपया खर्च जाता है।

8. ट्रावनकोर की अधिकतर प्रजा राज्य कांग्रेस संस्था के अंतर्गत उत्तरदायी सरकार की मांग के लिए बड़े जोरों से आंदोलन कर रही है। उस संस्था के नेता राज्य की उन चार बड़ी जातियों से संबंधित हैं – नायर, मुसलमान, क्रिश्चियन और इजवा जाति। राज्य कांग्रेस के अध्यक्ष श्री थानू पिल्लई ने एक बयान जारी किया है, जिसमें उन्होंने दलित वर्गों के लिए विशेष छूट पर जोर दिया है। दलित वर्ग के सभी नेता राज्य कांग्रेस के रूख की प्रतिक्षा कर रहे हैं। अब हम समझते है कि उन नेताओं के वादों में कोई यथार्थ नहीं है।

9. अब मुझे पूरा विश्वास है कि नेताओं ने दलित वर्ग के हितों की उपेक्षा की है। कांग्रेस की शुरूआत राष्ट्रीयता के सिद्धांत पर हुई थी, परंतु अब यह पूर्णतया सांप्रदायिक संस्था हो गई है। नेताओं में अब सांप्रदायिक भावना घर कर गई है। सभी सार्वजनिक सभाओं में केवल उन्हीं चार बड़ी जातियों की बात की जाती है और हमारे विषय में कोई सोचता तक नहीं। मुझे डर है कि यदि ट्रावनकोर के राजनीतिक आंदोलन के नेताओं की यही गति रही तो उत्तरदायी सरकार प्राप्त हो जाने पर दलित वर्गों की दशा और भी दयनीय हो जाएगी, क्योंकि तब उपरोक्त चारों बड़ी जातियों की मुट्ठी में ही वह पूरी सरकार होगी और दलित वर्गों के सभी अधिकार और सुविधाएं उन जातियों द्वारा छीन ली जाएंगी। राज्य कांग्रेस की कार्य समिति की बैठकों में लगभग दो तिहाई समय अलेप्पी नारियल जटा फैक्टरीज की हड़ताल के संबंध में वाद–विवाद पर खर्च हो जाता है, परंतु हरिजन कर्मचारियों के विषय में जो ढेर सारी परेशानियों से होकर गुजर रहे हैं, बैठक में कोई विचार नहीं किया जाता। उन कारखानों में कर्मचारी सवर्ण जातियों के हैं और उत्तरदायी सरकारों की प्राप्ति का आंदोलन हरिजन आंदोलन के विरूद्ध है। राज्य कांग्रेस के प्रत्येक नेता का ध्येय है – सवर्ण जातियों को उठाना। बड़ी जातियों के नेता केवल स्वार्थी प्रवृत्ति के हो गए हैं, जो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए दलित वर्गों की बलि देने जा रहे हैं।

10. राज्य के दलित वर्ग की यह दयनीय दशा है। राज्य में हमारे अपने अधिकारों को मांगे जाने के क्या तरीके हो सकते है। ऐसे समय में आपकी अमूल्य सलाह का मै अनुरोध करता हूं और आपके उत्तर की प्रतीक्षा कर रहा हूं।

कष्ट के लिए क्षमा करें,

आपका विश्वासपात्र

श्रीनारायण स्वामी

यदि मंदिर प्रवेश योजना अंततः अस्पृश्यों को उनके स्थाई अधिकारों से वंचित करने की है, तो ऐसा आंदोलन आध्यात्मिक भावना के विरूद्ध ही नहीं, वरन् शरारतपूर्ण है और ऐसी दशा में ईमानदार लोगों का दायित्व हो जाता है कि अस्पृश्यों को ऐसे खतरों से सचेत कर दें।

परिशिष्ट - 6

अस्पृश्यों के पृथक अस्तित्व को मान्यता

भारतीय संविधान में अस्पृश्यों की क्या स्थिति होगी इस विषय पर ब्रिटिश सरकार की घोषणा।

प्रस्तावना

तत्कालीन वायसरायों एवं भारत मंत्रियों की घोषणाओं का उल्लेख करने की आवश्यकता इसलिए पड़ी कि हाल ही में श्री गांधी को लार्ड वेवल ने उनके 15 अगस्त 1944 के पत्र के उत्तर में जवाब दिया कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अनुसूचित जातियां पृथक अस्तित्व रखती है और भारतीयों को सत्ता सौंपने के पहले भावी संविधान में उनकी भी सहमति नितांत आवश्यक है। उसकी समाचार–पत्रों द्वारा काफी आलोचना हुई है। यह आलोचना इस सोच पर आध ारित है कि किसी संकल्प में अनुसूचित जातियों के लोगों का पृथक अस्तित्व होने को मान्यता नहीं थी और उनकी सलाह आवश्यक नहीं बतलाई गई थी। ऐसा विश्वास अल्पसंख्यकों के संबंध में कुछ नही कहता और यह तर्क दिया जाता है कि अनुसूचित जातियां न तो कोई प्रजाति है और न धार्मिक अल्पसंख्यक हैं।

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसी आलोचना के पीछे कितनी अनभिज्ञता है। हिंदू धर्म ने अस्पृश्यता के मत को आधार मान कर हिंदुओं की प्रमुख संस्था से अनुसूचित जातियों को इस चालाकी से अलग कर दिया कि वे हिंदुओं से इतना पृथक हो गए कि हिंदू और मुसलमान अथवा हिंदू और सिख अथवा हिंदू और ईसाई पृथक समझे जाते हैं। यह मानना कठिन है कि अस्पृश्यता, पृथकता और संगरोध से बढ़कर और किस सिद्धि का प्रतिफल है और ऐसी आलोचना करने वाला वही दुर्भावना वाला वर्ग है जो अनुसूचित जातियों को उनके राजनीतिक अधिकारों के दावों को नकारने के उद्देश्य से शब्दजाल फैला रहा है। जो लार्ड वेवल की घोषणाओं को प्रकारांतर कह रहे हैं, वे पूरी तरह भूल गए हैं कि जब से सत्ता हस्तांतरण का विचार ब्रिटिश सरकार के मन में आया है, तभी से अनुसूचित जातियों की बात भी उसके विचाराधीन है। 1917 से जब मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में उत्तरदायी सरकार की वकालत की गई थी, ब्रिटिश सरकार ने एक निश्चित रूख स्पष्ट कर दिया था कि जब तक अनुसूचित जातियों का संरक्षण समुचित संवैधानिक व्यवस्था द्वारा नहीं कर दिया जाता किसी भी स्थिति में भारतीयों को सत्ता हस्तांतरित नहीं की जा सकती। वर्ष 1917 से 1941 तक समय–समय पर वायसरायों तथा भारतीय सचिवों के द्वारा की गई घोषणाओं में से कुछ घोषणाएं अगले पृष्ठों पर उद्धृत की गई हैं। इससे इस तर्क की मान्यता को बल मिलता है कि भारत के राष्ट्रीय जीवन में अनुसूचित जातियों के लोगों

का पृथक एवं महत्वपूर्ण अस्तित्व है और सभी प्रकार के प्रस्तावों और संवैधानिक क्रियाकलाप में उनकी सहमति की नितांत आवश्यकता है। क्रिप्स प्रस्तावों के बनने से बहुत पहले ब्रिटिश सरकार के दोनों प्रतिनिधि भारत सचिव तथा वायसराय ने भी इसी प्रकार के विचार प्रकट किए थे। खासतौर पर श्री ऐमरी के 14 अगस्त 1940 तथा लार्ड लिनिलिथगो के 10 जनवरी, 1940 के वक्तव्य ध्यान देने योग्य हैं। मुझे आशा है कि इन घोषणाओं के अध्ययन से वे लोग जो अनुसूचित जातियों के राजनीतिक अधिकारों को नकारने के प्रयत्न करते हैं, समझेंगे कि उनका अनावश्यक प्रचार कितना मूर्खतापूर्ण एवं द्वेषभावना से परिपूर्ण है।

(1)

भारतीय संवैधानिक सुधार 1917 पर मोंटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट से अंश।

155 – हमने यह अनुभव किया है कि प्रजा को राजनीतिक शिक्षण प्रदान करने में बहुत तेजी नहीं लाई जा सकती। यहीं नहीं यह कठिन प्रक्रिया भी होगी। जब तक उस प्रक्रिया को पूरा नहीं कर लिया जाता, इस प्रजा को उन लोगों द्वारा दबाने का खतरा बराबर बना रहेगा, जो उसकी अपेक्षा कहीं बहुत अधिक बलवान और चतुर हैं और जब तक यह बात स्पष्ट नहीं हो जाती कि वे अपने हाथों अपनी सुरक्षा अपने हितों की सुरक्षा कर सकते हैं अथवा विधान परिषदों में उन्हें प्रतिनिधित्व मिले जिससे उनके हितों पर विचार किया जा सके। हमें उस रैयत की अवश्य सुरक्षा करनी है। यही समस्या दलित जातियों के साथ है। इसके लिए हमें ऐसी अच्छी व्यवस्था करनी है कि उन्हें अंततः ऐसी राजनीतिक शिक्षा मिले कि वे अपने हितों की ओर अपनी सुरक्षा स्वयं कर सकें। परंतु ऐसा देखा गया है कि उनके हितों की हानि होती है और फलतः वे सामान्य प्रगति में कोई भाग नहीं लेते। हमें उनकी सहायता का कार्य अपने हाथों में रखना चाहिए।

(2)

साउथबरो मताधिकार समिति की रिपोर्ट पर भारत सरकार द्वारा प्रेषित दिनांक 23 अप्रैल 1919 के पांचवे पत्र से अंश

13 – समिति द्वारा जिन समुदायो के लिए गैर–सरकारी नामजदगी की सिफारिश की गई हम लोगों ने इस बयान में उसका विश्लेषण किया है।

हम लोग आमतौर से इन प्रस्तावों पर सहमत है। परंतु हम लोगों के विचार से एक समुदाय ऐसा है जिन पर समिति ने जितना ध्यान दिया है, उससे अधिक ध्यान देने की जरूरत है। भारतीय संवैधानिक सुधार पर रिपोर्ट ने दलित वर्गों को स्पष्ट रूप से मान्यता दी है और उसे स्वीकार करने का संकल्प किया है।

हमारा इरादा है कि हम, उनके प्रतिनिधित्व के लिए, जितनी अच्छी व्यवस्था कर सकते हैं, करें। समिति की रिपोर्ट में इन जातियों को "हिंदू –अन्य लोग" के शीर्षक में लिखा गया है। यद्यपि वे विभिन्न रूपों में परिभाषित की गई हैं। ये सब एक समान वर्ग हैं और उन्हें बिल्कुल बहिष्कृत करके रखा गया है। न्यूनाधिक उनकी स्थिति मद्रास के पंचम लोगों जैसी है, जो निश्चित तौर पर हिंदू जाति से बहिष्कृत कही जाती हैं, जिन्हें मंदिरों में नहीं जाने दिया जाता। इनकी संख्या "कुल जनसंख्या का लगभग पांचवा भाग है और उन्हें मारले मिंटो काउंसिलों में कोई प्रतिनिधित्व नहीं दिया गया है। समिति की रिपोर्ट में दलित जातियों का दुबारा उल्लेख किया गया है, परंतु केवल यह स्पष्ट करने के लिए कि संतोषजनक चुनाव न होने पर उन्हें नामजदगी द्वारा प्रतिनिधित्व दिया गया है। रिपोर्ट में उन लोगों की स्थिति और स्वावलंबन पर अधिक विचार नहीं किया गया है। उनकी स्थिति भी ऐसी नहीं है कि अपनी क्षमता को स्वयं जान सकें। रिपोर्ट में उनकी नामजदगी की संख्या भी ठीक से नहीं सुझाई गई है। रिपोर्ट के 24वे पैरा में दलित जातियों के लिए नामजदगी की सीटों पर बांधी गई सीमा का औचित्य बताया है। उसका कोई आधार नहीं दर्शाया गया है कि यह प्रसंग दलित जातियों का है। समिति ने निम्नलिखित सीटें नामजदगी के लिए प्रस्तावित की हैं।

	कुल सीटें	डीप्रेस्ड क्लासेस की जनसंख्या	कुल सीटें	डीप्रेस्ड क्लासेस के लिए सीटें
	(मिलियनों में)			
मद्रास	39.8	6.3	120	2
बम्बई	19.5	.6	113	1
बंगाल	45.0	9.9	127	1
संयुक्त प्रांत	47.0	10.1	120	1
पंजाब	19.5	1.7	085	–
बिहार एवं उड़ीसा	32.4	9.3	100	1
मध्य प्रांत	12.2	3.7	072	1
असम	12.2	3.7	54	–
कुल	221.4	41.9	791	7

ये आंकड़े अपने आप में स्वतः प्रमाण हैं। इस व्यवस्था में ब्रिटिश भारत की

समस्त जनसंख्या के पांचवे भाग को कुल आठ सौ सीटों में से केवल सात सीटें देने का प्रस्ताव किया गया था। यह सच है कि सभी काउंसिलों में सीटों के तौर पर ऐसे कर्मचारियों का अनुपात एक और 6 का है, जिन्हें दलित जातियों का ध्यान हो सकता है, परंतु हमारे विचार से रिपोर्ट का लक्ष्य जिस सुधार की ओर संकेत करता है, उसके लिए उचित व्यवस्था नहीं की गई है। लेखकों ने बतलाया है कि दलित जातियों को आत्म–संरक्षण की शिक्षा अवश्य दी जानी चाहिए। ऐसी आशा केवल दिवास्वप्न है कि जिस असेम्बली में साठ या सत्तर हिंदू हों वहां किसी एक जाति का अकेला चना भाड़ फोड़ पाएगा। अतः उस समिति रिपोर्ट के पैरा 151, 152, 154 और 155 में प्रतिपादित सिद्धान्तों की अपेक्षाओं की पूर्ति हेतु हमें बहिष्कृत लोगों के प्रति अधिक उदारता बरतनी होगी। हम सोचते हैं कि प्रत्येक कांउसिल में दलित वर्गों के प्रतिनिधि पर्याप्त संख्या में हों, और वे नक्कारखाने में तूती की आवाज बन कर न रह जाएं और कोई प्रतिनिधि सुर में सुर मिला कर बोलने का उत्साह न जुटा पाएं। मद्रास के मामले में हमारी सलाह है कि उन्हें 6 सीटें दी जाएं। बंगाल, यू.पी. और बिहार तथा उड़ीसा में चार–चार सीटें दें। मध्य प्रांत और बंबई में दो–दो और अन्य प्रांतों में एक–एक। इस प्रकार हम समझते हैं कि समिति की रिपोर्ट में संशोधन की स्पष्ट आवश्यकता है।

(3)

सांविधिक आयोग की नियुक्ति पर 30 मार्च 1927 को हाउस आफ लार्ड में भारत–सचिव लार्ड बुर्कनहैड के भाषण से अंश

मुझे दलित वर्ग के मामले पर गौर करना है। भारत में दलित वर्ग एक बड़ा समुदाय है। संख्या की दृष्टि से भी 6 करोड़ दलित हैं। उनकी दुर्दशा जितनी भयावह है, उतनी ही हृदयविदारक भी है, और अतीत में भी ऐसी ही थी। उन्हें सामाजिक व्यवहार से दूर रखा गया है। इस वर्ग के व्यक्ति की यदि उच्च वर्ग के व्यक्ति पर परछाई भी पड़ जाती है, तो उच्च वर्ण के लिए सूर्य का प्रकाश भी अपवित्र हो जाता है। वे सार्वजनिक स्थान से पानी नहीं पी सकते। अपनी प्यास बुझाने के लिए उन्हें मीलों भटकना पड़ता है और उन्हें सैकड़ों पीढ़ियों से अस्पृश्य के नाम से पुकारा जाता है। भारत में वे 6 करोड़ हैं, तो क्या इस आयोग में दलित वर्ग का प्रतिनिधि नहीं होना चाहिए। मेरे विचार से लोकतंत्र में विश्वास रखने वाला कोई भी व्यक्ति, यहां तक कि विरोधी पक्ष के हमारे मित्र भी, दलित वर्ग के प्रतिनिधि से रहित आयोग बनाने का सुझाव नहीं देंगे और मैं तो कभी भी ऐसा आयोग बनाने को तैयार नहीं, जिसमें इस वर्ग का प्रतिनिधि न हो। सचमुच आप ऐसी संयुक्त जूरी बनावें जैसा मैंने कहा।

(4)

साइमन कमीशन रिपोर्ट – भाग दो से अंश

78 – अन्य किसी भी प्रांत में उन दलित जातियों के लोगों की संख्या का आाकलन करना संभव नहीं प्रतीत होता, जो मतदान के सुयोग्य पात्रं हों। यह स्पष्ट है कि मताधिकार का विस्तार दलित जातियों तक करके उनके मतदाताओं की संख्या तो बढ़ जाएगी, परंतु उस बात की कोई गारंटी नहीं है कि सामान्य निर्वाचनक्षेत्रों में उनके अपने प्रतिनिधि चुने जा सकेंगे, जब तक कि इसके लिए कोई व्यवस्था न कर दी जाए। आगे चल कर दलित वर्ग की उन्नति इस बात पर निर्भर करेगी कि अपनी संख्या के आधार पर अन्य वर्गों के लिए वे कहां तक महत्वपूर्ण बन सकते हैं।

× × ×

80 – आप देखेंगे कि हमने दलितवर्ग के लिए उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटों की सिफारिश नहीं की है। आरक्षित प्रतिनिधित्व के प्रस्तावित मापदंड से दलित वर्ग के सदस्यों की संख्या काफी बढ़ जाएगी। व्यापक निर्धनता और अशिक्षा के शिकार इन लोगों के लिए यह संभव नहीं है कि उनमें से सुयोग्य सदस्य तुरंत मिल सकें, बजाए इसके कि उनकी संख्या बढ़ाई जाए। उनकी बड़ी संख्या में वे प्रभावहीन व्यक्ति ऊची जातियों के हिंदुओं के चापलूस होंगे। विभिन्न वर्गों के प्रतिनिधियों के बीच सीटों के पुनर्वितरण का जो प्रयत्न किया जा रहा है, वह स्थाई नहीं हो सकता और पुनरीक्षण का प्रावधान अवश्य होना चाहिए। परंतु हम सोचते हैं कि इस समय हमारा प्रस्ताव पर्याप्त है खासतौर से विभिन्न श्रेणियों के आरक्षण से यह आशय नहीं है कि वे अनारक्षित सीटों पर लिए ही न जाएं।

(5)

साइमन कमीशन द्वारा प्रस्तावित संवैधानिक सुधारों के संबंध में भारत सरकार के पत्र से अंश

35 – *दलित वर्गों का प्रतिनिधित्व* – दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिए कमीशन द्वारा दिए गए सुझावों की प्रांतीय सरकारों द्वारा काफी आलोचना हुई है। प्रत्येक प्रांत के लिए दलित जाति की परिभाषा करने की कठिनाई संभवतः इस वर्ग की नामजदगी की अपेक्षा विशेष प्रतिनिधित्व की योजना में अंतर्निहित है। परंतु कमीशन के प्रस्तावों में इस विशिष्ट संशय के काम को प्रांतीय गवर्नर पर छोड़ दिया गया है कि वह दलित वर्ग के लिए खड़े होने वाले उम्मीदवारों को प्रमाणित करे और उस प्रतिनिधित्व का अनुपात निर्धारित करे। कमीशन में सुझाव है कि प्रांतों के चुनाव क्षेत्र की समस्त जनसंख्या में दलितवर्ग की जनसंख्या

के अनुपात का तीन चौथाई संरक्षण देना अनुचित रूप से अधिक हो सकता है। संयुक्त प्रांत की सरकार ने हिसाब लगाया है कि इस प्रांत में कमीशन के प्रस्ताव के अनुसार प्रांतीय विधानमंडल के लिए इस समुदाय के एकमात्र नामजद सदस्य के स्थान पर कम से कम चालीस सदस्य आएंगे। दलित वर्ग के प्रतिनिधित्व की पूरी समस्या पर मताधिकार समिति को सावधानी से विचार करना है और इस स्तर पर हम केवल यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि हमारे विचार से उन वर्गों के लिए सर्वोत्तम ढंग से उचित प्रतिनिधित्व सुरक्षित किया जाना चाहिए। यद्यपि उसी समुदाय में विचारों में मतभेद है परंतु तब भी हाल ही में दलित वर्गों के संगठनों की जो सभाएं हुई हैं उनमें पृथक निर्वाचन में ही विश्वास व्यक्त किया गया है।

(6)

लोथियन (मताधिकार) समिति 1932 के निदेश–पदों से अंश

3 – आपके मालूम है कि वर्तमान निर्वाचन पद्धति में प्रांतीय काउंसिल में पहुंचने वाले सदस्यों को चुनने के लिए भारतीय प्रांतों की जनसंख्या के तीन प्रतिशत से कम लोगों को मताधिकार प्राप्त है और यह स्पष्ट है कि इस समिति की मताधिकार व्यवस्था में अधिकांश जनता तथा समुदाय के महत्वपूर्ण वर्ग विधानमंडलों में अपने प्रतिनिधि भेजने से वंचित रह जाते हैं। उत्तरदायी संघीय सरकार का सिद्धांत कुछ आरक्षण और सुरक्षाओं के साथ ब्रिटिश सरकार द्वारा स्वीकार कर लिए जाने पर यह तय किया गया है कि गवर्नर शासित प्रांत उत्तरदायी शासित यूनिट बना दिए जाएं, जो अधिकतम संभव स्वतंत्रता का उपभोग कर सकें और बिना किसी बाह्य हस्तक्षेप तथा बिना किसी का सहारा लिए स्वतंत्र रूप से यह आवश्यक है कि चुनाव को इतना विस्तृत किया जाए कि जिन विधानमंडलों को यह उत्तरदायित्व निभाना है, उनमें जनसाधारण द्वारा अपनी आवश्यकताओं तथा विचारों को प्रकट करने से वे वंचित न रह जाएं।

सभा की बैठकों में विभिन्न मुददों पर हुई बहस से स्पष्ट है कि नए संविधान में दलित वर्गों के प्रतिनिधित्व के लिए समुचित प्रबंध किए जाएं तथा प्रतिनिधित्व के लिए नामजदगी की व्यवस्था को बेहतर नही समझा गया है। जैसा कि आपको मालूम है, इस विचार पर मतभेद है कि क्या दलित वर्ग के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली अपनाई जाए और आपकी कमेटी की जांच पड़ताल इस प्रश्न के निर्णय में क्या योगदान करे। मताधिकार द्वारा जिसकी आप सिफारिश करें सामान्य मतदान मे अस्पृश्य कहां तक मताधिकार प्राप्त कर सकेंगे। दूसरी ओर, इस बात पर निर्णय देना है कि दलित वर्ग के लिए पृथक निर्वाचन व्यवस्था कर देने अथवा उन प्रांतो मे जहा वे अधिक सख्या मे है और जनसंख्या का विशिष्ट और पृथक

अंग है आपकी कमेटी मताधिकार का विस्तार उन तक करने की समस्या पर छानबीन करें और वे तथ्य प्रस्तुत करे, जिससे दलित वर्गों के लिए पृथक निर्वाचन के सिद्धांत का मार्ग प्रशस्त हो सकें।

× × ×

(7)

भारत के वायसराय एवं गवर्नर जनरल लार्ड लिनलिथिगो द्वारा दिनांक 17 अक्तूबर, 1939 को जारी किए गए वक्तव्य से अंश

× × ×

यदि ब्रिटिश सरकार यह मान लेती है कि जब भावी संघीय भारत सरकार बनाने की योजना पर विचार किया जाएगा और स्वर्गीय भारत मंत्री द्वारा पार्लियामेंट में दिए गए आश्वासन को, जिसका मैंने अभी उल्लेख किया, कार्यान्वित करने का समय आएगा तो उस समय की परिस्थितियों को देखते हुए इस बात पर पुनर्विचार करना आवश्यक होगा कि 1935 के एक्ट में वर्णित योजना कहां तक उपयुक्त होगी।

इस समय मुझे ब्रिटिश सरकार ने यह कहने के लिए प्राधिकृत किया है कि विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद वे विभिन्न समुदायों के प्रतिनिधियों, भारत की पार्टियों और अन्य वर्गों तथा भारतीय राजाओं के साथ परामर्श करेंगे ताकि वांछनीय संशोधन करने में उनका भी सहयोग प्राप्त किया जा सके।

(8)

भारत सचिव लार्ड जेटलैंड द्वारा हाउस आफ लार्डस में 7 नवंबर, 1939 को जारी किए गए वक्तव्य से अंश

"कांग्रेस ने फिर वही नीति अपनाई है और उस पर कायम है कि भारत में कई प्रजातियां और धार्मिक अल्पसंख्यक हैं और अभी यह प्रश्न अप्रासंगिक है और कांग्रेस का सदैव वह विचार रहा है कि भारतीयों द्वारा स्वयं अपना संविधान निर्माण कर उसके माध्यम से अल्पसंख्यकों के अधिकारों और हितों की सुरक्षा की जाएगी, जो उन्हें स्वीकार्य होंगे।

ब्रिटिश सरकार के लिए इस स्थिति को स्वीकार करना संभव नहीं है। ब्रिटिश सरकार जो बहुत समय से भारत से सम्बद्ध रही है और यह उसका दायित्व है जिससे पिंड छुड़ाना उसके लिए असंभव है और वह यह भी नहीं कर सकती कि भारत के भावी संविधान के स्वरूप में कोई रूचि न ले। सबसे बड़ी बात यह है कि भारत की सभी पार्टियों के प्रतिनिधियों का गवर्नर जनरल से जो विचार विमर्श चल रहा है, निस्संदेह उसका उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि बिट्रिश

सरकार को भारत से अपना प्रभुत्व हटा लेना चाहिए। यह भारतीय जनता के एक बड़े भाग को स्वीकार्य नहीं होगा।

× × ×

(9)

भारत में वायसराय और गवर्नर जनरल, लार्ड लिनलिथगो द्वारा ओरिएंट क्लब, बम्बई में 10 जनवरी, 1940 को दिए गए भाषण से अंश

किसी भी संवैधानिक योजना के निर्धारण में भारत की एकता को बनाए रखने के विचार से हम भारतीय देशी रियासतों को नहीं भूल सकते। यहां के अल्प–संख्यकों के दावों पर भी जोर दिया जा रहा है।

इन अल्पसंख्यकों में से केवल दो का ही नाम लेना पसंद करता हूँ – वे हैं बड़े अल्पसंख्यक मुसलमान और अनुसूचित जातियां, इन अल्पसंख्यकों को पहले भी गारंटियां दी गई हैं ओर स्थिति यह है कि उनके हितों की सुरक्षा की जाए और आगे भी उस गारंटी का आदर किया जाना चाहिए।

× × ×

(10)

श्री एल.एस.एमरी, भारत सचिव द्वारा हाउस आफ कामंस में 14 अगस्त 1940 को दिए गए भाषण से अंश

कांग्रेस नेताओं ने ब्रिटिश भारत में उच्चकोटि की संस्था बनाई है, जिसमें भारत के राजनीतिक तंत्र का संचालन करने के लिए काफी क्षमता है। असल में भारत के राष्ट्रीय जीवन में वह सभी मुख्य तत्वों की ओर से बोलने का दावा करती हैं हालांकि उन्होंने अलग से मांगें रखी हैं, इससे हमारी समस्याएं बहुत बढ़ गई हैं। यह सही है कि संख्या बल से वह भारत की सबसे बड़ी अकेली पार्टी है, परंतु भारत के मिले – जुले समाज में महत्वपूर्ण वर्गों ने उसके दावों का खंडन किया है कि केवल गिनती को ही आधार न माना जाए, वरन् भावी भारतीय राजनीति में उन्हें पृथक संवैधानिक तत्व समझ कर विचार किया जाए। उन प्रमुख वर्गों में मुस्लिम समुदाय सबसे बड़ा समुदाय है। उनका कहना है कि भौगोलिक दृष्टि से बना निर्वाचन क्षेत्रों में बहुमत से निर्वाचन का संविधान सभा द्वारा गठित संविधान से वे सहमत नहीं होंगे। वे संविधान निर्माण संबंधी विचार विमर्श में संख्या बल सिद्धांत पर सहमत नही है और अपना अलग अस्तित्व बनाए रखने का दावा करते हैं। सही बात दूसरे बड़े समुदाय अनुसूचित जातियों पर लागू होती है, जो अनुभव करते हैं कि श्री गांधी के प्रयत्नों के बावजूद हिंदुओं की प्रतिनिधि कांग्रेस से वह अपने को बिल्कुल अलग समझते हैं।"

× × ×

(11)

श्री एल.एस.एमरी, भारत सचिव द्वारा हाउस आफ कामंस में 23 अप्रैल 1941 को दिए गए भाषण से अंश

भारत के भावी संविधान का निर्माण ब्रिटिश सरकार द्वारा नहीं वरन् स्वयं भारतीयों द्वारा किया जाना चाहिए। भारत का भावी संविधान अनिवार्य रूप से भारतीय ही होना चाहिए। वह संविधान भारतीय आवश्यकताओं, उसकी परिस्थितियों तथा उसकी परंपराओं के अनुरूप हो। आवश्यक शर्त केवल यह है कि संविधान स्वयं अपने आप में तथा संविधान निर्मात्री संस्था का गठन भारत के सभी प्रमुख वर्गों की सहमति से होना चाहिए।

× × ×

(12)

भारत के वायसराय एवं गवर्नर जनरल, लार्ड लिनलिथगो द्वारा 8 अगस्त, 1940 को जारी किए गए वक्तव्य से अंश

दो मुख्य मुद्दे उभर कर सामने आए हैं। इन दोनो मुद्दों पर ब्रिटिश सरकार ने मुझे स्थिति स्पष्ट करने का निर्देश दिया है। पहला मुद्दा भावी संवैधानिक स्वरूप में अल्पसंख्यकों की स्थिति से संबंधित है। भारत की शांति और कल्याण के उद्देश्य से ब्रिटिश सरकार अपने वर्तमान दायित्वों को ऐसी शासन व्यवस्था को हस्तांतरित नहीं कर सकती, जिसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन में शक्तिशाली बहुसंख्यक द्वारा अल्पसंख्यकों के अधिकारो को अस्वीकार किया जाए। न ही वे ऐसी सरकार के इन तत्वों के अत्याचारों को सिर झुका कर सहते रहेंगे।

परिशिष्ट 7

अल्पसंख्यक एवं प्रतिनिधित्व

प्रतिनिधित्व के न्यायविरूद्ध वितरण पर मांटेग्यू-चेम्सफोर्ड रिपोर्ट और साइमन कमीशन के विचार

(1)

मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट

भारतीय संवैधानिक सुधारों पर मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट से अंश

× × ×

अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व

163 – यह प्रस्तावित किया जाता है कि महत्वपूर्ण अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व चुनाव द्वारा निश्चित किया जाना चाहिए। इसका संकेत उस चुनाव व्यवस्था से है, जो मुसलमानों से संबंधित है, जिन्हें आम चुनावों में इसी प्रकार मतदान करने की अनुमति नहीं दी गई है जैसा कि उनके अपने चुनावों में। इस प्रकार की सुविधा कुछ अन्य समुदायों को न मिल पाने का उल्लेख किया है। जैसा कि पंजाब में सिक्खों को यह सुविधाएं नहीं दी गई हैं, जो मुसलमानों को मिली है। योजना बनाने वाले लोग भी इससे सहमत थे और उन्होंने विभिन्न प्रांतों में विशेष मुस्लिम चुनाव क्षेत्र आरक्षित करने के लिए सीटों के अनुपात का प्रस्ताव भी प्रस्तुत किया था। हमें यह ज्ञात नहीं हो सका कि समझौता वार्ता के बिना किस आधार पर सीटों की संख्या ज्ञात की गई। सभी प्रांतों में यहां तक कि मुस्लिम बहुल क्षेत्रों में भी पृथक निर्वाचन सिद्धांत का प्रस्ताव किया गया है और जहां भी उनकी संख्या कम है, उनकी संख्या से अधिक मौजूदा प्रतिनिधित्व के अनुपात से बढ़कर सीटें देने की सलाह दी गई है। साथ ही लगभग सभी मुस्लिम संगठनों ने इस बात पर जोर दिया कि अनुपात और बढ़ाया जाए। इस पर एतराज हो सकता है कि अब इसके बाद यदि अन्य कोई समुदाय पृथक प्रतिनिधित्व की मांग करता है, तब उसे गैर–मुस्लिम सीटों से कटौती करके ही दिया जा सकता है और हिंदुओं तथा मुसलमानों के विचारों में इस बात की सहमति की संभावना नहीं है कि कौन सी प्रक्रिया अपनाई जाए। इसलिए हम अपनी पर्याप्त व्याख्या के अनुसार मुसलमानों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व बनाए रखने पर अपनी अनुमति सुरक्षित रखते हैं, जबकि हम यह निश्चित न कर लें कि इसका अन्य पर क्या परिणाम होगा। हम योजना बनाने वालों की इस बात से सहमत हैं कि मुसलमानों को उनके अपने विशेष चुनाव क्षेत्रों में

तथा सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों दोनों में मतदान करने का अधिकार नहीं होना चाहिए और हम मुस्लिम लीग की इस सहमति का स्वागत करते हैं कि मौजूदा व्यवस्था का पुनरीक्षण किया जाए।"

(2)

भारतीय सांविधिक आयोग की रिपोर्ट खंड दो से अंश

मुस्लिम सीटों की संख्या

85 – अब हम विभिन्न प्रांतीय कांउसिलों में मुस्लिम सदस्यों को सीटों के अनुपात के प्रश्न पर विचार करेंगे।

जैसा कि हम पहले ही कह चुके हैं, लखनऊ पैक्ट में हिंदुओं और मुसलमानों के उस सुलहनामे को शामिल किया गया है, जिसके अनुसार प्रत्येक प्रांत में मुस्लिम संप्रदाय के लिए निर्वाचित सीटों का अनुपात स्वीकार किया गया है और उसकी शर्तें वही होंगी, जो वर्तमान प्रांतीय विधामंडलों में लागू हैं। उस समझौते को दोनों पक्षों ने ही स्वीकार नहीं किया, क्योंकि वे प्रतिनिधित्व का आधार निष्पक्ष रखना चाहते है और उनकी जो विरोधी भावनाएं उभर कर सामने आई हैं, उसका ऊपर पैराग्राफ 70 में उल्लेख किया गया है। यह आशा की जाती है कि दोनों समुदाय स्वयं किसी पारस्परिक समझौते पर पहुंचने के लिए नए सिरे से प्रयत्न करेंगे। परंतु उन दोनों में समझौता न होने तक यह मान कर कि पृथक निर्वाचन का सिद्धांत ही बरकरार रहना चाहिए, दूसरों को इसका निर्णय लेना पडेगा। हमारा अपना विचार है कि 8[1] में से 6 प्रांतों में मुसलमान अल्पसंख्यकों की मौजूदा स्थिति के विचार से और उन 6 प्रांतों में अल्प–संख्यक मुसलमानों की कमजोर स्थिति के कारण उनके हितों को ध्यान में रख कर वहां मुसलमानों के पक्ष में प्रतिनिधित्व की वर्तमान स्थिति को बहाल रखा जाएगा। इस प्रकार वहां सामान्य निर्वाचनों द्वारा (यूरोपियन सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों को छोड़कर) भरी जाने वाली सीटों का अनुपात अभी की तरह निश्चित किया जाएगा। परंतु इससे बढ़ कर मुस्लिम प्रतिनिधित्व की गांरटी का दावा किया गया है, जो ऊपर पैराग्राफ 70 में मुसलमानों को अब जो प्रतिनिधित्व दिया जाता है, उस प्रतिनिधित्व की पूरी सुरक्षा का दावा किया जाने लगा है और साथ–साथ यह भी दावा किया जाने लगा है कि बंगाल और पंजाब में जनसंख्या के आधार पर सीटों का अनुपात उनके लिए सुरक्षित किया गया है। अब पृथक निर्वाचन द्वारा उनकी जनसंख्या के अनुपात में सीटों की संख्या बढ़ाई जाए। इससे इन दोनों प्रांतों में सामान्य निर्वाचन क्षेत्रों में उनका निश्चित और अपरिवर्तनीय बहुमत निश्चित हो जाएगा।

---

1. बर्मा शामिल नहीं है।

हम अभी इस हद तक नहीं जा सकते। दोनों समुदायों के बीच कोई और आम सहमति न होने तक इन 6 प्रांतों में समानता पर बंगाल और पंजाब के मौजूदा निर्धारण को मिला कर देखने से बराबरी आ जाएगी।

मुसलमानों को 6 प्रांतों में, जो लाभ प्राप्त है, उन्हे जारी रखना गलत सिद्ध होगा। पंजाब में मुसलमानों को सिखों और हिंदुओं का विरोध होने पर भी बहुमत मिलेगा और बंगाल में तो वे बिना प्रचार ही जीत जाएंगे। दूसरी ओर यदि पारस्परिक सहमति से बंगाल में पृथक निर्वाचन समाप्त भी कर दिया जाए ताकि उस प्रांत में प्रत्येक समुदाय इतनी सीटें पा सकें जितनी कि जो उन्हें संयुक्त चुनाव में चुनाव प्रचार से मिल जाएं, तो उन 6 प्रांतों में जहां मुसलमान अल्पसंख्यक हैं, उन्हें अपनी मौजूदा स्थिति बनाए रखने से वंचित नहीं किया जा सकता था। इसी प्रकार पंजाब में यदि मुसलमान, सिख और हिंदू तीनों समुदाय संयुक्त निर्वाचन के लिए तैयार हो जाते और इस प्रकार मुसलमानों को जो सीटें मिलती उन्हें जोड़ कर 6 प्रांतों में उसी अनुपात में सीटें देने पर विचार कर सकते हैं, जितनी उन्हें पृथक निर्वाचन से मिल जातीं।

हमारी यह अंतिम सलाह है, जिसमें वास्तव में दो मांगों में से जो मांग मुसलमान अपने हित में ठीक समझें अपनाएं क्योंकि हम ईमानदारी के तौर पर पृथक निर्वाचन समाप्त करना चाहते हैं और व्यावहारिक रूप में दूसरी ही व्यवस्था चाहते हैं।

परिशिष्ट - आठ

क्रिप्स प्रस्ताव

भारतीय नेताओं से वार्तालाप के लिए घोषणा का प्रारूप

भारत के दौरे पर आए सर स्टैफर्ड क्रिप्स द्वारा भारतीय नेताओं से वार्तालाप के आधार पर ब्रिटेन सरकार के युद्धकालीन मंत्रिमंडल ने इस प्रश्न पर जो निष्कर्ष निकाला है, उनके सुझावों को स्वीकार किया जाए या नहीं यह उनके उसी वार्तालाप पर आधारित होगा।

ब्रिटिश सरकार द्वारा इस देश के लोगों और भारतीयों की भावनाओं पर विचार करने के उपरांत तथा भावी भारत के संबंध में किए गए वादों को पूरा करने के लिए बहुत ही स्पष्ट और ठोस आधार पर ऐसे कदम उठाए जाएं, जिनसे भारत में स्वायत्त शासन की स्थापना यथाशीघ्र की जा सके। हमारा उद्देश्य ऐसे नवीन संघीय भारत की स्थापना करना है जिसका युनाइटेड किंगडम से स्वतंत्र उपनिवेश का संबंध रहेगा और अन्य अधिराज्यों के समान सम्राट के प्रति उनकी सभी अर्थों में समान रूप से राजभक्ति बनी रहेगी और अपने आंतरिक तथा विदेशी मामलों में किसी भी प्रकार के हमारे आधिपत्य में नहीं रहेंगे।

इसलिए ब्रिटिश सरकार निम्नलिखित प्रकार की घोषणा करती है :–

(अ) विश्व युद्ध समाप्त होने के बाद शीघ्र ही भारतवर्ष के लिए नए संविधान का निर्माण करने के लिए एक निर्वाचित संस्था का गठन किया जाएगा।

(ब) जैसा कि नीचे उद्धृत किया गया है, इस व्यवस्था में भारतीय राज्यों को भी संविधान निर्मात्री संस्था में शामिल किया जाएगा।

(स) ब्रिटिश सरकार वायदा करती है कि वह संविधान को स्वीकार करेगी और वह निम्नांकित शर्तों के आधार पर बनाया जाए :–

(1) ब्रिटिश भारत का कोई प्रांत जो नए संविधान को स्वीकार करने के लिए तैयार न होकर, अपनी मौजूदा संवैधानिक स्थिति कायम रखना चाहे, तो उसमें उसके निर्णयानुसार बाद में विलय की व्यवस्था होनी चाहिए। अपना संघ में विलय न करने वाले ऐसे प्रांतों के विषय में ब्रिटिश सरकार द्वारा नए संविधान में भारतीय संघ से अन्य प्रांतों को समान दर्जा दिया जाए।

(2) ब्रिटिश सरकार और संविधान निर्मात्री संस्था के मध्य समझौते के तौर पर हस्ताक्षर हों। इस संधि से ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों के हाथ में पूर्ण सत्ता सौंपने से संबंधित उठने वाली सभी समस्याओं का निदान होगा, वंशानुगत धार्मिक समुदायों और अल्प संख्यकों की सुरक्षा के लिए ब्रिटिश सरकार द्वारा किए गए वायदों के अनुसार संधि में प्रावधान किया जाएगा परंतु भारतीय संघ की शक्तियों की शर्त में भविष्य में राष्ट्र कुल के अन्य सदस्य देशों के बारे में कोई शर्त नहीं होगी। इस विषय में वह स्वयं फैसला करें।

कोई भारतीय राज्य संविधान को स्वीकार करे या न करे नई परिस्थिति में उससे हुई संधि का पुनरीक्षण करने की आवश्यकता पड़ेगी।

(द) विश्व युद्ध समाप्त होने से पहले प्रमुख समुदायों के भारतीय नेता अन्य किसी प्रकार की व्यवस्था पर जब तक सहमत नहीं हो जाते संविधान निर्मात्री संस्था निम्न प्रकार की होगी :—

प्रांतीय चुनावों के परिणाम मालूम होने के तुरंत बाद प्रांतीय विधानमंडलों के निचले सदन की पूरी सदस्यता एकल हस्तांतरणीय मतदाता मंडल की प्रणाली से समानुपातिक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था द्वारा संविधान निर्मात्री सभा का चुनाव करेगी। इस नई संस्था में सदस्यों की संख्या मतदाता मंडल की संख्या का 1/10 भाग होगी।

भारतीय राज्यों को उनकी संपूर्ण जनसंख्या के अनुपात में अपने प्रतिनिधि भेजने के लिए निमंत्रित किया जाएगा, जैसा कि ब्रिटिश भारत के संपूर्ण प्रतिनिधि को है और उन्हें वही अधिकार प्राप्त होंगे, जो ब्रिटिश भारतीय सदस्यों को प्राप्त होंगे।

(ई) ऐसे कठिनाई के समय में जैसा कि अभी भारत में है और जब तक कि भारत का नया संविधान नहीं बन जाता, ब्रिटिश सरकार के लिए आवश्यक हो जाता है कि देश के शासन और भारत की सुरक्षा और नियंत्रण रखने के उत्तरदायितव का वहन करें और भारत के सैनिक और भौतिक संस्थानों का उत्तरदायित्व भारतवासियों के सहयोग से भारत सरकार वहन करे और भारत के प्रमुख वर्गों के नेताओं, जो कि सभी काउंसिलों में प्रतिनिधियों के रूप में हैं, उन्हें ब्रिटिश सरकार राष्ट्रकुल और संयुक्त राष्ट्र में भाग लेने के लिए निमंत्रण देती है। इस प्रकार वे भावी स्वतंत्र भारत की मूलभूत आवश्यकताओं तथा समस्याओं को हल करने के योग्य हो सकेंगे।

परिशिष्ट - 9

क्रिप्स प्रस्तावों का विरोध

क्रिप्स प्रस्तावों के अस्पृश्यों पर प्रभाव के विषय में डा. बी.आर. अम्बेडकर का बयान -

युद्धकालीन मंत्रिमंडल के प्रस्तावों से अचानक ब्रिटिश सरकार की मंशा स्पष्ट हो जाती है। ये प्रस्ताव वही है, जिनकी ब्रिटिश सरकार ने कभी अल्पसंख्यक अधिकारों का अतिक्रमण बता कर निंदा की थी। यह म्यूनिक भावना है, जिसका सारतत्व है, एक की बलि चढ़ाकर दूसरे को जीवन दान देना। यह वही भावना है, जों अब प्रस्ताव के रूप में लिपिबद्ध होकर आई है। ऐसी सूचना मिली है कि अमरीका और अंग्रेज लोग भारतीय लोगों से क्षुब्ध हैं, जिससे वे भारत की संवैधानिक प्रगति से संबंधित ब्रिटिश सरकार के प्रस्तावों को पसंद नहीं करते और सर स्टेफर्ड क्रिप्स के मिशन को विफल करना चाहते हैं। अमरीकी लोगों का रूख तो समझ में भी आता है, परंतु अंग्रेज लोग और सर स्टेफर्ड क्रिप्स तो सारी स्थितियों को अच्छी तरह जानते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि यह भलीभंति नहीं सोचा गया है कि वे प्रस्ताव, जो अब ब्रिटिश सरकार की ओर से आए हैं, वही हैं जिन्हें कुछ ही महीने पहले ब्रिटिश सरकार ने बिल्कुल व्यर्थ कह कर निंदा ही नहीं की वरन् अस्वीकार कर चुकी है। जिन्हें इसका अहसास है वे इन्हें संवैधानिक प्रगति का सबसे बदसूरत रूप ही कहेंगे, जिन्हें ब्रिटिश सरकार ने पूर्व घोषणाओं के विपरीत अचानक बदल दिया है। प्रस्ताव तीन भागों में विभाजित किए जा सकते हैं। (1) एक संविधान सभा बनती है, जिसे भारत के लिए संविधान बनाने का अधिकार प्राप्त होगा। इस सभा को पूरा अधिकार होगा कि बहुमत से, जो निश्चित करे उसी के अनुसार संविधान बनेगा। (2) नया संविधान भारत के सभी वर्तमान प्रांतों के लिए नहीं होगा, बल्कि केवल ऐसे प्रांतों के लिए होगा, जो इसे अपनाना चाहेंगे। इसलिए प्रांतों को यह छूट दी गई है कि वे नए संविधान में शामिल हों अथवा उससे बाहर रहें। यह जनमतसंग्रह पर छोड़ दिया गया है, इससे साधारण बहुमत का फैसला मान्य होगा। (3) संविधान सभा को ब्रिटिश सरकार से एक संधि करनी पडेगी। संधि में प्रांतीय धार्मिक अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए प्रावधान किए जाने हैं। ऐसे समझौते पर हस्ताक्षर हो जाने के बाद ब्रिटिश सरकार की प्रभुसत्ता समाप्त हो जाएगी और संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान लागू हो जाएगा।

संक्षेप में ब्रिटिश सरकार की यह योजना है।

संविधान सभा के संबंध में किया गया प्रस्ताव नया प्रस्ताव नहीं है। विश्व युद्ध आरंभ होने पर ऐसा प्रस्ताव लाया गया था। महत्वपूर्ण बात यह है कि ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस के उस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया था। संविधान सभा के संबंध में हाउस आफ कामंस में 14 अगस्त 1940 को लार्ड एमेरी ने कहा था :–

> "कांग्रेस नेताओं ने एक अच्छे ढंग का संगठन बना लिया है, जिसमें भारत के राजनीतिक तंत्र का संचालन करने की काफी क्षमता है। असल में भारत के राष्ट्रीय जीवन में जैसाकि कांग्रेस सभी मुख्य तत्वों की ओर से बोलने का दावा करती है और उन्होंने अलग से मांगें रखी हैं, इससे हमारी समस्याएं बहुत बढ़ जाती हैं। यह सही है कि संख्या–बल से वह भारत की अकेली सबसे बड़ी पार्टी है, परंतु भारत के मिले–जुले समाज में महत्वपूर्ण वर्गों ने उसके दावों का खंडन किया है। केवल गिनती के आधार पर ही उन्हें अल्पसंख्यक न माना जाए, वरन् भावी भारतीय राजनीति में उन्हें पृथक संवैधानिक तत्व समझ कर विचार किया जाए। उन प्रमुख वर्गो में मुस्लिम समुदाय सबसे बड़ा समुदाय है। उनका कहना है कि भौगोलिक दृष्टि से बने निर्वाचन क्षेत्रों में बहुमत से निर्वाचित संविधान सभा द्वारा गठित संविधान से सहमत नहीं होंगे। वे संविधान निर्माण संबंधी विचार विमर्श में संख्या–बल सिद्धांत पर सहमत नहीं हैं और अपना अलग अस्तित्व बनाए रखने का दावा करते हैं। यही बात दूसरे बड़े समुदाय अनुसूचित जातियों पर लागू होती हैं, जो अनुभव करते है कि श्री गांधी प्रयत्नों के बावजूद हिंदुओं की प्रतिनिधि कांग्रेस से अपने को अलग समझते हैं।

भारत के वायसराय द्वारा 8 अगस्त 1940 को ब्रिटिश सरकार की ओर से अल्पसंख्यकों के लिए की गई निम्नलिखित घोषणा को और स्पष्ट करते हुए लार्ड एमेरी ने निम्नलिखित घोषणा जारी की थी :–

> "दो मुख्य मुद्दे उभर कर सामने आए हैं। इन दो मुद्दों पर ब्रिटिश सरकार ने मुझे स्थिति स्पष्ट करने का निर्देश दिया है। पहला मुद्दा भावी संवैधानिक भारत की शांति और कल्याण के लिए अपने वर्तमान उत्तरदायित्वों को ऐसी शासन व्यवस्था का हस्तांतरित नहीं कर सकता, जिसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन में शक्तिशाली बहुसंख्यक द्वारा अल्पसंख्यकों के अधिकारों को अस्वीकार किया जा सके। ऐसी सरकार में वे तत्व अपने को सम्मिलित नहीं करेंगे।"

दुबारा 23 अप्रैल 1941 को श्री एमेरी ने संविधान सभा की मांग के संदर्भ में निम्नलिखित बयान जारी किया :–

> "भारत के भावी संविधान का निर्माण ब्रिटिश सरकार द्वारा न करके भारतीयों को अपने आप करना चाहिए। भारत का भावी संविधान आवश्यक और मूल रूप से भारतीय संविधान होना चाहिए जो भारतीय स्थितियों और भारत के लोगों की आवश्यकताओं के अनुसार बनाया जाना चाहिए। केवल आवश्यक शर्त यह है कि सविधान अपने आप में और संविधान सभा, जो इसका निर्माण करे उसमें भारत के राष्ट्रीय जीवन के सभी मुख्य वर्गों की आम सहमति के लोग हों।"

संविधान सभा के संबंध में ब्रिटिश सरकार की ओर से ऐसे संकल्प प्रस्तुत किए गए थे, जो अब मान लिए गए हैं। पाकिस्तान की मांग मुस्लिम लीग द्वारा पेश की गई थी। ब्रिटिश सरकार ने उस मांग को भी अस्वीकार कर दिया था। इस के संबंध में लार्ड एमेरी ने हाउस आफ कामंस में 1 अगस्त 1940 को कहा था :–

> "जिसे कांग्रेस राज्य अथवा हिंदू राज्य कहा जाता है, उससे संभावित खतरे की प्रतिक्रिया में मुसलमानों की ओर से पाकिस्तान की मांग करना हिंदू और मुस्लिम राज्यों के लिए अलग–अलग राज्य करके भारत को तोडना होगा। मैं आज ऐसी पेचीदा स्थिति पर कुछ नहीं कह सकता। ऐसी योजना पर मेरी कठोर आपत्तियां हैं और अतिवादी स्वरूप से मैं सहमत नहीं। मेरी टिप्पणी है कि स्थाई अल्पसंख्यकों की समस्या का हल किए बिना उसे सीमित क्षेत्र में धकेलना होगा।"

दुबारा 23 अप्रैल 1941 को हाउस आफ कामंस में उन्होंने अपने भाषण में इसका फिर जिक्र किया और निम्नलिखित विचार रखे :–

> "मैं अभी तथाकथित पाकिस्तान योजना के मार्ग में आने वाली भारी और व्यावहारिक कठिनाइयों के विषय में कुछ नहीं कहना चाहता और न भारतीय इतिहास की 18वीं शताब्दी के दुर्भाग्यपूर्ण इतिहास की ओर वापस जाने की आवश्यकता समझता हूं। देशों का दुखद अनुभव आज हमारी आंखों के सामने है, इसमें भारत की मूलभूत एकता टूटने के भयानक खतरे छिपे हुए हैं। यह सब होते हुए भी भारत में ब्रिटिश सरकार ने एकता पैदा की जिस पर हमें गर्व है।"

संविधान सभा और पाकिस्तान के संबंध में केवल एक वर्ष पहले ब्रिटिश सरकार के ये विचार थे।

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि संविधान सभा का प्रस्ताव कांग्रेस का हृदय जीतने के विचार से लाया गया है जबकि पाकिस्तान का प्रस्ताव मुस्लिम लीग को खुश रखने वाला प्रस्ताव है। परंतु ये प्रस्ताव दलित वर्ग के विषय में क्या कहता है? संक्षेप में, इनके हाथों में हथकड़ी और पांवों में बेड़ी डाल कर उन्हें हिंदुओं को सौप दिया गया है। वे हिंदू उन्हें कुछ नहीं देगे – रोटी के बदले पत्थर मारेंगे, क्योंकि संविधान सभा का गठन दलित वर्ग के साथ विश्वासघात के सिवाय और कुछ नहीं है। इसमें कुछ संदेह नहीं कि संविधान सभा में दलितों की क्या स्थिति होगी और संविधान सभा में राजनीतिक कार्यक्रम क्या होंगे? संविधान सभा में दलित का कुछ भी प्रतिनिधित्व नहीं होगा, क्योंकि इस प्रस्ताव में सांप्रदायिक कोटा निश्चित नहीं किया गया है। यदि उसमें हमारे कुछ प्रतिनिधि लिए भी जाते हैं, तो वे स्वतंत्र होंगे और न उनका स्वतंत्र निर्णायक मत होगा। पहली बात तो यह कि दलित वर्ग के प्रतिनिधि वहां निस्सहाय अल्पसंयक के तौर पर होंगे। दूसरी बात यह कि संविधान सभा के सभी निर्णयों में सर्वसम्मति की आवश्यकता नहीं समझी जाएगी। किसी भी समस्या को हल करने के लिए बहुसंख्यक दल का बहुमत काफी है। उसका संवैधानिक महत्व कुछ भी हो इसका कोई महत्व नही। स्पष्ट है कि इस व्यवस्था से संविधान सभा में दलित वर्ग की कोई सुनवाई नहीं होगी। तीसरी बात यह कि ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव के आधार पर समानुपात की वर्तमान व्यवस्था, जिसके द्वारा संविधान सभा के सदस्यों का चुनाव होना है। इसके आधार पर सवर्ण हिंदुओं का वास्तविक अधिकार होगा कि वे दलितों के प्रतिनिधियों को नामित करें। वे प्रतिनिधि सवर्ण हिंदुओं के पिट्ठू होंगे। चौथी बात यह कि संविधान सभा ऐसे कांग्रेसियों द्वारा भरी जाएगी, जो बहुमत से अपने कार्यक्रम लागू करेंगे। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्री गांधी द्वारा दलितों के सामाजिक उत्थान के लिए किए गए प्रयत्नों के बारे में चाहे कुछ भी क्यों न कहा जाए, संविधान में दलितों के लिए भारत के राष्ट्रीय जीवन में पृथक अस्तित्व देने जैसे किसी भी प्रकार की राजनीतिक मान्यता देने के सर्वथा विरूद्ध है। ऐसा होने से संविधान सभा में बहुसंख्यक दल अपने बहुमत से अस्पृश्यों के उन सभी संरक्षणों पर पानी फेर देगा, जो उन्हें वर्तमान संविधान में प्राप्त है। जो भी व्यक्ति संविधान सभा की इन बातों को समझेगा वह यह स्वीकार करेगा कि ब्रिटिश सरकार के इन प्रस्तावों में दलित वर्ग के लोगों को भेड़ियों के सामने फेंक दिया गया है। यह कहा जा सकता है कि संविधान सभा दलितों का संवैधानिक संरक्षण का अधिकार देने से इंकार करेगी, उसके लिए ब्रिटिश सरकार ने संविधान सभा में संधि की व्यवस्था रखी है उसका उद्देश्य दलितों के हितों का ध्यान रखना है। समझौते के इस प्रस्ताव से यह स्पष्ट नहीं होता कि संधि में ब्रिटिश सरकार ने किस प्रकार के संरक्षण को समझौते में शामिल करने का निश्चय किया है। यह महत्वपूर्ण विषय है, क्योंकि प्रस्ताव को लेकर ब्रिटिश सरकार और दलितों के बीच मतभेद हो सकते

हैं कि नए संविधान में उनके संरक्षणों की क्या प्रकृति होगी, कितनी मात्रा और क्या उपाय होंगे? समझौते के विषय में दूसरा और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि समझौते के पीछे कितनी बाध्यता होगी? क्या संविधान सभा द्वारा निर्मित संविधान एक अंग के रूप में होगा? जिसमें इस प्रकार का कोई प्रावधान होगा कि जो प्रावधान संधि के विरूद्ध होंगे, उन्हें रदद किया जा सके? क्या यह संधि दो सरकारों, भारतीय राष्ट्रीय सरकार और ब्रिटिश सरकार के मध्य केवल संधि समझी जाएगी? यदि समझौता उपरोक्त पहली शर्त के अनुसार होता है, तो वह देश के कानून के रूप में होगा और उस पर भारत सरकार की वैधानिक बाध्यता होगी। यदि यह संधि दूसरी शर्त पर होती है तो यह देश का कानून होगा। वह स्वीकृति राजनीतिक बाध्यता होगी। तब वह संधि राष्ट्रीय सरकार द्वारा निर्मित संविधान को ऐसे प्रावधान का उल्लंघन नहीं कर सकती, क्योंकि ऐसी ही बात स्वतंत्र आयरिश के बारे में है, जो एक अधिराज्य नहीं है। इस संधि की बाध्यता राजनीतिक बाध्यता ही होगी। यह स्पष्ट है कि ऐसी बाध्यता का प्रयोग इस पर निर्भर करता है कि सरकार किस प्रकार की होगी और लोकमत कैसा होगा। इस तथ्य पर विचार करने से दो प्रश्न उठते हैं : (1) संधि की शर्तों को लागू करने के लिए ब्रिटिश सरकार के पास कौन से करार होंगे? (2) क्या ब्रिटिश सरकार अपने उन संसाधनों से भारतीय राष्ट्रीय सरकार को संधि से बांधे रख सकेगी? पहले प्रश्न का उत्तर यह है कि इसके दो उपाय होंगे, युद्ध या व्यापारिक युद्ध। जहां तक सैनिक शक्ति के साधन का प्रयोग करने की बात है, ब्रिटिश सरकार को तब भारतीय सेना उपलब्ध नहीं होगी। वह पूर्णतया भारतीय राष्ट्रीय सरकार को हस्तांतरित कर उसके नियंत्रण में कर दी जाएगी। इसलिए समझौते को लागू करने के लिए ब्रिटिश सरकार के पास यह साधन भी नही रह जाएगा। यह असंभव है कि ब्रिटिश सरकार समझौते को लागू करने के लिए भारतीय राष्ट्रीय सरकार को विवश करने के लिए अपनी सेना भेजेगी। व्यापार युद्ध छेड़ना संभव नहीं है। यह आत्मघाती नीति है और आयरिश फ्री स्टेट के साथ भूसंपत्ति की वसूली को लेकर हुई लड़ाई के अनुभव से स्पष्ट है कि वणिकों का देश इस पर अपनी स्वीकृति नहीं दे सकता, चाहे वह उन्हीं के हित में क्यों न हो? इसलिए संधि एक बेजान फार्मूला बन जाएगी। ब्रिटिश सरकार ने ये प्रस्ताव यह समझ कर भेजे हैं कि भारतवासी इन प्रस्तावों का स्वागत करेंगे। परंतु न तो ब्रिटिश सरकार और न सर स्टैफोर्ड क्रिप्स के पास इसका स्पष्टीकरण है कि वे इस प्रकार के प्रस्ताव को क्यों भेज रहे हैं, जिनकी भर्त्सना करते हुए कुछ ही महीने पहले उन्होंने रद्द कर दिया था। एक वर्ष पहले ब्रिटिश सरकार ने कहा था कि वे संविधान सभा की स्वीकृति नहीं देंगे क्योंकि वे अल्पसंख्यकों के लिए पीड़ादायक होगी। अब वही ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों को दबाने और संविधान सभा की स्वीकृति देने के लिए तैयार हो गई है। एक वर्ष पहले ब्रिटिश सरकार ने कहा था कि वे पाकिस्तान

बनने की अनुमति नहीं देंगे, क्योंकि ऐसा करना भारत को टुकड़ों में बांट देना होगा। आज वे भारत का विभाजन करने के लिए तैयार हो गए हैं। महान ब्रिटिश साम्राज्य ने कैसे विवेक खो दिया है। उनका स्पष्टीकरण केवल इतना ही है कि युद्ध के फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार घबरा कर ऐसा कर रही है। वे प्रस्ताव गफलत के परिणामस्वरूप लाए गए हैं। कितना बड़ा आतंक है जिसने ब्रिटिश सरकार को झकझोर दिया। इसी से स्पष्ट होता है कि कांग्रेस और मुस्लिम लीग की मांगें क्या हैं और उन्हें इन प्रस्तावों के जरिए क्या सुविधाएं दी गई हैं? कांग्रेस की मांग थी कि संविधान सभा केवल बहुसंख्यक मत के आधार पर संविधान का निर्माण करे। दूसरी ओर जब वायसराय ने घोषणा की कि ब्रिटिश सरकार अल्पसंख्यकों को कांग्रेस के उत्पीड़न की भागीदार नहीं बन सकती। सभी वर्गों में कांग्रेस कार्य समिति में 22 अगस्त 1940 की बैठक में निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया था:–

> "समिति इस बात पर खेद प्रकट करती है कि यद्यपि कांग्रेस ने किसी अल्पसंख्यक समाज को कभी भी उत्पीड़ित करने की बात नहीं सोची और न ब्रिटिश सरकार से इसके संबंध में कुछ कहा, उसकी निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा संविधान सभा के माध्यम से बनने वाले संविधान की मांग की गलत व्याख्या करके अल्पसंख्यकों के उत्पीड़न का मुद्दा उठा कर भारतीयों की प्रगति में रोड़ा अटकाया है।"

कार्य समिति ने इसके साथ और जोड़ दिया :–

> "कांग्रेस ने प्रस्ताव किया है कि संबंधित अल्पसंख्यक समुदाय के हितों की पूरी रक्षा की जाएगी और इसके सम्बद्ध अल्पसंख्यक प्रतिनिधियों से समझौता किया जाएगा।"

इससे स्पष्ट है कि कांग्रेस ने भी ऐसी मांग नहीं की थी कि अल्पसख्यकों के अधिकारों का फैसला संविधान सभा के कार्यक्षेत्र में शामिल किया जाए। तब भी ब्रिटिश सरकार ने केवल साधारण बहुमत के आधार पर इन अल्पसंख्यक के अधिकारों पर निर्णय देने का अतिरिक्त अधिकार दिया। पाकिस्तान के संबंध में भी इसी प्रकार का रूख स्पष्ट होता है। मुस्लिम लीग ने यह मांग नहीं की थी, कि पाकिस्तान की मांग फौरन मान ही ली जाए। मुस्लिम लीग ने जो मांग की थी, वह इतनी ही थी कि संविधान का अगला पुनरीक्षण करते समय मुसलमानों को पाकिस्तान का प्रश्न उठाने से रोका न जाए। वर्तमान प्रस्ताव इससे भी एक कदम ओर आगे बढ गए और मुस्लिम लीग को पाकिस्तान बनाने का अधिकार दे डाला। वे संवैधानिक प्रस्ताव हैं। इन प्रस्तावों की मंशा है कि भारत में गृह युद्ध छिड़े, जिसमें हिंदू, मुसलमान, सिख और दलित लोग दिल खोल कर भाग लें। फिर भी सर स्टैफोर्ड क्रिप्स ने ब्रिटिश सरकार से राय ली अथवा बिना राय

लिए बहुसंख्यक दलों तथा अल्पसंख्यक दलों में इस प्रकार का मतभेद उत्पन्न कर दिया है। बहुसंख्यक दल वे हैं, जिनकी सलाह लेना आवश्यक है। अल्पसंख्यक दल वे हैं, जिनकी सलाह के अवसर समाप्त कर दिए गए। यह नया पक्षपात है। अभी तक किसी पूर्व घोषणा में ब्रिटिश सरकार अथवा वायसराय ने ऐसा नहीं किया। अब तक की घोषणाओं में यही कहा गया था कि राष्ट्रीय जीवन में प्रमुख दलों की सलाह ली जाए।

जहां तक दलित वर्गों का संबंध है, मुझे नहीं मालूम कि किसी भी घोषणा में दलित वर्ग को मुसलमानों की अपेक्षा निचला दर्जा दिया गया हो। उदाहरणार्थ मैं वायसराय द्वारा 10 जनवरी, 1941 को बम्बई में दिए गए भाषण से निम्नलिखित उद्धरण प्रस्तुत करता हूं, जिससे स्पष्ट हो जाएगा कि दलितवर्ग और मुसलमानों को एक सा दर्जा दिया गया है :

> "अल्पसंख्यकों के दावे बराबर जारी हैं। उनमें से मुझे केवल दो अल्पसंख्यक दलों का उल्लेख करना है। वे दो बड़े अल्पसंख्यक हैं, मुसलमान और अनुसूचित जातियों के लोग – अल्पसंख्यकों को पहले भी गारंटियां दी जा चुकी हैं, सही बात तो यह कि उनकी सुरक्षा की गारंटी दी जाए और उन गारंटियों को बनाए रखा जाए।"

यह द्वेषात्मक पक्षपातमूलक प्रस्ताव, जो अब लाया गया उन अल्पसंख्यकों के साथ विश्वासघात का द्योतक है, जिनकी स्थिति इस पक्षपात से निचले दर्जे की हो गई है। संवैधानिक दृष्टि से इससे देश में शासन के प्रति अलगाव और बेवफाई फैलना अवश्यंभावी है। अब ब्रिटिश सरकार को इस पर विचार करना है कि इस प्रयत्न से उन लोगों की मित्रता पर विजय पाना है, जो पहले से ही किसी के हो चुके हैं। ऐसा करके वे अपने वास्तविक मित्रों को खो देंगे। इन प्रस्तावों से ब्रिटिश सरकार तोताचश्म दिखाई पड़ती है। जिन प्रस्तावों की वह निंदा कर चुकी है और उन्हें अल्पसंख्यक अधिकारों के लिए आक्रामक बना चुकी है, अब उन्हीं को पेश करना यह प्रकट करता है कि उसने शक्तिसंपन्न के आगे घुटने टेक दिए हैं। यह म्यूनिक भावना है जिसका भावार्थ है अपने बचाव में दूसरे की बलि दे देना। यदि ब्रिटिश सरकार सत्य और न्याय के लिए नहीं लड़ सकती और अपने वचन का पालन नहीं कर सकती, तो अधिक अच्छा होगा कि चुप लगा जाए। इससे कम से कम वे अपना सम्मान तो बचा लेंगे।

परिशिष्ट - 10

लार्ड वेवल और श्री गांधी के मध्य पत्र-व्यवहार - 1944

1 – 15 जुलाई 1944 को श्री गांधी की ओर से वायसराय को लिखा गया पत्र

" प्रिय मित्र,

मैंने न्यूज क्रानिकल के संपादक श्री गेल्डर को, जो बयान दिया था, अब भारतीय अखबारों में छप गया है। निस्संदेह आपने उस पत्रिका की अधिकृत प्रतियों को देखा होगा। मैंने प्रेस से कहा था कि वे पहले आपको दिखा दिए जायें परंतु श्री गेल्डर ने निस्संदेह उसे पहले ही छाप दिया, इसके लिए मुझे अफसोस है। तब भी मेरे 17 जून 1944 के पत्र से यदि आप मेरा एक अनुरोध भी मान लेते, तो यह प्रकाशन कुबड़े को लात रास आ जाने के समान होता।

भवदीय,

ह. (मो.क.गांधी)"

2. 22 जून 1944 को वायसराय का गांधी जी को उत्तर

" प्रिय श्री गांधी,

आपके 15 जुलाई के पत्र के लिए धन्यवाद। मैंने श्री गेल्डर को आपके द्वारा दिया गया साक्षात्कार और बाद में आपका स्पष्टीकरण देखा। मैं इस समय उस पर कोई खास टिप्पणी नहीं कर सकता, सिवाय इसके कि मैं अपने पहले पत्र को दोहराऊं। यदि आप मुझे निश्चित और रचनात्मक नीति भेजेंगे, मैं उस पर प्रसन्नता से विचार करूंगा।

भवदीय

ह. (वेवल)"

3. गांधी जी का वायसराय को दिनांक 27 जुलाई, 1944 को लिखा गया पत्र

"प्रिय मित्र,

मुझे आपके 22 जुलाई के पत्र से निराशा हुई, परंतु मैं निराशा में भी काम करता रहता हू। यह मेरा ठोस प्रस्ताव है।

मैं कार्यसमिति को यह घोषणा करने की राय देने के लिए तैयार हू कि इस बदली हुई परिस्थिाति में अगस्त 1942 के प्रस्ताव के अंतर्गत चलाया जा रहा सविनय अवज्ञा आंदोलन न चलाया जाए और विश्व युद्ध में सरकार को पूरा

सहयोग दिया जाए। परंतु शर्त यह है कि तुरंत भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा की जाए और केंद्रीय विधान सभा के लिए उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार बनाई जाए। इस शर्त के साथ कि विश्व युद्ध के दौरान मौजूदा हालत में सैनिक कार्यवाही होती रहें। परंतु उसका आर्थिक बोझ भारत पर न डाला जाए। यदि ब्रिटिश सरकार किसी प्रकार का समझौता करना चाहती है, तो पत्र व्यवहार के स्थान पर मित्रता–पूर्वक वार्तालाप होना चाहिए। मैं आपके हाथों में हूं। जब तक तनिक भी सम्मानजनक समझौते की आशा दिखाई पड़ेगी, मैं प्रयास करता रहूंगा।

पिछले पत्र के बाद मैंने हाउस आफ लार्डस में लार्ड मंस्टर का भाषण पढ़ा। हाउस आफ लार्डस में उन्होंने जो कुछ संक्षेप में कहा वह स्पष्ट रूप से मेरे प्रस्ताव के अनुरूप है। यह संक्षिप्त भाषण पारस्परिक मित्रतापूर्ण वार्तालाप का आधार बन सकता है।

आपका विश्वासपात्र

ह. (मो.क.गांधी)"

4 – वायसराय का श्री गांधी को दिनांक 15 अगस्त 1944 का उत्तर

" प्रिय श्री गांधी,

आपके 27 जुलाई के पत्र के लिए धन्यवाद। आपके प्रस्ताव हैं:–

(1) कि आप कार्य समिति को सलाह इन सूरतों पर देंगे (अ) कि बदली हुई परिस्थितियों के विचार से अगस्त 1942 के प्रस्ताव के अंतर्गत चलाया जा रहा सविनय अवज्ञा आंदोलन नहीं चलाया जाए। (ब) यह कि युद्ध काल में कांग्रेस के साथ पूरा सहयोग करें, बशर्ते (2) कि ब्रिटिश सरकार (अ) तुरंत भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा करें और (ब) इस शर्त पर केंद्रीय विधान सभा के प्रति उत्तरदायी राष्ट्रीय सरकार की स्थापना की जाए कि विश्व युद्ध के दौरान सैनिक कार्यवाहियां ज्यों कि त्यों चलती रहें, परंतु उनका आर्थिक बोझ भारत पर न डाला जाए।"

ब्रिटिश सरकार बहुत चाहती है कि भारतीय समस्याओं को हल करने के लिए कोई उचित समझौता किया जाए। परंतु विचार विमर्श के बाद आपके द्वारा लाए गए प्रस्ताव स्वीकार्य नहीं हैं, और यदि आपने हाउस आफ कामंस में श्री एमेरी के इसी 28 जुलाई के बयान को पढ़ा हो, तो आपको इसका अहसास हो जाएगा। वे प्रस्ताव वैसे ही प्रस्ताव हैं, जो मौलाना अबुल कलाम आजाद ने अप्रैल 1942 में सर स्टेफर्ड क्रिप्स के सामने किये थे और ब्रिटिश सरकार ने ठीक उन्हीं कारणों के आधार पर उन्हें अस्वीकार कर दिया था जिन कारणों पर पहले अस्वीकार किया था।

3. सभी विवरणों को विस्तार से फिर ध्यान में लाए बिना मैं आपको याद दिलाना चाहता हूं कि ब्रिटिश सरकार ने उस समय यह स्पष्ट कर दिया था कि:–

(अ) युद्ध समाप्त हो जाने के बाद बिना शर्त भारत को स्वतंत्रता दिए जाने का प्रस्ताव बाद में सशर्त कर दिया गया था कि भारत के राष्ट्रीय रंगमंच पर प्रमुख दलों द्वारा संविधान निर्माण पर सहमति और ब्रिटेन के साथ संधि की जाएगी।

(ब) यह कि विश्व युद्ध के दौरान संविधान में किसी प्रकार का ऐसे परिवर्तन करना संभव नहीं है, जिसका अर्थ, जैसा अपने सुझाया, यह हो कि राष्ट्रीय सरकार केंद्रीय सभा के प्रति उत्तरदायी है।

इन शर्तों का मुख्य उद्देश्य था कि दलित वर्ग जैसे जातीय और धार्मिक अल्पसंख्यकों के हितों की सुरक्षा के अपने कर्तव्य को पूरा करना तथा भारतीय राज्यों के साथ संधि करना।

4. उपरोक्त शर्तों पर ब्रिटिश सरकार ने अंतरिम सरकार में भाग लेने के लिए भारतीय नेताओं को आमंत्रित किया था, जो वर्तमान संविधान के अनुसार चलेगी। मैं स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि जब तक युद्ध समाप्त नहीं हो जाता और नया संविधान लागू नहीं हो जाता ब्रिटिश सरकार एवं गवर्नर जनरल देश की सारी बागडोर अपने पास ही रखेंगे। जहां तक युद्ध व्यय में भारत के हिस्से की बात है, ब्रिटिश सरकार और भारत सरकार के मध्य तय होना जरूरी है और मौजूदा वित्तीय प्रबंध इन दोनों में किसी एक को करना होगा।

5. यह स्पष्ट है कि आपने जो सलाह दी उस पर इन परिस्थितियों में वार्तालाप करने से कोई लाभ नहीं है। हालांकि यदि हिंदुओं, मुसलमानों और प्रमुख अल्पसंख्यकों के नेता वर्तमान संविधान के अधीन अंतरिम सरकार की स्थापना में सहयोग करने के लिए इच्छुक हों, तो मुझे विश्वास है कि इससे कुछ अच्छी प्रगति का मार्ग प्रशस्त होगा। ऐसी अंतरिम सरकार के बनने से पहले हिंदुओं, मुसलमानों तथा प्रमुख दलों के मध्य एक आम समझौता हो जाना चाहिए कि किस सिद्धांत पर नया संविधान बनाया जाए। यह आम समझौता भारतीयों को ही करना है।

जब तक सभी भारतीय नेता इस समय मतभेद की अपेक्षा एक दूसरे के और नजदीक नहीं आ जाते, तब तक मैं इसके संबंध में कुछ नहीं कर सकता। मैं आपको स्मरण कराना चाहूंगा कि अल्पसंख्यकों की समस्याएं आसान नहीं हैं। ये समस्याएं वास्तविक हैं और सहिष्णुता और पारस्परिक समझौते से हल की जा सकती हैं।

6. विश्व युद्ध समाप्त हो जाने के बाद अंतरिम सरकार का कार्यकाल कितना

होगा, यह इस पर निर्भर करेगा कि नए संविधान की रचना में कितना समय लगता है। भारतीय आपस में समझौता कर सहयोग करने के लिए तैयार हो जाते हैं तो मैं नहीं समझता कि संविधान बनाने की प्राथमिक कार्यवाही क्यों न आरंभ कर दी जाए। संविधान बनाने के सिद्धांत पर यदि उन नेताओं में सर्वमान्य समझौता हो जाता है, तो युद्ध समाप्त होने के बाद अनावश्यक रूप से समय बर्बाद करने की आवश्यकता नहीं है। इस दिशा में प्राथमिक उत्तरदायित्व भारतीय नेताओं का ही है।

आपका विश्वासपात्र

(ह.) वेवल"

परिशिष्ट - 11

अनुसूचित जातियों की राजनैतिक मांगें

मद्रास में 23 सितंबर 1944 को राय बहादुर एन शिवराज बी.ए., बी.एल., एम.एल.ए. की अध्यक्षता में भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति की बैठक में नए संविधान में अस्पृश्यों के हितों के संरक्षण के संबंध में पास किए गए संकल्प।

संकल्प संख्या - 1

विषय :– अनुसूचित जातियों के पृथक अस्तित्व को मान्यता देना।

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्यसमिति को ज्ञात है कि भारत में कुछ अखबार आरोप लगा रहे हैं कि 15 अगस्त 1944 के श्री गांधी के पत्र के उत्तर में वायसराय ने जो बयान जारी किया है कि अनुसूचित जातियों का भारत के राष्ट्रीय जीवन में महत्वपूर्ण और पृथक अस्तित्व है और भारत के भावी संविधान बनानें के संबध में इन अनुसूचित जातियों का भागीदार होना आवश्यक शर्त है, क्रिप्स प्रस्तावों में ब्रिटिश सरकार द्वारा परिभाषित स्थिति से उठना है। यह समिति इस प्रकार के प्रोपेगेंडा पर विरोध प्रकट करती है ओर इस अवसर पर बहुत ही खासतौर पर जोर डाल कर यह बता देना चाहती है कि अनुसूचित जातियों का भारत के राष्ट्रीय जीवन में पूर्णतया अपना पृथक अस्तित्व है और क्रिप्स प्रस्तावों के अर्थों में सिखों तथा मुसलमानों की अपेक्षा वे अधिक धार्मिक अल्पसंख्यक हैं। कार्यसमिति बतला देना चाहती है कि लार्ड वेवल ने श्री गांधी को अपने पत्र में जो कुछ लिखा है, आरंभ से ही ब्रिटिश सरकार का वैसा विचार रहा है। इसे 1917 में घोषित कर दिया गया था, जब मांटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट तैयार करने वालों ने भारत में उत्तरदायी सरकार के साथ–साथ राजनीतिक पर्दापण का लक्ष्य बताया था और बाद में ब्रिटिश सरकार ने सम्मेलन में अनुसूचित जातियों के पृथक अस्तित्व और पृथक निर्वाचन की पुष्टि कर दी थी और वहीं पुष्टि संयुक्त संसदीय समिति गवर्नमेंट आफ इंडिया एक्ट 1935 में हिंदुओं से बिल्कुल भिन्न अल्पसंख्यक के रूप में की गई थी। इसलिए कार्यसमिति को यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि ब्रिटिश सरकार के अपनी नीति से दूर हटने के आरोप का यह झूठा और गंदा प्रोपेगंडा है और यह समिति ऐसे प्रचार को अंनुसूंचित जातियों के शत्रुओं पर छल–कपट से उनके संवैधानिक संरक्षणों के यथोचित दावों को नाकाम करने का कार्य समझती है और भारतीय राजनीतिक नेताओं और मुख्यतः हिंदू नेताओं को बता देना चाहती है कि अस्पृश्यों और हिंदुओं के मध्य शांति और सद्भाव

के हितों को ध्यान में रखते हुए तथा भारत के राजनीतिक लक्ष्य को तीव्र गति से प्राप्त करने के लिए इस लक्ष्य को अंगीकार करें।

संकल्प संख्या - 2

विषय : अनुसूचित जातियां एवं संविधान के संबंध में ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई घोषणा।

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति हाल ही में ब्रिटिश सरकार द्वारा की गई घोषणा का स्वागत करती है, जिसमें कहा गया है कि ब्रिटिश सरकार अन्य किन्हीं दलों के साथ–साथ अनुसूचित जातियों को भी स्वतंत्र भारत के संविधान में भागीदार होने के लिए अत्यंत आवश्यक और महत्वपूर्ण दल मानती है और भारतीयों को सत्ता हस्तांतरण करने के लिए पूर्व आवश्यक शर्त मानती है। इसके साथ–साथ कार्य समिति का ध्यान कांग्रेस तथा देश की अन्य राजनीतिक संस्थाओं के उस रवैये की ओर दिलाना चाहती है, जो ब्रिटिश सरकार की इस घोषणा को यथार्थ और विश्वसनीय घोषणा नहीं मानते और जब तक बहुसंख्यक समुदाय इसे बहाना मानते हैं, सत्ता हस्तांतरण को स्थगित रखने का यह बहुसंख्यकों की अनुसूचित जातियों से समझौते की अनिच्छा ऐसे आरोपों को निराधार मानती है और ब्रिटिश सरकार से अनुरोध करती है कि ब्रिटिश सरकार इस प्रकार के संदेह की कोई गुंजाइश नहीं छोड़े तथा स्पष्ट करे कि वह हर हालत में अपनी घोषणा पर अटल रहेगी।

संकल्प संख्या - 3

विषय : संवैधानिक संरक्षण

कार्य समिति घोषणा करती है कि जब तक निम्नलिखित बातें पूर्ण नहीं की जाती, तब तक भारत के लिए कोई भी संविधान अनुसूचित जातियों को स्वीकार्य नहीं होगा :

(अ) इसमें अनुसूचित जातियों की सहमति हो।

(ब) इससे अनुसूचित जातियों के बिल्कुल पृथक अस्तित्व की मानयता स्वीकार की जाए।

(स) इसमें निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए प्रावधान लिए जाएं :

(1) अनुसूचित जातियों की माध्यमिक, विश्वविद्यालय तथा उच्च स्तर की शिक्षा के लिए प्रांतीय एवं केंद्रीय सरकारों के बजट में धनराशियां निश्चित की जाएं।

(2) चकबंदी आयोग के माध्यम से अनुसूचित जातियों को अलग बसाने के लिए सरकारी भूमि का कुछ भाग आरक्षित किया जाए।

(3) अनुसूचित जातियों की आवश्यकताओं, उनकी जनसंख्या तथा उनके महत्वपूर्ण अस्तित्व के अनुसार, निम्नलिखित संस्थाओं में उनका प्रतिनिधित्व निश्चित किया जाए :–

(क) विधान सभाओं में।

(ख) कार्यपालिका में

(ग) नगर पालिकाओं और स्थानीय निकायों में।

(घ) सरकारी नौकरियों में।

(ङ.) लोक सेवा आयोगों में।

(4) उपरोक्त प्रावधानों को मौलिक अधिकारों की संज्ञा दी जाए, जिससे विधान सभाएं अथवा कार्यपालिकाएं, इनसे संशोधन करने या इन्हें बदल डालने के लिए सक्षम न हों।

(5) भारत सरकार अधिनियम 1935 की धारा 156 के अंतर्गत नियुक्त किए जाने वाले महालेखापरीक्षक के स्तर के अधिकारी की नियुक्ति के लिए प्रावधान किया जाए, जो उपरोक्त मौलिक अधिकारों के कार्यान्यवन की समीक्षा करे ओर उसे उन्हीं सूरतों में हटाया जा सके, जिन सूरतों में संघीय न्यायालय का न्यायाधीश हटाया जाता है।

संकल्प संख्या - 4

विषय : सांप्रदायिक समझौते।

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति, जो सांप्रदायिक समस्या को शीघ्र हल करना चाहती है, हिंदुओं और मुसलमानों के मध्य समझौता कराने के लिए श्री गांधी और श्री जिन्ना के बीच चल रही गुप्त समझौता वार्ताओं की भर्त्सना करती है। कार्य समिति का विचार है कि सांप्रदायिक समझौते का ऐसा खंडित स्वरूप प्रत्येक दशा में हानिकारक है। यह इसलिए हानिकारक है कि इससे अन्य समुदायों में यह संदेह उत्पन्न होता है कि उनके हितों को हानि पहुंचाने के लिए दो समुदायों में बेइमानी की साठगांठ हो रही है। यह देश के सामान्य हित में भी हानिकारक है, क्योंकि इसके द्वारा एक वर्ग विशेष को दूसरों से अलग करके विशेष रूप से प्रतिष्ठित किया जा रहा है, इसके संरक्षण की दृष्टि से नहीं बल्कि प्रतिष्ठा की हैसियत से दर्जा दिया जा रहा है, जो सभी के लिए समान अधिकार

के सिद्धांतों की दृष्टि से न्यायसंगत नहीं है, उसकी निंदा की जानी चाहिए। कार्य समिति को आश्चर्य है कि श्री गांधी जो सार्वजनिक जीवन में गोपनीयता का सदा विरोध करते रहे हैं, अपने स्वयं के सिद्धांत को तिलांजलि देकर हिंदू–मुस्लिम एकता के नाम पर गोपनीय कूटनीति में दाखिल हो गए। यह समिति इस बात पर बल देती है कि सांप्रदायिक प्रश्न के समाधान की प्रक्रिया पर जिसमें सबको उचित तथा समान न्याय मिल सके, विचार किया जाना तभी संभव है, जब सभी वर्गों के प्रतिनिधियों की उपस्थिति में सबकी मांगों पर सार्वजनिक रूप से विचार विमर्श हो।

संकल्प संख्या - 5

विषय : संविधान समीक्षा

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति का यह विचार है कि भारत के वर्तमान संविधान (भारत सरकार अधिनियम 1935) में अल्पसंख्यक प्रतिनिधित्व से संबंधित प्रावधान किसी स्पष्ट सिद्धांत पर आधारित नहीं हैं। समिति को लगता है कि जो व्यवस्था इस समय है उसके अनुसार कुछ अल्पसंख्यक समुदायों को उनकी जनसंख्या के अनुपात में प्रतिनिधित्व नहीं मिला है, जबकि अन्य अल्पसंख्यकों को उनकी जनसंख्या के अनुपात से कहीं अधिक प्रतिनिधित्व उनके ऐतिहासिक एवं सैनिक महत्व के आधार पर दिए गए दावों के कारण दिया गया है। समिति ऐसे दावों को मान लेना अन्य अल्पसंख्यकों के हितों के विरूद्ध मानती है, और उन्हें सामाजिक और राजनीतिक लोकतंत्र के आदर्श के विरूद्ध मानती है, जो भारत का लक्ष्य है और उन्हें कदापि सहन नहीं किया जाना चाहिए। इस संदर्भ में समिति इस विषय पर ध्यान दिलाना चाहती है कि विशेष रूप से चुने गए अल्पसंख्यकों को मांटेग्यू–चेम्सफोर्ड रिपोर्ट पर साइमन कमीशन में रद्द कर दिया गया था। कमेटी मांग करती है कि चूंकि भारत का भावी संविधान भारतीयों के लिए होगा, इसलिए संविधान बनाते समय अल्पसंख्यकों से संबंधित व्यवस्थाओं में ऐसा संशोधन किया जाए, जिसे सभी अल्पसंख्यकों को समानता के सिद्धांत पर अधिकार मिल सके।

संकल्प संख्या - 6

विषय : विधान सभाओं तथा कार्यपालिकाओं में प्रतिनिधित्व।

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति चाहती है कि यह स्पष्ट तौर पर बल देकर कहा जाए कि प्रतिनिधित्व के मामले में अल्पसंख्यक समुदायों के बीच पक्षपात सहन नहीं किया जाएगा और प्रांतीय तथा केंद्रीय विधानमंडलों और प्रांतीय तथा केंद्रीय कार्यपालिका में उसी आधार पर प्रतिनिधित्व निश्चित किया जाए और वही सिद्धांत लागू किया जाए, जो मुसलमानों पर लागू हो।

संकल्प संख्या - 7

विषय : मतदान पद्धति।

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्यसमिति का विचार है कि भारत सरकार अधिनियम के अंतर्गत हुए पिछले चुनावों के अनुभवों से सिद्ध हो गया है कि संयुक्त निर्वाचन प्रणाली के आधार पर चुनाव लड़ने के कारण अनुसूचित जातियां विधान सभाओं में अपने सही एवं प्रभावशाली प्रतिनिधियों को भेजने के अधिकार से वंचित रही है और उसमें सवर्ण हिंदुओं को अनुसूचित जातियों में ऐसे सदस्यों को नामजद कर भेजने का अधिकार मिला था, जो सवर्ण हिंदुओं की ही कठपुतली बनने को तैयार रहते थे। इसलिए इस समिति की यह पुरजोर मांग है कि संयुक्त निर्वाचन प्रणाली तथा सुरक्षित सीटों की प्रणाली समाप्त कर अस्पृश्यों के लिए पृथक निर्वाचन प्रणाली लागू की जाए।

संकल्प संख्या - 8

विषय : कार्यकारी सरकार का स्वरूप।

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति इस तथ्य की ओर संकेत करना चाहती है कि बहुसंख्यक समुदाय के हाथों में केवल धन संपत्ति, व्यापार एवं उद्योग ही नहीं है, वरन् राज्य का सारा प्रशासन ऐसे बहुसंख्यक समुदाय द्वारा नियंत्रित किया जा रहा है, जिसके सदस्यों ने पदों पर तथा छोटे–छोटे पदों पर एकाधिकार जमा रखा है। यह समिति इस स्थिति को अल्पसंख्यकों के हितों के लिए बहुत बड़ा खतरा समझती है, क्योंकि इससे बहुसंख्यक समाज को अल्पसंख्यकों पर पूरा आधिपत्य जमाने का अधिकार मिलता है। भारत सरकार अधिनियम 1935 में कार्यकारी सरकार के संबंध में, जो संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं, उनसे ऐसी खतरनाक शक्ति को प्रोत्साहन मिला है, जिसके अंतर्गत विधान सभाओं में अल्प–संख्यकों की भावनाओं की परवाह किए बिना सरकार बनाने का अधिकार मिल जाता है।

यह समिति समझती है कि जब तक इनका कोई और विकल्प नहीं निकलता, तब तक शासन की संसदीय प्रणाली तो अपनानी ही पड़ेगी। यह समिति ऐसे संसदीय मंत्रिमंडल के पूर्णतया विरूद्ध है, जिसमें कार्यकारी अधिकार खुद–ब–खुद बहुसंख्यक समुदाय को मिल जाएं, ऐसी व्यवस्था में सभी अधिकार बहुसंख्यक समुदाय में निहित हो जाएंगे और बहुसंख्यकों की सत्ता और सुदृढ़ हो जाएगी, जिससे अल्पसंख्यकों को खतरा पैदा होगा। कार्यसमिति इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि संसदीय मंत्रिमंडल व्यवस्था भारतीय परिस्थितियों से मेल नहीं खाती, इसलिए इससे भिन्न व्यवस्था होनी चाहिए, जिसके अनुसार कार्यकारी सरकार

अल्पसंख्यकों में सुरक्षा एवं विश्वास की भावना बनाए रख सके। इसलिए कार्य समिति इस बात पर बल देती है कि सभी प्रांतीय तथा केंद्रीय सरकारों में कार्यकारी सरकार का निम्नलिखित ढंग से गठन किया जाना चाहिए :–

(1) सरकार में प्रधानमत्री, मुख्यमंत्री एवं अन्य मंत्रीगण सामान्य समुदाय तथा अल्पसंख्यक समुदायों से संविधान द्वारा निर्धारित अनुपात में लिए जाएं।

(2) सामान्य समुदाय से लिए गए प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री तथा अन्य मंत्रीगण का निर्वाचन पूरे सदन द्वारा एकल हस्तांतरणीय मत से किया जाए।

(3) अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करने वाले मंत्रीगण विभिन्न अल्पसंख्यक समुदायों द्वारा एकल हस्तांतरणीय मत से चुने जाएं।

(4) सरकार के मंत्रीगण विधान सभाओं के सदस्य ही हों, जो प्रश्नों के उत्तर देंगे, मतदान में भाग लेंगे तथा बहसों में भाग लेंगे।

(5) सरकार में मंत्री का कोई स्थान खाली होने पर उस स्थान की पूर्ति मूल नियुक्ति के नियमों के अनुसार की जाएगी।

(6) सरकार का कार्यकाल विधान सभा के कार्यकाल के बराबर तथा साथ–साथ समाप्त होगा।

संकल्प संख्या - 9

विषय : सरकारी सेवाएं।

यह वांछनीय है कि कोई भी सरकार व्यक्तियों की नहीं, वरन् कानून की सरकार हो और उसका संचालन कानून के अनुसार हो, परंतु इस तथ्य की उपेक्षा नहीं की जा सकती कि सरकारी तंत्र का संचालन व्यक्तियों द्वारा ही होता है। ऐसी दशा में सरकार चाहे अच्छी हो अथवा बुरी, उस सरकार का निष्पक्ष और निरपेक्ष होना बहुत हद तक इस बात पर निर्भर करता है कि सरकारी तंत्र का संचालन करने वाले व्यक्ति किस सीमा तक निष्पक्ष न्यायप्रिय तथा निरपेक्ष है। भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति की यह धारणा है कि इस वर्तमान शासन व्यवस्था से, जो जातिवादी, संकुचित मनोवृत्ति, न्याय भावना विहीन तथा अनुसूचित जातियों से घृणा करने वालों के द्वारा नियंत्रित एवं संचालित हो अस्पृश्यों की सुरक्षा, न्याय अथवा सहानुभूति कभी नहीं हो सकती। इसलिए कार्य समिति यह मांग करती है कि संविधान द्वारा इस बात की पुष्टि अवश्य कर दी जानी चाहिए कि सरकारी सेवाओं में अनुसूचित जातियों को उसी अनुपात में आरक्षण प्रदान किया जाना चाहिए, जिस अनुपात में मुस्लिम समुदाय को स्वीकार किया जाए।

संकल्प संख्या - 10

विषय : शिक्षा के लिए प्रावधान।

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समितिं अनुभव करती है कि जब तक अनुसूचित जातियों के लोग प्रशासन में महत्वपूर्ण पदों पर पहुंचने के योग्य नहीं हो जाते, तब तक अनुसूचित जातियों को वही मुसीबतें उठानी पड़ेगी, जो अन्याय और अपमान सरकार और जनता द्वारा आज तक उन पर किया जाता रहा है। इसीलिए कार्य समिति अनुसूचित जातियों में उच्च शिक्षा के प्रसार को नितांत आवश्यक और महत्त्वपूर्ण समझती है। परंतु इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि ऐसे उच्च स्तर की शिक्षा गरीब अनुसूचित जातियों के वश की बात नहीं है। इसलिए समिति यह आवश्यक समझती है कि अस्पृश्यों को उच्च शिक्षा के साधन सुलभ कराना राज्य का दायित्व माना जाए, जो इस काम के लिए वित्तीय व्यवस्था करें। यह समिति मांग करती है कि संविधान द्वारा प्रांतीय सरकारों तथा केंद्रीय सरकार पर यह दायित्व निश्चित कर दिया जाए कि वे अनुसूचित जातियों की उच्च शिक्षा के लिए प्रत्येक वर्ष बजट में एक निश्चित धनराशि विशेष रूप से नियत करे और इस मद को प्राथमिकता दी जाए।

संकल्प संख्या - 11

विषय : अनुसूचित जातियों की पृथक बस्तियां।

भारतीय दलित संघ की कार्यसमिति का विचार है कि :-

(अ) जब तक अनुसूचित जातियों के लोग इस दयनीय दशा में कि हिंदू गांवों के बाहर तिरस्कृत लोगों की भांति रहने पर विवश हैं जहां उन्हें अपनी जीविका का कोई साधन प्राप्त नहीं होता और हिंदूओं की अपेक्षा बहुत कम संख्या में हैं, वे अस्पृश्य ही बने रहेंगे और सदैव हिंदुओं के आतंक और दमन के शिकार होते रहेंगे तथा स्वतंत्र जीवन निर्वाह न कर सकेंगे।

(ब) सवर्ण हिंदुओं के दमन और अत्याचार, जिनमें स्वराज के बाद ओर बढ़ोतरी हो जाएगी, उनसे अनुसूचित जातियों की सुरक्षा के लिए तथा उनके पूर्ण विकास के लिए आर्थिक एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जाए और अस्पृश्यता निवारण का मार्ग प्रशस्त किया जाए। समिति यह मांग करती है कि भावी संविधान में निम्नलिखित प्रावधान किए जाएं:-

(1) अनुसूचित जातियों को हिंदुओं के गांवों तथा अपने वर्तमान गांवों से हटा कर स्वतंत्र रूप से हिंदुओं से अलग बसाया जाए।

(2) अनुसूचित जातियों की नई बस्तियां बसाने के लिए संविधान द्वारा एक आवास आयोग का निर्माण करने की व्यवस्था की जाए।

(3) समस्त कृषि योग्य सरकारी भूमि तथा और भी भूमि जो कृषि योग्य बनाई जाए उपरोक्त आयोग को दे दी जाए जिस पर अस्पृश्यों की बस्तियां बसाई जा सकें।

(4) अनुसूचित जातियों को बसाने की योजना को पूरा करने के लिए संविधान द्वारा उपरोक्त आयोग को भूमि अधिग्रहण अधिनियम के अंतर्गत निजी मालिकों से नई भूमि प्राप्त करने ओर खरीदने का अधिकार दिया जाए।

(5) संविधान में यह व्यवस्था की जाए कि केंद्र सरकार आवास आयोग को इस कार्य के लिए कम से कम पांच करोड़ रुपये प्रतिवर्ष स्वीकार किया करेगी।

संकल्प संख्या - 12

भारतीय परिगणित जाति संघ की कार्य समिति सर्वसम्मति से डा.बी.आर. अम्बेडकर के नेतृत्व में अपना पूर्ण विश्वास प्रकट करती है ओर उन्हें यह अधिकार प्रदान करती है कि कार्य समिति तथा अनुसूचित जातियों की ओर से वह यथा–समय तथा आवश्यकतानुसार अन्य राजनीतिक दलों अथवा उनके नेताओं से बातचीत करें।

परिशिष्ट 12

ब्रिटिश राज्य के प्रांतों में अल्पसंख्यकों की जनसंख्या का सम्प्रदाय के अनुसार विभाजन

प्रान्त	कुल जनसंख्या	मुसलमान		अनुसूचित जातियां		भारतीय ईसाई		सिक्ख	
		जनसंख्या	प्रति शत	जनसंख्या	प्रति शत	जनसंख्या	प्रति शत	जनसंख्य	प्रति शत
अजमेर – मेवाड़	583693	89899	15.4	शून्य?	–	3895	0-8	867	0-15
अन्डमान निकोबार	33768	8005	23.7	शून्य	–	779	2.3	744	2.2
असम	10204733	3442479	33.7	676291	6.6	37750	0.4	3464	0.03
ब्रिटिश बलूचिस्तान	501631	438930	87.5	5102	1.0	2633	0.5	11918	2.3
बंगाल	60306525	33005434	54.7	7878970	13.0	110923	0.2	16281	0.03
बिहार*	36340151	4716314	12.9	4840379	13.3	24693	0.7	13213	0.04
बम्बई	20849840	1920368	9.2	1855148	8.9	338812	1.6	8011	0.04
मध्यप्रांत तक बरार	16813584	783697	4.7	3051413	18.1	48260	0.3	14996	.09
कुर्ग	168726	14780	8.8	25740	15.3	3309	2.0	शून्य	–
दिल्ली	917939	304971	33.2	121693	13.3	10494	1.1	16157	1.8
मद्रास	49341810	3896452	7.9	8068492	16.4	2001082	4.06	418	0.001
पश्चिोत्तर सीमा प्रांत	3038067	2788797	91.8	शून्य	–	5426	0.2	57989	1.9
उड़ीसा	8728544	146301	1.7	1238171	14.2	26584	0.3	232	0.003
पंजाब	28418819	16217242	57.0	1248635	4.4	486038	1.7	3757401	13.2
पंट पिपलोडा	5267	251	4.8	918	17.4	216	4.1	शून्य	–
सिन्ध	4229221	3054635	72.2	191634	4.5	13232	0.3	31011	0.7
यू.पी.*	55020617	8416308	15.3	11717158	213	131327	0.2	232445	0.4
योग	295502935	79344863	26.9	40919744	13.9	3245453	1	4155147	1
बिहार*	28823802	4168470	14.4	1919619	13.6	12651	0.04	3204	0.01
छोटा नागपुर	7516349	547844	7.3	420760	5.6	12042	0.2	10009	0.1
मध्यप्रान्त**	13208718	448528	3.4	2359836	17.9	42135	0.3	12766	0.1
बरार	3604866	335169	9.3	691577	19.2	6125	0.2	2230	0.05
आगरा	40906147	6231062	15.2	8018803	19.6	120549	0.3	226096	0.5
अवध	14114470	2185246	15.5	3698355	26.2	10778	0.08	6349	0.05

परिशिष्ट 13

भारतीय राज्यों में अल्पसंख्यकों की जनसंख्या का सम्प्रदाय के अनुसार विभाजन

राज्य और एजेंसियां	कुल जनसंख्या	मुसलमान		अनुसूचित जातियां		भारतीय ईसाई		सिक्ख	
		जनसंख्या	प्रतिशत	जनसंख्या	प्रतिशत	जनसंख्या	प्रतिशत	जनसंख्य	प्रतिशत
असम	725655	31662	4.4	265	0.04	25913	3.6	381	0.05
बलूचिस्तान	356204	346251	97.2	65	0.02	40	0.01	126	0.04
बड़ौदा	2855010	223610	7.8	230794	8.1	9182	0.3	566	0.02
बंगाल	2144829	372113	17.3	269729	12.6	564	0.03	28	0.001
मध्य प्रांत	7506427	439850	5.9	1027009	13.7	7582	0.1	2731	0.04
छत्तीसगढ़	4050000	28773	0.7	483132	11.9	11820	0.3	507	0.01
कोचीन	1422875	109188	7.7	141154	9.9	399394	28.1	9	–
दक्षिण एवं कोल्हापुर	2785428	182036	6.5	306898	11.0	17236	0.6	22	0.001
गुजरात	1458702	58000	3.9	55204	3.3	4215	0.3	182	0.01
ग्वालियर	4006159	240903	6.0	–	–	1352	0.03	2342	0.06
हैदराबाद	16338534	2097475	12.8	2928048	17.9	215989	1.3	5330	0.03
कश्मीर एवं अन्य जागीरें	4021616	3073540	76.4	1134164	2.8	3079	0.08	65903	1.6
मद्रास	498754	30263	6.0	83734	16.8	20806	4.2	5	–
मैसूर	7329140	485230	6.6	1405067	19.2	98580	1.3	269	0.004
पश्चिमोत्तर सीमा प्रांत	46267	22068	47.7	शून्य	–	571	1.2	4472	9.1
उड़ीसा	3023731	14355	0.47	352088	11.6	2249	0.97	151	0.005
पंजाब (पहाड़िया)	1090644	46678	4.3	238774	21.9	188	0.02	17739	1.6
राजपुताना	13670208	12978411	9.5	–	–	4349	0.03	81896	0.6
सिक्किम	121520	83	0.07	76	0.06	34	0.03	1	–
ट्रांवनकोर	6070018	434150	7.2	395952	6.5	1958491	32.3	31	–
यू.पी.	982470	273625	29.5	152927	16.5	1281	0.1	731	0.08
वेस्टर्न इंडिया	4904156	600440	12.2	358038	7.3	3105	0.6	239	0.005
योग	90857901	12659593	13.9	8892380	9.7	2792792	3.1	1526346	1.7

परिशिष्ट 14

सीटों एवं मतदान संख्या के सम्बन्ध में अनुसूचित जातीय निर्वाचन क्षेत्रों का प्रांतवार विवरण

परिशिष्ट चौदह – (1) मद्रास, (2) बम्बई, (3) बंगाल, (4) यू.पी., (5) पंजाब, (6) बिहार, (7) सीपी एवं बरार, (8) असम, (9) उड़ीसा।

I. मद्रास

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	निर्वाचन क्षेत्र में सीटों की संख्या		उम्मीदवारों की संख्या		निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या		
	सामान्य सीटें	अनुसूचित जातियों के लिए	सामान्य सीटोंके लिए	अनुसूचित सीटों के लिए	सामान्य	अनुसूचित जातियां	अनुसूचित जातीय मतदाताओं का सामान्य की तुलना में प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
मद्रास सिटी							
दक्षिणी केन्द्र	1	1	4	1	13318	2909	22
चिकायकोले	1	1	4	4	54012	7461	14
अमालापुरम	1	1	2	3	46163	23110	50
कोकानाड़ा	1	1	3	1	50384	12066	24
इल्लौर	1	1	3	3	45452	11463	25
बांदर	1	1	2	3	77627	13314	17
ओगोले	1	1	2	2	67851	10885	16
गूडूर	1	1	2	4	35094	7436	21
कड़पा	1	1	2	3	74497	10630	14
पेनूकोंडा	1	1	2	2	54864	11396	21
बेल्लारी	1	1	3	2	63092	9232	15
कुर्नूल	1	1	2	4	53687	13433	25
तिरुतन्नी	1	1	2	2	52875	6350	12
चिंगरूपेट	1	1	2	2	46237	19366	42
तिरुवल्लूर	1	1	2	3	57029	211033	37
रानीपेट	1	1	3	4	53623	10370	19
तिरुवन्नमलाई	1	1	3	4	67861	16705	25
टिडिवानम	1	1	3	4	63485	19500	31
चिदम्बरम	1	1	3	1	68713	19947	29
तिर्कोवयलूर	1	1	2	2	75874	22986	30
तजौर	1	1	1	1	78874	14718	19

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	निर्वाचन क्षेत्र में सीटों की संख्या		उम्मीदवारों की संख्या		निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या		
	सामान्य सीटें	अनुसूचित जातियों के लिए	सामान्य सीटों के लिए	अनुसूचित सीटों के लिए	सामान्य	अनुसूचित जातियां	अनुसूचित जातीय मतदाताओं का सामान्य की तुलना में प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
मन्नारगुड़ी	1	1	3	4	45283	11767	26
अर्यालूर	1	1	2	3	85125	16077	19
पालानी	1	1	1	2	60453	11400	19
सत्तूर	1	1	2	2	58648	6843	12
कोइलपटट्टी	1	1	2	3	59101	12526	21
पोल्लाची	1	1	2	4	39239	12919	32
नामक्कल	1	1	2	2	43437	14561	34
कुंडापुर	1	1	2	3	35679	8843	25
मालापुरम	1	1	2	3	47299	10355	22
30 निर्वाचन क्षेत्र	30	30	70	81	1674885	389601	23.26

II. बम्बई

1	2	3	4	5	6	7	8
बम्बई नगर उत्तर तथा बम्बई जिला	2	1	6	4	61831	9880	16
बम्बई नगर भाय-कुला एवं परेल	2	1	4	3	71100	10486	15
खेड़ा जिला	3	1	4	1	92388	6231	7
सूरत जिला	3	1	6	4	51711	3929	8
थाना दक्षिण	2	1	3	3	42003	2263	5
अहमद नगर दक्षिण	2	1	4	3	36065	4814	13
पूर्वी खानदेश पूर्व	3	1	7	4	56733	4842	9
नासिक पश्चिम	3	1	7	2	44517	8881	20
पूना पश्चिम	2	1	4	2	43147	7206	17
सतारा उत्तर	3	1	5	4	57839	6692	12
शोलापुर उत्तर पूर्व	2	1	6	4	36210	6741	19
बेलगाव उत्तर	3	1	6	4	49507	12439	25
बीजापुर उत्तर	2	1	4	4	42301	7525	18
कोलाबा जिला	3	1	7	3	59490	4804	8
रत्नागिरी उत्तर	3	1	8	3	21908	3961	18
	38	15	81	48	766750	100748	13.13

III. बंगाल

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	निर्वाचन क्षेत्र में सीटों की संख्या		उम्मीदवारों की संख्या		निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या		
	सामान्य सीटें	अनुसूचित जातियों के लिए	सामान्य सीटों के लिए	अनुसूचित सीटों के लिए	सामान्य	अनुसूचित जातियां	अनुसूचित जातीय मतदाताओं का सामान्य की तुलना में प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
वर्दमान मध्य	1	1	2	3	35294	14450	41
वर्दमान उत्तरपश्चिम	1	1	2	3	41417	8693	21
वीरभूमि	1	1	3	3	52569	18506	35
बांकुरा पश्चिम	1	1	1	4	44115	19272	44
मिदनापुर–मध्य	1	1	2	2	75903	19661	26
झारग्राम बनाम कमघटल	1	1	2	4	40596	9917	24
हुगली पूर्वोत्तर	1	1	3	3	35500	12254	35
हावड़ा	1	1	2	3	68526	22470	33
चौबीस परगना दक्षिण पूर्व	1	1	3	3	29342	37566	128
चौबीस परगना उत्तर पश्चिम	1	1	2	4	42214	24404	58
नदिया	1	1	2	4	53247	20957	39
मुर्शिदाबाद	1	1	2	3	46122	11692	25
जेस्सोर	1	1	4	2	50966	43425	85
खुलना	1	2	3	6	41639	54530	131
मालदा	1	1	2	4	30916	22728	74
दीनाजपुर	1	2	1	2	25985	89880	346
जलपाईगुड़ी बनाम सिलीगुड़ी	1	2	3	8	9074	54657	602
रंगपुर	1	2	2	5	21497	68739	320
बोगरा बनाम पवन	1	1	3	4	41539	31459	76
ढाका पूर्व	1	1	2	4	38810	36749	95
मैमन सिंह पश्चिम	1	1	2	4	42237	29745	63
मैमन सिंह पूर्व	1	1	2	4	42237	29745	70
फरीदपुर	1	2	2	8	53532	73346	116
बाकरगंज दक्षिण पश्चिम	1	1	1	4	23477	37895	161
तिपेरा	1	1	3	4	65898	27475	41
	25	30	56	98	1068789	821119	76.82

IV. संयुक्त प्रांत

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	निर्वाचन क्षेत्र में सीटों की संख्या		उम्मीदवारों की संख्या		निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या		
	सामान्य सीटें	अनुसूचित जातियों के लिए	सामान्य सीटों के लिए	अनुसूचित सीटों के लिए	सामान्य	अनुसूचित जातियां	अनुसूचित जातीय मतदाताओं का सामान्य की तुलना में प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
लखनऊ नगर	1	1	3	4	29133	6821	23
कानपुर नगर	1	1	2	4	49485	14462	29
आगरा नगर	1	1	2	4	27805	6103	22
इलाहाबाद नगर	1	1	1	4	27313	5503	24
सहारनपुर जिला	1	1	2	2	27053	3720	14
बुलंदशहर जिला	1	1	4	3	32434	4648	14
आगरा जिला	1	1	3	4	33230	4476	13
मैनपुरी जिला	1	1	3	4	41044	5356	13
बदायूं जिला	1	1	4	4	32763	7558	23
जालौन जिला	1	1	2	4	40862	10356	25
मिर्जापुर जिला	1	1	2	1	26803	2969	11
गोरखपुर जिला	1	1	2	4	25113	3697	15
बस्ती जिला	1	1	2	1	27193	4143	15
आजमगढ जिला	1	1	3	2	36541	7261	20
अल्मोड़ा जिला	1	1	3	1	93380	17809	19
राय बरेली जिला	1	1	2	1	38320	10829	28
सीतापुर जिला	1	1	3	3	45130	18868	42
फैजाबाद जिला	1	1	4	2	46337	10035	22
गोंडा जिला	1	1	2	1	47666	7428	16
बाराबंकी जिला	1	1	2	4	41957	14649	35
	20	20	51	57	769562	166661	21.66

V. पंजाब

1	2	3	4	5	6	7	8
दक्षिण पूर्व गुड़गांव	1	1	4	1	27177	2842	10
करनाल उत्तर	1	1	4	3	23224	2698	12
अम्बाला व शिमला	1	1	5	3	26818	7611	28

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	निर्वाचन क्षेत्र में सीटों की संख्या		उम्मीदवारों की संख्या		निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या		
	सामान्य सीटें	अनुसूचित जातियों के लिए	सामान्य सीटों के लिए	अनुसूचित सीटों के लिए	सामान्य	अनुसूचित जातियां	अनुसूचित जातीय मतदाताओं का सामान्य की तुलना में प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
होशियारपुर पश्चिम	1	1	2	4	27589	11701	42
जलंधर	1	1	2	4	12967	14744	114
लुधियाना एवं फिरोजपुर	1	1	4	4	20334	12299	60
अमृतसर व स्यालकोट	1	1	2	1	21610	5374	25
लायलपुर व झंग	1	1	2	3	13908	3805	27
	8	8	25	23	173727	61074	35.16

VI. बिहार

1	2	3	4	5	6	7	8
पूर्वी बिहार	1	1	2	2	23966	3944	16
दक्षिणी गया	1	1	2	1	35104	9675	28
नवादा	1	1	3	2	28149	7060	25
पूर्व मध्य शाहबाद	1	1	4	1	34138	6491	19
पश्चिम गोपालगंज	1	1	3	1	25419	3361	13
उत्तर बेतिया	1	1	2	1	22596	2985	13
पूर्व मुजफ्फरपुर सदर	1	1	2	1	23007	3382	15
दरभंगा सदर	1	1	3	1	22189	2078	9
दक्षिण पश्चिम समस्तीपुर	1	1	2	1	29595	2642	9
दक्षिण सदर मुंगेर	1	1	3	1	38772	5739	15
माधेपुरा	1	1	2	2	21251	1383	6
दक्षिण–पश्चिम पूर्णिया	1	1	2	2	33071	2440	7
गिरिडीह बनाम छतरा	1	1	2	1	39670	4528	11
उत्तर पूर्व पलामू	1	1	2	2	13853	4174	30
मध्य मनुभूमि	1	1	2	2	22930	5075	22
	15	15	36	21	413710	64897	15.68

VII. सी.पी. एवं बरार

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	निर्वाचन क्षेत्र में सीटों की संख्या		उम्मीदवारों की संख्या		निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या		
	सामान्य सीटें	अनुसूचित जातियों के लिए	सामान्य सीटों के लिए	अनुसूचित सीटों के लिए	सामान्य	अनुसूचित जातियां	अनुसूचित जातीय मतदाताओं का सामान्य की तुलना में प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
नागपुर नगर	1	1	2	4	34816	8574	24
नागपुर उमरेर	1	1	3	4	20795	5451	26
हिंगनघाट वर्द्धा	1	1	3	4	25275	3088	12
चान्दा ब्रह्मपुरी	1	1	3	4	21747	4582	21
छिन्दवारा सोसर	1	1	3	4	32040	3929	12
जबलपुर पाटन	1	1	3	4	23667	1519	6
सागर खुरई	1	1	3	2	23487	4679	20
दमोह हट्टा	1	1	3	2	29069	3461	12
नरसिंहपुर गड़ारवारा	1	1	4	2	31873	1927	6
रायपुर	1	1	2	2	20209	10885	54
वलोदा बाजार	1	1	2	3	27054	14386	53
विलास पुर	1	1	2	3	22343	10963	49
मुंगेली	1	1	2	3	17412	10032	58
जंगीर	1	1	2	3	28303	13641	48
दुर्ग	1	1	3	1	23493	8663	37
भंडाश सकोली	1	1	2	4	68889	8591	13
एलिचपुर दरियापुर मिलघाट–I	1	1	3	4	21862	2163	10
अकोला बालापुर	1	1	3	4	20529	2761	13
यवतमाल दरवा	1	1	3	3	31052	1954	6
चिखाली मेहकर	1	1	5	3	28971	2792	10
	20	20	56	63	552877	124061	22.43

VIII. आसाम

1	2	3	4	5	6	7	8
कामरूप सदर (सामान्य) दक्षिण	2	1	2	4	17501	1203	7
नवगांव पूर्वोत्तर (सामान्य)	1	1	3	4	13173	1825	14

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	निर्वाचन क्षेत्र में सीटों की संख्या		उम्मीदवारों की संख्या			निर्वाचन क्षेत्र में मतदाताओं की संख्या	
	सामान्य सीटें	अनुसूचित जातियों के लिए	सामान्य सीटों के लिए	अनुसूचित सीटों के लिए	सामान्य	अनुसूचित जातियां	अनुसूचित जातीय मतदाताओं का सामान्य की तुलना में प्रतिशत
1	2	3	4	5	6	7	8
जोरहट उत्तर	1	1	6	2	12785	657	5
शुनामगंज सामान्य	1	1	3	4	15907	6502	41
हबीबगंज बनाम (सामान्य)	1	1	3	3	12628	7615	60
करीमगंज पूर्व (सामान्य)	1	1	4	2	9611	7323	76
सिल्चर (सामान्य)	1	1	4	2	15459	1587	10
	8	7	22	19	97064	26712	27.50

IX. उड़ीसा

1	2	3	4	5	6	7	8
उत्तरी कटक सदर	1	1	2	1	17288	4159	24
पूर्वी जयपुर	1	1	3	2	15338	4808	31
उत्तर पुरी सदर	1	1	4	2	13803	3182	23
पूर्वी वारगढ़	1	1	3	1	22849	1237	5
पश्चिमी भद्रक	1	1	2	3	16187	5152	32
असका सुरादा	1	1	2	4	24914	1475	6
	6	6	16	13	110379	20013	18

परिशिष्ट 15

अनुसूचित जातियों के लिए प्रांतवार सुरक्षित सीटों के चुनाव के सम्बन्ध में विवरण।

परिशिष्ट पंद्रह – (1) मद्रास, (2) बम्बई, (3) बंगाल, (4) यू.पी., (5) पंजाब, (6) बिहार, (7) सी.पी. एवं बरार, (8) असम, (9) उड़ीसा।

टिप्पणी : कालम संख्या 8 में दिये गये आंकड़ों के अतिरिक्त सभी आंकड़े वास्तविक हैं। कालम संख्या 8 के आंकड़े गणना पर आधारित हैं, क्योंकि वास्तविक आंकड़े उपलब्ध नहीं हो सके। ये आंकड़े अनुसूचित जाति मतदाता और हिन्दू मतदाताओं के प्रतिशत के कल्पित आंकलन पर आधारित हैं। यह कल्पित आकलन कितना सही है, इस विषय में कुछ कहना सम्भव नहीं है।

I. मद्रास

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
मद्रास शहर (दक्षिण मध्य)	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	–	–	–	–	–
चिकाकोल	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेस	2380	5259	7639	4036	6416
आमलापुरम	"	"	9742	शून्य	9742	5523	29111
कोकोनाडा	निर्विरोध	"	–	–	–	–	–
एल्लोर	चुनाव लड़ा गया	"	7532	6796	14328	4848	12380
बान्दर	"	"	9935	शून्य	9935	2004	18393
ओंगोल	"	"	6513	शून्य	6513	3807	11973
गुडूर	"	"	4293	344	4637	4778	9072
कुडप्पाह	"	"	8284	344	8628	4047	12331
पेनूकोंडा	"	"	4731	शून्य	4731	1749	9801
बेल्लारी	"	"	4019	शून्य	4019	910	8124

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
कुनूँल	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	5362	शून्य	5362	5929	13164
तिरुत्तनी	"	"	4966	शून्य	4966	741	8128
चिंगलेंपुट	"	गैर कांग्रेसी	12360	शून्य	12360	6110	22852
तिरुवल्लूर	"	कांग्रेसी	3107	6216	9323	14140	17247
रानिपेट	"	गैर कांग्रेसी	2969	शून्य	2969	4000	8296
तिरुवन्नमलाई	"	कांग्रेसी	3342	शून्य	3342	4938	12696
टिडिवनम	"	"	6396	शून्य	6396	2541	12480
चिदम्बरम	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	—	—	—	—	—
तिरुक्कोविलूर	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	9957	4436	14393	6133	16090
तन्जोर	निर्विरोध	"	—	—	—	—	—
मन्नारगुडी	चुनाव लड़ा गया	"	2294	20494	22788	8296	10590
अरियालुर	"	"	1208	10084	11292	8759	9967
पलानी	"	"	1469	29436	30905	10615	12084
सत्तूर	"	"	शून्य	18514	18514	11894	6980
कोइलपट्टी	"	"	4199	6284	10483	811	5010
पोल्लाची	"	"	9703	शून्य	9703	2217	15244
नामाकल	"	"	8141	8153	16284	3217	11358
कुंडापुर	"	"	1425	शून्य	1425	1708	11673
मालापुरम	"	"	7154	शून्य	7154	2606	10148
अनुसूचित जातीय मतों का यौग जो कांग्रेस उम्मीदवारों ने प्राप्त किये।			126152			कुल योग	321616

अनुसूचित जातीय मतों की संख्या	321616
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	126152
अनुसूचित जातीय मत जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	195464

II. बम्बई

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
बम्बई शहर उत्तर तथा बम्बई उप–नगरीय जिला	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	2414	15004	17418	9738	12152
बम्बई शहर (भाईकुला तथा परेल)	"	गैर कांग्रेसी	8494	4751	13245	11662	8494
कैरा जिला	निर्विरोध	कांग्रेसी	—	—	—	—	—
सूरत जिला	चुनाव लड़ा गया	"	7913	शून्य	7913	7245	12101
थाना दक्षिण	"	गैर कांग्रेसी	4006	277	4223	2733	4006
अहमद नगर दक्षिण	"	"	6499	297	6795	1976	6499
पूर्वी खानदेश पूर्व	"	"	9519	शून्य	9519	4689	10846
नासिक पश्चिम	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	16605	शून्य	16605	5679	18472
पूना पश्चिम	"	"	9512	2599	12111	532	9512
सतारा उत्तर	"	"	6736	शून्य	6736	10984	11243
शोलापुर उत्तर पूर्व	"	"	7622	शून्य	7622	2891	9303
बेलगांव उत्तर	"	"	21322	शून्य	21322	6596	36979
बीजापुर उत्तर	"	"	4566	शून्य	4566	4423	11965
कोलाबा जिला	"	कांग्रेसी	2644	4781	7425	8117	10761
रतनागिरि उत्तर	"	गैर कांग्रेसी	5523	शून्य	5523	अज्ञात	8614
अनुसूचित जातीय मतों का योग जो कांग्रेस उम्मीदवारों को मिले			12971			योग	171047

अनुसूचित जातीय मतों की संख्या	171047
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	12971
अनुसूचित जातीय मत जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	158076

III. बंगाल

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
बर्दवान मध्य	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	2383	शून्य	2383	2728	17918
बर्दवान उत्तर पश्चिम	"	"	2332	शून्य	2332	2506	9388
वीर भूमि	"	"	833	शून्य	4833	848	18876
बांकुरा पश्चिम	"	कांग्रेसी	5100	4501	9601	1838	6938
मिदनापुर मध्य	"	गैर कांग्रेसी	1851	शून्य	1851	1733	16124
झारगम बनाम घाटल	"	कांग्रेसी	1171	शून्य	1171	869	11305
हुगली उत्तर पूर्व	"	"	1638	शून्य	1638	1613	11764
हावड़ा	"	गैर कांग्रेसी	10373	शून्य	10373	5986	14380
चौबीस परगना दक्षिण पूर्व	"	"	7289	शून्य	7289	745	27791
चौबीस परगना उत्तर पश्चिम	"	कांग्रेसी	14964	शून्य	14964	2361	20987
नादिया	"	गैर कांग्रेसी	5219	शून्य	5219	8967	20957
मुर्शिदाबाद	"	"	2529	शून्य	2529	2129	10522
जेसोर	"	कांग्रेसी	20198	15	20213	11936	32134
खुलना	"	"	16575	शून्य	16575	20307	76887
	"	गैर कांग्रेसी	32662	शून्य	32662		
माल्दा	"	"	2229	शून्य	2229	1413	21364
दीनाजपुर	निर्विरोध	"	–	–	–	–	–
जलपाईगुड़ी	चुनाव	"	16244	शून्य	16244	19513	49191
बनाम	लड़ा गया	"	7261	शून्य	7261		
सिलीगुड़ी		"	12212	शून्य	12212		

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
रंगपुर	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	11914	शून्य	11914	17345	53632
बोगरा बनाम पबना	"	"	10502	शून्य	10502	9920	27054
ढाका पूर्व	"	"	17413	शून्य	17413	12062	30869
मैमन सिंह पश्चिम	"	"	11822	शून्य	11862	8987	21025
मैमन सिंह पूर्व	"	"	10720	शून्य	10720	16509	31530
फरीदपुर	"	"	27342	शून्य	27342	57699	97608
	"	"	25924	शून्य	25924	8017	29673
बाकरगंज दक्षिण पश्चिम	"	"	10515	शून्य	10515	18801	26526
तिप्पेरा	"	"	19388	शून्य	19388	8017	29673
अनुसूचित जातीय मतों का योग जो कांग्रेस उम्मीदवारों को मिले।			59664			योग	689443

अनुसूचित जाति के मतों की संख्या	684443
अनुसूचित जाति के मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	59746
अनुसूचित जाति के मत जो गैर–कांग्रेसी–उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	624797

IV. संयुक्त प्रांत

1	2	3	4	5	6	7	8
लखनऊ नगर	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	1910	2327	4237	4092	6002
कानपुर	"	"	4483	4901	9384	1301	5784
आगरा शहर	"	"	1018	4389	5407	3132	4150
इलाहाबाद शहर	"	"	385	9285	9670	4037	4422

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
सहारनपुर जिला	चुनाव लड़ा गया	"	3252	शून्य	3252	648	5282
बुलन्दशहर जिला	"	"	3853	547	4400	2365	6228
आगरा जिला	"	गैर कांग्रेसी	1851	शून्य	1851	2513	5550
मैनपुरी जिला	"	कांग्रेसी	2317	932	3249	4431	6748
बदायूं जिला	"	कांग्रेसी	1557	शून्य	1557	2676	9070
जालौन जिला	"	"	3791	शून्य	3791	4840	12428
मिर्जापुर जिला	निर्विरोध	"	—	—	—	—	—
गोरखपुर जिला	चुनाव लड़ा गया	"	2762	शून्य	2762	819	4954
बस्ती जिला	निर्विरोध	"	—	—	—	—	—
आजमगढ़ जिला	चुनाव लड़ा गया	"	949	शून्य	949	196	9256
अल्मोड़ा जिला	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	—	—	—	—	—
रायबरेली जिला	"	"	—	—	—	—	—
सीतापुर जिला	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	12535	शून्य	12535	955	20000
फैजाबाद जिला	"	"	5771	शून्य	5771	22	13848
गोंडा जिला	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	—	—	—	—	—
बाराबंकी जिला	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	8026	शून्य	8026	7283	18458
अनुसूचित जाति के मतों का योग जो कांग्रेस उम्मीदवारों को मिले।			52609			योग	132180

अनुसूचित जातीय मतों की संख्या	132180
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	52609
अनुसूचित जातीय मत जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	79571

V. पंजाब

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
दक्षिण पूर्व गुडगांव	निर्विरोध	—	—	—	—	—	—
करनाल उत्तर	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	3318	शून्य	3318	1299	3777
अम्बाला एवं शिमला	"	"	5237	शून्य	5237	4911	10960
होशियारपुर पश्चिम	"	"	8592	शून्य	8592	14640	11701
जलंधर	"	"	13135	शून्य	13135	9176	20347
लुधियाना एवं फीरोजपुर	"	"	7258	शून्य	7258	6024	16481
अमृतसर एवं स्यालकोट	निर्विरोध	"	—	—	—	—	—
लायलपुर एवं झंग	चुनाव लड़ा गया	"	2903	शून्य	2903	2143	5860

अनुसूचित जातीय मतों की संख्या	69126
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को मिले	शून्य
अनुसूचित जातीय मत जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	69126

VI. बिहार

1	2	3	4	5	6	7	8
पूर्वी बिहार	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	2471	शून्य	2471	519	5443
दक्षिण गया	निर्विरोध	कांग्रेसी	—	—	—	—	—
नवादा	चुनाव लड़ा गया		3079	शून्य	3079	1629	10449
पूर्व मध्य शाहाबाद	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	—	—	—	—	—

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
पश्चिम गोपालगंज	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	–	–	–	–	–
उत्तर बेतिया	"	कांग्रेसी	–	–	–	–	–
पूर्वी मुजफ्फर पुर सदर	"	"	–	–	–	–	–
दरभंगा सदर	"	"	–	–	–	–	–
दक्षिण पूर्व समस्तीपुर	"	"	–	–	–	–	–
दक्षिण सदर मुंगेर	"	"	–	–	–	–	–
माधेपुरा	चुनाव लड़ा गया	"	70	1688	1758	1700	1770
दक्षिण पश्चिम पूर्णिया	"	"	2040	2878	4918	1669	3709
गिरडीह बनाम–छत्र	निर्विरोध	"	–	–	–	–	–
उत्तर पूर्व पालामऊ	चुनाव लड़ा गया	"	3465	3419	6884	626	4091
मध्य मनभूमि	"	गैर कांग्रेसी	2539	शून्य	2539	1973	5379
अनुसूचित जातीय मतों का योग जो कांग्रेस उम्मीदवारों को मिले।			8654			योग	30841

अनुसूचित जातीय मतों की संख्या	30841
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को मिले	8654
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	22187

VII. सी०पी० एवं बरार

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
नागपुर शहर	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	7796	शून्य	7796	3787	9088
नागपुर उमरेर	"	"	3667	शून्य	3667	2774	6323
हिंगन घाट वर्धा	"	"	2964	262	3226	3093	2964
चांदा ब्रह्मपुरी	"	"	5133	शून्य	5133	1764	5590
छिंदवाड़ा सासर	"	"	1477	शून्य	1477	4035	4400
जबलपुर पाटन	"	"	473	2077	2490	1198	1671
सागर खुराई	"	"	2986	शून्य	2986	1417	5147
दमोह हट्टा	"	"	3056	259	3315	958	4014
नरसिंहपुर गदरवारा	"	"	1023	95	1118	480	1503
रायपुर	"	"	3856	शून्य	3856	1332	9361
बलोदा बाजार	"	"	8113	शून्य	8113	4451	17551
विलासपुर	"	"	1900	शून्य	1900	1655	15348
मुंगेली	"	"	5357	शून्य	5357	4730	14045
जंगीर	"	"	2411	शून्य	2411	3299	17188
दुर्ग	चुनाव नहीं हुआ	कांग्रेसी	—	—	—	—	—
भंडारा सकोली	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	7916	शून्य	7916	5197	10309
एलिचपुर दरियापुर मेलघाट	"	"	1697	शून्य	1697	3086	2532
अकोला बालापुर	"	"	1823	शून्य	1823	1726	3203

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
यवतमाल दरवाहा	चुनाव लड़ा गया	गैर कांग्रेसी	1150	शून्य	1150	864	1329
चिरवली मेहकर	"	"	2194	शून्य	2194	2164	3295
अनुसूचित जाति मतों का योग जो कांग्रेस उम्मीदवारों को मिले।			19507			योग	134861

अनुसूचित जाति के मतों की संख्या 134861

अनुसूचित जाति के मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये 19507

अनुसूचित जाति के मतों की संख्या जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये 115354

VIII. आसाम

1	2	3	4	5	6	7	8
कामरूप सदर (दक्षिण) सामान्य	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	शून्य	4823	4823	3665	1841
नवगांव उत्तर (पूर्व) सामान्य	"	गैर कांग्रेसी	1596	शून्य	1596	3045	2226
जोरहाट (उत्तर) सामान्य	"	कांग्रेसी	457	495	952	371	828
सुनाम गंज सामान्य	निर्विरोध	"	—	—	—	—	—
हबीगंज (उत्तर) सामान्य	चुनाव लड़ा गया	"	4863	शून्य	4863	4397	10356
करीमगंज (पूर्वी) सामान्य	"	गैर कांग्रेसी	3252	शून्य	3252	1119	10252
सिल्चर सामान्य	"	"	2109	शून्य	2108	2197	2254
अनुसूचित जातिय मतों की कुल संख्या जो कांग्रेस उम्मीदवारों को मिले।			5320			योग	27757

अनुसूचित जाति के मतों की संख्या 27757

अनुसूचित जाति के मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये 5320

अनुसूचित जाति के मतों की संख्या जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये 22437

IX. उड़ीसा

निर्वाचन क्षेत्र का नाम	चुनाव लड़ा गया अथवा चुनाव नहीं हुआ	सफल उम्मीदवारों का पार्टी टिकट	सफल उम्मीदवारों के मतों का विभाजन			असफल उम्मीदवारों को प्राप्त मतों की संख्या	कुल पड़े अनुसूचित जाति मत
			अनुसूचित जाति	हिन्दू मत	योग		
1	2	3	4	5	6	7	8
उत्तरी कटक सदर	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	–	–	–	–	–
पूर्वी जयपुर	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	958	शून्य	958	517	4808
उत्तरी पूर्वी सदर	"	"	3416	602	4018	339	3755
पूर्वी बारगढ़	निर्विरोध	गैर कांग्रेसी	–	–	–	–	–
पश्चिमी भदरक	चुनाव लड़ा गया	कांग्रेसी	1564	शून्य	1564	734	5049
असका सुराडा	"	"	शून्य	917	917	1402	973
अनुसूचित जातीय मतों का योग जो कांग्रेस उम्मीदवारों को प्राप्त हुए			5878			योग	14585

अनुसूचित जातीय मतों की संख्या	14585
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो कांग्रेसी उम्मीदवारों को मिले	5878
अनुसूचित जातीय मतों की संख्या जो गैर कांग्रेसी उम्मीदवारों को प्राप्त हुये	8707

परिशिष्ट 16

वेवल योजना

श्वेतपत्र जिसमें भारत सरकार से संबंधित ब्रिटिश सरकार के प्रस्ताव का उल्लेख था और भारत सचिव द्वारा दिनांक 14 जून, 1945 को संसद के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।

1. फील्ड मार्शल विस्कांउट वेवल के भारत भ्रमण के दौरान (ब्रिटिश सरकार से) बहुत सी समस्याओं का अध्ययन किया और उन पर वाद–विवाद किया – मुख्यतः भारत की वर्तमान राजनीतिक स्थिति पर चर्चा की गई।

2. सदस्यगण जानते होंगे कि मार्च 1942 में जब से भारत के लिए ब्रिटिश सरकार ने घोषणा की है, भारतीय संवैधानिक समस्या के हल करने की दिशा में कोई प्रगति नहीं हुई।

3. जैसा कि उस समय कहा गया था कि भारत की नवीन संवैधानिक व्यवस्था का निर्माण करना ऐसी समस्या है जिसे केवल भारतीयों को स्वयं अपने आप में वहन करना है।

4. भारत के लिए नये संवैधानिक समझौते का हल निकालने में ब्रिटिश सरकार हमेशा भारतीयों की सहायता करने के लिए उत्सुक रही है, परन्तु इसे भारतीयों की इच्छा के विरूद्ध उनपर स्वायत्त शासन लागू करने में मतभेद हो सकता है। ऐसा करना संभव भी नहीं है। हम ऐसे समय् में उन पर ऐसी जिम्मेदारी नहीं लाद सकते जबकि हम भारतीय मामलों से ब्रिटिश नियंत्रण हटा रहें हैं।

5. मुख्य संवैधानिक स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। मार्च 1942 को की गई घोषणा भी उसी स्थिति में है। ब्रिटिश सरकार अब भी आशा करती है कि भारत के राजनीतिक नेतागण ऐसे समझौते पर पहुंचेंगे, जिससे भारत की भावी और सुदृढ सरकार का गठन हो सके।

6. ब्रिटिश सरकार भारत की राजनीतिक गुत्थियों को सुलझाने के लिए सभी संभव योगदान करने की इच्छुक है। जब तक वह गुत्थी नहीं सुलझ जाती, तब तक राजनीतिक ही नहीं, वरन् सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति रुकी रहेगी।

7. जापान के विरूद्ध छिड़े युद्ध तथा युद्ध समाप्ति के बाद की योजना का बोझ भारतीय प्रशासन पर बहुत अधिक पड़ गया है, जिससे राजनीतिक दबाव काफी बढ़ गया है।

8. वह सब कुछ जो कृषि एवं औद्योगिक प्रगति के लिए भारत के किसानों

तथा सामज के प्रत्येक वर्ग के लिए नितांत आवश्यक है, तब तक नहीं किया जा सकता, जब तक कि प्रत्येक समुदाय और वर्ग का खुले दिल से सहयोग नहीं मिलता।

9. इसलिए ब्रिटिश सरकार ने विचार किया है कि वर्तमान संविधान के अंतर्गत इस अंतरिम समय में भारतवासी अपने भविष्य के संविधान की रचना के लिए, जो परामर्श देना चाहें वह दें, जिससे मुख्य समुदायों एवं पार्टियों में अधिक पारस्परिक सहयोग हो सके और वे एक दूसरे के अधिक नजदीक आ सकें और सम्पूर्ण भारतीवासियों को लाभ पहुंच सके।

10. ब्रिटिश सरकार कोई ऐसा परिवर्तन नहीं लाना चाहती, जो भारत के प्रमुख समुदायों के हितों के विरूद्ध हो। परन्तु इस अंतरिम समय में ब्रिटिश सरकार यह चाहती है कि यदि भारत के प्रमुख दलों के नेतागण अपने परामर्श देने पर सहमत हो जाते है और जपान से जो युद्ध चल रहा है उसे सफलतापूर्वक समाप्त करने में उनका सहयोग मिल जाता है, तो ब्रिटिश सरकार इस दिशा में कुछ और कदम उठायेगी।

11. इस उद्देश्य के लिए वायसराय की कार्यकारिणी के गठन में महत्व पूर्ण परिवर्तन किये जायेंगें। वर्तमान कानून में केवल 1933 के संविधान के नौवें परिच्छेद के अतिरिक्त बिना किसी प्रकार का परिवर्तन किये ऐसा करना संभव है। उस परिच्छेद में यह प्रावधान है कि वायसराय की कार्यकारिणी के सदस्य वे हों, जो कम से भारत में ब्रिटिश सरकार के शासन में 10 वर्ष सेवा कर चुके हों। मैं जो प्रावधान सदन में प्रस्तुत कर रहा हूं, उसके लिए भारतीयों की सहमति मिली हुई है। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु उस नौवें परिच्छेद में संशोधन करना होगा।

12. यह प्रस्तावित किया जाता है कि एक्जीक्यूटिव काउंसिल का पुनर्गठन किया जाये और इसके लिए वायसराय भविष्य में कार्यकारिणी का गठन करने के लिए भारतीय राजनीतिक क्षेत्र के नेताओं में से प्रांतों तथा केन्द्रों में ऐसे अनुपात में उनके सदस्यों को नामजद करें, जिसमें प्रमुख समुदायों के प्रतिनिधित्व के साथ–साथ मुसलमानों तथा सवर्ण हिंदुओं के प्रतिनिधित्व में समानता बनी रहे।

13. इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वायसराय महत्वपूर्ण पार्टियों और प्रमुख भारतीय राजनीतिक नेताओं की अथवा उन नेताओं की, जो अभी हाल में प्रांतों में प्रधानमंत्री रह चुके हैं ओर इसके साथ–साथ जो विशेष अनुभव प्राप्त अधिकारी हैं, उनकी एक सभा बुलायेंगे उस सभा के सम्मुख वायसराय यह प्रस्ताव रखना चाहते हैं कि उपरोक्तानुसार सभा में निमंत्रित सदस्यों में से वायसराय की काउंसिल के सदस्य नियुक्त किये जायेंगे। इसमें वायसराय सदस्य चुनने में स्वतंत्र

होंगे, उन पर किसी प्रकार का नियंत्रण नहीं होगा।

14. इस व्यवस्था के अनुसार वायसराय की काउंसिल के लिए जो सदस्य चुने जायेंगे, वे जापान के विरूद्ध छिड़े युद्ध में विजय प्राप्त करने के लिए निस्संदेह खुले दिल से सहयोग करेगे।

15. वायसराय तथा कमांडर–इन–चीफ के अतिरिक्त एक्जीक्यूटिव के सभी सदस्य भारतीय होंगे। यह उस समय तक नितांत आवश्यक है, जब तक कि भारत की सुरक्षा की जिम्मेदारी ब्रिटिश सरकार पर है।

16. इन प्रस्तावों में जो कुछ कहा गया है भारतीय राज्यों और ब्रिटिश सरकार के संबंधों पर इनका कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा।

17. ब्रिटिश सरकार की ओर से इन प्रस्तावों को भारतीय नेताओं के सामने रखने के लिए वायसराय को अधिकृत किया गया है। ब्रिटिश सरकार को विश्वास है कि भारतीय नेतागण इससे सहमत होंगे। इस योजना की सफलता इस बात पर निर्भर करती है भारत में लोग इसे कितना स्वीकार करते हैं ओर अंतरिम व्यवस्था के उद्देश्य की प्राप्ति में भारतीय राजनीतिक नेतागण किस हद तक सहयोग करते हैं। जब तक ऐसी व्यवस्था नहीं हो जाती, वर्तमान व्यवस्था को चालू रखना ही ठीक होगा।

18. यदि इस प्रकार का सहयोग केन्द्र में मिल जाता है, निस्संदेह उसका प्रभाव प्रांतों पर भी पड़ेगा, जिससे उन प्रांतों में फिर से उत्तरदायी सरकार बनाने में मदद मिलेगी, जिनमें बहुसंख्यक दल द्वारा समर्थन वापस ले लेने से अधिनियम 1935 की धारा 93 के अंतर्गत गवर्नरों ने सत्ता अपने हाथों में ले ली थी। यह आशा की जाती है कि सभी प्रांतो में सरकारें प्रमुख दलों के सहयोग पर आधारित होगी, जिससे साम्प्रदायिक भेदभाव दूर होंगे ओर मंत्रीगण प्रशासन पर अपना ध्यान केंद्रित कर सकेंगे।

19. यदि ये प्रस्ताव मान लिये जाते हैं, तो आगे चलकर ब्रिटिश सरकार केवल एक यह परिवर्तन लायेगी।

20. वह यह किं (जनजातीय क्षेत्र एवं सीमांत के मामलों को जहां पर भारत की सुरक्षा का प्रश्न है, उसके अतिरिक्त) जहां तक ब्रिटिश इंडिया का सम्बन्ध है, वायसराय की कार्यकारिणी के भारतीय सदस्यों के हाथों में विदेशी मामले सौंप दिये जायेंगे और देश के बाहर भारतीयों का प्रतिनिधित्व करने के लिए विश्वासपात्र प्रतिनिधि नियुक्त किय जायेंगे।

21. इस योजना में भारतीय नेताओं की स्वीकृति एवं सहयोग से उन भारतीयों

को तुरन्त भारतीय मामलों की दिशा में केवल योगदान करने का अवसर ही न मिलेगा वरन यह भी आशा की जाती है कि सरकार में उनके सहयोग के अनुभव से नवीन संविधान की संरचना का मार्ग प्रशस्त करने में उनमें पारस्परिक सहमति भी हो सकेगी।

22. इस प्रश्न का गहन अध्ययन करने के बाद ब्रिटिश सरकार सोचती है कि जो योजना सामने रखी गई है, वर्तमान संविधान के अंतर्गत ही काफी प्रगति लाई जा सकती है . . . .

23. ब्रिटिश सरकार अनुभव करती है कि सभी ओर से सदइच्छा एवं सहयोग होना आवश्यक हैं। ये प्रस्ताव ब्रिटिश सरकार तथा भारतीय लोगों के संयुक्त प्रायास से स्वायत्तशासी भारत की ओर बढ़न का एक कदम हो सकता है। और भारत को अच्छी स्थिति में शक्तिशाली बनने तथा अन्य सभी राष्ट्रों के समकक्ष गौरवान्वित करने में सहायक हो सकता है।

(2) नई दिल्ली में दिनांक 14 जून 1945 को महामहिम वायसराय द्वारा दिया गया भाषण

वर्तमान राजनीतिक स्थिति एवं भारत की पूर्ण स्वायत्ता के लक्ष्य की ओर भारतीयों को आगे बढ़ने की दिशा में सहायक होने के लिए जो प्रस्ताव बनाये गये हैं, भारतीय राजनीतिक नेताओं के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए ब्रिटिश सरकार ने मुझे अधिकृत किया है। इस समय इन प्रस्तावों पर भारत सचिव संसद में स्थिति स्पष्ट कर रहे हैं। इस घोषणा द्वारा उन प्रस्तावों को आपके सामने स्पष्ट करना है और इसके पीछे सरकार का क्या विचार है ओर किस ढंग से इन प्रस्तावों को लागू करना है यह स्थिति भी स्पष्ट करनी है।

संवैधानिक समझौते को लागू करने के लिए यह प्रयत्न नहीं किया जा रहा है। ब्रिटिश सरकार को आशा थी कि भारतीय पार्टियों में नेतागण साम्प्रदायिक समस्या, जो एक बड़ा रोड़ा है, को हल करने की दिशा में किसी समझौते पर स्वयं सहमत हो जायेंगे, परन्तु यह आशा पूरी नहीं हुई।

इस समय भारत को बड़ी समस्याएं हल करनी है, जिसके लिए सभी दलों के नेताओं के सामान्य सहयोग की आवश्यकता है। इसलिए मैं ब्रिटिश सरकार के समर्थन के साथ भारत के केंद्रीय एवं प्रांतीय स्तर के सभी नेताओं को नई एक्जीकयूटिव काउंसिल का गठन करने के लिए उनके साथ परामर्श करने के लिए मैं आमंत्रित करता हूं। नई प्रस्तावित काउंसिल में सभी प्रमुख समुदायों के प्रतिनिधि होंगे ओर हिन्दुओं तथा मुसलमानों का अनुपात में प्रतिनिधित्व होगा। यदि काउंसिल का गठन हो जाता है, तो वह काउंसिल वर्तमान सविधान के अतर्गत

कार्य करेगी। परन्तु यह पूर्णतया भारतीय कांउंसिल होगी। केवल वायसराय और कमांडर–इन–चीफ को छोड़कर, जो युद्ध सदस्य के रूप में अपनी स्थिति बनाये रखेंगे। यह भी प्रस्तावित किया जाता है कि विदेशी मामलों का विषय, जो अभी तक वायसराय के पास था, जो अब कांउंसिल के भारतीय सदस्यों को सौंप दिया जाये।

ब्रिटिश सरकार का एक और प्रस्ताव है वह यह कि भारत में अन्य उपनिवेशों के समान ब्रिटिश हाई कमिश्नर नियुक्त किया जाये, जो भारत में ग्रेट ब्रिटेन के व्यापारिक एवं अन्य हितों के लिए प्रतिनिधि के रूप में कार्य करें।

आप देखेंगे कि इस नई गठित एक्जीक्यूटिव काउंसिल से स्वायत्त शासन का मार्ग प्रशस्त होगा। वह काउंसिल अधिकाश रूप में भारतीय होगी और वह पहला अवसर है कि वित्त एवं गृह सदस्य अब भारतीय होंगे और अब तो भारत के विदेशी मामलों का प्रबंध भी भारतीयों के हाथ में होगा। गवर्नर जनरल अब राजनीतिक नेताओं के परामर्श से सदस्यों का चुनाव करेंगे, तथापि उनकी नियुक्ति पर ब्रिटिश सम्राट की स्वीकृति अवश्य ली जायेगी।

वह काउंसिल वर्तमान संविधान के अंतर्गत कार्य करेगी ओर गवर्नर जनरल के अपने संवैधानिक नियंत्रक अधिकार के क्रियान्वयन पर कोई प्रश्न नहीं उठाया जा सकेगा, परन्तु अनावश्यक रूप से ऐसे अधिकार का क्रियान्वयन नहीं किया जायेगा।

मैं यह स्पष्ट कर देता हूं कि इस अंतरिम सरकार के गठन से अंतिम रूप से संवैधानिक समझौता नहीं हो जायेगा।

इस नई एक्जीक्यूटिव काउंसिल के ये मुख्य कार्य होंगे :–

प्रथम तो यह कि जापान के साथ छिड़े युद्ध का पूरी शक्ति के साथ सामना कर उसे पूर्णतया पराजित करना।

दूसरे, यह कि युद्ध समाप्ति के बाद सभी दिशाओं में प्रगति करने के लिए ब्रिटिश सरकार को उस समय तक चलते रहने दिया जाये, जब तक कि नया स्थायी संविधान सर्वसम्मति से लागू नहीं कर दिया जाता।

तीसरे, यह कि सरकार के सदस्यों को यह विचार करना संभव होगा कि ऐसी सामान्य सहमति के प्राप्त करने का क्या रास्ता निकाला जाये।

यह तीसरी समस्या बहुत महत्त्वपूर्ण है। मैं इसे पूर्णतया स्पष्ट कर देना चाहता हूं कि न तो मैंने और न ब्रिटिश सरकार ने लम्बी अवधि के हल की अनदेखी कर दी है ये वर्तमान प्रस्ताव लम्बी अवधि के हल को और आसान कर देंगे।

मैंने ऐसी काउंसिल का गठन करने के लिए अच्छे तरीके सोच रखे हैं और वायसराय लॉज ने इसके लिए मुझे परामर्श देने के लिए निम्नलिखित को निमंत्रण देने को मैंने निश्चय किया है।

वे लोग जो इस समय प्रांतीय सरकारों में प्रधानमंत्री हैं अथवा धारा 93 के अंतर्गत अब प्रांतों में प्रधानमंत्री के पद पर हैं।

कांग्रेस पार्टी के नेता और सेंट्रल असेम्बली के मुस्लिम लीग के डिप्टी लीडर, काउंसिल आफ स्टेट में कांग्रेस पार्टी के नेता और मुस्लिम लीग के नेता, नेशलिस्ट पार्टी के नेता और असेम्बली में यूरोपीयन ग्रुप के नेतागण।

श्री गांधी और श्री जिन्ना जो मान्यता प्राप्त राजनीतिक दलों के नेता हैं।

राय बहादुर एन. शिवराज अनुसूचित जातियों के प्रतिनिधि के रूप में और सिक्खों के प्रतिनिधि के रूप में मास्टर तारा सिंह।

इन महानुभावों को आज निमंत्रण पत्र दिये जा रहे हैं और यह प्रस्तावित किया जाता है कि 25 जून को शिमला में, जो दिल्ली की अपेक्षा अधिक ठंडा स्थान है, वहां एक सभा के लिए एकत्र हों।

मुझे विश्वास है कि सभी निमंत्रित महानुभाव सभा में भाग लेकर मेरी सहायता करेंगे। भारत के भावी समझौते की ओर प्रगति के इस प्रयत्न के लिए मेरा तथा उन सभी नेताओं का महान उत्तरदायित्व है।

यदि सभा सफल हो जाती है, तो मुझे आशा है कि केन्द्र में हम नई एक्जीक्यूटिव काउंसिल का निर्माण करने के लिए सहमत हो सकेंगे। मैं यह भी आशा करता हूं कि इससे मंत्रालयों को प्रथम कार्य करना संभव हो सकेगा और प्रांतों में संवैधानिक अधिनियम की धारा 93 के अंतर्गत मिली–जुली सरकारें बनाना संभव हो सकेगा।

यदि दुर्भाग्यवश बैठक असफल हो जाती है, तो हमें फिलहाल उस समय तक अपना कार्य करते रहना है, जब तक कि सभी दलों के लोग पास–पास नहीं आ जाते। वर्तमान एक्जीक्यूटिव काउंसिल, जिसने भारत के लिए ऐसा मूल्यवान कार्य किया है कि यदि अन्य व्यवस्थाओं पर सहमति नहीं हो पाती, तो यही काउंसिल अपना कार्य करती रहेगी।

परन्तु हमें पूरी आशा है कि यदि सभी दलीय नेता गण आपस में तथा मेरे साथ ईमानदारी से समस्याओ का हल निकालने का प्रयत्न करेंगे तो सभा में हमें सफलता अवश्य मिलेगी। मैं उन्हें विश्वास दिला सकता हू कि इस प्रस्ताव के पीछे सभी ब्रिटिश नागरिकों तथा यूनाइटेड किंगडम के नेताओं की भारत को उसके

लक्ष्य प्राप्ति में सहायता करने की सदइच्छा छिपी हुई है। मुझे विश्वास है कि लक्ष्य प्राप्ति के लिए यह कदम नहीं, वरन् सही पथ पर एक बड़ी छलांग है।

मुझे यह स्पष्ट कर देना है कि यह प्रस्ताव केवल ब्रिटिश इंडिया को प्रभावित करेंगे और उनसे ब्रिटिश सरकार के प्रतिनिधित्व के संबंधों में कोई परिवर्तन नहीं होगा।

ब्रिटिश सरकार की स्वीकृति और अपनी काउंसिल से परामर्श करने के बाद कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्य, जो अभी नजरबंद हैं, उन्हें तुरन्त मुक्त कर देने के आदेश दे दिये गये हैं। मेरा प्रस्ताव है कि वे लोग जो 1942 में तोड़फोड़ की कार्यवाही के कारण नजरबंद हैं, नई केन्द्रीय सरकार की यदि स्थापना हो जाती है तो अंतिम निर्णय लेने के लिए उस पर तथा प्रांतीय सरकारों पर जोर दिया जाए।

केन्द्रीय तथा प्रांतीय सरकारों के नए चुनावों के लिए उचित समय पर वाद–विवाद सभा में ही किया जायेगा।

अंत में मुझे यही कहना है, कि यदि हम प्रगति करना चाहते हैं, तो विश्वास एव सद्भावना का वातावरण बनाना नितांत आवश्यक है। भारतीय इतिहास के इस नाजुक समय में ब्रिटिश नागरिकों एवं भारतीय नेताओं को सदबुद्धि एवं समझदारी तथा उनके कार्यकलाप पर इस महान देश और उसकी करोड़ों जनता का भाग्य निर्भर करता है।

भारत के वीर सैनिक प्रशंसा के क्षेत्र में जितने ऊंचे स्तर के इस समय है, पहले कभी नहीं थे। देश के कोने–कोने से आये अस्पृश्य सैनिकों को धन्यवाद देता हूं। अन्तर्राष्ट्रीय सभाओं में भारत के प्रतिनिधियों की राजनीतिक जागरूकता उभर कर संसार के सामने आई है। भारत की खुशहाली की ओर प्रगति करने के उत्साह के लिए जो सहानुभूति सबके मन में आज है पहले कभी नहीं थी। परन्तु यह सब आसान काम नहीं है इस इतनी शीघ्रता से नहीं किया जा सकता है। हमें बहुत कुछ करना है ओर तमाम चढ़ाव–उतार एवं खतरों का सामना करना है। सभी क्षेत्रों में कुछ बातों को साफ कर देना और भुला देना है।

जहा तक मेरा संबंध है, मैं भारत के भविष्य में उसके महान बनने में विश्वास करता हूं, मैं आप सभी लोगों के सहयोग और सद्भावना की आकांक्षा करता हूं।

(3) गांधी जी का बयान

वायसराय की घोषणा सुनते ही मैंने महामहिम वायसराय का ध्यान इस ओर आकर्षित करते हुए तार भेजा कि कांग्रेस के प्रतिनिधि के रूप में मेरी अभी कोई

मान्यता नहीं है। यह कार्य कांग्रेस अध्यक्ष से संबंधित है अथवा कांग्रेस उस अवसर पर सभा लेने के लिए किसी को प्रतिनिधि के रूप में नियुक्त करें।

मैंने पहले कई वर्षो से अनिधकृत रूप में एक सलाहकार के तौर पर कांग्रेस का काम किया है। जनता को याद होगा कि मैं उसी अनधिकृत के रूप में कायदे आजम जिन्ना के साथ वार्तालाप के लिए गया था और अब ब्रिटिश सरकार से बात करने के लिए मैं अन्य कोई स्थिति नहीं स्वीकार कर सकता।

वायसराय की घोषणा का एक पहलू मेरे मन में खटकता है और मैं समझता हूं कि प्रत्येक राजनीतिक हिंदू को यह बात खटकेगी। मैं सवर्ण हिंदू के संदर्भ से कहना चाहता हूं। मेरा दावा है कि राजनीतिक अर्थो में कोई भी आदमी सवर्ण हिंदू नहीं है। कांग्रेस को ही लीजिए, जो भारत की राजनीतिक स्वतंत्रता की लड़ाई में सारे देश का प्रतिनिधित्व करती रही है, उसने अपने को कास्ट हिंदू" नहीं कहा। वीर सावरकर अथवा डाक्टर श्यामा प्रसाद मुकर्जी जो हिंदू महासभा से संबंधित हैं, सवर्ण हिंदुओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। क्या बिना जाति–पांति का भेदभाव किये, वे सभी हिंदुओं का प्रतिनिधित्त्व नहीं करते है? क्या वे हिंदुओं में अस्पृश्यों को शामिल नहीं मानते? क्या वे स्वयं अपने आप को सवर्ण हिंदू होने का दावा करते हैं। मैं आशा करता हूं कि ऐसी बात नहीं। समस्त राजनीतिक हिंदू यहां तक कि आदरणीय पंडित मदन मोहन मालवीय भी जो जातीय भेद में विश्वास करते हैं, वह भी अपने आपके सवर्ण हिंदू कहना स्वीकार नहीं करेंगे, क्योंकि इससे अन्य हिंदुओं के अलगाव की झलक दिखाई पड़ती है। हिंदू धर्म में आधुनिक विचार धारा सभी जातीय भेदभावों को समाप्त करने की है और हिंदू समाज में इस प्रकार के प्रतिक्रिया वादी हैं। इसलिए मैं केवल यही आशा कर सकता हूं कि वायसराय ने पूर्णतया नासमझी में इन शब्दों का प्रयोग किया है। मैंने उन्हें इस विचार से दोष मुक्त करता हूं कि सभी हिंदू समाज की ग्राहयता नहीं समझते। मैं इस बात पर इतना अधिक ध्यान न देता, परन्तु वास्तव में ध्यान इसीलिए दिया कि वायसराय का ऐसा शब्द प्रयोग राजनीतिक हिंदू मस्तिष्क के सचेतन स्थान पर प्रहार करता है। प्रस्तावित सभा से बहुत लाभप्रद कार्य हो सकते हैं, बशर्ते कि राजनीतिक तोड़–फोड़ की भावना से मुक्त हो·। निस्संदेह सभी आमंत्रित महानुभाव संयुक्त रूप से भारत के वांछित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करेंगे न कि भारतीय समाज के अनेक वर्गो के प्रतिनिधि के रूप में।

इसीलिए मैंने भूलाभाई–लियाकत अली समझौते को देख लिया है जिसके विषय में मैं समझता हूं कि यह वायसराय सम्मेलन का आधार है। श्री भूलाभाई देसाई के प्रस्तावों में ऐसी झलक नहीं है जो वायसराय के प्रसारण में मौजूद

थी। मुझे इसमें कोई संकोच नहीं जो भूमिका मैंनें श्री भूलाभाई देसाई को सलाह देकर निभाई, जब उन्होंने मुझसे परामर्श किया था। जैसा कि मैं समझता हूं श्री भूलाभाई देसाई के प्रस्ताव ने मुझे प्रभावित किया कि वह साम्प्रदायिक टकराव रोकने की दिशा में है और मैनें उन्हें आश्वस्त किया कि मैं कार्यसमिति के सदस्यों को समझाऊंगा और उनके प्रस्तावों के स्वीकार करने के कारण बताऊंगा ओर मुझे इसमें संदेह नहीं कि यदि दोनों पक्ष अपने क्षेत्र का सही प्रतिनिधित्व करें और उनका साझा लक्ष्य भारत की स्वतंत्रता हो तो ठीक बात बन सकती है।

मैं यहीं समाप्त करता हूं और कार्यसमिति आगे कारवाई करेगी। यह बात कांग्रेस के सदस्यों पर निर्भर करती है कि वे लम्बित मामलों पर अपना विचार प्रकट करें।

अनुक्रमणिका